विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच पारस्परिक
आदान-प्रदान योजना के अन्तर्गत प्रकाशित
कन्नड़ का गौरव उपन्यास

वंशवृक्ष

एक महान औपन्यासिक कृति

एस० एल० भैरप्पा

अनुवादक
डॉ० पी० पी० पुत्रन

१

१९२४ में कपिला नदी में भयंकर बाढ आई थी। तब से भजनगूडु की जनता ऊँचे स्थानों पर बसने लगी। किन्तु श्रीनिवास श्रोत्रिय का घर अभी तक राजमहल वाली सडक पर है। अब देवालय के आसपास जो पाठशाला, नारायणराव का अग्रहार, दुकानें हैं, उनका महत्त्व कुछ घट चला है।

बुजुर्गों का बनवाया पुराना घर छोडकर नयी जगह जाना सरल नहीं होता है। श्रीनिवास श्रोत्रिय के लिए तो इसकी कल्पना भी असम्भव है। कपिला ने उन्मत्त हो, अपने को फलाकर प्रचड वेग से लगातार पाँच दिन तक पूरे नगर को सन्त्रस्त कर दिया था। जिस तरह मद मधुर संगीत अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर अर्थात नाद लय-ताल में लीन होता है उसी तरह कपिला अपनी शांत गति से प्रबलतम गति तक पहुँच गई थी।

शुद्ध श्वेतवर्णी कपिला मानो अब लाल चुनरी ओढकर चली जा रही थी। सभी उसके इस रूप से भयभीत हो उठे थे। अपने संपूर्ण कल्मष को एकबारगी धो देने का संकल्प करके जैसे वह अट्टहास कर रही थी। कितने लोग इस प्रलयकर बाढ के ग्रास बने, कितने मकान इसमें धराशायी हुए कितने परिवार निराश्रित हुए—इन सबका स्पष्ट चित्र किसी को दिखाई नहीं दे रहा था।

श्रोत्रियजी के घर में भी घुटना पानी भर आया था। इस तबाही के लिए सारे गाँव ने नदी को कोसा, लेकिन श्रोत्रियजी ने ऐसा नहीं किया। 'गगेच यमुने चैव' का उच्चारण करते हुए उन्होंने घर की देहली के पास ही डुबकी लगाई। उस घर को छोड जाने का आग्रह उनके आठ वर्षीय

पुत्र नजुंड पत्नी भागीरतम्मा नौकरानी लक्ष्मी—तीनों ने किया था। लेकिन श्रोत्रियजी न माने। उन्होंने कहा— इतने बरसों से जो माता सरक्षण देती आई है अब उसके थोडा सा उग्र रूप धारण कर लेने पर क्या भाग जायें ? ऊपर की मंजिल पर चूल्हा जलाकर खाना पका लो। अनंत बाढ उतरेगी। प्रवाह धीमा पड़ा। नदी फिर नियत स्वरूप के अनुसार बहने लगी। किंतु अब हर साल बाढ़ की वजह से नदी के आसपास के गांवों को काफी क्षति पहुँचने लगी।

श्रीनिवास श्रोत्रिय का पुत्र नजुंड श्रोत्रिय बडा हुआ। मैसूर के कालेज में पढने लगा। माता पिता ने कात्यायनी के साथ उसका विवाह कर दिया। एक बालक जन्मा। बालक छह माह का था कि बाढ में नजुंड की मृत्यु हो गई। कपिला ने उसे निगल लिया। वह तैरना जानता था, प्रवाह के विरुद्ध संघर्ष की शक्ति भी उसकी बाहों में थी। पिता के समान ऊँचा हृष्ट पुष्ट गौर वर्ण आजानुबाहु था विशाल माथा था, लेकिन नदी की विकरालता के सम्मुख उसकी एक न चली। वह उमड घुमडकर बहने वाली उस नदी में तैरने नहीं बल्कि सतर्क होकर मणिका घाट पर स्नान करने उतरा था। पर फिसला। किनारे लगने के उसके सारे प्रयत्न विफल हुए। किनारे पर खडे लोग चिल्लाने लगे। उसने भी आवाज दी, लेकिन देखते ही देखते वह भँवर में फँस गया। बहुत खोजने पर भी शव का पता न लगा। चार पाच दिन बाद पानी उतरा। नदी किनारे ही उसका अंतिम संस्कार कर दिया गया।

छह महीने बीत गये।

इकलौते पुत्र की अकाल मृत्यु से माता पिता की चिंता अधिक है या बीस साल की उम्र में ही पति को खोने वाली उसकी प्रेममयी पत्नी की चिंता ? एक के दुख का दूसरे की नजर से आकना असाध्य कार्य है। पुत्र वियोग से मां एक ही महीने में बूढी हो चली। वह समझ ही नहीं पा रही थी कि बेटे की मृत्यु के लिए रोये या नई बहू को देखकर तरस खाये अथवा निश्चित मुस्कराते निद्रामग्न एक वर्षीय पौत्र को देख छाती पीट ले। निरंतर रोती रहती। पुत्र की याद आने पर पौत्र को उठा लेती। आँखें भर आती। पास खडी बहू सिसक सिसककर रो उठती।

सास स्वय धीरज धर, वहू को सीने से लगा लेती। सुख-दुख से अनजान बच्चा हँसता रहता। सास-बहू को सान्त्वना प्रदान करनेवाला वही तो था।

एक दिन दोपहर को कोई दो बजे कात्यायनी ऊपरी मजिल के कमरे मे पालने के पास बैठी थी। पालने मे बच्चा सो रहा था। मन अतीत के बारे म सोच रहा था। शादी हुए केवल दो ही साल हुए थे। प्रिय और जी-जान से प्यार करने वाला पति, देव-तुल्य सास-ससुर और सारे घर को चाँदनी सी चमक देने वाला पुत्र—अर्थात्, किसी भी बहू को सन्तुष्ट करा देने वाला परिवार मिला था। ससुर के सात्विक स्वभाव, वेद-शास्त्रो के अगाध ज्ञान ने इस परिवार को समाज म विशेष गौरव प्राप्त कराया था। कात्यायनी को पति का हँसता हुआ चेहरा उनका प्रेमल स्वभाव सदा आनद देते थे। उसे और चाहिए भी क्या था? इस सब पर उसे अभिमान भी था। और अब छह महीने पहले एक दिन कपिला ने उसके सुखी ससार को सदा के लिए नष्ट कर दिया। उस दिन से आज तक उसने जो आसू बहाये व कपिला के बहाये पानी से कम न थे! उसके मन म कभी कभी जीवन के अर्थ को लेकर प्रश्न उठते। लेकिन इन सबको उसकी बुद्धि पकड न पाती। कात्यायनी ने इण्टरमीडिएट पास किया था। साहित्यकारो के जीवन के सबध मे उनके विचार पढे थे। उसने उन विचारो को मन मे उलटा-पलटा, किन्तु कोई भी उसे अपनी इस घोर विपत्ति का कारण नही समझा पाया। सीढियो पर किसी के आने की आहट सुनाई पडी। कात्यायनी ने मुडकर देखा। ससुर आ रहे थे। बच्चा सोया था, फिर भी सिर तनिक झुकाकर वह पालना झुलाने लगी। श्रोत्रियजी विचार मग्न थे। उन्होंने बहू को नही देखा। सीधे दूसरे कमरे म चले गये। यह कमरा उनका स्वाध्याय कक्ष था। कमरे मे पाडुलिपियाँ, छपे ग्रथ और उन्ही के हाथ की लिखी कुछ पुस्तकें हैं। एक स्थान पर स्याही और कलम रखी है। खिडकी के पास बाघ चर्म बिछा है, जिस पर तकिया रखा है ताकि दीवार से टिककर बैठ सकें। सामने व्यासपीठ है। कम-से-कम तीस साल स इस कमरे मे वे वेद शास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद आदि का अध्ययन कर रहे हैं। पुत्र की मत्यु से लेकर उसकी उत्तरक्रिया तक वे इस कमरे मे नहीं आये। सब समाप्त होने के पश्चात्

भी एक-दो सप्ताह तक इस कमरे म प्रवेश नही किया था। पत्नी और बहू को सात्वना देते हुए उनके साथ ही रहते थ। अब पूववत अध्ययन कक्ष म आने लगे हैं। पत्नी भागीरतम्मा नौकरानी लक्ष्मी क साथ रहती। कभी कभी बहू के पास बठ जाती। व पुत्र की याद करके आँसू बहाती रहती तो कात्यायनी पति का स्मरण करक। नौकरानी जो भागीरतम्मा की ही उम्र की थी चुपचाप तडपती रहती। लकिन कात्यायनी ने ससुर की आँखा म कभी एक बूद आँसू भी नही देखा। वह जानती है कि व पाषाणहृदय नही हैं लकिन उनकी सहन शक्ति की गहराई उसकी ग्रहण शक्ति की पकड के परे थी।

शाम होने को आई बच्चा अभी तक सो रहा था। कात्यायनी का मन अपार चिताओ म डूबा था। पीछे खडे ससुर की पुकार, उस ऐसी लगी मानो कोई दूर से आवाज द रहा हो— बटी !

कात्यायनी ने मुडकर देखा। श्रोत्रियजी सीढी के पास खडे हैं। वह उठ खडी हुइ। नीचे उतर रह श्रोत्रियजी फिर ऊपर आ गय और पास के ही खम्भ के पास बठकर कहन लग—' बठो बटी !"

कात्यायनी सिर झुकाकर मूक-सी बठी रही। जब से घर की बहू बन कर आई है, तब स उनम पिता पुत्री का सा व्यवहार है। लेकिन पति की मत्यु के पश्चात् वह उनस भी नही बोल पाती थी। अत श्रोत्रियजी ने ही पूछा —' बेटी जसा कि मैंने कहा था तू भगवद्गीता पढ़ती है न ?

कात्यायनी ने कोई उत्तर नही दिया। दो मिनट बाद उन्होने प्रश्न दोहराया तो कहा— पढने की कोशिश की, किन्तु समझ नही पाती। और फिर मन भी नही लगता।

जितना समझ मे आय उतने स सतोष करना चाहिए। धीरे धीरे सब समझ म आ जायेगा।

एक क्षण चुप रहकर कात्यायनी ने कहा— भगवद्गीता का दशन मेरी समझ के परे है। मेरे दु ख को दूर करने की शक्ति किसी वेदात मे नहा है। पढ़न से क्या लाभ ?

श्रोत्रियजी ने विषाद से हसकर सात्वना के स्वर म कहा— यह सच है कि हर एक को अपना दु ख स्वय भोगना पडता है। कोई ग्रथ या व्यक्ति उसे अपने ऊपर नही ले सकता। लेकिन इन ग्रथो से मालूम होगा

कि इस महान जगत की घटनाओ के साथ तुलना करने पर हमारा दु ख कितना छोटा है। इस दु ख को सहना तभी सरल होगा जब हम समझ जायेंगे कि वह भी भगवान की इच्छा का एक अश है। इसलिए कहता हूँ कि ध्यान देकर पढ़ो ।

श्रोत्रियजी समझा ही रहे थे कि बच्चा जाग उठा। शायद नीद पूरी नही हुई थी, वह रोने लगा। 'बच्चे को चुप करा लो'—कहकर वे नीचे चले गये। कात्यायनी बच्चे को दूध पिलाने बैठ गयी। बच्चा चुप हुआ। जब उसे पति की याद आने लगती वह बच्चे को छाती मे और अधिक चिपका लेती। मन कुछ हलका होता। इसके सिवा अब और किसका आसरा है उसे।

दूध पी चुकने के बाद बालक खेलने लगा। और माँ के चेहरे को नाखूनो से खरोचता हुआ हँसने लगा। एक बार पूरे घर को सुनाता-सा जोर से हँस पडा। हँसी सुनकर दादा ने पुकारा— 'चीनी।'

कात्यायनी बालक को लेकर नीचे आई। श्रोत्रियजी बालक को अपने कधे पर बठाकर घर के पीछे बाडे मे चले गये। कात्यायनी रसोईघर मे चली गई। सास रसोई मे लगी थी। कात्यायनी चुपचाप खडी रही। बहू को देख सास ने कहा—' बेटी, तू अकेली मत बैठ। जितनी अकेली रहेगी उतनी ही अधिक चिन्ता होगी। मेरे पास, कभी लक्ष्मी के पास बैठ जाया कर। कुछ बोलती रहा कर। गाय-बछडो के काम मे लग जाया कर। कुछ न कुछ करते रहना चाहिए। इससे थोडा तो भूलेगी। या खडी क्या है, बैठ जा।' फिर वह अपने काम मे जुट गई। कुछ याद कर कहा— 'नही, बैठकर अँगीठी की ओर ध्यान रख। कुछ उबले तो मुझे आवाज देना। मैं भगवान की पूजा की तैयारी करके आती हूँ। उनके आने का समय हो चुका है। वह देवपूजा के कमरे मे चली गई।

साय सध्या-देवार्चना समाप्त कर श्रोत्रियजी जब पूजागृह से बाहर निकले, तब रोज की तरह रात के आठ बज चुके थे। पूजागृह से सीधे घर के पिछवाडे सध्या वदन की सामग्री को केले के पौधे के पास डालकर, पुन जब पूजागृह की ओर जाने लगे तो कात्यायनी ने कहा— मसूर से डॉ॰ सदाशिवराव आये है दीवानखाने मे बैठे हैं।

कितनी देर हुई ?

'करीब दो घटे हुए होंगे। आप तब सध्या करन बैठे ही थे।'

और वदमत्रा का पाठ न कर पूजा के पात्रो को भीतर रखकर श्रोत्रियजी बाहर आये। डॉ० सदाशिवराव करीब पतीस वप के है। आँखों पर चश्मा चढा है। सिर के काफी बाल सफेद हो गये हैं। और लगता है कि वेशभूपा की ओर ध्यान कम ही दिया गया है। वह दीवानखाने म एक कुर्सी पर वठ सस्कृत की कोई पुस्तक देखने मे मग्न थे। श्रोत्रियजी की आवाज पर ही आँखें ऊपर उठाइ। आपको आये काफी देर हुई—प्रतीक्षा करनी पडी—क्षमा करें।'

आप वडे हैं। क्षमा की बात ही क्या ? मुझे और कोई काम भी तो नही है फिर मैं तो फुरसत से ही आया हूँ।"

कुर्सी पर बठते हुए श्रोत्रियजी ने पूछा— आपका ग्रथ कहा तक पूरा हुआ ?'

वह प्रकाशित हो चुका है। लदन के एक प्रकाशक ने प्रकाशित किया है। आपको उसी की प्रति भेंट करने के लिए आया हू —कहकर सदाशिवराव न थैली से एक पुस्तक निकालकर श्रोत्रियजी को दी। सकडो पृष्ठो का सुदर ग्रथ — प्राचीन भारतीय राजतत्र को धम की देन। श्रोत्रियजी ने पहला पन्ना पलटा क नडमे लिखा था— पूज्य श्रीनिवास श्रोत्रियजी का भक्तिपूवक सदाशिवराव।

उसे देखकर श्रोत्रियजी ने पूछा—' इतना सम्मान ?

इस ग्रथ के मागदशक आप ही है। इससे सबधित अनक विषयो को आपस ही जाना था। शकाओ का आपने ही निवारण किया था। भूमिका मे इनका उल्लख भी मैंने किया है।

श्रोत्रियजी को अग्रेजी का साधारण ज्ञान ही था। बक का चक अता-पता लिख न लायक कामचलाऊ अग्रजी जानते थ। उन्हान कहा — आपन इतना वडा ग्रथ लिखा है मैं तो ठीक तरह से अग्रेजी पढ भी नही पाता। मेरी बहू पढेगी। उसे रखकर कहने लग अच्छा अब हाथ मुह धो लीजिए भोजन के बाद बातें हागी।

भोजन के लिए दोना रसोईघर और पूजाघर के आँगन म बठ गये। भागीरतम्मा परोस रही थी। एक दो कौर खाने के पश्चात डा० सदा-

शिवराव ने अचानक पूछा—"अरे नजुंड श्रोत्रिय दिखाई नहीं पड़ा ?"

श्रोत्रियजी क्षण-भर को विचलित हुए, फिर अपने को सँभालते हुए कहा— भोजन कर लें, फिर बताऊँगा।"

डॉ० राव श्रोत्रियजी के स्वर्गीय पुत्र के गुरु हैं। जब नजुंड बी० ए० में था तब वे इतिहास पढ़ाते थे। इसी कारण परिचय हुआ और वे श्रोत्रियजी के पाण्डित्य का लाभ उठाने लगे। श्रोत्रियजी की ये बातें सुनकर उन्हें खटका हुआ। शाम को जब वे यहाँ पहुँचे थे तब द्वार कात्यायनी ने ही खोला था। वे उसकी शादी में भी गये थे। एक-दो बार यहीं उससे बातें भी की थीं। वह भी उनसे निस्संकोच बात करती थी। लेकिन आज वह 'बैठिये, अभी सन्ध्या करने गये हैं, एक घंटा लगेगा" कहकर, सिर झुकाकर भीतर चली गई थी। डॉ० राव सन्ध्या की धुंधली रोशनी में उसके मुख को स्पष्ट नहीं देख पाये थे।

भोजन के बाद वे दोनों बैठक में गये। पान की तश्तरी सामने रखी थी। श्रोत्रियजी ने कहा, "पान लीजिए मैंने खाना छोड़ दिया है।"

'क्या नजुंड श्रोत्रिय गाँव में नहीं है?'—डॉ० राव ने चार पान चबाते हुए पूछा।

नहीं'—श्रोत्रियजी ने शांत स्वर में कहा—'आपके शिष्य को कपिला ने निगल लिया। पिछले ज्येष्ठ में पैर फिसल गया था। किनारे पर न आया तो नहीं ही आया।"

सुनकर डॉ० राव को बड़ा आघात लगा। श्रोत्रियजी मजाक में भी अमंगल बोलने वाले व्यक्ति नहीं हैं। फिर भी तुरंत विश्वास नहीं हुआ। वे अवाक्-से श्रोत्रियजी का चेहरा देखते हुए बैठे रह गये। शांत स्वर में श्रोत्रियजी ने पुनः कहा—' शिष्य के बारे में यह सुनकर आपको दुःख हो रहा है। आखिर सब सहना ही है। घर में बहू और एक साल का उसका बच्चा है। बच्चे को आशिष दें कि उसे आप जैसे विद्वानों से शिक्षा मिले। अब बताइए आगे क्या करना चाहते हैं? आप-जैसे मेधावियों को चाहिए कि हमारे पूर्वजों का जीवन वर्तमान पीढ़ी के सम्मुख लायें। आपको यहाँ आये करीब डेढ़ वर्ष तो हो ही गये होंगे?'

श्रोत्रियजी के व्यक्तित्व के प्रति डा० राव को अपार अपनत्व श्रद्धा थी लेकिन इकलौते पुत्र की मृत्यु का असह्य दुःख बिसराकर श्रोत्रियजी

इतन शात रह सकते है—इसकी कल्पना भी उन्होने नही की थी। ऐसी कल्पना का कोइ अवसर भी कहाँ था ? बेटे की मत्यु के बारे म बात बढाने की उनकी अनिच्छा जानकर डॉ० राव ने कहा "मेरे इस ग्रथ से मुझे पर्याप्त ख्याति मिली है। इसकी प्रशसा म विदेशा स अनक विद्वाना के पत्र प्राप्त हुए है। लेकिन मुझे अभी तप्ति नही हुई है। 'प्राचीन भारतीय राजतन्त्र का धम की देन विषय पर शोध करते समय, ऐसी सामग्री मिली है जिसके आधार पर प्राचीन भारत का समस्त जीवन प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके अलावा इच्छा जागी है कि इस देश की सास्कृतिक परम्परा का पूर्वेतिहास से लेकर आज तक का वणन करूँ। यह ग्रथ पाँच जिल्दा मे लगभग पचास वर्षो म पूण करन की योजना है। इस ग्रथ के लिए आपका जा सहयाग और आशीर्वाद मिला अगले ग्रर्थो के लिए भी उसका अपेक्षा है।'

इस बीच कात्यायनी ने पास ही दो बिस्तर लगा दिय। ओढन के लिए कबल रख दिया था और पीने के लिए ताम्र पात्र म पानी। वह भीतर चली गयी। बिस्तर पर लेटने के बाद भी दोना बातें करते रह।

डा० राव बता रहे थे— अनेका न इस दश का इतिहास लिखा लकिन वे सब राजनीतिक इतिहास है। सास्कृतिक इतिहास की दृष्टि से भी एक दो ग्रथ प्रकाश म आये है। मेरा दष्टिकोण इन सबसे भिन्न है। भारत की सस्कृति म कला राजनीति दनिक जन जीवन इन सब म धम का प्रवाह निरतर बहकर उन सबका पोषण करता है। ब्राह्मण बौद्ध जन आदि धर्मो के विकास से सस्कृति के स्वरूप म परिवतन हुआ। इसे सब जानत है। लेकिन मुसलमाना क आक्रमण के पूव जीवित इन तीनो धर्मा के प्रभाव से इस देश का सास्कृतिक भवन अधिक उत्थान पतन हुए बिना टिका रहा। क्योकि इन तीना धर्मो का अत सत्व उदगम एक ही है। इस्लाम धम का मूल सस्कृति पर क्या परिणाम हुआ आधुनिक युग म वह किस दिशा मे जा रहा है—इस दष्टि से मैं खाज कर रहा हूँ। इसके लिए भारतीय धमशास्त्रो दशनशास्त्रा साहित्य आदि का अध्ययन आवश्यक है। कुछ ग्रथ पढ लिए है कुछ का आपके साथ पढना पडेगा। इसम आपस ही सहायता मिल सकती है।

रात के बारह बज गय। दोना बातचीत में डूबे रहे। ऐसे महान

ग्रथो के रचना क्रम बीच-बीच म आने वाली कठिनाइयो के सबंध मे श्रोत्रियजी प्रश्न कर रहे थे। डा० राव ने कहा, इस तरह की शोध के लिए काफी अवकाश चाहिए। एक-दो निष्णात सहायक मिल जायें, तो भाग्य ही समझना चाहिए। अनेक ग्रथ हमारे पास नही हैं। इसके लिए देश के विभिन्न पुस्तकालयो म काफी समय बिताना पडेगा। मुख्य मुख्य ऐतिहासिक स्थानो पर जाकर अपनी आँखो देखना और अध्ययन करना होगा। इन सबके लिए धन चाहिए। इस प्रकाशित ग्रथ के साथ अपनी योजना के विवरण की अपील मैंने महाराज कृष्णराज वाडियरजी को भेजी है। अगले सोमवार को दोपहर के तीन बजे महाराज ने बुलाया है। लगता है महाराज इस काम म मदद करेंगे।

श्रोत्रियजी बडी आसक्ति से यह सब सुन रहे थ। नीद आयी तब दो बजे थे।

नियमानुसार श्रोत्रियजी सुबह चार बजे उठ बैठे। घर से करीब सौ गज दूर गुडल नदी की ओर गये। कृष्ण पक्ष था—चादनी नही थी। लेकिन आकाश के नक्षत्र मन म अनत की कल्पना जगा रहे थे। प्रशात भाव म निवृत्त होकर लौटे। फिर बाडे म गये। उन्हें आते देख गायें उठ खडी हुईं। उन पर हाथ फेरा, उन्हें खोला और बाहर बाँधकर जब व भीतर आये तो भागीरतम्मा भी जाग उठी थी। एक अँगोछा और एक पात्र लेकर श्रोत्रियजी देवालय के सम्मुख स्थित मणिकर्णिका घाट गये। कपिला शात षड्ज श्रुति-सी बह रही थी। नदी म स्नान किया, कपडे धोये। पात्र मे जल भरा। लौटते वक्त तक नित्य की भाँति वातावरण मे पक्षियो का कल रव भर चुका था। इस बीच भागीरतम्मा ने स्नान करके पूजाघर सँवार दिया था और पूजा की तैयारी कर दी थी। श्रोत्रियजी पूजाघर म प्रविष्ट हुए।

डॉ० राव उठे तो आठ बजे थे। रोज इसी समय उठते हैं। रात को दो बजे से पहले कभी सोते नही। उठकर कुर्सी पर बैठे कि कात्यायनी ने आकर कहा, 'पूजा कर रहे हैं, आरती होने ही वाली है, आप भी स्नान कर लीजिए—पानी तैयार है।

स्नान के पश्चात् डॉ० राव पूजाघर के द्वार पर खडे हो गये। उन्हें

आरती और तीर्थ दिये गये। उसी दिन दोपहर तक उन्हें मसूर लौटना था। दोपहर का भोजन हुआ। श्रोत्रियजी ने भीतर से लाकर ताबूल की तश्तरी सामने रखते हुए कहा—'इसे स्वीकार करें।' तश्तरी में ताबूल और उस पर एक नारियल रखा था। पास ही एक लिफाफा। देखते ही वे समझ गये कि इसमें पैसा है। एक कदम पीछे हटकर कहा— आपके आशीर्वाद स्वरूप इस श्रीफल को लेने से मैं इन्कार नहीं करूँगा लेकिन इस लिफाफे को स्पर्श नहीं करूँगा।

श्रोत्रियजी ने कोमल स्वर में कहा— आप एक महाग्रंथ की रचना में लगे हैं। उसके लिए पैसे चाहिए ही। भगवान का दिया हुआ जो कुछ इस परिवार में बचता है उसका सदुपयोग ऐसे कार्यों के लिए न हो तो वह किस काम का? आप लीजिए।'

'मैं आपसे कुछ दूसरी अपेक्षा रखता हूँ—इसकी नहीं।

सहायता करने वाला मैं कौन होता हूँ? आप जब चाहें आइए। लेकिन इसे ले लीजिए। यह मैं आपको नहीं दे रहा हूँ। देनेवाला भी मैं नहीं हूँ। पैसे तो ऐसे सत्कार्यों के लिए ही हैं! शास्त्र-वचन है कि किसी धर्म कार्य के लिए किसी के द्वारा दी गई भेंट, दाता अगर लोभवश बेमन से देता हो अथवा अपने बच्चों को भूखा मारकर देता हो या वह कमाई अन्याय की हो तो ही ऐसी मदद न लें। इस भेंट को अस्वीकार करना भी अधर्म है।"

यह सुनकर डॉ० राव को बड़ा संकोच हुआ। ताबूल की तश्तरी स्वीकार की। भागीरतम्मा से कुछ कहकर कात्यायनी को सान्त्वना दी और दोपहर बाद रवाना हुए।

रेल नंजनगूडु से आगे निकल जाने के बाद कुतूहलवश उस लिफाफे को खोलकर देखा तो अवाक् रह गये। सौ सौ के दस नोट थे।

मैसूर पहुँचने से पहले ही उन्होंने निश्चय कर लिया था कि इन रुपयों का सदुपयोग किस तरह किया जाये दो सौ रुपये का एक नया टाइपराइटर लगभग तीन सौ रुपये की नितान्त आवश्यक ऐसी किताबें जो विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में अनुपलब्ध हैं और शेष रुपये शोध-कार्य के सिलसिले में प्रवास के लिए।

२

डा० सदाशिवराव सुबह नौ बजे उठे। पिछली रात ग्रथ मे जहाँ-जहाँ निशान लगाये थे, इस समय फिर उन्हे देख रहे थे। सुबह उठते ही कॉफी पीने की उनकी आदत नही है। जब भी पत्नी काफी या नाश्ता लाती, ले लेते। स्वय कहकर उन्होने कभी कुछ नही खाया पिया।

पढे हुए ग्रथो की अनेक बातो से वे सहमत नही हो पाते थे। अपने ग्रथ म उनका उल्लेख करके वे उनका दोष भी सिद्ध करना चाहते थे। वे विगत युग के दो हजार वर्ष के जीवन की कल्पना कर रहे थे कि पीछे से किसी ने उनके सिर पर ठडा-ठडा हाथ रख दिया। मुडकर देखा पत्नी है। बायें हाथ मे तेल का लोटा था। दाहिने हाथ से एक चम्मच तेल डालकर वह उनके सिर मे मलने लगी। हडबडाते हुए उन्होंने पूछा —'सुबह उठते ही यह क्या कर रही है नागु ?"

उत्तर दिये बिना ही नागलक्ष्मी ने कहा—"नही समझे ? उठिए, एक पुराना अँगोछा लपेटकर बैठ जाइए। शरीर पर तेल मल देती हूँ।"

'सिर म जितना डाल दिया उतना ही काफी है। मगर आज सुबह-सुबह उठते ही यह क्या सूझी ? तू समझती क्या नही कि मेरे पास कितना काम है।

नागलक्ष्मी ने हँसकर कहा—"सैकडो किताबें आपके दिमाग मे हैं। किस राजा की सेना म कितने बूढे हाथी थे, यह सब आपको जबानी याद है। लेकिन पत्नी ने कल रात जो कहा, वह भूल गये। बताइए कल रात मैंने क्या कहा था आपसे ?'

डॉ० राव याद करने लगे। लेकिन व्यर्थ। रात तीन बजे तक तीन सौ पृष्ठो का जो ग्रथ पढा था उसकी हर बात याद है। अत मे नागलक्ष्मी ने ही हँसकर कहा— 'आपको याद नही आती। आप जैसे लोग पत्नी की ओर ध्यान ही कहाँ देते हैं ? खैर छोडिए आज आपका जन्मदिन है। अभ्यग स्नान करने और उसके बाद खीर खाने की बात मैंने कही थी। बुरा न मानिए, उठिए।"

स्नानगृह में पति के तेल मलते हुए नागलक्ष्मी ने कहा—"बाल

सँवारत वक्त आपने कभी आईने म अपना सिर देखा है ? सफ ेबाला से भर गया है। आज आप चौंतीस के हुए। अभी स बुढ़ापा ! ख़ैर, जाने दीजिए यह बताइए कि आपकी पत्नी की उम्र कितनी है ?"

डॉ० राव का हँसी आ गई। 'कितनी भी हो, इतना पक्का है कि पैंतीस से कम ही है !"

बड चतुर हैं आप ! जिस पत्नी की चिंता नही उस पत्नी की उम्र की क्या परवाह ! मैं राज स दो महीन बडी हूँ। अभी पन्द्रह दिन पहले वह चौबीस का हुआ है। तो बताइए, मेरी उम्र कितनी हुई ?'

' राज से दा महीने अधिक।'

' मजाक छाडिए ! मैं आपसे कितने साल छोटी हूँ ?

राज मुझस जितने साल छोटा है उससे तू दो महीने कम।

तन लगे हाथ स पति की नाक धीरे से खीचते हुए नागलक्ष्मी ने कहा — साफ-साफ बताना पडेगा, मैं आपको या ही नही छोड़ूँगी। शरीर में तेल तो लगाने दीजिए। अब आप शरीर को मलते रहिए। मैं आपके लिए काफी बनाकर लाती हूँ। आज जब तक आप स्नान करके भगवान की पूजा नही करते, तब तक खाने के लिए कुछ नही दूँगी।

नागलक्ष्मी रसोईघर म गयी। कल रात ही उसने घर की साफ-सफाई की थी। पूजा की तयारी कर रखी है। अब भोजन भर बनाना है। दस बज चुके थे। वह उसकी तयारी कर ही रही थी कि उसके चार साल के पुत्र पृथ्वी न, जा पडोस के बच्चा के साथ खेल रहा था आकर कहा— 'मा भूख लगी है।

आज तेरे पिताजी की वषगाँठ है। उनके स्नान के बाद ही खाने को मिलेगा। भूख लगी है ता यह खा ल। कहकर उसन थोड़ा-कुछ खाने को दे दिया। लडका फिर खेलन चला गया। अपना काम समाप्त कर नागलक्ष्मी स्नानागह म गयी। डॉ० राव वहाँ नही थे। अध्ययन-कक्ष म देखा ता वे एक फटा सा बोरा बिछाकर बठे थे और पिछली रात पढे ग्रथा स नोट उतार रहे थ। पास आकर नागलक्ष्मी ने कहा— उठिए, साल के बारहो महीने पढना तो लगा ही रहता है। आज सालगिरह का दिन खुशी-खुशी पत्नी बच्चो के साथ बिताना चाहिए। चलिए स्नान कर लीजिए और भोजन भी। चाहे तो थोडा लेट जाइएगा। आज 'वसत-

सेना' नाटक देखने जायेंगे।"

'अवश्य जायेंगे। आज तो वही होगा, जो तू कहेगी। हाँ, अभी बजा क्या है?' फिर दीवार पर लगी घडी देखकर कहा—'अरे, साढे ग्यारह! चलो चलो, जल्दी स्नान करा दो। तीन बजे महाराज से मिलना है।'

"सच? आपने मुझे तो बताया ही नहीं! बात क्या है?"

"शायद भूल गया। डायरी में लिख रखा था। उठो स्नान करा दो।'

'डायरी मे—मैं अंग्रेजी तो जानती नही! मैं ठहरी निरी गँवार अन पढ़ लडकी! वह पति की बाँह थाम गुसलखाने में ले गई। गरम पानी डाला। सिर, पीठ शरीर में साबुन मला और स्नान के बाद भगवान की पूजा की। पति और पुत्र को प्रसाद दिया। तीनो ने भोजन किया तब तक करीब डेढ बज चुका था। बरतन धोकर और बचे हुए भोजन को ढककर नागलक्ष्मी पान की तश्तरी लेकर राव के अध्ययन-कक्ष में आई तो वे बाहर जाने के लिए तैयार हो चुके थे। काला सूट काली टाई सिर पर पगडी बाँधकर व बूट पहन रहे थे। देखते ही नागलक्ष्मी ने कहा—"अरे यह क्या? आप तो निकल पडे! क्या आज पान भी नही खायेंगे? जल्दी ही तैयार कर देती हूँ ठहरिए!"

'नहीं नागु दो बजने को है। ठीक तीन बजे महाराज से भेंट है। पान खा लू तो पुनः मंजन किये बिना उनके सामने न जा सकूगा' कहकर बाहर निकल गये। ताम्बूल पात्र मेज पर रखकर नागलक्ष्मी उनके पास आई और उनके दोनो हाथ अपने हाथो में लेकर कहने लगी— मेरी तरफ तो देखिए।'

डॉ० राव निहारने लगे तो नागलक्ष्मी ने स्नेह भरे स्वर में कहा—जाकर जल्दी आइए। मैंने अभी अभी भगवान की पूजा की है महाराज जरूर आपकी सहायता करेंगे।

डा० सदाशिवराव जब दस वर्ष के थे तभी उनकी माँ दो बच्चे छोड़कर चल बसी थी। इनके मामा कुणिगलु रामण्णा ने ही सदाशिव और राज दोनो बच्चो को पाला-पोसा। दो साल बाद पिताजी भी स्वर्गवासी हो गये। लडको को पिता से कोई जायदाद नहीं मिली। सदाशिव, रामण्णा की पुत्री से दस साल बडे थे। जब वह पाँच साल की थी तब

सदाशिव पढने के लिए मसूर के अनाथालय मे प्रविष्ट हुए। लेकिन नागलक्ष्मी और राज हम उम्र थे। आख मिचौनी आदि खेल साथ साथ खेलते थे।

डा० राव चौबीस की उम्र म एम० ए० करके महाराज कालज म इतिहास के प्राध्यापक बन गये और डॉक्टरेट की उपाधि के लिए अध्ययन करने लगे। नागलक्ष्मी से शादी कर लेन का आग्रह रामण्णा काफी दिना से कर रह थ। नागलक्ष्मी केवल चौदह की थी लेकिन शरीर से सुदर, हृष्ट-पुष्ट और ऊच कद की थी। घर के काम काज मे कुशल। मिडिल तक की शिक्षा पूरी करना भी उसकी किस्मत मे नही था। और अपन माता पिता की तरह वह यह भी जानती थी कि लडकिया का पढ लिखकर आखिर करना ही क्या है? अध्ययन म डूबे हुए राव शादी के बारे मे सोचते भी नही थे मगर मामा के कहन पर शादी कर ली। मसूर म घर बसाया। राज भी भाई भाभी के साथ रहकर पढता रहा। देवर-भाभी म जो स्नेह था वह पति-पत्नी म भी नही था। सदाशिव पत्नी को चाहते न हा सो बात नही थी। मगर व पढाई लिखाई, शोध आदि मे ही तल्लीन रहा करते थे। शादी के छह वष के बाद पुत्र पथ्वी हुआ।

चार साल पूव रामण्णा स्वग सिधार गय। एक वष बाद उनकी पत्नी ने भी इस ससार से विदा ले ली। अब नागलक्ष्मी की बहन और बहनोई उनकी खेती-बाडी की देखभाल करते हैं।

अग्रेजी साहित्य मे एम० ए० होने के बाद राज को उसी कालेज म प्राध्यापक की नौकरी मिल गई। बाद म इग्लड मे अध्ययन के लिए छात्रवत्ति भी मिली। अब दो बरस स जब से वह आक्सफोड गया है नागलक्ष्मी का घर म मन नही लगता। स्वभावत उसको कुछ अधिक बोलन की आदत है। अध्ययन म खाये रहने वाले पति पुस्तकालयों म जाते हैं तो सब-कुछ भूल जाते हैं। घर आते हैं तब भी अध्ययन-कक्ष म रात के दो बजे बाद तक पढत लिखते रहत हैं। उन्ह विदेश में रहने वाले भाई को पत्र लिखन का भी समय नही मिलता। नागलक्ष्मी पत्र लिखती और व उस पर अग्रेजी मे पता लिख देत। ऑक्सफोड मे अध्ययन पूर्ण करके राज स्वदश के लिए जहाज म चढ चुका है। आजकल म बम्बई आ जायेगा।

राव के महाराज [illegible]

रहने के कारण वह नाटक देखने जाने की तयारी में लग गई। वह सोचती रही—'महाराज से भेंट कितने बजे होगी! वे तो बड़े आदमी हैं, एक-दो बात करके लौटा देंगे! महाराज से भेंट की बात उन्होंने नहीं बताई थी। वे मुझे कुछ नहीं बताते! अपने ही काम में डूबे रहते हैं!'

पाँच बज गये। वे नहीं आये। पृथ्वी अन्य बच्चों के साथ खेल रहा था। नागलक्ष्मी ने उसे बुलाया और हाथ मुँह धुलाकर कपड़े पहना दिये। स्वयं भी तैयार हो गई। आज पति की सालगिरह जो है! उन्हें अपनी सालगिरह का भान भले ही न रहे, पर वह क्या न गर्व करे? बेटे ने आकर पूछा—माँ पिताजी अभी तक नहीं आए? तो नागलक्ष्मी 'अभी आयेंगे' कहकर बाट जोहने लगी। घड़ी ने छह बजाये। किन्तु उनका पता नहीं। नागलक्ष्मी द्वार पर खड़ी रही। एक पोस्टमैन आया और हस्ताक्षर लेकर एक लिफाफा दे गया। वह तीन शब्दों का तार था जो राज ने भेजा था। लिखा था "मंगलवार शाम को पहुँचूँगा।" उसने अर्थ भाँप तो लिया लेकिन निश्चित नहीं समझ पाई। किससे पूछूँ? कन्नड में पत्र लिखने वाले राज ने तार अंग्रेज़ी में ही क्यों भेजा? मैं अंग्रेज़ी नहीं जानती इसलिए मेरी खिल्ली उड़ा रहा है क्या? आने दो उसे, खूब खरी खोटी सुनाऊँगी उसने सोच लिया।

रात को आठ बजे डॉ० राव घर आये। तार देखकर कहा—"कल शाम को राज आ रहा है।'

"तो मैंने जो अर्थ लगाया था, वह ठीक ही था!" नागलक्ष्मी ने सगर्व कहा।

'हाँ, तू होशियार जो है। उसके आने के पश्चात् अंग्रेज़ी सीख ले और मेरी मदद कर!'

'बस, यही तो बाकी है, अंग्रेज़ी सीखना और आपकी सहायता करना। आप जानते हैं कि मेरी किस्मत में विद्या है ही नहीं। छोड़िए आज के नाटक का कार्यक्रम रद्द हो गया मगर राज को लेने सब साथ जायेंगे। महाराज ने क्या कहा?

उन्हें मैंने अपनी पुस्तक पहले ही भेज दी थी। उन्होंने पढ़ ली है। कहते थे बड़ी पसन्द आई। विश्वास दिलाया है कि मैं जो ग्रंथ लिखने जा रहा हूँ, उनके प्रकाशन में वे पूरी सहायता करेंगे।'

क्या वास्ता ? शोधकार्य के लिए प्रवास करना पड़ेगा। न पर्याप्त धन है और न अन्य सुविधाएँ ही। बार-बार छुट्टियाँ भी नहीं मिलतीं। महाराज से सहायता मिलेगी।'

विदेश के विद्वानों, संशोधकों, पाश्चात्य शैक्षणिक संस्थाओं से मिलने वाले प्रोत्साहन और सहायता को स्मरण कर राव ने कहा— इस देश के विश्वविद्यालयों की ऐसी नीति और व्यवस्था के कारण ही हमारे अनेक विद्वान पश्चिम की ओर जा रहे हैं। आपके ग्रंथ को ही देख लीजिए। अगर आप इस ग्रंथ के आधार पर नये ग्रंथ की योजना आक्सफोर्ड या कैम्ब्रिज को बतायें तो वे वांछित सहायता दे सकते हैं। भारत का इतिहास लिखने वालों को भारत की अपेक्षा इंग्लैंड में अधिक विषय और सुविधाएँ मिलती हैं।"

नागलक्ष्मी बीच में ही बोल उठी— ये अगर इंग्लैंड गये तो परिवार को भुला ही देंगे और वहीं बस जायेंगे।"

'तुम्हें डरने की जरूरत नहीं। इन जैसे विद्वानों के वहाँ जाने पर वे पत्नी के रहने की भी व्यवस्था कर देते हैं। और फिर तुम्हें छोड़कर भला अपने खाने की व्यवस्था कैसे करेंगे ? दूसरों का पकाया तो वे खाते नहीं। अब थोड़ा 'रसम' डालो।'

'तेरी बात ही किसी को पागल बनाने के लिए काफी है' कहकर नागलक्ष्मी रसम डालने लगी।

तब डा० राव का मन विश्व प्रसिद्ध ब्रिटिश म्यूजियम ग्रंथालय और पाश्चात्य विश्वविद्यालयों के बारे में सोच रहा था।

पृथ्वी एक ही दिन में चाचा से घुलमिल गया। नाटक के लिए तीनों निकले तो वह चाचा का हाथ पकड़े था। नाटक के प्रति राव की रुचि नहीं थी, किन्तु भाई के आग्रह को अस्वीकार नहीं कर सके। चामराजपुर से शिवरामपेट तक पैदल गये। विद्वान अनपढ़ सभी नाटक देखने आते थे। राव को नाट्यस्थल पहुँचने तक मार्ग में अनेक परिचितों ने रोका और कुशल-क्षेम पूछा। पत्नी और पुत्र के साथ राव को देखकर कुछ वृद्ध प्राध्यापकों ने समीप आकर व्यंग्य किया— बैक टु लाइफ कांग्रेचुलेशन (पुनः जीवन की ओर, अभिनन्दन)। कुर्सियोंवाली पंक्ति में राव की बायीं

आर राज और दायो ओर नागलक्ष्मी वठ गये। पृथ्वी चाचा की गोद मे जा बैठा। राज की बुद्धि रगमच सबधी अध्ययन की सीमा पारकर आलोचना के स्तर पर पहुँच गयी। नाटक देखने की उत्सुकता नही थी उसम। डॉ० राव विद्वान् थे। ऐतिहासिक खोज की दृष्टि से कई वर्ष पहले 'मृच्छकटिक' नाटक का अध्ययन कर चुके थे। अब पुन उस जमाने का जन-जीवन, नागरिकता, सामाजिक स्थिति आदि मस्तिष्क मे घूमने लगी। विस्मय और कुतूहल तो केवल नागलक्ष्मी और पृथ्वी के मनो मे था। नागलक्ष्मी जीवन म पहली बार पति के साथ नाटक देखने आई थी।

बचपन में अपने गाँव के लोगो द्वारा खेले गये 'शनि महात्म्य', 'दानशूर कर्ण' आदि एक-दो नाटक उसने देखे थे। तब रगमच साज-सज्जायुक्त नही थे। इस नाटक के बारे मे उसने काफी सुना था। पृथ्वी परदे पर दिखाई देने वाले चित्रों के सबध मे चाचा से प्रश्न करता।

पहले अक म चारुदत्त और विदूषक दिखाई पडे। वसतसेना का पीछा करता हुआ राजा का साला शकार कह रहा था—'अरी वसत सेने ! रुक जा। मेरी वासना बढाती हुई, रात्रि म निद्रा भग करने वाली तू, भयभीत, गिरती-पडती क्या भागी जा रही है ? इस समय तो तू मेरे वश म वस ही आ गई है जस रावण के वश म कुती जिस प्रकार हनुमान ने विश्वावसु की बहन का हरण किया था उसी प्रकार मैं भी तो तुम्हारा अपहरण कर रहा हूँ।'

अतिम वाक्यो को सुनकर दशकगण ठठाकर हँस पडे। नागलक्ष्मी भी हँस पडी और पास ही बठे पति के हाथ पर हाथ रखकर बोली—'देखिए वह राजा का साला है लेकिन कितना बुद्धू है। है न ?"

इतिहासज्ञ डा० राव का मन विचारा म डूबा हुआ था। इतिहास के हर काल म अधिकारिया के सग-सबधियो को, चाहे वे निरे मूर्ख ही क्यों न हों पुरस्कार मिलता है। नागलक्ष्मी ने पुन हाथ दबाकर कहा—"नहीं आप नाटक नहीं देख रहे हैं।' राव बोले—'नही, काफी अच्छा है।"

शकार कह रहा था—"उसके हार की सुगध मुझे सुनाई दे रही है, लेकिन अधकार से भरी मेरी नाक को उसके आभूषणो की आवाज स्पष्ट दिखाई नही देती।"

नाट्यगृह पुन हँसी से गूज उठा। नागलक्ष्मी भी हँस रही थी। लेकिन डॉ० राव की बुद्धि को हास्य की इस पुनरावत्ति मे कोई नवीनता नही जान पडी।

बीच मे, अक समाप्त होने पर राज न भाभी से पूछा—'ये लोग नाटक अच्छा खेलते हैं न ?'

'बहुत अच्छा। शकार का पाट किसन किया है ?"

'नागेंद्र राव ने। चारुदत्त का पाट करन वाले सुब्बया नायडू ने कैसा सुन्दर गाया है !

तीसरे अक म चारुदत्त के घर म सेंध लगाते हुए शर्विलक कह रहा था—'यहाँ की पक्की इटो का खीचना चाहिए। खिले हुए कमल-सी, सूय-मडल सी अद्ध चन्द्र सी फले हुए तालाब सी त्रिकोण स्वस्तिक सी या पूणकुभ-सा—इनम से कौन सी सेंध कहाँ लगाऊँ, कहाँ अपनी चतुराई दिखाऊँ कि कल नगरवासी जब देखें तो देखते ही रह जायें ?

नागलक्ष्मी को यह प्रकरण नही भाया लेकिन राव को बडा ही कुतूहलपूण लगा। 'उस काल के स्थापत्य शिल्प मे इस तरह की विभिन्न इटो का उपयोग करते थे ? इनके उपयोग से मकान को क्या लाभ होगा ? ये वणन शिल्पशास्त्र म आये है तो शिल्पशास्त्र कब लिखा गया होगा ? इन सबका विशेष रूप स अध्ययन करने का उन्होने मन ही-मन निश्चय कर लिया।

'रगमच सज्जा यद्यपि साधारण थी किन्तु नाटक प्रभावशाली रहा। राज का मत था। क्योकि इग्लड म उसने नाटक देखे थ। पत्नी गहरी नीद म था। नागलक्ष्मी न तन्मयता से नाटक देखा। चारुदत्त को मौत की सजा देने का एलान सुनकर, उसकी आखें भर आई था। अत म चारुदत्त निर्दोष साबित हुआ और जब वसतसेना एव उसकी पत्नियां मिलती हैं तो नागलक्ष्मी का मन आनन्द से भर उठता है। फिर भी क्षणभर के लिए सोचने लगी कि चारुदत्त का पत्नी सौत के साथ कसे रहेगी ? रोहिताश्व सोने की गाडी के लिए रोन लगा तो उसन एक बार राज की गोद मे सोये पत्नी का ओर देखा। नाटक देख घर लौटे तो रात के चार बज चुके थे।

इसके एक सप्ताह बाद विश्वविद्यालय के उच्चाधिकारियो से पत्र

मिला कि राव लेक्चरार से असिस्टेंट प्रोफेसर बना दिए गए हैं। साथ ही यह भी सूचना दी गयी थी कि उनके द्वारा लिखे जाने वाले ग्रंथ के लिए प्रतिवर्ष पांच सौ रुपये दिये जायेंगे। विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में एक अलग कमरा दिया जायेगा। छुट्टी की सुविधा भी दी जायगी।

महाराज से मिलना बड़ा ही लाभदायक रहा —राव ने कहा।

डॉ० राव ने महाराज के निजी सचिव को अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए एक पत्र लिखा।

३

डॉ० सदाशिवराव गत एक महीने से यात्रा में हैं। वे भारत के मुख्य-मुख्य ऐतिहासिक स्थानों को पहले ही देख चुके थे। अब उन स्मरणों को ताजा करने के लिए पुनः भ्रमण पर निकले हैं। कन्याकुमारी से लेकर तंजाऊर, मदुरा, चिदंबर, महाबलिपुर आदि स्थानों को देखते हुए हैदराबाद से एलोरा के गुफा मंदिरों में आये। तीन दिनों तक एलोरा की भव्य शिल्प-कला का अध्ययन कर देवगिरि, औरंगाबाद होते हुए अजंता पहुँचे।

एक हल्का-सा होलडाल, कपड़े-लत्ते के लिए छोटा-सा बक्सा, फ्लास्क, एक कीमती कमरा, खाकी कमीज, धूप से बचने के लिए सिर पर हैट, नोट लिखने के लिए कागज-पेंसिल और दूर की वस्तुएँ देखने के लिए एक कीमती दूरबीन—ये उनकी यात्रा के सामान थे। अजंता की गुफा से थोड़ी ही दूर पर फरदापुर के अतिथिगृह में ठहरे। यहीं से राव गुफाओं की कला का अध्ययन करने जाते। पहले दिन उस निर्जन प्रदेश को देखा, दुबारा दूरबीन से चारों ओर निगाह दौड़ाई और फिर नोट लिखे—

'घोड़े के पेट के आकार के इस पहाड़ पर गुफाएँ खोदी गई हैं। उनके सामने एक और पहाड़ है। लगता है एक ही पहाड़ को खाई द्वारा

विभाजित किया गया है। यहाँ मानव निवास के योग्य कोई सुविधा नहीं है। जगल के बीच ही बौद्ध भिक्षुओं ने गुहा चत्या की स्थापना क्यों की ? चैत्य निर्माण के लिए उपयुक्त पत्थरों का होना भी एक कारण हो सकता है। लेकिन मेरे विचार से ये चत्य अजता के भिक्षुओं के लिए तप और साधना के स्थल बन गये होंगे। इसी कारण बस्ती से दूर यह पहाड खोजा गया।"

उन्होंने एक जगह लिखा था— सातवी शती से १८१९ तक इस गुफा के बारे मे कोई कुछ नही जानता था। आसपास के लोगों से भी यह छिपी रही। आधुनिक काल म प्रथम बार मानव इतिहास की इस उत्कृष्ट कला निर्मिति को प्रकाश मे लाने का श्रय कुछ आग्ल सना धिकारियों को है —इस तथ्य को स्वीकार नही किया जा सकता। शायद राजकीय परिस्थितिया और उनका धर्म-परिवर्तित होने के कारण आस पास के लोगों मे इन गुफाओं के प्रति श्रद्धा घट गई होगी। परिणाम स्वरूप इन चत्यो की ओर ध्यान नही दिया गया होगा। आग्ल सशोधक ऐसे भ्रम म लिखते हैं मानो उन्होंने ही इस सब को खोज निकाला है। *क्या कोलबस से पहले अमरीका म दूसरे लोग नही पहुँचे थे ?* इस बात के प्रमाण मिलते है कि उसके पहले भी अमरीका मे हिंदू देवताओं की मूर्तियाँ थी। कोलबस से पूर्व जगत के अन्य लोगों को भी अमरीका का पता था।

दूसरे दिन सुबह डा० राव चौबीस नबर की अपूर्ण गुफा देख रहे थे कि एक वृद्ध दम्पति आये। पुरुष की उम्र साठ से अधिक ही होगी। सफेद धोती और कमीज पहनी हुई थी। हाथ म छाता। श्याम वर्ण मध्यम शरीर। पत्नी शायद पचास पार कर चुकी थी। उसका सफेद साडी पहनने का ढग देखकर डॉ० राव समझ गये कि वे शायद सिंहल के हैं। पुरुष ने राव के पास आकर अग्रेजी म कहा— क्षमा कीजिए लगता है आप एक सशोधक हैं। यह गुफा इस स्थिति मे क्यो है ? क्या अकुशल कारीगरो द्वारा बनाई गई है ?"

डा० राव ने कहा— 'यह एक अपूर्ण गुफा है। हम अजता की गुफाओं के तीन स्तर मान सकते हैं। पहले अकुशल कारीगर इन्हे खोदते थे। शायद आसपास के किसान धर्म-कार्य समझकर यह काम करते थे।

दूसरे स्तर पर शिल्पी के निर्देशानुसार कुशल कारीगर स्तभ, मूर्ति आदि को अध-स्फुट आकृति देते थे और अतिम स्तर पर मँजे हुए शिल्पी उस देवालय को अतिम स्वरूप देते थे। इन कार्यों म कई दशक लग जाते थे। शायद इस गुफा का प्रथम स्तर का काय होते-होते देश की राजकीय स्थिति म उथल-पुथल हुई होगी और इसकी प्रगति रुक गई होगी।'

वृद्ध ने सारी बात पत्नी को समझाई। भाषा सुनकर डॉ० राव को विश्वास हो गया कि वे सिंहल के ही हैं। उन्होने कुछ और प्रश्न पूछे और डॉ० राव ने उत्तर दिये। अत म परस्पर परिचय हुआ। वद्ध ने कहा—"हम आपको कल से देख रहे हैं। आपके काय को देखकर ही मेरी लडकी ने कहा कि आप सशोधक हैं। हम फरदापुर के जिस अतिथिगृह मे ठहरे हैं, आप भी वही हैं। आपने हमारी ओर ध्यान नही दिया। हम पश्चिमी सीलोन म स्थित कलुतर के निवासी हैं। मेरा नाम है जयरत्ने। मेरी बेटी इतिहास की छात्रा है। कम्ब्रिज से एम० ए० कर स्वदेश लौटे एक वष हो चुका है। वह और किसी गुफा मे सामग्री सग्रह कर रही है।"

डा० राव ने अपना परिचय दिया। ग्यारह बज गये थे। थक भी गये थे। जयरत्ने ने कहा—"खाने के लिए आपको गेस्ट हाउस जाना पडेगा?

'नही गेस्ट हाउस का नौकर यही ले आयगा।"

'हम भी यही ला देता है। बस आता ही होगा। कल भी इसी समय आया था। चलिए, कुछ पीछे चलकर बठें।"

तीनो चौबीस नबर की गुफा से निकलकर बारह नबर की गुफा के पास जा रहे थे कि सामने एक महिला दिखी। वय लगभग २६ वष के, सिंहली साडी म। गोल चेहरा और उस पर विद्या का गाभीय। रग माता पिता से ही पाया था। कानियुक्त आँखें। कानो मे हीरे की बालियाँ। हाथ म नोटबुक और पेंसिल। राव समझ गये कि इन्ही की लडकी है। इतने म जयरत्ने ने परिचय कराया—'यही है मेरी लडकी करुणरत्ने। देख बेटी, ये हैं सशोधक—जसा कि तुम कह रही थी। हम इन्होंने अनेक बातें समझाइ। नाम है सदाशिवराव।"

परस्पर अभिवादन हुआ। करुणरत्ने तुरत कुछ नही बोली। कुछ स्मरण करते हुए पूछा—'डा० सदाशिवराव आप ही है?

"हाँ।

"ता 'प्राचीन भारतीय राजतन्त्र को धम की देन' आपकी ही पुस्तक है। वह पुस्तक तो अभी तक मुझे नहा मिली। उसकी समालोचना पढी है। ऐसे ग्रथ के लेखक से मिलकर बडी प्रसन्नता हुई।

'यहो-कही बठ जायें। बूढे हैं, थक गये हैं।" जयरत्ने ने कहा।

पास ही दस नबर की गुफा के द्वार पर छाया म चारो बठ गये।' तत्पश्चात करुणरत्ने ने पूछा—'मैं सोचती हूँ आपने इन सबको पहले भी देखा होगा। फिर अब इतनी सूक्ष्मता से क्या देख रहे हैं? कोई नया ग्रथ लिखने की योजना है?

'जी हाँ लगभग पाच जिल्दा म एक बडे ग्रथ की योजना है।'

'क्या मैं जान सकती हूँ कि कौन-सा विषय होगा और दृष्टिकोण क्या होगा?"

इतन मे अतिथिगह का नौकर दीख पडा। उसके सिर पर एक टोकरी थी। धूप मे चलने से पसीना बह रहा था। कमीज पूरी की-पूरी भीग गई थी। उसन टोकरी नीचे रखकर पूछा— साहेब आप सब साथ म खायेंगे? पानी लेकर अभी दस मिनट म आता हूँ कहकर एक बडा डिब्बा लेकर धीरे धीरे नीचे उतरने लगा।

महाराष्ट्रीय ढग स बना भोजन स्वादिष्ट था। भूख भी जोरो से लगी थी। दाल स जी रोटी भात दही था। खाते खाते परस्पर परिचय गहरा होता चला। जयरत्ने महायान पथ क बौद्ध थे। क्लुतर म उनका व्यापार चलता है। पद्रह मील दूर गाव म रबर और काली मिच के बाग है। गाव का कामकाज उनका पुत्र देखता है। बौद्ध होने के कारण धार्मिक मनोभाव से वे भारत स्थित महत्त्वपूर्ण बौद्ध स्थलों को देखने के लिए निकले हैं। लेकिन पुत्री का उद्देश्य भिन्न था। उसने कहा— यद्यपि मैं माता पिता क साथ आई हूँ मेरी यात्रा का विशिष्ट उद्देश्य है। मैं बौद्ध-धम के आधार पर सिंहल-संस्कृति का अध्ययन करना चाहती हूँ। अपने देश के समस्त ऐतिहासिक स्थलो को देख चुकी हूँ। तथ्य-सग्रह भी काफी किया है। लेकिन निर्देशन क अभाव म मैं अकेली लिख नही सकती। फिर भी समय समय पर यथाशक्ति सामग्री का सग्रह करती रहती हूँ।

नौकर खाना परोस रहा था। करुणरत्ने की माँ ने सिर्फ चावल खाये। सबने महसूस किया कि दाल भी उन्हें नहीं भायी। लेकिन और कोई चारा न था। जयरत्ने दाँत के सेट लगाये हुए थे। उन्होंने दो रोटियाँ खायी। करुणरत्ने और राव ने भरपेट खाना खाया। अंत में नौकर के चावल दही परोसने के बाद जयरत्ने ने कहा— अजंता में हीनयान पंथ की गुफाएँ है। महायान की भी हैं। मैं यह इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि मैं महायान पंथी हूँ। हीनयान की गुफा में भगवान बुद्ध की मूर्तियाँ नहीं होती। यद्यपि देवालय में कितना ही उत्कृष्ट कार्य क्यों न हो मूर्ति के अभाव में वह गृहपति से रहित घर-सा प्रतीत होता है। महायान पंथ की गुफाओं में शांति-मूर्ति धर्मचक्र मुद्रा युक्त भगवान् बुद्ध की मूर्ति रहती है। देवालय में प्रवेश करने पर सुरक्षा एवं अभयभावना जाग्रत होती है।'

डॉ० राव ने कहा— 'यह सच है। बौद्ध मत के ऐतिहासिक विकास के प्रथम चरण को हीनयान कहते हैं। बुद्ध की विचार क्रांति उस समय प्रज्वलित थी। समस्त चीजों का शून्य में ही पर्यवसान होना चाहिए'— इस तर्क से गुरु पूजा भी अवचारिक है। लेकिन निरा विचारवाद मनुष्य की आशा आकांक्षाओं को तृप्त नहीं कर सकता। अतत बुद्ध-पूजा की प्रवृत्ति प्रारंभ हुई। कुछ इतिहासकारों का कथन है कि यह हिंदू धर्म का प्रभाव है। यद्यपि इसमें सचाई है लेकिन महायान पंथ के उदय का यही एक कारण नहीं है। ऐसा कोई भी धर्म नहीं जिसमें पूजा प्रवृत्ति न हो। अत्यन्त कठोर निषेध न करें तो कोई भी धर्म एक न एक स्तर पर मूर्ति पूजा पद्धति में विकसित होता ही है।'

अब तक सब खा चुके थे। नौकर चला गया था। सबने थोड़ी देर आराम किया। करुणरत्न की माता वहाँ पत्थर पर लेट गई। पिता ने दीवार से पीठ लगाकर पैर फैला दिये। करुणरत्न ने डा० राव से पूछा— 'क्या आपका नोट लेने का काम पूर्ण हो गया?'

"जी नहीं! क्या?"

मैं जानना चाहती हूँ कि आप नोट किस प्रकार लिखते हैं। नंबर एक की गुफा का मेरा अध्ययन अब भी शेष है। आपके पास समय हो तो विषय मुझे भी वहीं समझा दें—बड़ी कृपा होगी।"

"मैंने उस गुफा के नोट अभी नहीं लिये हैं। आइए, दोनों साथ

लिखेंगे।"

'डैडी, हम नबर एक गुफा मे हैं। आप आराम करने के पश्चात वहाँ आ जाइएगा। करुणरत्ने ने पिता से कहा।

बाहर धूप तप रही थी। डा० राव सिर पर हैट पहनकर निकले। रत्ने ने आचल से सिर ढँक लिया। दोना गुफा के अदर गये। रोशनी दिखानेवाला मुख्य मुख्य मूर्तियो एव चित्रा पर प्रकाश डालता और व जाच करते। रत्ने ने कहा— अब हम अलग-अलग नोट लेने की आवश्यकता नही है। आप बताते जाइए मैं लिखती जाती हूँ। रात मे दूसरी प्रति बनाकर आपका दे दूगी।

डॉ० राव चित्रा एव मूर्तियो को परखत और नोट लिखाते। रत्ने लिखती— इस गुफा मे बुद्ध की बडी मूर्ति धारण चक्रमुद्रा मे है। बायें हाथ की कनिष्ठिका पर दायें हाथ की तजनी रखकर शिष्यो को दिये जानेवाले उपदेश के हर अश पर जोर देने वाली है यह मुद्रा। इस मूर्ति की मुखाकृति पर भिन भिन कोणो से फेंके गये प्रकाश से भिन-भिन भाव व्यक्त होते हैं। बुद्ध के बठे हुए धमचक्र के पास मे प्रकाश डालकर देखें ता लगता है मानो चेहरा शाति की प्रतिमूर्ति है। मूर्ति की बायी ओर से प्रकाश डालें तो मुख पर मदुहास खेलता-सा प्रतीत होता है। उसी प्रकाश को दायी ओर से डालें तो मुख अत्यत गभीर दिखाई दता है। यह मूर्ति स्थापत्य-कला क चरमोत्कष को पस्तुत करती है।

डा० राव बोलते जा रहे थे और रत्ने लिखती जा रही थी। राजकुमार द्वारा आश्रमवासिया को दिये जाने वाले उपदेश का चित्र, राजकुमार क स्नान का चित्र, पत्नी के साथ बातचीत करते समय का चित्र पदमपाणि बोधिसत्व आदि सबका वणन लिख लिया गया। चित्रा म प्रदर्शित प्रति दिन उपयाग म आनवाली वस्तुओ, आभूषण वेशवध शली मानव शरीर का आकार आदि के आधार पर तत्कालीन सस्कृति जन-जीवन आदि अनक विषया को समझा।

सध्या के लगभग पाँच बजे जयरत्ने वहाँ आये। रोशनीवाला निश्चित समय तक काम करके चला गया। डा० राव टाच के प्रकाश मे चित्रो के सूक्ष्म भागो को बारीकी स देख देखकर लिखा रहे थ। जयरत्ने भीतर आकर बोले— लगता है दोना ने सारी गुफा का पुस्तक म ही उतार लने

की ठान ली है। अब चलिए भी, गाडी खडी है।"

काफी अँधेरा हो चला था। अब और अधिक अध्ययन करना कठिन था। दोनों जयरत्न के साथ बाहर निकले। पहाड से उतर। बैलगाडी म बैठने के बाद जयरत्न कह रहे थे—' छब्बीस नबर की गुफा मे हम पहली बार गय। बुद्ध का महानिर्वाण तो वही है। लगभग पच्चास गज लबी प्रभु की मूर्ति वहाँ अपने अंतिम क्षण की प्रतीक्षा मे लेटी है। हम दोनो अब तक वहीं थ।

डॉ० राव थक गय थे। गाडी मे टिककर आराम करने क प्रयत्न म थे। चार आदमी थ, अत ठीक तरह बैठने के लिए भी जगह नही थी। रत्ने भी थक गई थी। फिर भी डॉ० राव के चेहरे से थकावट का अनुमान कर वह पिता के पास सरक गई जिससे डा० राव को कुछ और जगह मिल गई। गाडी धीरे धीरे आगे बढनी चली।

जयरत्ने दूसरे दिन जाने वाले थे, लेकिन करुणरत्ने दो दिन और रहना चाहती थी। डॉ० राव के लिखाये नोट उसे उपयोगी लगे। दोनो ने मुख्य-मुख्य गुफाओ का वर्णन एव उनके काल की सस्कृति का पता लगाया। डा० राव खडे खडे ही बोलते जाते और वह भी खडे-खडे ही लिखती। शीघ्रलिपि म लिख गये नोटो से तीन कापियाँ भर गयी। सारा परिवार दूसरे दिन बस से जलगाँव और वहाँ से दिल्ली जानेवाला था। डॉ० राव ने औरगाबाद से पूना होते हुए अपने शहर जाने की योजना बनाई। वहाँ एक महीना रहे। अब उत्तर भारत की यात्रा की योजना बनाई।

फरदापुर का अतिथिगृह गत चार दिनो से उनका अपना घर-सा बन गया था। उनके कमरे आमने-सामने थे। अब रात म भोजन के पश्चात् जयरत्ने डॉ० राव के साथ कुछ समय बातचीत करने चले आते। इस इतिहासकार से बौद्धधर्म सबधी जिज्ञासाओ का समाधान कराते हुए उन्हें तृप्ति नही होती थी। दूसरे इतिहासकार तो केवल उसका इतिहास जानते थे जबकि ये धर्म के अत सत्व की दृष्टि से सविवरण इतिहास बताते। कमरे मे जयरत्ने के चले जाने के बाद डॉ० राव लेट गये। तुरत नींद नहीं आई। अजता की कला ने उनके मन को जकड रखा था। चार दिनो से व एक दूसरी ही दुनिया म रह रहे थे। कल स फिर वही आधुनिक

रग-ढग की दुनिया।

रात के नौ बज चुके थे। इस निजन प्रदेश म फैली चाँदनी ने इस निशा को भी अजता सा ही स्वप्न-लोक बना दिया था। डॉ० राव ने सोचा, एसी स्निग्ध शाति मे ही बौद्ध भिक्षुओ एव कलाकारो न पत्थर म जान फूँक दी है। अपनी खिडकी से ही चाँदनी का आनद लूटना छाड व बाहर निकल आये। अतिथिगह से लगभग पचास गज दूर जाकर एक पत्थर पर बठ गय। दिनभर की सारी थकान भूल गये। निशा म मन प्रफुल्लित था। व जिस भारतवप का इतिहास लिखना चाहत थे वह उनकी आखो के सामने स्पष्ट दिखाई दे रहा था। उनकी कल्पना क सम्मुख हजारो वप की सस्कृति की दीघ परम्परा शुद्ध शुभ्र चाँदनी-सी चमक-दमक रही थी। उनकी लेखनी एक बिंदु पर आकर रुक गयी। इस बिंदु को वे स्पष्ट दख रहे थे। लकिन सस्कृति की परम्परा का आदि कहाँ ? क्या यह भी वेद-सा अपौरुषय है ? या यह ईसा से दो हजार वप पूव प्रारभ हुई थी जसा कि इतिहासज्ञो का कथन है ? अथवा तीन हजार वप पूव ? इसका प्रारभ बिंदु कौन-सा है ? क्या हम मानव सस्कृति के इतिहास की मानव जीव शास्त्रग्नो के दष्टिकोण स तुलना कर सकते हैं ? डा० राव विचार की लहरों म पूणत लीन हो गय।

पीछे से आवाज आई— कल सुबह मुह-अँधेरे वम से जानवाल अभी तक सोय नही ? क्या सोच रहे हैं ? यह करुणरत्न की आवाज थी। डॉ० राव ने मुडकर दखा करुणरत्ने खडी थी।

उसन पास आकर पूछा— आपके चिंतन म बाधा तो नहा पन्ी ?

नही, बठिए।

मैं आपस यह कहन आई हूँ कि हमन जो नोट लिय हैं व तीन कापियो मे हैं। उन सबकी प्रतियाँ उतारना यहाँ तो कठिन है। अगर उस आपको दे दू तो आप पन् नही पायेंगे। कारण मैंन नोट शीघ्रलिपि म लिख ह। हम दश पहुँचन म एक महीना लग जायगा उसक बाद शीघ्र हा उन सबको टाइप कर आपक पास भेज दूँगी। क्या यह ठीक रहगा ?

कुछ क्षण सोचन के पश्चात् डॉ० राव ने कहा— आप जानती ही हैं कि मुझे इसकी कितनी आवश्यकता है। भूलिए नहा।

'नही ऐसा नहीं होगा।

दोनों मौन। डॉ० राव अब भी वैचारिक दुनिया से मुक्त नहीं हुए थे। कुछ क्षण की चुप्पी के बाद रत्ने ने पूछा—"एक प्रश्न पूछना चाहती हूँ। क्या आप बातचीत के मूड में हैं?"

"पूछिए।'

'हर इतिहासकार इतिहास को प्राचीन युग, आधुनिक युग या इतिहास-पूर्व युग इतिहास प्रारंभ युग आदि नामों में काल विभाजन करता है, लेकिन किसी भी देश का इतिहास कोई एक स्पष्ट चिह्न दिखाकर अपने स्वरूप को नहीं बदलता। इस विडम्बना का नियम ही स्वच्छन्द प्रतीत होता है न?'

डा० राव ने उत्सुक होकर कहा—"मैं भी यही सोच रहा था। इतिहास के समान ही 'युग' शब्द की कोई निश्चित सीमा नहीं है। एक पीढ़ी का भौतिक जीवन, तत्कालीन जनता के मन में निहित मूल्यों पर निर्भर करता है। कई बार ये मूल्य सैकड़ों-हजारों वर्ष रह सकते हैं। उस अवधि में यदि हम उस पीढ़ी द्वारा साधित कला साहित्य, धर्म, भौतिक प्रगति एवं विकास को आँक सकते हैं तो भी उनके मूलभूत रूप में कोई अंतर नहीं है। क्योंकि वे सब जन-जीवन के एक ही मूल्य के आधार पर विकसित विवरण हैं। पीढ़ी के मूलभूत मूल्यों में कोई स्पष्ट परिवर्तन होने पर ही नये युग का प्रारंभ होता है। तब इतिहास भी नया स्वरूप धारण करता है।

'युग-परिवर्तन के इस काल को इतिहासकार किस तरह पहचान लेता है?'

"उसके लिए पैनी अन्तर्दृष्टि चाहिए। जो केवल भौतिक परिवर्तनों को पहचानता है, वह इतिहासकार नहीं हो सकता। एक पीढ़ी के अंतःसत्व में होने वाले भीतरी परिवर्तनों को, उनके मूल्यों के बीच के संघर्ष को केवल इतिहास ही नहीं कला, साहित्य तत्त्वज्ञान आदि माध्यमों से पहचाना जाता है। इस दृष्टि से साहित्य और इतिहास के बीच कोई विशेष अन्तर नहीं है। मगर समस्त पीढ़ी को दृष्टि में रखकर इस अंतःसत्व परिवर्तन का वर्णन करना इतिहास है तो कुछ व्यक्तियों के जीवन को केन्द्र मानकर उसी अंतःसत्व परिवर्तन को व्यक्त करना साहित्य है। इस संधिकाल को चित्रित करने वाली रचनाएँ ही साहित्य की महान कृतियाँ बन जाती हैं।

इन दोनों का सबध जानकर ही रामायण-महाभारत को ऐतिहासिक ग्रथ माना गया है।'

रत्ने लगभग दस मिनट इन्ही बातो को मन-ही मन दुहराती रही। उसने कम्ब्रिज की स्नातकोत्तर उपाधि के लिए विशेष रूप से इतिहास का अध्ययन किया है। इतिहास का स्वरूप क्या है उसके विषय-क्षेत्र कौन मे है *आदि विषयो पर यद्यपि उसने अनेक वादो का अध्ययन किया किन्तु* ऐसा विषय निरूपण नही पढा था। डा० राव के विचारों के बारे म उसके मन मे एक शका उठी आपका कहना है इतिहास को चाहिए कि मूल्य-परिवतन के युग का उसके कारण एव परिवतन का निर्देशन कर। इतिहास कार जब मूल्य-परिवतन के युगा की चर्चा करता है तो कम-से-कम पर्याय रूप मे उस मूल्य का निष्कष दना ही पडता है। क्या उस वसा करना चाहिए? इस दष्टि से इतिहास प्रगतिगामी विकास है या प्रतिगामी मानव पीढी की क्षरण कथा?

'अगर इतिहास सदा प्रगतिशील है तो इसका अथ हुआ कि हमारे पूवजो की सस्कृति हमारी अपेक्षा हीन थी। और अगर विगति ही उसकी दिशा है तो हम अनिवायत अध पतन के पथ पर बढ रहे हैं। भारतीय दृष्टि म *काल को क्रमश कृत त्रेता द्वापर और कलियुग के नाम से* विभाजित किया गया है। इसके आधार पर कहना पडेगा कि इतिहास मूलत विगति की ओर बढ रहा है। लेकिन कलियुग ही तो अन्त नही है। यह युग बीतगा और युग चक्र घूमेगा। पुन कृतयुग आयगा।

'तो क्या इस परिक्रमा का कोई अत नही?

मानव इतिहास की आदि-कल्पना करना जितना असम्भव है उसके अत सम्बधी निष्कष पर पहुँचने की आशा भी वसी ही मूखतापूण है। इस अनत परिक्रमा के सिलसिले म मूल्याकन म दुबलता भी हो सकती है और सबलता भी। इस दष्टि स दखें तो मानव इतिहास का भगवान की लीला कह सकते हैं। अत अपना मौलिक निष्कष दते समय इतिहासकार को बहुत सावधान रहना चाहिए।

रत्न *धीरे से बोली— गत चार दिनो म हम यहाँ अजन्ता म हैं।* दूर बाद विवाद को भुलाने वाले इस स्थान पर इस प्रशान्त निशा म, आप यह बता रहे हैं। उस माना जा सकता है—ऐसा मन कहता है। क्या

आप एक कृपा करेंगे ? इसके लिए मैं सदा कृतज्ञ रहूँगी।"

'ऐसी कौन-सी कृपा है ?

'मुझे कम्ब्रिज मे आय एक वर्ष हो गया। हमारे गाँव म उच्च अध्ययन की सुविधा नही है। मेरी इच्छा है कि अगले वर्ष मैं कोलम्बो विश्व-विद्यालय म अध्यापिका या शोध छात्रा के रूप मे नाम लिखा लू। आपसे निवेदन है कि अगर मैं पत्रो द्वारा इसी तरह के उलझे प्रश्न पूछूँ तो आप सविस्तार उत्तर दें।

"अवश्य। जितना जानता हूँ लिखूगा। मेरा 'मूड' मुझे रोके तो क्षमा कर देना।'

रात का एक बज रहा था। चाँदनी कम होती जा रही थी। चाँद अस्ताचल की ओर जा रहा था। दोनो उठे धीरे धीरे अपने कमरो म चले गए। डॉ० राव क 'गुड नाइट' कहने स पहले ही रत्ने ने कहा—'कल आपसे भोजन के पूर्व एक बार मिलूगी।"

दूसरे दिन दोनो न एक-दूसरे का पता लिख लिया। नमस्कार कर डॉ० राव न करुणरत्न के माता पिता से विदाई ली। डॉ० राव मोटर मे बठ रहे थ कि रत्ने ने हाथ जोडकर कहा—'नोट भेज दूगी। यह मेरा सौभाग्य है कि एक प्रति मुझे भी मिल रही है।

४

ज्येष्ठ-आषाढ़ म कपिला ने फिर अपना पहले जसा रूप धारण कर लिया। किन्तु इस बार भी बाढ से जन-हानि नही हुई। नञ्जनगूडु की नगर-सभा की ओर से एक बोड लगा है जिस पर लिखा है— सावधान ! यहाँ कोई न तरे। लेकिन तराको पर इसका प्रभाव न पडा। श्रोत्रियजी के पुत्र को स्वगवासी हुए एक साल हो गया। पुत्र की मत्यु के अपार दुख को भूल जाना असभव था, लेकिन जसे-जसे दिन बीतते गये कमे-कम दुख भी घटता गया। श्रोत्रिय दम्पति का ध्यान उनका पौत्र चीनी अपनी ओर

आकर्षित कर लेता। डेढ़ वर्ष का बालक चीनी शरीर और चेहरे से अपने पिता का प्रतिरूप है। सामने के चार दाँत आ गये हैं। जब वह हँसता तो हूबहू अपने पिता जैसा दिखता है।

पौत्र को अपने कन्धे पर बैठाकर श्रोत्रियजी खिलाते। इसी तरह सत्ताईस वर्ष पूर्व नंजुड को खिलाते थे। तब वह अण्णा-अण्णा कहकर उनके घने काले सुंदर बालों में से गाँठदार चोटी पकड़कर खींचता। उनकी चौबीस वर्षीया पत्नी भागीरतम्मा बालक के सामने चुटकी बजाती और नौकरानी लक्ष्मी बच्चे को घर के पिछवाड़े बगीचे में ले जाती। अब पचपन वर्ष में श्रोत्रियजी के बाल पक गये हैं और चोटी की गाँठ के स्थान पर गाय के खुर जितनी बड़ी शिखा है। पौत्र उसे पकड़कर दादा कहता है। उनकी बहू दूर से ही बच्चे को देखकर हँसती है।

बच्चा दिन भर दादा दादी और लक्ष्मी के साथ रहता। कभी-कभी माँ के पास चला जाता। रात को कात्यायनी के पास ही सोता। माँ पास में सोये पुत्र को छाती से लगाकर लेटती तो बीते जीवन की सुखमय घड़ियाँ स्मरण हो आतीं। उसका पति नंजुड श्रोत्रिय सौम्य स्वभाव का था। माता पिता से भय खाता। लेकिन वृद्ध दम्पति ने बहू पर न कभी अधिकार जमाया और न कभी आँखें दिखाइं। उनके कोई लड़की नहीं थी। इसलिए कात्यायनी उनके लिए बेटी बनकर ही घर में आई। श्रोत्रियजी कई बार बेटे बहू से विनोद करते। गाँव में कोई नाटक कम्पनी आती तो दोनों को साथ भेज देते। धीरे धीरे पुत्र को घर के कामकाज से परिचित करा स्वयं अधिकाधिक भगवान-पूजा और अध्ययन करते। पुत्र वियोग से तीन साल पहले देवरसनहल्ली अरभिनकेरे आदि धार्मिक स्थानों पर गये थे। जमीन की जिम्मेदारी के अलावा घर के आय व्यय का कार्य भी पुत्र को सौंप दिया। व्यावहारिक जीवन से निवृत्त श्रोत्रियजी को अब पुनः प्रवृत्ति मय जीवन स्वीकार करना पड़ा। कटाई के समय गाँव जाना, काश्तकारों से पैसा वसूलना, लगान लेना आदि कार्य सब फिर उन्हें ही करने पड़ते।

सास-ससुर का प्रेम और विश्वास पा कात्यायनी का हृदय भर आता। रात को बच्चे को सुलाकर लेटती तो उसे अपने बीते जीवन की याद आ जाती। पति के साथ किए हुए हँसी मजाक, विगत भोगमय जीवन, उसे देखकर पति का कई बार पागल-सा बनना, गाँव से लौटने में पति को देर

हो जाय तो कात्यायनी का कातर हो उठना द्वार की ओर देखते रहना, सबके सब उसके स्मृति पटल पर नाच उठते। नींद न आने पर करवट बदलती रहती, तो सास पूछती—"नींद नहीं आ रही है बेटी?" वह कहती 'आ रही है मा।' लेकिन सास ताड जाती कि बहू झूठ बोल रही है। देख बेटी, बेटा (नजुड) भी चीनी-सा ही था। कभी-कभी रात का पालन मे ही खेलने लग जाता। मुझे भी उठकर उसके साथ खेलना पडता था। ऐसा न करने पर वह रोने लगता। तेरे ससुर ऊपरी मंजिल पर सोते थे।" कात्यायनी जानती थी कि जवानी में भी पत्नी बच्चे को नीचे छोड-कर श्रोत्रियजी ऊपर जाकर क्या सोते थे। "उस क्या? वह रातभर खेलता। सुबह होते-होते उसे नींद आती। मुझे उठना पडता। उठकर पूजा की तैयारी करनी पडती। कभी कभी मुझे भी नींद आती तो बच्चे को लक्ष्मी को देकर मैं सो जाती। उसके बाद मैं और लक्ष्मी एक ही कमरे म सोने लगी'—कहकर नजुड के बचपन का हाल बताती और याद करती। 'हम उन्हे खून से सींचती हैं, जन्म देकर पालती पोसती है और फिर भगवान न जाने निमम होकर उन्हे हमसे क्या छीन लेता है?—कहकर आँसू फूट पडते। "माँ यह हमारे वश की बात नहीं है" कात्यायनी सान्त्वना देती।

थोडी देर बाद ऊपर दीवानखाने मे सोये ससुर की याद आने पर वह कहने लगी—

"माँ, हम सब बडे अधीर हैं। उन्हे गुजरे डेढ वर्ष बीत गये लेकिन अब भी रो रहे हैं। केवल ससुरजी धीरज धरे है। उनके नदी म गिरने की खबर पाते ही व वहाँ दौडे गये, किन्तु पुत्र नहीं मिला। मैं भी उनके पीछे-पीछे दौडी गयी। वे हम दोनो को घर लाये और धीरज बँधाया। मैं रात रोते भीतरी कमरे म खभे के पास लुटक गई। आप इसी कमरे म बेहोश हुई थी।" 'लक्ष्मी उसे सँभालो! थोडा ठण्डा पानी सिर पर डालो' कहकर व मेरे पास बैठ गये। मैं भी बेसुध होने जा रही थी। मेरा सिर अपनी गोद मे रखकर कहने लगे, 'बेटी, ऐसे समय हम धीरज रखना चाहिए। भगवान हमारी परीक्षा ले रहा है।' ऐसे दुख म उनकी ये बातें मुझे नीरस लगीं लेकिन उस गम्भीरता म भी कितनी शांति से उन्होंने बातें की। मैं एकटक उनका मुख-मंडल देखती रही। मुझे आश्चर्य हो रहा

था कि पुत्र को खोकर भाई इस तरह सान्त्वना दे सकता है? अगर हम भी वसी ही सहनशक्ति मिल जाय, तो बड़े-से-बड़े कष्ट सह सकेंगी ! है न?

यह तो ठीक है लेकिन मनुष्य को ऐसा नहीं बनना चाहिए। दूसरों के दुःख में हाथ बटाना चाहिए। इससे लोगों को सान्त्वना मिलती है। डेढ़ वर्ष से हम चुपचाप आँसू के घूँट पी रहे हैं उनके सामने रो नहीं सकती। अगर हमारा रोना, आँसू बहाना देखकर वे भी रोते, आँसू बहाते तो हमें भी सान्त्वना मिलती। है कि नहीं?"

इतने में बगल के कमरे से मंद-मन्द खर्राटों की आवाज आने लगी। भागीरतम्मा आगे कहने लगी दया लक्ष्मी सुख से सो रही है। नंजुंड जब छोटा था, वही खिलाती थी। स्कूल ले जाती। अपने ही पुत्र की तरह प्यार करती। जब वह नदी की गोद में चिर निद्रा में लीन हो गया तो वह भी बहुत रोई थी। तत्पश्चात शायद इन्होंने उसे भी दर्शन सुनाया हो सान्त्वना दी हो। दुःख के घूंट पीकर अपने काम में लग गयी। एक तरह से वह सुखी है। सुख दुःख दोनों में समान होना चाहिए, जैसा कि तू कहती है।

इतने में कात्यायनी की आँखें बोझिल होने लगीं। पास में सोया बालक कभी-कभी जागकर रोने लगता। बहू की नींद उचट न जाय इस विचार से सास बच्चे को अपने पास लिटाकर दूध पिलाती। बच्चा रोता होता तो दीवानखाने में श्रोत्रियजी अपने पास बुला लेते। दीये के प्रकाश में दादा का चेहरा देखता तो तुतलाते हुए दादा दादा कहता उनके पास चला जाता। 'तुम सो जाओ' कहते और पौत्र को लेकर पिछवाड़े के बगीचे में चले जाते। उसे आकाश के नक्षत्र दिखा दिखाकर घूमते और वह कन्धे से लगा सो जाता। वे धीरे धीरे भीतर आते, अपने बिस्तर पर उसे सुलाकर शाल ओढ़ा देते। इसके बाद नींद आती तो सो जाते अन्यथा ऊपरी मंजिले पर अपने अध्ययन कक्ष में दीप जलाकर पढ़ने लगते।

चीनी दो साल का हुआ तो उसे पकड़ना मुश्किल होने लगा। लक्ष्मी सदा उसके पीछे रहती। फिर भी वह सबकी आँखें बचाकर सड़क पर चलने लगता। एक दिन देवालय के आँगन में चला गया लेकिन घर का

रास्ता भूल गया और भीतर ही भीतर चक्कर लगाता रहा। देवालय मे बाजा बजानेवाले बच्चे को पहचान गये थे किन्तु उसे घर पहुँचाने के पहले श्रोत्रियजी सारी गलियाँ छान चुके थे। लक्ष्मी भी घर के पीछे बहती गुडल नदी के किनार देख आई थी। दोपहर की कडकती धूप म उसे बाहर न जाने देने के लिए घर के दोनो दरवाजा को बद रखने लगे। फागुन मास की एक दोपहर। धीरे से वह घर स निकल पडा। शाम के चार बजे तक भी कोई पता न लगा। यह सोचकर कि वही नदी के पास गया होगा, श्रोत्रियजी मणिकर्णिका घाट की ओर दौडे। पूव भाग मे, जहाँ गुडल और कपिला का सगम होता है वह रेत मे मढक का घर बनाकर बकरी चरानेवाले बच्चो के साथ खेल रहा था। दादा को देखते ही तुतलाकर बोला — मेला घल वडा।' दोपहर की धूप से उसका सारा शरीर पसीने स तर-बतर हो गया था। इस बीच प्यास लगी तो आस-पास के गढो मे जमा पानी चार बार पी लिया था। पौत्र को लेकर श्रोत्रियजी घर आये। बच्चे पर निगरानी न रखने के लिए उस दिन सब पर क्रुद्ध हुए। "अब कभी बाहर गया तो तेरे हाथ-पर बाँध दूगा कहकर बच्चे को डराया।

माँ की बगल मे सोये बालक की श्वास रात के दस बजे तक भारी हो चुकी थी। माथे को स्पश कर कात्यायनी ने सास से कहा—"माँ, चीनी को बुखार है।' भागीरतम्मा ने बालक के माथ गल, तलवा म नीलगिरी तल मला। दीवानखान म श्रोत्रियजी भी आ पहुँचे। बच्चा सो रहा था। 'सुबह दवा देंगे" कहकर वे बाहर आ गये।

अगले दिन सुबह श्रोत्रियजी को कलले ग्राम जाना आवश्यक था। बच्चे का बुखार भी उतर गया था। कस्तूरी गोली देन की सलाह दी। स्नान किया और फिर नाश्ता करके बाहर निकल पडे। बच्चा जागा और खेलने लगा। कात्यायनी और भागीरतम्मा ने सतोष की साँस ली। सास अन्दर काम कर रही थी। कात्यायनी सास को बालक पर नजर रखने को कह कुएँ पर कपडे धान गई। कपडे धोकर लौटी तो चीनी नही था। वह आँख बचाकर खिसक गया था। कात्यायनी भयभीत हो गई। उसे खोजने लगी। देखा वह लक्ष्मी के साथ आ रहा था। लक्ष्मी ने बताया कि चीनी गुडल नदी म खेल रहा था।

रतम्मा और लक्ष्मी श्रोत्रियजी का चेहरा देख रही थी। उन दोनो को एक तरह से ढाढ़स बँध रहा था।

श्रोत्रियजी कट्टर सनातनी थे। उनका पूर्ण विश्वास था कि मनुष्य गृहस्थ धर्म के निमित्त शादी करता है। वह गृहस्थ बनता है इस ससार के अपने कर्त्तव्यो को निभाने के लिए। तत्पश्चात सतान होती है वश-वृक्ष को कायम रखने के लिए। सतानहीन मनुष्य को अपने वश-वृक्ष रूपी परिवार का अतिम मनुष्य बनकर केवल शून्य को छोडकर मरना पडता है। पितत्व से प्राप्त यह जीव पितृ ऋण से मुक्त होता है अपनी सन्तान द्वारा ही।

अपने वश के प्रति उन्हे अपार अभिमान था। उनका विश्वास था कि श्रोत्रिय-वश उतना ही प्राचीन है जितना कि श्रोत्र। जिस तरह गोत्र प्रवर्त्तक ऋषियो के काल का पता लगाना कठिन है उसी तरह प्राचीन वश का मूल भी खोजा नही जा सकता। जो वश मानव ज्ञान से भी पुराना है, उसका इतिहास कोई पूर्णत नही बता सकता। फिर भी उनका विश्वास है कि व्यक्ति का गौरव, अभिमान उसके अपने वश से ही उपलब्ध होता है। 'काश्यपावत्सारनैध्रुवप्रवरत्रयान्वित आश्वलायन समन्वित ऋक् शाखाध्यायी श्री श्रीनिवास श्रोत्रियोऽह भो ईश्वर त्वामभिवादयामि' द्वारा अपने प्रवर को रोज सध्या के समय स्मरण करते तो इन्हे एक विशिष्ट अव्यक्त आनन्द मिलता। वे अपना हर काय इस प्रना से करते कि उस स्तर का जीवन न बिताया तो वश ही कलकित हो जायेगा।

पुत्र की मृत्यु के पश्चात पौत्र ही उनके वश का आधार था। पुत्र के विवाह के बाद वे निवृत्त जीवन बिताने लगे थे लेकिन अब पौत्र को विवाहित जीवन बिताते हुए देखने की इच्छा से पुन प्रवृत्तिमय जीवन प्रारभ किया है। इनके नित्य जीवन मे लोभ झूठ आदि निम्न प्रवृत्तियाँ नही है। और अब भविष्य मे गृहस्थ बनने वाले पौत्र के लिए घर की स्थिति को बिगडने से बचाना उनके कर्त्तव्यो मे से एक है। पिता नजुड श्रोत्रिय जब स्वर्ग सिधारे तब श्रीनिवास श्रोत्रिय अठारह वर्ष के थे। लगभग उसी समय शादी हुई। बीमार पिता इतने दिन जीवित रहे, यही काफी था। पुत्र की शादी करके उन्होने अतिम साँस ली। माँ इससे चार वर्ष

पहल ही सिधार गई थी। पिता का इकलौता पुत्र होने के कारण काफी जायदाद मिली थी। उसस इतनी आमदनी हाती थी कि साल भर चन से रह सकते थे। उन्होंने न कजूसी दिखाई, और न धन का दुरुपयोग ही किया। दुर्दिन के विचार से कुछ रुपये बक मे रख देते और शेष दान-धम के कार्यों म लगा देते। मन्दिर म हर वष रथोत्सव, विद्वान-सगीतनो को, पूजा पाठ क लिए यात्रियो को बाढ या अकाल के समय किसानो को बीज की मदद देने आदि म खच करते।

निर्लिप्त जीवन उन्होंन बचपन से ही पाया था। लेकिन जो बालक उनके वश का आधार था उसे अपनी गोद मे मरणोन्मुख देखकर उनकी चित्त शाति विचलित हुए बिना न रही। गायत्री-पाठ के समय भी उनका मन अटूट भक्ति से गायत्री छद म लीन न हुआ। उनके हृदय की पुकार थी कि माँ गायत्री ही इस बालक को बचाएगी। सकाम मन की प्राथना मे शुद्ध भक्ति कम आ सकती है? कभी सकाम पूजा न करने वाले श्रोत्रियजी आज मध्य रात्रि के समय आँखें मूदे अपने पौत्र क लिए प्राथना कर रहे हैं।

पुत्र की मत्यु के बाद पौत्र ही भागीरतम्मा के पुत्र-वात्सल्य का केंद्र है। वे उसे ही पुत्र समझकर उसके पालन-पोषण म लगी हैं। वह बालक भी चला गया तो इस बुढ़ापे मे उनके प्रेम को कौन स्वीकार करेगा? "हे प्रभु! किस जनम के पाप का प्रायश्चित्त करवा रहे हो?" कहती हुई वह अपन कुल देव की शरण मे चली गई थी।

पति की मत्यु से कात्यायनी सब-कुछ खो चुकी थी। अब उसके लिए इसे भुलाना असभव था। छोटी उम्र से ही कठिनाइयो मे पली थी। पिता श्रीरगपटटण मे वकील थ। पिता की दूसरी शादी हुई। बेटी न उनका थोडा-सा प्यार पाया, लेकिन माँ का प्यार उसे फिर कभी न मिला। रोज रेल से मसूर पढ़ने जाती। इटरमीडिएट पास किया। कालेज मे विलक्षण बुद्धि की छात्रा भी कहलाई। योग्य एव उत्तम सबध समझकर पिता ने श्रोत्रियजी के लडके से शादी कर दी। पति बी० ए० मे था। शादी के बाद एक बार परीक्षा दी। सफल नहीं हुआ। दुबारा परीक्षा देने की तयारी कर ही रहा था कि पत्नी-पुत्र, माता पिता सभी को छोड इस दुनिया से कूच कर गया।

पति की मृत्यु के बाद उसे भविष्य अधकारमय दीख पडा। उसका

मन हमेशा बीते दिनों की याद करता रहता । बच्चे की बीमारी के बाद उसे अपना भाग्य स्पष्ट दीखने लगा— मेरा एक बच्चा है, सास ससुर हैं, बच्चे को बडा होना है पढना है वह भी गृहस्थ बनेगा । ये सब मुझसे ही तो सबधित है ! भविष्य के इन दृश्यों के प्रति वह अभी तक अधकार में थी । इस चित्र के मिटने का समय आया तो वह स्पष्ट दिखाई पडने लगा। बालक ससुर की गोद में सोया अब भी मुश्किल से साँस ले पा रहा था। भीतर से उमडते दुख को दबा सकने में अपने को असमर्थ पा वह वहाँ से उठी और रसोईघर में जाकर रोने लगी।

इस परिवार का और एक जीव है लक्ष्मी। उसके मा बाप श्रोत्रियजी के पिता के जमाने में ही इनके घर में नौकर थे। लक्ष्मी जब पन्द्रह साल की थी श्रोत्रियजी ने ही खर्च करके उसकी शादी कर दी थी। लेकिन शादी के चौथे वर्ष ही उसके पति की हत्या हुई ! विधवा लक्ष्मी पुन श्रोत्रियजी के घर आ गई। कुछ समय बाद उसका पिता भी चल बसा। मा तो लक्ष्मी के जनमते ही उठ गई थी। अब लक्ष्मी भी श्रोत्रियजी के परिवार की एक सदस्या बनकर उनके सुख-दुख में भाग लेती है। जिन हाथों ने नजुड श्रोत्रिय को खिलाया था उन्हीं से अब नन्हे चीनी को खिला रही है। श्रीनप्पा श्रोत्रियजी के मन के सुख दुख को बारीकी से भाप लेती है। अब इस परिवार का अकुर मुरझा जाने का वक्त आ गया है। अपनी जी जान से सेवा करना वह जानती है। यह भी जानती है कि विधाता के विधान को वह मिटा नहीं सकती। लेकिन श्रीनप्पा श्रोत्रियजी के गायत्री मन्त्र में उसे पूरा विश्वास था। अनासक्त भाव अगर किसी में था तो केवल इसी में।

रात भर किसी की पलक नहीं लगी। सबका चेहरा उतरा हुआ और आँखें सूजी हुई थीं। सुबह छह बजे वैद्यजी आये। बालक की नाडी और हाथ पैरों को देखकर कहा— सकट टल गया है। बुखार के अलावा सब ठीक है। हाथ-पैर गर्म है। आज सोलहवा दिन है। पाच दिन में बुखार भी चला जायगा। धीरज धरिए।

सच कह रहे है वैद्यजी ? आतुरता से भागीरतम्मा ने पूछा।

हा माजी श्रीकठेश्वर की कृपा है विश्वास दिलाया और गोलियां देकर फटे दूध का छना पानी देने को कहकर वैद्यजी चले गये। बालक

को विस्तर पर सुलाकर और कात्यायनी को वहां रहने को कहकर श्रोत्रियजी स्नान करने गये।

चार-पांच दिन बुखार तेज हो रहा, लेकिन बालक की नाड़ी निरंतर सामान्य गति से चलती रही। पहले दूध या पानी पिलाने पर गले से उतर जाता। घर में सबको शांति मिली। इक्कीसवें दिन सचमुच बुखार उतर गया और एक-दो दिन में बच्चा पूरे होश में आ गया। होश में आते ही दुर्बल स्वर में बालक ने पुकारा 'दा... दा!'

पास ही बैठी कात्यायनी ने श्रोत्रियजी को आवाज दी। पूजा अधूरी ही छोड़कर वे दौड़े आये। बालक के माथे पर हाथ रखकर पुकारा 'चीनी।' बालक ने बोला। लेकिन उसके चेहरे से यह स्पष्ट था कि वह दादा की आवाज पहचान गया है। पुत्र की आवाज पुनः सुनकर कात्यायनी की आंखों से आंसू झरने लगे। बहू को देखकर श्रोत्रियजी ने कहा— 'बेटी, जिस तरह हम सुख को स्वीकार करते हैं उसी तरह दुःख को भी स्वीकार करना चाहिए। भावावेग में कोई काम नहीं बनता।'

ससुर की बात कात्यायनी ने सुन पायी। पास आकर उसने बच्चे का हाथ पकड़ लिया।

इसके बाद एक महीने तक श्रोत्रियजी स्वयं बालक की देखभाल करते रहे। वैद्य द्वारा दी गई दवा, लेह्य आदि बालक को यथासमय देते रहे।

५

सदाराव के आक्सफोर्ड से लौटने पर कालेज के कला-क्षेत्र में नयी जान आ गई। विदेश जाने से पहले भी वह कालेज के नाटक संघ का अध्यक्ष था। तब भी विद्यार्थियों में उत्तम नाटक करवाता था। अब विदेश में विशेष अध्ययन करके लौटने के बाद अध्यापक वर्ग में उसका मान और भी बढ़ गया। परिणामस्वरूप उसके प्रस्तुत किये नाटकों की प्रतिष्ठा भी बढ़ी। उसके मैसूर लौटने के चार महीने पश्चात् इंग्लैंड की एक प्रसिद्ध शेक्स-

पियर नाटक मटली भारत आई। मैसूर म इस मडली के चार नाटक हान थे। नाटक मडली का रलव स्टशन पर स्वागत करन से लकर रगमच की व्यवस्था टिकट बिक्री पहले दिन दशका का मडली और उसक सन्स्या का परिचय देना आदि समस्त कार्यों की जिम्मदारी राज पर ही थी। उस की एसे कार्यों मे बडी रुचि थी। मडली को मैसूर म वडी सफलता मिली। अतिम दिन के नाटक के पश्चात मडली क मनेजर न राजाराव को रगमच पर बुलाया और गुलदस्ता भेंट करत हुए उसके सहयोग रगमच रचना के प्रति उसके अनुभव आदि की मुक्तकठ से प्रशसा की। राज की प्रतिष्ठा मे चार चाँद लग गये।

कालेज के प्रिसिपल अपने कालेज को पाठयतर कायक्रमा म भी आग बढते हुए देखना चाहते थे। कालेज के नाटक सघ के लिए अलग स एक विशाल कमरा दिलवाने के अलावा उन्हाने कालेज के खुले नाटयगह म हर माह एक नाटक खेलने की सुविधा भी दे दी। एक नाटक खेला गया और इससे प्राप्त धन से राजाराव ने सघ के लिए आवश्यक परदे दश्या-लकार साधन आदि खरीद लिये।

राज म गभीर अध्ययन वृत्ति पहले से ही नही थी। वह बुद्धिशाली युवक अवश्य था। लेकिन बडे भाई की तरह विद्वान बनने म या ग्रथ-रचना मे उसकी रुचि नही थी। कालज म प्रस्तुत करन के लिए वह स्वय नाटक लिखता था। रगमच पर व नाटक सफल भी होते थ। लेकिन उन्ह प्रकाशित करने की चिंता उसने कभी नही की। वह जानता था कि उनका कोई साहित्यिक मूल्य नही है। विदेश से आने के बाद उसने यथाथवादी ढग के कुछ एकाकी भी लिख। वह किसी से भी जल्दी ही घुलमिल जाता और किसी भी समाज मे अपने वाकचातुय से प्रभाव जमा लेता था। सभा मे किसी का परिचय कराता, धन्यवाद व्यक्त करता तो श्रोताओ के सिर अपने-आप हिलन लगते। अग्रेजी तो उसी सरलता और अदाज म बोलता, जस वह उसकी मातृभाषा हो। विद्यार्थी तो उसे अपना हीरो ही मानते थे।

मेज आगाम कुर्सी, पखा, पुस्तका के लिए अलमारी आदि हर सुविधा उपलब्ध है। उन्होंने अपने लिए एक टाइपराइटर भी खरीद लिया। लेकिन ठीक स टाइप करना नही जानते थे। राज अच्छा टाइप कर सकता है लेकिन एस कार्यों मे उसकी रुचि नही। अत बडे भाई की ग्रथ रचना म किसी तरह का सहयोग नही देता। असिस्टेंट प्रोफेसर होने के नाते अब डा० राव का वतन बढ गया है। राज को भी वेतन मिलता है। अत पसो की तगी नही है। राज के आने के बाद घर की जिम्मेदारी डॉ० राव के कधा स उतर गई। इसमे पहले भी उन्होंने घर की जिम्मेदारी की ओर कभी ध्यान नही दिया था। नागलक्ष्मी ही यथाशक्ति सँभालती थी। 'बच्चे का बुखार आ गया है, किस डाक्टर के पास जायें?' 'आपके बिस्तर का खाल फट गया है, चलें नया ले लें' —जैसी बातें वह कभी-कभी पति से कहती। डा० राव पत्नी के साथ दवाखाने तक जाते। छ महीने म एक बार पत्नी के साथ बाजार जाना ही पडता। अब यह काम भी राज के जिम्मे हो गया। पश्वी को 'अ, आ इ, ई सिखाने से लेकर भाभी के लिए साडी भया के लिए कागज, स्याही, फाइल आदि लाना भी उसी का काम है।

डॉ० राव सुबह नौ बजे उठते हैं। स्नान करने के बाद कुछ समय अगासी पर बठकर विताते। दस बजे राज के साथ बठकर भोजन करते, फिर कालज को चल दते। कालेज म सप्ताह म तीन चार घटे पढ़ाते। मन न लगता तो लिख भेजते 'आज मैं क्लास नहीं लूगा। और पुस्तकालय के अपने कक्ष म चले जाते। अमुक पुस्तक का अमुक अध्याय पढना, अमुक ग्रथ म वर्णित उस काल के जन-जीवन से सबधित टिप्पणी लिखना, प्राच्य वेत्ताओ द्वारा प्रकाशित ग्रथो को पढना और मुख्य-मुख्य स्थानो पर निशान लगाना, कई बार प्राच्यसग्रहालयो म जाना और पाडुलिपियाँ ढूँढना, शकास्पद विषयो पर अपने विदेशी विद्वान् मित्रो को पत्र लिखना अर्थात इनका काय उतना ही अपरिमित है जितना भारत का इतिहास। दोपहर म तीन बजे चपरासी होटल स थोडा नाश्ता और कॉफी ल आना। इसके बाद व फिर अपने काय म लग जाते। शाम को करीब सात बजे पुस्तकालय स घर लौटते। इस परिश्रम से उनके थके दिमाग को न किसी की याद आती और न रहती हो। एसी स्थिति मे व किसी स कुछ न बोलते

पियर नाटक मडली भारत आई। मसूर म इस मडली के चार नाटक होने थे। नाटक मडली का रेलवे स्टेशन पर स्वागत करने से लेकर रगमच की व्यवस्था, टिकट बिक्री पहले दिन दशकों का मडली और उसके सदस्यों का परिचय देना आदि समस्त कार्यों की जिम्मेदारी राज पर ही थी। उसे भी ऐसे कार्यों म बडी रुचि थी। मडली को मसूर म बडी सफलता मिली। अतिम दिन के नाटक के पश्चात् मडली के मनेजर ने राजाराव को रगमच पर बुलाया, और गुलदस्ता भेंट करते हुए उसके सहयोग रगमच रचना के प्रति उसके अनुभव आदि की मुक्तकठ से प्रशसा की। राज की प्रतिष्ठा मे चार चाँद लग गये।

कालेज के प्रिंसिपल अपने कालेज को पाठ्येतर कार्यक्रमों म भी आगे बढते हुए देखना चाहते थे। कालेज के नाटक सघ के लिए अलग से एक विशाल कमरा दिलवाने के अलावा उन्होंने कालेज के खुले नाट्यगृह म हर माह एक नाटक खेलने की सुविधा भी दे दी। एक नाटक खेला गया और इससे प्राप्त धन से राजाराव ने सघ के लिए आवश्यक परदे, दृश्या-लकार साधन आदि खरीद लिये।

राज म गभीर अध्ययन-वृत्ति पहले से ही नहीं थी। वह बुद्धिशाली युवक अवश्य था। लेकिन बडे भाई की तरह विद्वान बनने मे या ग्रथ-रचना मे उसकी रुचि नहीं थी। कालेज म प्रस्तुत करने के लिए वह स्वय नाटक लिखता था। रगमच पर वे नाटक सफल भी होते थे। लेकिन उन्हे प्रकाशित करने की चिंता उसने कभी नहीं की। वह जानता था कि उनका कोई साहित्यिक मूल्य नहीं है। विदेश से आने के बाद उसने यथार्थवादी ढग के कुछ एकाकी भी लिखे। वह किसी से भी जल्दी ही घुलमिल जाता और किसी भी समाज म अपने वाक्चातुर्य से प्रभाव जमा लेता था। सभा म किसी का परिचय कराता, धन्यवाद व्यक्त करता तो श्रोताओं के सिर अपने-आप हिलने लगते। अग्रेजी तो उसी सरलता और अदाज म बोलता जैसे वह उसकी मातृभाषा हो। विद्यार्थी तो उसे अपना हीरो ही मानते थे।

डा० सदाशिवराव की उत्तर भारत की यात्रा समाप्त हुई। अब वे अपने महाग्रथ का प्रथम खण्ड लिखने की तयारी करने लगे। विश्वविद्यालय के पुस्तकालय म उन्हे अलग से एक सुसज्जित कमरा मिल गया है। कुर्सी–

मेज, आराम-कुर्सी, पत्रा पुस्तकों के लिए अलमारी आदि हर सुविधा उपलब्ध है। उन्होंने अपने लिए एक टाइपराइटर भी खरीद लिया। लेकिन ठीक से टाइप करना नहीं जानते थे। राज अच्छा टाइप कर सकता है, लेकिन एम कार्यों म उसकी रुचि नहीं। अत बडे भाई की ग्रंथ रचना म किसी तरह का सहयोग नहीं देता। असिस्टेंट प्रोफेसर होने क नाते अब डा० राव का वतन बढ गया है। राज को भी वतन मिलता है। अत पसा की तगी नहा है। राज क आने के बाद घर की जिम्मेदारी डॉ० राव क कधा स उतर गई। इससे पहल भी उन्होंने घर की जिम्मेदारी की ओर कभी ध्यान नहीं दिया था। नागलक्ष्मी ही यथाशक्ति सँभालती थी। 'बच्चे का बुखार आ गया है, किस डाक्टर के पास जायें ?' 'आपके बिस्तर का खाल फट गया है चलें नया ले लें'—जसी बातें वह कभी-कभी पति से कहती। डॉ० राव पत्नी के साथ दवाखाने तक जाते। छ महीने म एक बार पत्नी के साथ बाजार जाना ही पडता। अब यह काम भी राज के जिम्मे हो गया। पथ्वी को अ आ, इ ई सिखाने से लेकर भाभी के लिए साडी, भया के लिए कागज, स्याही, फाइल आदि लाना भी उसी का काम है।

डॉ० राव सुबह नौ बजे उठते हैं। स्नान करने के बाद कुछ समय अगासी पर बठकर बिताते। दस बजे राज के साथ बठकर भोजन करते फिर कालेज को चल दत। कालेज म सप्ताह मे तीन चार घटे पढाते। मन न लगता तो लिख भेजते, आज मैं क्लास नहीं लूगा।' और पुस्तकालय के अपने कक्ष मे चले जाते। अमुक पुस्तक का अमुक अध्याय पढना अमुक ग्रथ म वर्णित उस काल के जन-जीवन से सबधित टिप्पणी लिखना, प्राच्य वेत्ताओ द्वारा प्रकाशित ग्रथो को पढना और मुख्य मुख्य स्थानो पर निशान लगाना, कई बार प्राच्यसग्रहालयो म जाना और पाडुलिपियाँ ढूढना, शकास्पद विषयो पर अपने विदशी विद्वान् मित्रो को पत्र लिखना, अर्थात इनका काय उतना ही अपरिमित है जितना भारत का इतिहास। दोपहर म तीन बजे चपरासी होटल स थोडा नाश्ता और कॉफी ल आता। इसक बाद व फिर अपने काय म लग जाते। शाम को करीब सात बजे पुस्तकालय स घर लौटते। इस परिश्रम स उनके थके दिमाग को न किसी की याद आती और न रहती ही। ऐसी स्थिति म वे किसी स कुछ न बोलते

और अगामी पर जाकर आराम-कुर्सी पर वठ जाते। आठ बजे क करीब राज खाने क लिए बुलाता ता नीचे उतरत और परासी हु पत्तल क सामन वठ जात। कभी-कभी राज पृथ्वी और नागलक्ष्मी म बात कर लत अ यथा चुपचाप भाजन क बाद अध्ययन-कक्ष म चले जात। उनका यह अध्ययन-कक्ष खरीद गय और पुस्तकालय स लाय गय ग्रथा स भरा हुआ था। रात क दो तीन और कभी कभी सुबह के पाच बजे तक उनका अध्ययन चलता। सुबह नौ बजे उठत। नहाकर भोजन करत और पन अध्ययन मे डूब जात। रविवार और छुट्टी के दिन भी पुस्तकालय जात। उन्हें पुस्तकालय की एक अतिरिक्त चाबी दे दी गयी थी।

एक रविवार दापहर को पृथ्वी को बुखार आ गया। बुखार की गर्मी मे बालक हठ कर रहा था 'काका मुझे अण्णा (पिताजी) क पास ले चलो।

'नही बेटे ! अण्णा रात को आयेंग और तरे पास ही मायग। अब चुप रहा कहकर राज मना रहा था। कुछ समय तब हठ करन के पश्चात वह आख मूदकर सो गया। खाट पर साये बालक के पास राज बठ गया। रसोईघर क काम स निपटकर नागलक्ष्मी भी पास ही एक कुर्सी पर वठ गयी। बालक और राज को दखकर उसकी आखें भर आया। वह अनायास ही रा पडी। यह दख राज न कहा— रो क्या रही हो ? शाम को डाक्टर को बुला लेंगे। बुखार आया है तो उतर भी जायगा।

'मैं इसलिए नही रोई आंचल म आसू पाछते हुए नागलक्ष्मी न कहा।

तो फिर किसलिए ?

बुखार आता है चला जाता है। बच्चा अण्णा अण्णा की रट लगा रहा है क्या उन्ह घर म नही रहना चाहिए ?

उन्ह क्या मालूम कि इस बुखार आ गया है। सुबह ता यह ठीक था। इसलिए व रोज की तरह आज भी लाइब्रेरी चल गय।

रोज की तरह चल गय यह तुम कितनी आसानी म कह गय। रविवार को भी क्या जाते हैं ? पत्नी और बच्चे की तनिक भी चिन्ता हो तब न ?

राज चुप रहा। वह जानता है कि जब भाभी गुस्से म हो बोलना

नहा चाहिए। लेकिन नागलक्ष्मी फिर बोली, इनसे शादी हुए ग्यारह साल हो गय। शुरू-शुरू म तीन दिन तक 'नागु नागु' पुकारत रहे। इसके बाद मैं भुला ही दी गयी। फिर तीन वर्ष तक पी-एच० डी० करते रहे, पत्नी को पूर्णत भूल गय। 'आजकल एक पुस्तक लिख रहा हूँ' कहकर और पाँच साल निकाल दिय। अब एक और भूत सवार हुआ है। कहते हैं 'महाग्रथ लिख रहा हूँ, पाँच बडे-बडे जिल्दो म।' पच्चीस सालो मे उसे पूर्ण करने की योजना है। उन्ह किसी की फिक्र ही नही। तब तक मैं भी पचास की हो जाऊँगी। न जान किस नक्षत्र म इनका जन्म हुआ था! शास्त्री से पहले हमार गाँव क तिप्पा जोयसजी न जन्मकुडली देखकर कहा था दोनो की जोडी सदा सुखी रहेगी।

"क्या, निभ ता रही है! अब झगडा किस बात का ? तुम अपनी ओर से झगडना भी चाहोगी तो भैया चुप ही रहते है।

'चुप नही रहग तो क्या करेंग ? तुम्ह सारी दुनिया की बातें समझ मे आती हैं, लेकिन यह बात नही। चुप रहो। उसकी आँखें पुन भर आइ।

राज आगे कुछ न बोला। उससे यह छिपा नही है कि अपने ग्रथ की रचना म लीन उसका भाई अपने पत्नी बच्चो म ही क्या, छोटे भाई से भी कभी बात नही करता। लकिन उसे भैया स कोई शिकायत नही। इग्लड म उसने प्रसिद्ध विद्वानो को अध्ययन करत देखा था। वह यह भी जानता था कि एकनिष्ठा क बिना महत् ग्रथ रचना का कार्य सभव नही है। इसी कारण भाभी से पूछा क्या तुम नहा चाहती कि भैया महाग्रथ लिखकर प्रसिद्ध विद्वान मान जायें ? उन्ह महान् विद्वान् बनने का सम्मान मिलेगा तो तुम्ह खुशी नही होगी क्या ?

'खुशी क्या न होगी! उन्ह पढन लिखने से मैं थोडे ही रोकती हूँ ? लेकिन बीबी-बच्चे को इस तरह भुला तो न दें!"

यह काम ही एसा है। भैया ही नहा इग्लण्ड के विद्वान भी ऐसे ही होते हैं। हमार देश म भैया जस तो विरले ही हैं।

तुमने कहा न कि इग्लण्ड म भी एस लोग हैं उनकी पत्नियाँ क्या करती हैं ?"

'उनकी पत्निया को यह समस्या नही रहती। क्योंकि , घर छोडो'

कहकर वह चुप हो गया। उसने आक्सफोर्ड में देखा था कि प्रसिद्ध प्रोफेसरों की पत्नियाँ अपने पतियों के अध्ययन में मदद करने की क्षमता रखती हैं। वे अपने पति की पढ़ाई लिखाई में नोट तैयार करने में प्रूफ रीडिंग आदि में मदद करती हैं। पति के निजी सचिव का काम वे ही करती हैं। राज के प्राध्यापक की पत्नी भी वैसी ही थी। इसलिए पति-पत्नी के बीच बातचीत के लिए अनेक विषय होने के बावजूद पत्नी के सहयोग के बिना पति की कोई भी बौद्धिक साधना पूरी नहीं हो पाती। पत्नी के नाराज होने का भी कोई कारण नहीं रहता। उस देश की पद्धति ही निराली है। वे मुक्त भाव से अपनी अभिरुचि और जीवन-साधना के अनुरूप अपना साथी चुन लेते हैं। कभी इस बात का आभास हुआ कि उनका साथ नहीं निभ सकता तो तुरन्त अलग हो जाते हैं और पुनः अनुरूप साथी ढूढ लेते हैं। इस देश की पद्धति उचित है या उस देश का रिवाज इसका निर्णय करने का प्रयास राज ने नहीं किया।

उसे मालूम है कि भाई भाभी के बीच अपार बौद्धिक अंतर है और भाई की बौद्धिक साधना में भाभी किसी तरह की मदद नहीं कर सकती। नागलक्ष्मी शादी के बाद राज के साथ मैसूर के पतिगृह में आई तो राज ने उसे अंग्रेजी सिखाने की कोशिश की थी। किसी तरह उसे कालेज भेजने की आशा भी की थी। इसमें भाई का प्रोत्साहन भी था। लेकिन नागलक्ष्मी का पढ़ने लिखने का मन न था। पढ़ने लिखने की आवश्यकता भी प्रतीत नहीं हुई। मेरे भाग्य में विद्या लिखी ही नहीं है पढ़ लिखकर करना भी क्या है? कहकर वह दोनों को चुप कर देती थी।

राज ने बीच में ही बात रोक दी तो नागलक्ष्मी ने ही पूछा—'चुप क्यों हुए राज?'

यों ही। उस देश के विद्वान भी भैया की तरह हैं। वहाँ की स्त्रियाँ भी तुम्हारी ही तरह सब कुछ सहती हैं।

उसे जाने दो। तुम भी उन्हीं की तरह पढ़े हुए हो। जिस तरह तुम मेरे साथ बोल लेते हो उसी तरह वे क्या नहीं बोल सकते?

मैं तो चटर-बाक्स अर्थात बातूनी आदमी हूँ!

उसे हँसाने का प्रयत्न करते हुए राज ने कहा— मैं थोड़े ही भैया

की तरह पुस्तक लिखता हूँ। नाटक खेलना मेरा मुख्य काम है। बात करना ही मेरी पढ़ाई है। क्या मैं भी पुस्तक लिखना शुरू कर दूँ?"

नहा बाबा! तुम नाटक ही खेलते रहो।' नागलक्ष्मी फिर कुछ याद करती-सी बोली 'तुम भी पच्चास वर्ष के हो गये, शादी कर लो। मुझे घर में राहत मिल जायेगी।'

"मुझे शादी नहीं करनी है। अब सुखी हूँ। नहीं तो वह भी—'आप पर आठों पहर नाटक का ही भूत सवार रहता है मेरी चिंता ही नहीं' कहती हुई तुम्हारी तरह ही कोसा करेगी।"

उस दिन नागलक्ष्मी का मिजाज कुछ गर्म ही रहा। शाम को पाँच बजे राज बालक को लेकर डाक्टर के पास गया और दवा ले आया। डाक्टर ने कहा कि 'कोई गंभीर बीमारी नहीं है, कल बुखार उतर जायेगा —सब कुछ ठीक हो जायगा।'

रात को सात बजे डॉ० राव घर आये तो राज घर में न था। उनके आते ही नागलक्ष्मी ने पूछा—'रविवार को भी वहाँ गये बिना काम नहीं चल सकता क्या?'

उसकी आवाज के भाव को समझ डा० राव चुप रहे। उसने पुनः पूछा— चुप क्या है? तब डॉ० राव ने कहा—"गुस्से में कोई प्रश्न करे तो उसका उत्तर शांति से देने पर भी सुनने वाले का क्रोध बढ़ ही जाता है और क्रोध में उत्तर दे तो भी बढ़ता है। इसलिए चुप रहने में ही विवेक है।

तब उसने डा० राव का हाथ पकड़कर, कमरे में पत्नी के पास ले जाकर कहा "बच्चे को दोपहर से बुखार है।'

'राज घर पर नहीं था? —बच्चे के माथे पर हाथ रखकर डॉ० राव ने पूछा।

था! वह नहीं तो और कौन करता? डाक्टर के पास जाकर दवा लाया। लेकिन बच्चे के पिता को इसकी रत्ती भर चिंता नहीं।

राव ने कुछ नहीं कहा। बालक के पास चुपचाप बैठ गये। पति को दो मिनट तक एकटक निहारकर नागलक्ष्मी ने कहा 'चुप बैठने के सिवा आपको कुछ सूझता भी है?

मैं क्या करूँ? राज दवा ले आया है। और देखभाल तुम करती

हो।'

हाय री किस्मत !" कहकर नागलक्ष्मी सिसक सिसककर रोने लगी।

डा० राव दुविधा में पड़ गये। उन्होंने पत्नी का हाथ पकड़कर अपने पास बिठाया। फिर उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा— तेरे मन की बात मैं समझ सकता हूँ नागू! खैर, छोड़ो। अब मैं जल्दी घर आ जाया करूँगा।"

उसके लिए इतना ही काफी था। दो मिनट में ही अपने-आप सँभलकर पति की बाँहों को दोनों हाथों से कसकर कहा— मैं यह नहीं कहती कि आप पढ़ें नहीं। मुझे इस तरह भुलाकर पढ़ें तो मैं जिऊँ कैसे?'

राज के जागने की आवाज सुनाई पड़ी। नागलक्ष्मी उठकर रसोईघर में चली गयी।

नागलक्ष्मी को नींद न आई। बच्चे को बीच में सुलाकर पति पत्नी दोनों लेट गये। डा० राव पत्नी से खुलकर दिल से बातचीत कर रहे थे। घर के कम्पाउण्ड की मालिन की लता और पड़ोस की नई नौकरानी से लेकर इस बार राज द्वारा हैदराबाद से लाई हुई तुअर की दाल तक के बारे में बड़ी लगन से अपने पति को सुना रही थी। वे यथाक्रम हूँ हूँ कहते रहे। ग्यारह बजे नागलक्ष्मी को नींद आ गयी। बालक भी सो गया। लेकिन यह डॉ० राव के सोने का वक्त न था। वे धीरे से उठे और अपने अध्ययन-कक्ष में चल दिये।

अजंता से लौटने के एक माह बाद करुणरत्ने का रजिस्टर्ड लिफाफा आया। खोलकर देखा तो लगभग साठ से अधिक टाइप किये पृष्ठ थे। ये थी दोनों द्वारा लिये गये नोटों की प्रतियां। डा० राव ने प्रारम्भ से अंत तक पढ़ डाला। शुद्ध अंग्रेजी में क्रमबद्ध लिखा गया था। रत्ने को दिखाने के लिए उन्होंने अजंता का वर्णन अवश्य किया था लेकिन एक गुफा से दूसरी गुफा में जाते समय मौखिक रूप में जो कुछ कहा था उसमें लिखित क्रमबद्धता नहीं थी। किन्तु रत्ने से प्राप्त हुई दस लेख की प्रतियां एक सुव्यवस्थित निबंध सी थीं। टाइप में एक भी गलती नहीं—कोई अनुभवी कुशल टाइपिस्ट ही ऐसा काम कर सकता है।

इसके साथ रत्ने का एक पत्र भी था जिसमें लिखा था— यहाँ आने

रूप देने लगे। इतने में रत्ले का एक और पत्र आया।

मैंने आपका 'प्राचीन भारतीय राजतन्त्र' को धर्म की देन' पढ़ा। इससे पहले केवल समालोचना पढ़ी थी। कल्पना भी नहीं की थी कि यह ग्रंथ इतने उच्च स्तर का होगा ! यह पत्र आपका अभिनन्दन करने के लिए नहीं लिख रही हूँ—मैं ऐसे लेखक का अभिनन्दन करने के योग्य भी नहीं। मेरा एक निवेदन है। मैं बौद्धधर्म की पृष्ठभूमि में सिंहल की संस्कृति पर जो ग्रंथ लिखना चाहती हूँ, आशा है, उसमें आपका पूर्ण मार्गदर्शन मिलेगा। उसी को पी एच० डी० के लिए शोध प्रबंध के रूप में प्रस्तुत करने का इरादा है। तत्पश्चात् प्रकाशित कराने की बात सोच रही हूँ। इस शोध-कार्य में आपके मार्गदर्शन की इच्छा सँजोए हूँ—आपकी स्वीकृति की अपेक्षा है। मेरे माता पिता और भाई ने भी इस योजना को पसन्द किया है। कृपया मुझे अपनी छात्रा के रूप में स्वीकार करें। आपकी स्वीकृति पाते ही मैं यहाँ से रवाना हो जाऊँगी।

विश्वविद्यालय-क्षेत्र में ऐसी विदुषी छात्रा को शिष्या के रूप में पाना प्रोफेसरों के लिए गौरव की बात है। किन्तु डॉ० राव ने महसूस किया कि शोध-कार्य के लिए इतनी दूर से अकेली युवती का आना ठीक नहीं। फिर यह सोचकर कि वह इंग्लैंड अकेली ही तो गयी थी और दो साल शिक्षा पाकर लौटी है डॉ० राव ने पत्र लिखा— 'मेरे मार्गदर्शन में तुम्हारे शोध-कार्य करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। तुम अपनी सुविधानुसार कभी भी आ सकती हो।

एक दिन शाम के चार बजे नागलक्ष्मी आँगन में चमेली के पौधे के पास खड़ी थी। सफेद साड़ी पहने एक साँवले रंग की युवती ताँगे से उतरी और फाटक के पास आकर अंग्रेजी में पूछने लगी— डा० सदाशिवराव हैं ?

नागलक्ष्मी प्रश्न समझ गयी। कन्नड में 'हैं' कह दिया, लेकिन रत्ले न समझ सकी। उसने पुनः अंग्रेजी में पूछा, तो नागलक्ष्मी की समझ में न आया। अब रत्ले लौट ही जाने वाली थी कि राज आ गया। परस्पर बातचीत के बाद उसने आगंतुक युवती को भीतर ले जाकर बैठाया और भाभी से काफी बनाने के लिए कहा। काफी पीने के बाद राज ने पूछा—
"आपका भोजन हो चुका है ?

"जी हाँ। रेल म उतरन के बाद एव होटल म भोजन करके ही यहाँ आई हूँ।'

'आपका आज की तारीख आदि के बारे म मेरे भया जाना है ?'

'लिखा था। उन्होंने पत्रोत्तर भी दिया था।

शायद व भूल गये होंगे। अपने अध्ययन म उन्हें कुछ भी याद नहीं रहता। मेरे साथ आइए। पुस्तकालय म स्थित उनके कमरे म ले चलता हूँ।

जाते-जाते रास्ते म रत्ने और राज ने परस्पर अधिक परिचय कर लिया। डा० राव कमरे म आराम-कुर्सी पर पीठ टकाकर बठे, किसी नोट के कापी आर लाल पेंसिल स कुछ रिमार्क लगा रहे थ। मेज पर हस्त-लिखित पाडुलिपियाँ, पेन, पेंसिल आठ-दस अधखुली किताबें पड़ी हुई थी। सारा कमरा पुस्तकों से भरा पड़ा है। कमरे म अभी तक दोपहर की गर्मी थी लेकिन लगता है राव पखा चालू करना भूल गये हैं। वे पैर पसारकर बठे थे। रत्ने को भीतर आते देखकर, कुछ तनकर बठते हुए उन्होंने कहा —'आइए आइए स्वागत है ! मैं भूल ही गया था। कब आयी ?"

रत्ने और राज सामने पास की कुर्सियों पर बठ गये। डॉ० राव ने कुशल-समाचार पूछा— 'आपके माता पिता कुशल तो हैं ?"

"कुशल हैं ! आपको नमस्कार कहा है।'

डॉ० राव अभी तक अध्ययन की धुन मे ही थे। वे समझ नही पा रहे थे कि अब क्या बोलना चाहिए। कुछ न कहकर चुप रह गये। इस चुप्पी से रत्ने को कुछ सकोच हुआ। इसे ताडकर वातावरण को कुछ हलका बनाने के उद्देश्य से राज ने कहा—"आप बहुत दूर आ गयी हैं।"

'ओह ! दूर कहाँ ?'

राज न तुरत कहा— सिंहल और भारत के बीच ज्यादा दूरी तो नहीं है, अन्यथा रावण सीता को एक ही बार मे कसे उठा ले जाता ?"

रत्ने हँस पडी। डा० राव भी मूड म आ गये। उन्होंने कहा— "रामायण के कवि ने सिंहल को अवश्य देखा होगा। यद्यपि कवि ने सिंहल के राजा रावण को राक्षस कहा है, फिर भी कर्मनिष्ठ, श्रद्धा तपस्वी के रूप म उसका वर्णन किया है। सांस्कृतिक दृष्टि से ये दोनों देश एक ही हैं।"

राज ने कहा—"भया, ये इतनी दूर म आयी हुई हैं और आप उनका कुशल-समाचार पूछना छाडकर इतिहास पर व्याख्यान देन लग गये।'

डा० राव ने अपनी गलती महसूस कर रत्ने स पूछा— कहाँ रहन की व्यवस्था की है ?

' होटल मे ।

आपको होटल म रहने की आवश्यकता नही थी। सीधे घर आना चाहिए था। अब एक काम कीजिए। मेरे भाई के साथ जाकर सारा सामान यहा ले आइए। रजिस्ट्रेशन के लिए कल विश्वविद्यालय को अर्जी देंगे। एक-दो दिन तक लडकियो क होस्टल म रहन की व्यवस्था की जा सकती है ।

राज और रत्ने क चले जान पर डा० राव पुन अध्ययन मे लग गये। रत्ने और उसक सामान के साथ सात बजे के करीब राज घर लौटा। रत्ने का अंग्रेजी म अपनी भाभी—गुरु पत्नी—का परिचय कराया। रत्ने न नमस्कार किया। नागलक्ष्मी ने प्रति नमस्कार किया। अन्दर रसोई बनाते समय मौका पाकर नागलक्ष्मी न राज स पूछा— युवतियाँ शादी कर घर बसाना छोडकर इतनी दूर क्यो जाती है ?

क्या पढने के लिए । वह इग्लड जाकर उतना ही पढी है जितना कि मैं। अब भया के मार्गदर्शन म पढने आई है। भया को आप क्या समझती है ?

'क्या तुम्हारा ही सम्बन्ध है उनस ? मरा कुछ नही ? नागलक्ष्मी न गव से कहा।

क्या सबध है यह तुम उन्ही से पूछो कहकर राज बाहर चला गया। डॉ० राव आठ बजे घर आये। तब तक राज अतिथि स बातें करता रहा। इग्लड के छात्र जीवन के बारे म उनकी बातचीत चल रही थी।

६

घर म वात्सल्यमयी सास ससुर और एक प्यारा बच्चा है। जीवन की सारी सुविधाएँ भी हैं। फिर भी कात्यायनी का जीवन नीरस लग रहा था। स्वर्गीय पति की स्मृति-कल्पना पहले-जसी उत्कट नहीं थी। वह अब कभी-कभी सास-ससुर स हँसकर बात कर लेती। बच्चे के साथ कभी घोडे का खेल ता कभी आँख मिचौनी खेलती। फिर भी समय बिताना उसके लिए कठिन था। सुबह उठकर घर म झाडू देती चौक पूरती रँगोली सजाती। इस बीच सास-ससुर नहा धो लेते। ससुर पूजाघर म हान और सास रसोईघर म। अन्य काय लक्ष्मी करती। बच्चे को कपडे पहनाकर खुद स्नान करती। फिर सबके कपडे धोकर सुखान डालती। बस, यही उसका घर का काम होता था। बाकी समय कसे बीत ? सास कभी-कभी चौसर खेलना। लकिन कात्यायनी को उसम रुचि नहीं थी।

पति के देहान्त के बाद कात्यायनी के पिता उसे कुछ दिनों के लिए अपन साथ श्रीरंगपट्टण ले गय थ। लकिन उस वहाँ भी शांति न मिली, वहाँ उसकी सौतली माँ जो थी। माँ उम्र म उसस सिफ आठ वष बडी था। पिता, आचार म ससुर स भी बढकर थ। ससुर के आचार और पिता की शुद्धाचारिता म बडा अन्तर था। अगर श्रोत्रियजी अपन आचरण को प्रकाश प्रदान करने वाले धम क अंत सत्त्व को पहचानन का प्रयत्न करत, तो वकील श्रीकंठय्य धम के बाहरी रूप का हर तरह स पालन करत। नजुड की मृत्यु क पश्चात् श्रीकंठय्य कात्यायनी का पुन विवाह के पक्ष म थे लेकिन श्रोत्रियजी न इसे कोई महत्त्व नहीं दिया। पिता के घर अधिक दिन न रह वह नजनगूडु लौट आई। कभी-कभी वह अकेली ही बगीचे म जाती और पौधों की क्यारियाँ बनाती। घास तिनके निकाल फेंकती। पौधों को पानी देती। घर क पिछवाडे मोगरा चमेली की लताओं म सुन्दर सुगंधित फूल खिलत। कात्यायनी इनम भरपूर पानी डालती। लेकिन बगीचे म काम करत-करत पति की याद आ जाती। पहल व दोनो मिलकर पानी डालत थ। फूलों से लदे कुटिया क आकार के मोगरे क पौधों की ओर म फूल चुनत समय कई बार पति न छेड छाड की थी।

इस पर वह कृत्रिम रोष प्रकट करती थी। अब जब कभी वह बगीचे मे जाती उ स्मतियाँ उभर आती।

बगीचे म हरे भरे पौधे लहलहा रहे थे। फसल कटने के बाद घर के पिछवाड़े का जो खेत सूखकर बंजर-सा दिखाई देता था अब हरा भरा हो उठा था। सदा बंजर रहना न प्रकृति का नियम है और न धर्म ही। लेकिन कात्यायनी यह सोचकर आह भरती कि मेरा मुरझाया जीवन सदा के लिए मुरझा गया। लेकिन बच्चे को देखती तो मन भर जाता। किंतु बच्चे के पालन पोषण म ही उसकी चेतना पूर्णत लीन नहीं हो सकती थी। *कभी-कभी बगीचे म काम करते समय श्रोत्रियजी अचानक वहाँ आ जाते।* वह का देख कहते— इस कड़ी धूप म यह क्या करती हो बेटी ? अन्दर जाओ। ससुर के वात्सल्य को याद करती तो दु खमय जीवन म नयी उमंग पैदा हो जाती। कभी कभी उसे अपने कालेज जीवन की याद हो आती। हर रोज वह रेल से श्रीरंगपट्टण म मसूर आती थी। कालेज म वह कुशाग्र बुद्धि की छात्रा मानी जाती थी। सीनियर इंटरमीडिएट म *एक बार विद्यार्थियो ने सावित्री सत्यवान नाटक खेला* था जिसम उसने सावित्री का उत्तम अभिनय किया था। दर्शकों के अश्रु कण रोके न रुकते थे। सत्यवान को यम से मुक्त कराने वाली कात्यायनी, वास्तविक जीवन म अपने विवाह के दो वर्ष भी पूर्ण न कर सकी! इंटरमीडिएट उत्तीर्ण होते ही उसकी शादी हो गई थी और आगे की पढ़ाई भी रुक गई थी। लेकिन उसे इसका कभी दु ख नहीं हुआ। श्रोत्रिय दम्पति से सास ससुर तथा उन जैसे पति के सम्मुख कालेज अध्ययन का क्या महत्त्व !

अब उसे एक नई बात सूझी। नंजनगूड़ु से कई लड़कियाँ रोज कालेज मे पढ़ने मसूर जाती हैं। मैं भी क्यों न बी० ए० कर लूँ ? इस विचार के पीछे उसकी और एक आशा मंडरा रही थी। उसका पति पहली बार बी० ए० म न बैठ सका। दूसरी बार बैठा तो दो विषयो म फेल हो गया। तीसरी बार घर पर ही पढ़ता रहा। लड़के को बी० ए० बनते देखने की *मा बाप की बड़ी इच्छा थी। पति की सारी पुस्तकें दुमंजिले पर रखी* थी। कात्यायनी ऊपर गई अलमारी खोलकर देखा। संस्कृत अंग्रेजी इतिहास आदि की कई पुस्तकें रखी थी। सब व्यवस्थित जिल्द म हैं और

उन पर एन० एस० नजुड श्रोत्रिय भी लिखा ह। कर एक पुस्तको पर स्वय उसी न नाम लिखे थ। एक बार पति न पेंसिल स पत्नी का नाम कात्ता लिख दिया था जिस कात्यायनी न रबर मे मिटा दिया था। वह चिह्न आज भी समिट था।

फिर म कालेज जान की उसकी आशा धीरे धीरे प्रबलती होती गई। शका थी कि ससुर मानेंगे या नहीं। लेकिन उनस पूछन का निश्चय कर एक दिन उसन पूछ ही लिया। उन्होंने कहा — बेटी अब नियमित खाना पीना छोडन और रोज म चक्कर लगान की जरूरत भी क्या है? आराम मे घर म रहो। चीनी के बडा होन पर उसे पढायेंगे।

'आज व होते तो हम माल बी० ए० अवश्य कर लेते! हमारी किस्मत म कुछ और ही बदा था। उनके नाम म इतना मैं कर लू तो भी मन को एक तरह से शाति ही मिलेगी' इतना कहकर वह चुप हो गयी।

किसी बात पर ध्यान न देना श्रोत्रियजी का स्वभाव नहीं था। पिछले कुछ दिनों स व बहू क नीरस जीवन का दख रह थे। सोचा, अगर कालेज जान से इसका दिन बहल सकता है तो ठीक ही है। फिर भी कहा— मैंने तुमस भगवद्गीता पढने के लिए कहा था। कालेज जान के बदले भगवद्गीता पढो। मन को शाति मिलेगी। उपनिषद भी पढो। चाहो तो रोज पूजा के बाद मैं पढा दिया करूँगा। ज्ञान पहनने का अभाव हो तो दूसरी बात है। भगवान की कृपा स कोई कमी नहीं है। मेरा तो विचार है कि तुम जसा के लिए कालेज की अपक्षा उपनिषद्-भगवद्गीता ही अधिक उपयुक्त है।

श्रोत्रियजी जिन शब्द विशेष अथ लगाय कह गय थ लेकिन अतिम वाक्य तुम जसा क लिए सुनकर कात्यायनी के मन को आघात लगा। आँखो म आँसू छलक पडे। श्रोत्रियजी कारण न समझ पाय किन्तु आँसू देख उन्होंने सान्त्वना देते हुए कहा—'तुम पढना ही चाहती हो तो पढो। उसम रोन की क्या बात है?'

आँसू पोछकर कात्यायनी न कहा भगवद्गीता पढन का प्रयत्न किया पर उसके प्रति रुचि नहीं जागी। मैं क्या करूँ? अलमारी म रखी उनकी किताबें पढने लगी तो मन रम गया।'

'तू ठीक कह रही है बेटी। हर चीज का एक वक्त होता है!'

कहकर श्रोत्रियजी चुप हो गय।

एक न्नि दोपहर म कात्यायनी बच्चे के साथ ऊपर सो रही थी। भागीरतम्मा, लक्ष्मी और श्रोत्रियजी नीचे आँगन म बातचीत कर रहे थे। भागीरतम्मा ने कहा इतना सब हो चुकने के बाद अब कानज क्या ? वह दुनिया क्या जाने ? उसने पूछा और आपने हाँ कह दिया ! घर म बेटे की देखभाल करते हुए आराम से नही रहा जाता ?

पत्नी को समझाते हुए श्रोत्रियजी ने कहा, अभी छोटी उम्र है। घर म बठकर करना भी क्या है ? एक दो साल पढने दो।

इस छोटी उम्र म जो-कुछ भी हुआ क्या इसका हम दु ख नही है ? सिर मुडा लेती तो अनेक कार्यों म हाथ बटा सकती थी। पूजाघर की सफाई करती रागोली मांडती नवद्य बनाने म मदद करती। इन कार्यों के साथ व्रत सम्बन्धी कथाएँ पढती। किसी तरह समय बीतता ही। वह ठहरी आजकल की लडकी। आप मुडन कराना नही चाहते थ, और मेरा मन भी इतना कठोर न था। अब क्या होता है ?

लक्ष्मी ने बीच म ही कहा— अब वह पति की पढाई की इच्छा पूरी करने के लिए ही जा रही है न ? पति के नाम पर पढेगी अपने लिए तो नही ? पढने दो तुम्हारा क्या जाता है ?

भागीरतम्मा यह सोचकर चुप रह गई कि वह आखिर बी० ए० की डिग्री हासिल करने ही तो जा रही है जिसे स्वर्गीय पुत्र न पा सका। उनकी चुप्पी ही सम्मति सूचक थी। अब श्रोत्रियजी ने कहा इस छोटी उम्र म सिर मुडाकर घर बठाने की परपरा अब किसे भाती है ? कोई स्वत प्रेरित होकर ऐसा करे तो ठीक है। ये सब अलकार जिसके लिए होने चाहिए उसी के चल जाने स अब उनका क्या महत्त्व ? यह भाव जब तक अन मन म नही उपजता तब तक बाहर म कोई न लाद यही उचित है।

इतने म बाहर स किसी के आने की आहट हुई। लक्ष्मी ने जाकर देखा। आगतुक डा० राव थे। श्रोत्रियजी तुरत बाहर आये और हाथ जोडकर बोले आइए आइए ! दर्शन हुए डेढ साल हुआ न ? अदर दीवानखाने म चलिए।

चमड़े के बड़े थैले को अपने साथ लेकर डॉ० राव दीवानखाने में कुर्सी पर बैठ गये। श्रोत्रियजी भीतर से एक बड़ा गिलास मठा लाकर उनके सामने रखते हुए बोले 'खाने के लिए कुछ लेंगे?'

'अभी एक-दो घण्टे कुछ नहीं लूंगा। भोजन के तुरन्त बाद निकला था।"

कुछ समय तक परस्पर कुशल-क्षेम की बातें हुई। डॉ० राव ने महाराज से प्राप्त सुविधाओं की चर्चा की। श्रोत्रियजी ने पूछा, 'आपका ग्रंथ कहाँ तक पहुँचा?'

"यही बताने के लिए आया हूँ। प्रथम खण्ड के कुछ अध्यायों की सामग्री तैयार कर ली है। प्रथम अध्याय 'भारतीय संस्कृति का आदि और आधार' तैयार है। यही मुख्य अध्याय भी है। इस संबंध में आपसे कुछ विचार विमर्श करना चाहता था।'

"अवश्य! हाथ-पाँव धो लीजिए और थोड़ा आराम कर लीजिए। बाहर कड़ी धूप है।' कहकर श्रोत्रियजी डॉ० राव को गुसलखाने में ले गये। लौटकर डा० राव ने थैले से टाइप किये हुए कुछ कागज निकाले।

चलिए ऊपर चलें। मैं भी वृद्ध हो चला हूँ। स्मरण शक्ति कम होती जा रही है। अकस्मात्, किसी ग्रंथ को देखना पड़ा तो फिर वहाँ जाना पड़ेगा।"

दोनों सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे कि कात्यायनी बच्चे को लेकर नीचे उतर रही थी। बच्चा अभी-अभी जागा था। उसे देखकर डॉ० राव ने पूछा, 'कैसी हो बहन?'

'आप कब आये?' कात्यायनी ने पूछा।

और फिर दोनों विद्वान अध्ययन-कक्ष में मृगछाले पर आमने-सामने बैठ गये। अपने कागजों पर एक बार नजर डालकर डॉ० राव ने कहा, 'अपौरुषेय वेदोपनिषद् ही भारतीय संस्कृति का आदि और आधार हैं—इस सिद्धान्त के साथ ग्रंथ प्रारम्भ होता है। आगे के समस्त भागों में, आने वाली संस्कृति का हर आधार वेदोपनिषदों में होना चाहिए। कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि मूर्ति पूजा नागपूजा प्रकृति-आराधना आदि का उल्लेख वेदोपनिषदों में नहीं है। ये सब बाद में बनाये संस्कृति से आ मिले हैं। इस मत को अगर मान लिया जाय तो ग्रंथ का आरंभ ही

गलत हो जाता है। इस सम्बन्ध म आपके क्या विचार हैं?'

प्रश्न को गहराइ स सोचन के पश्चात श्रोत्रियजी न कहा, हम यह क्या स्वीकार करें कि प्रकृति-पूजा अनार्यों की देन है और वह निम्न स्तर की आराधना है? नागपूजा आदि पद्धतिया आर्यों की क्या नहीं है? वेदा म भी तीन तरह की उपासना के सकेत मिलत है—भूतोपासना भूताभिमानी दवोपासना और अतर्यामी उपासना। भूतरूपी अग्नि की उपासना करत समय भूताभिमानी दवता अग्नि को ही कृति उपलब्ध होती है। लेकिन उस अग्नि क रूप म अतर्यामी परब्रह्म ही पात हैं। अतराय को जान बिना की जान वाली भूत-पूजा निम्न स्तर की है। अथ का जानकर की जान वाली प्रकृति पूजा वदो म भी है।

शाना साँझ के सात बजे तक इसी तरह चर्चा करत रहे। डा० राव बीच-बीच म अपनी नोट बुक म कुछ निशान लगाते जात। तीना वदा स श्रोत्रियजी को अनक मन्त्र कठस्थ थे जिन्ह व उद्धत करत। कभी-कभी मुद्रित सस्कृत ग्रथा के पन्ने पलट पलटकर डा० राव को दिखात।

रात के आठ बज श्रोत्रियजी अध्ययन-कक्ष स बाहर निकल। स्नान किया और पूजा पाठ के लिए चल गय। डा० राव चर्चित विषया पर दीवानखान मे बठे सोचत रहे। नौ बजे भोजन के पश्चात पुन अध्ययन कक्ष म चर्चा करने बठे। रात के करीब एक बजे दोना नीचे उतरे और लेट गय। अब श्रोत्रियजी न अपनी बहू की पढाई क बारे म पूछा। डा० राव न कहा एक तरह से अच्छा ही है घर म बठकर करगी भी क्या?

यह तो ठीक है। लेकिन मेरी पत्नी सहमत नही है। कालेज क बारे मे उसका धारणा अच्छी नही है।

अच्छे लोग कही भी रहें कुछ नहा होता। बिगडने वाले कभी और कही भी बिगड जाते है। कालेज बुरा तो नही है। मैं भी कालेज म ही रहता हूँ न?

श्रोत्रियजी को डा० राव की बात पसन्द आई। उन्होने पूछा गर्मी की छुट्टिया क बाद कालेज कब खुलन वाला है?

दस दिन और है। उस चौबीस जून को भेज दीजिए। मुझे विश्व-विद्यालय की लाइब्रेरी म एक कमरा दिया गया है। वहा बठता हूँ। उस दिन फाम भरकर द दगे। फिर नियमित रूप स जाना होगा।

शास्त्रियजी ने अब निर्णय कर लिया कि कात्यायनी कालेज जायगी।

शास्त्रियजी के घर के पास डा० श्रीपादराव रहते हैं। उनकी बेटी वासंती इस साल मैसूर बी० ए० में है। जब वासंती को पता चला कि कात्यायनी भी उसी कालेज में पढ़ने वाली है तो वह स्वयं आकर पूछताछ करके आयी। कात्यायनी को खुशी हुई कि चलो दोनों साथ-साथ कालेज जाया करेंगी। शास्त्रिय दम्पति को भी तसल्ली हुई। डा० राव ने अंतिम तारीख से पहले ही शास्त्रियजी के नाम प्रवेश-पत्र भेज दिया था। फार्म पर सर्वत्र के रूप में शास्त्रियजी ने हस्ताक्षर किये। भागीरतम्मा के कहने पर कात्यायनी ने फार्म भगवान के सामने रखा प्रदक्षिणा कर नमस्कार किया और फार्म लेकर कालेज जाने के लिए तैयार हो गयी।

उस दिन सुबह से ही कात्यायनी एक अजीब-सी परेशानी और भय महसूस कर रही थी। सोच रही थी कि घर छोड़कर रोज कालेज जाकर क्या हासिल करूँगी? भोजन करते समय भी यह प्रश्न उसके दिमाग में घूमता रहा कि सुबह नौ बजे घर से निकली तो शाम के साढ़े छह बजे तक घर की छाया भी नहीं मिलेगी। बच्चे के प्यारे प्यारे तुतलाते बोल अनसुने हो रह जायेंगे। क्या कालेज में मन लगेगा? दो साल तक ऐसा ही करना होगा। इसी विचार में खोयी थी कि भोजन करते समय चीनी आया और तुतलाते हुए पूछने लगा, "माँ हमको छोड़कर तू अकेली कहाँ जा रही है?'

तेरी माँ मैसूर में कालेज पढ़ने जा रही है बेटे! परोसती हुई भागीरतम्मा ने कहा।

'कालेज क्या जा रही है? बालक का दूसरा प्रश्न था। कात्यायनी उत्तर न दे पायी। पौने नौ बजे वासंती शास्त्रियजी के घर आयी। कात्यायनी सास ससुर के चरण स्पर्श कर जाने लगी तो चीनी मचल उठा 'माँ, तुम मत जाओ, नहीं तो मुझे भी ले चलो' और उसने आकर पकड़ लिया। शास्त्रियजी ने बच्चे को गोद में उठा लिया और उसे समझाने लगे, 'बेटे, माँ शाम को आ जायेगी, तू घर में ही रह।' 'अच्छा, जल्दी घर आना' बच्चे ने कहा।

दुविधा में पड़ी कात्यायनी वासंती के साथ स्टेशन पहुँची। घर से

केवल पाँच मिनट के फासले पर स्टेशन है। गाडी मे महिलाओ के डिब्बे म बैठी कि उसकी आँखें भर आयी। वासती ने सान्त्वना दी। गाडी धीरे-धीरे चलने लगी तो कात्यायनी को महसूस हुआ कि गाडी उसे कही ले जा रही है। शाम को साढे छह बजे इसी गाडी से घर लौटना है यह उसे याद ही नही रहा। चामराजनगर मसूर के बीच छोटी रेल धीमी गति से चल रही थी। ज्येष्ठ की वारिश शुरू ही हुई थी। कपिला कुछ भरी थी। जब *गाडी नदी के पुल पर आयी तो पूव दिशा की ओर बह रही कपिला के* दोना किनारा पर उसकी नजर पडी। आधे मील पर श्रीकण्ठेश्वर मदिर *अचल खडा था। उस मदिर के बायी ओर कतार म सीढीदार स्नान घाट* हैं। इन्ही स्नान घाटा पर दो साल पहले उसके सिंदूर का स्वामी उसके जीवन को शून्य बनाकर जा चुका था। तब भी ज्येष्ठ मास ही था। उस साल बारिश जल्दी शुरू हो गई थी इसलिए नदी म आज की अपेक्षा अधिक प्रवाह था।

गाडी आगे बढी। वासती कात्यायनी से बात करने लगी। वे दोनों सहेलियाँ तो नही थी फिर भी थोडा परिचय अवश्य था। इस साल भर के सह-यात्रा म उनका परिचय स्नेह म बदल गया। वासती ने बात-चीत के दौरान इस बात की सावधानी बरती कि कात्यायनी के कोमल भावा को ठेस न पहुँचे। पूछा— आप ऐच्छिक विषया म क्या ले रही है?'

'इतिहास, इग्लिश और सस्कृत।

'इन्ही विषया को क्या चुना?

कात्यायनी चुप रही। उसका पति इन्ही विषया को सीखना था। घर मे उनकी सारी किताबें पडी थी। किताबो की सुविधा के कारण ही उसने *ये विषय नही चुने थे। कुछ क्षण बाद बोली—* हम कोई भी विषय लें, उससे क्या होता है? चार दिन आना है। पास हो या फेल कोई फक नही पडता।

चामुडी पवत दूर से ही दिखाई दे रहा था। अचल खडे बादला से बातें करते उस पवत के प्रति, कात्यायनी का एक *अव्यक्त आकषण था।* पति के साथ वहा दो बार हो आयी थी। उस ऊचाई से चारो ओर के गाव तालाब आदि का अवलोकन किया था। वास्तव म पवत की ऊँचाई और

स्थय ही उसके आकर्षण के कारण थे। लेकिन अब ज्येष्ठ के बादलों ने उसे घेर लिया था। उस मेघावरण में पर्वत का स्वयं स्पष्ट नहीं दिखाई दे रहा था। वह खिड़की से बाहर की ओर देख रही थी। पर्वत अपना स्थान बदल रहा था—पहले वह गाड़ी के दाहिनी ओर था अब एकदम सामने आ गया। इतने में गाड़ी रुकी। यह दक्षिण मसूर का स्टेशन है।

और पाँच मिनट में चामराजपुर स्टेशन आ गया। दोनों उतरीं और कालेज की ओर चलीं। नंजनगूडु के और भी अनेक विद्यार्थी उतरे। कालेज के लेडीज कामनरूम' में प्रवेश करते ही वासती ने पूछा—' तुम किसी से मिलना चाहती हो ?

"डॉ० सदाशिवराव जी से।"

"अच्छा, उनसे ? उन्हें सब जानते हैं। लेकिन बहुत ही कम लोगों ने उन्हें देखा है। सच कहूँ तो मैंने भी नहीं देखा।"

' लाइब्रेरी में उनका एक कमरा है।'

आओ लाइब्रेरी में ले चलती हूँ। तुम उनसे मिल लो। लेकिन शाम को पाँच बजे तक लेडीज रूम में अवश्य आ जाना। साढ़े पाँच बजे चामराजपुर स्टेशन पर गाड़ी आ जाती है।' डॉ० राव के कमरे के पास कात्यायनी को छोड़कर वासती लौट आयी।

चपरासी ने दरवाजा बताया। 'फ्लश डोर' धीरे से खोलकर कात्यायनी भीतर गई। डा० राव मेज के पास कुर्सी पर बैठे गंभीरतापूर्वक कुछ लिख रहे थे। उनके सामने बैठी थी सफेद साड़ी पहनी लगभग पच्चीस वर्ष की साँवली लड़की। वह शीघ्र लिपि में नोटबुक में लिखती जा रही थी। बीच-बीच में डा० राव मेज पर फैले कागजों को देखते जाते थे। सारा कमरा पुस्तकों से भरा पड़ा था। कात्यायनी करीब दस मिनट अंदर खड़ी रही लेकिन किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। वह लौट जाना चाहती थी लेकिन ऐसा करना उचित न समझ, वहीं खड़ी रही। पाँच मिनट बाद डा० राव एक कागज को गौर से देखने लगे तो युवती को कुछ राहत मिली। उसने सिर उठाया और दृष्टि कात्यायनी पर पड़ी। उसने डा० राव से अंग्रेजी में कहा—' देखिए कोई आया है।"

डा० राव ने द्वार की ओर देखा। एकाध मिनट आगंतुक को **पहचान**

नहीं सब। चश्मा उतारकर उन्होंने कात्यायनी को देखा। मंत्रमुग्ध कात्यायनी ने सिर झुका लिया। एक मिनट बाद कुर्सी से उठकर उन्होंने कहा, आओ, आओ! आज चौबीस तारीख है न? आये कितनी देर हुई? बिना आवाज दिये गुमसुम खड़ी रही तो खड़ी ही रहोगी और मैं अपने काम में लगा रह जाऊंगा। यहां आओ।

इतने में उस युवती ने कात्यायनी के लिए एक कुर्सी सरका दी। कात्यायनी बैठ गई। डा० राव ने परिचय कराया — ये हैं करुण रत्न। सिंहल की हैं। कैम्ब्रिज से एम०ए० किया है। अब यहां शोधछात्रा है। और फिर कात्यायनी की ओर इशारा करके कहा — मेरे गुरु श्रीनिवास श्रोत्रियजी हैं न, उनकी बहू है। हमारे कालेज में भरती होना चाहती है।

दोनों ने एक दूसरे को नमस्कार किया। डा० राव ने कात्यायनी से पूछा — क्या है एप्लीकेशन फार्म? मुझे दे दो। उसे देखकर कहने लगे, इतिहास, संस्कृत, इंग्लिश — ये ही विषय तो नंजुड श्रोत्रिय भी पढ़ रहा था। ऐसे अच्छे शिष्य को बचा रखने का भाग्य मुझे न मिला। मैं अब बी० ए० को नहीं पढ़ाता। इतिहास पढ़ाने वाला होनय्या मेरा ही विद्यार्थी है। ऐच्छिक इंग्लिश मेरा भाई ही पढ़ाता है। शायद नरसिंह शास्त्री संस्कृत पढ़ाते हैं! कहकर उन्होंने घंटी दबायी। चपरासी भीतर आया। उससे कहा — कालेज जाकर राजाराव को बुला लाओ! और फिर कात्यायनी की ओर मुड़कर पूछा — तुम रोज सुबह घर से कितने बजे निकलोगी?

पौने नौ बजे!

पौने नौ? और घर पहुंचते पहुंचते शाम के छह सात बज जायेंगे। हमारा घर यहां चामराजपुर में है। रोज डेढ़ बजे विश्राम के समय जल्दी घर जाकर भोजन कर लिया करो।

नहीं, नंजनगूडु से अन्य लड़कियां भी आती हैं। मैं भोजन साथ लाऊंगी।

वह भी लाना। लेकिन वह मुझे दे दिया करो और तुम घर पर ही भोजन करो, कहकर उन्होंने जोर से हंस पड़े। संकोच न करो। यह भी तुम्हारा ही घर है न?

डा० राव की हँसी का कारण रत्न समझ न पायी। उन दोनों की बातों में कुछ अंग्रेजी वाक्य और संस्कृत शब्दों के अलावा वह कुछ न समझ सकी। डा० राव ने स्वयं हँसी का कारण समझाया। इतने में राज आ गया। कात्यायनी का उसका परिचय देकर उन्होंने राज से पूछा—'नगुड आत्रिम को तुम जानते थे न?'

जानता था। हम दोनों सहपाठी थे। तसीनियर बी० ए० में इंग्लिश पन्त थे। द्वितीय वर्ष आनर्स में मैंने उनसे पद्य भी पढ़ाया था।'

ठीक है। कात्यायनी से कहा—'अपना एप्लीकेशन फार्म फीस के पैसे आदि इन्हें दे दो। पढ़ाई का प्रारम्भ होगा इसकी सूचना पत्र द्वारा यह तुमको दे देगा। तुम्हें कष्ट उठाने की कोई जरूरत नहीं। अब इसके साथ घर हो आओ।

नहीं। मैं ... कहकर सवाल में कुछ कहना चाहती थी कि डॉ० राव ने कहा— तुम कभी हमारे घर नहीं आयी। कम से कम घर तो देखोगी या नहीं? अब शाम को ही गाड़ी मिलेगी।

कात्यायनी ने अपना फार्म और फीस राज को दे दिये। उसने वहीं से निकलने के पहले उसने राज से पूछा— 'इस साल आप कौन-सा नाटक खेलेंगे?

चंद्रगुप्त मौर्य। उसे ऐसा प्रस्तुत कराऊँगा कि सारे इतिहासकार झूठा कहकर गालियाँ देंगे। और हँसता हुआ चला गया। कात्यायनी भी चली गयी। डा० राव की दृष्टि पुनः नाटक में गड़ गयी।

कात्यायनी सकुचाती हुई चल रही थी। राज उसके बारे में अपने भाई से सुन चुका था। उसका संकोच दूर करने के उद्देश्य से राज ने पूछा— आपने कौन-से विषय लिये हैं?

हिस्ट्री, इंग्लिश, संस्कृत।"

चयन बड़ा सुन्दर है। हिस्ट्री मेरा भी विषय है। शेष दो, साहित्य है। शायद आपको साहित्य में काफी लगाव है।'

उसने कोई उत्तर नहीं दिया। राज ने पुनः पूछा—'आपने कहानी, उपन्यास काफी पढ़े होंगे?'

सकुचाती हुई बोली— थोड़े।

थोड़ा थोड़ा पढ़ने से ही बहुत हो जाता है। अब तो कालेज आयेंगी

न ? लाइब्रेरी से किताबें लेकर पढ़िए। कन्नड के समस्त उपन्यास पढ़ लिये हैं ?

दो वर्ष पहले पढ़ती थी—अब नहीं।

इतने में घर आ गया। श्रोत्रियजी के घर के बारे में नागलक्ष्मी जानती थी। राज ने परिचय दिया तो कात्यायनी के प्रति नागलक्ष्मी के मन में विशेष अनुकंपा जाग उठी। वह मनस्ताप अनुभव कर रही थी कि राज ने कात्यायनी से पूछा— आप सुबह कितने बजे घर से निकली हैं ?

पौने नौ बजे।

'तो अब खाना खाइए। भाभी परोसेंगी।

नागलक्ष्मी ने जो पहले खाने के लिए कुछ बनाना चाहती थी राज की बात सुनने के बाद कात्यायनी को भोजन के लिए विवश किया। निरुपाय होकर कात्यायनी को भोजन करना ही पड़ा। राज ने कहा— हर रोज दोपहर का खाना यहीं खाकर जाइये। घर तो पास ही है।

दोनों भाइयों से एक ही तरह की बात सुनकर कात्यायनी को आश्चर्य हुआ। वह जान गयी कि उनकी सज्जनता ही इसका कारण है। नागलक्ष्मी कात्यायनी दोनों भीतर बैठकर बड़ी देर तक बातें करती रहीं। दोनों परस्पर आत्मीय बन बैठीं। अंत में कात्यायनी कालेज जाने के लिए निकली तो नागलक्ष्मी ने कहा— दोपहर का भोजन रोज यहीं करना। जब कभी सुविधा हो, आकर थोड़ा बहुत अवश्य खा पी जाना। यह भी तुम्हारा ही घर है।

राज कालेज को चला। उसने कहा— चलिए आपको कालेज तक पहुँचा दूँ। मुझे भी नाटक का रिहर्सल कराने जाना है।'

डा० राव राज और नागलक्ष्मी के हार्दिक स्नेह से कात्यायनी का मन हलका हो उठा। सुबह घर से निकलते समय मन में जो संकोच था अब दूर हो चला। लौटते समय राज के साथ संकोच भी घट गया था। फिर भी उसने राज से किसी तरह की बात नहीं की। उसे लेडीज़ रूम के पास छोड़कर राज लौटा तो वह भीतर जाकर अकेली बैठी रही। वहाँ सात-आठ अपरिचित लड़कियों के अलावा कोई नहीं था। वासंती अभी नहीं आई थी। जल्दी घर पहुँचने के लिए उसका मन व्याकुल हो रहा था। वासन्ती के कमरे के द्वार तक दो तीन बार आकर देखा।

वह नहीं आई थी। अभी तो सिर्फ दो बजे हैं। शाम के पाँच बजे तक आ ही जाएगी, यह सोचकर वह एक आरामकुर्सी पर बैठ गई। स्वर्गीय पति की स्मृति से मन भर आया। जब वे रोज कालेज आते थे, तो आराम वहीं करते होंगे, घर पहुँचने के लिए मेरी तरह कितने आतुर रहते होंगे, आदि कल्पनाओं में डूबी हुई थी कि कामिनी आ पहुँची।

७

रत्ने मसूर आयी तब से डा० राव के लेखन-कार्य की गति तीव्र हो गयी है। ग्रंथ का हर अध्याय लिखने से पहले वे रत्न को सुनाते। वह आस्था और तन्मयता से सुनती। शंका होती तो प्रश्न करती। "तुम्हारे प्रश्न बड़े अच्छे होते हैं। इनकी प्रासंगिक चर्चा ग्रंथ में भी कर देनी चाहिए।" कह कर डा० राव उन स्थानों पर निशान लगा देते। उपलब्ध विषयों के ग्रंथ, संदर्भ ग्रंथों आदि कार्यों में वह अच्छा सहयोग देती। कई बार नोट सम्मुख रखकर ही लिखवाते। वह शीघ्रलिपि में लिखती, फिर होस्टल से टाइप करके लाती। लिखवाते समय डॉ० राव से जो कसर रह जाती रत्न उसे स्वयं समझकर ठीक कर लेती। विचार विमर्श की गंभीरता में भाषा को ललित बना देती। डॉ० राव का नया टाइपराइटर उसके पास होस्टल में ही है।

शोध छात्रा होने के नाते और फिर डॉ० राव की सिफारिश के कारण रत्न को लेडीज होस्टल में एक कमरा मिल गया। उसने होस्टल के भोजन के अनुकूल कुछ पथ्य का प्रबंध भी कर लिया। सुबह के नाश्ते के लिए थोड़ा दूध की अलग से व्यवस्था कर ली। सुबह दस बजे भोजन के बाद वह भी पुस्तकालय चली जाती। पढ़ती और नोट लिखती। फिर डा० राव का काम करके शाम को सात बजे तक होस्टल लौटती। मध्याह्न का अल्पाहार डॉ० राव के साथ पुस्तकालय में ही होता था। रात में अपनी 'थीसिस' के लिए लिखती। यहाँ आने से पहले ही इसके लिए उसने काफी

सामग्री जुटा ली थी। संगृहीत सामग्री को विस्तृत रूप में प्रस्तुत करने में वह असमर्थ थी। एक दो महीने डा० राव के सान्निध्य में रहकर इस लेखन कार्य की पद्धति समझ में आ गयी। और लिखना उसके लिए क्या कठिन नहीं रहा। इसलिए अपने कार्य को अपना अपने मार्गदर्शक के ग्रंथ की रचना में निष्ठापूर्वक सहयोग देने में उसे गौरव और सौभाग्य जैसा लगने लगा।

प्रथम जिल्द का लेखन-कार्य प्रारंभ करने के बाद डा० राव दूसरा सब कुछ भूल गये। रात को आठ बजे घर लौटते। ग्रंथ के अतिरिक्त उन्हें और कुछ न सूझता। कोई कुछ पूछता तो अनसुना कर जाते। किसी और बात की न आवश्यकता लगती न संभावना।

लेखन कार्य कहाँ तक पहुँच गया भया? कभी-कभी राज प्रश्न कर बैठता।

प्रथम खण्ड आधा हो गया है।

पूरा होने में और कितने दिन लगेंगे?

लगभग छह महीने में पहली प्रति तैयार हो जायगी।

बस बातचीत यहीं रुक जाती। राज को न अधिक पूछने की उत्सुकता है और न इस संबंध का उसे कोई ज्ञान ही। उसका मन तो अपने किसी नाटक अथवा पाठ्येतर कार्यक्रमों में ही चक्कर काटा करता। घर आने पर भाभी से इधर उधर की बातें करता और पृथ्वी के साथ खेलता। बात किये बिना चुपचाप बैठना उसके स्वभाव के विपरीत था।

एक दिन डा० राव रात के आठ बजे घर आये। राज अभी नहीं आया था। पृथ्वी अपनी मां से जिद करके रो रहा था। राज शाम को राज उसे साइकिल पर बाहर ले जाता लेकिन आज वह नाटक में व्यस्त रहने के कारण अब तक नहीं लौटा था। पृथ्वी पिता को देखते ही परेशान करने लगा कि उसे आज वे ही घुमाने ले जायें। "न यहां आओ" कहकर राज की तरह आरामकुर्सी पर बैठ गये। बालक ने जिद न छोड़ी। 'मुझे साइकिल पर बैठाकर ले चलो' कहते हुए वह उनकी कमीज पकड़कर रोने लगा। और वे केवल थक हारे नहीं थे बालक को समझाने के लिए उपयुक्त शब्द भी नहीं ढूंढ पा रहे थे। समस्त भारत के सांस्कृतिक इतिहास के निर्माण में लगी उनकी बुद्धि बेटे को मनाने के लिए शब्द नहीं ढूंढ पा रही

जरा शीशे मे स्वय को देखिए तो सही ! दिन-ब दिन किस तरह सूखते जा रहे हैं !"

'मगर मेरी पुस्तक का आकार बढता जा रहा है न ?" डा० राव हँस पडे ।

"पुस्तक पुस्तक ! पत्नी नही चाहिए बेटा नही चाहिए । स्वय अपनी भी चिन्ता नही ! केवल पुस्तक का पागलपन ! मेरे मरने पर शायद आपको अक्ल आयेगी !

'क्यो निरथक अशुभ बोले जा रही हो ?

'तो क्या करू ? मेरी टीस को आप क्या जानें ! सप्ताह मे किसी दिन एक घडी भी मुझस बोलने का समय मिला आपको ? कभी घुमाने ले गय ? आपको मेरी जरूरत नही है तो मै क्यो रहूँ ? कहते कहते उसकी आखें भर आयी । डा० राव का मन पिघला, उठो टहल आएँ और खडे हो गय । साढे आठ बज गय है अब तो राज आता ही होगा वह यह कह ही रही थी कि फाटक के पास साइकिल की आवाज सुनाई पडी । वह कहने लगी कल उठत ही तेल मलकर स्नान करना न भूलें ।

'कल नही । अभी बहुत लिखने को पडा है । इतन मे राज भीतर आ पहुँचा । पृथ्वी चाचा की प्रतीक्षा म ही था । दौडकर साइकिल के पडल पर चढ गया ।

दूसरे दिन सुबह दस बजे लाइब्रेरी के कमरे म डा० राव रत्ने को लिखा रहे थ । पाँच मिनट लिखने के बाद रत्ने ने कहा सर लगता है आज आप 'मूड म नही है ।

क्या ?'

विषय निरूपण म क्रमबद्धता नही लगती ।

'कोई बात नही आग लिखो ।

पाच मिनट बाद रत्ने पुन कहने लगी सर सचमुच आप मूड म नही हैं । बार-बार गलती हो रही है । एक बार पुराणा के बदले कालिदास के नाटक' कह गय और एक बार प्राचीन भारत की सस्कृति के बदले बेबिलोन की नागरिकता कह गये ।

अच्छा !

'आपने जो लिखाया क्या उसे एक बार पढ़कर सुनाऊँ ?"

'नहीं आज रहने दो। तुम ठीक कहती हो।' डॉ० राव आराम-कुर्सी से पीठ टिकाकर कहने लगे— आज तुम अपना अध्ययन करो। आज मुझसे कुछ न होगा।"

रत्न बाहर आयी और अध्ययन के लिए आवश्यक ग्रंथ देखने लगी। डा० राव आरामकुर्सी पर शांत बैठे रहे। नागलक्ष्मी की कल रात की बातों में उनका मन विचलित हो उठा है। 'मेरे मरने पर आपको अक्ल आयेगी'—नागलक्ष्मी का यह वाक्य अब भी उनके कानों में गूँज रहा है। सोचने लगे कभी इतने कठोर वचन न बोलने वाली नागलक्ष्मी कल ऐसी तीखी बात कैसे कह गयी ! इसका उत्तर भी मिला। उन्होंने भी कई बार सोचा कि जहाँ तक हो सके, समय निकालकर पत्नी से बातें करनी चाहिए। लेकिन उनकी समस्त संकल्प शक्ति को उस बृहत् ग्रंथ ने जकड़ रखा था ! समय भी कहाँ है ? ग्रंथ निर्माण और उनका जीवन दोनों में कोई अंतर ही नहीं रहा था। निद्रा आहार सब-कुछ उनके इस ग्रंथजीवन के बाह्य रूप बन चुके थे। लगा ग्रंथ को भुलाकर दिन में आधा घण्टा भी पत्नी के साथ बातचीत में बिताने में उतनी ही यातना का अनुभव होता जितनी कुछ खोकर नया जीवन प्रारम्भ करने में।

आध घण्टे बाद रत्ने किताबें लेकर लौटी। डॉ० राव को देखकर बोली— 'सर आप शून्य मुद्रा में बैठे हैं। आपको एकाध दिन के आराम की आवश्यकता है। आप बहुत परिश्रम कर रहे हैं। मानव मस्तिष्क यंत्र तो नहीं है ! आप घर जाइए।'

रत्न की सान्त्वना डॉ० राव को अच्छा लगी। उन्होंने पूछा—"तुम क्या कर रही हो ?

रत्न रात कुछ लिखा था, उसे जाँचूँगी।'

'चलो कहीं घूम आयें।"

क्षण भर सोचकर वह बोली—"यह मारत है !"

'तो क्या हुआ ? चलें, शायद वृन्दावन के लिए बारह बजे एक गाड़ी है। शाम को लौट आयेंगे। मैं भी काम करने के मूड में नहीं हूँ।

कमरा बंद करके दोनों निकल पड़े। कालेज के आँगन के बाहर बाय-सराय मार्ग में ताँगा लेकर स्टेशन पहुँचे। झटन ट्रेन में द्वितीय श्रेणी—

नहीं थी। तृतीय श्रेणी म ही वठ गये। गाडी चली तो रत्न वोली "व दा-वन देखन की इच्छा थी। लेकिन कभी छुट्टी ही नहा मिली। आपका मूड बिगडा और आज देखने का अवसर मिल गया।

गाडी धीमी चल रही थी। क नबाडी स्टेशन पहुँचत-पहुँचत मध्याह्न का पौन बज गया। दोना उतरे और होटल म गय। नाश्ता किया। कुछ समय टहलने के बाद फ नवाने उद्यान के उस पार वक्षा की छाया म वे वठ गये। डा० राव का मन अध्ययन-जगत म बाहर घूम रहा था। हर रोज पुस्तकालय म ऊब जाने पर अपन कमरे म वठनेवाले आज खुने मदान म शीतल छाया म वठ है। पास ही वहत हुए पानी की आवाज तबूर क तारा से झकृत ध्वनि-सी सुनाई दे रही है। पक्षी काफी ऊँचाइ पर आकाश म उड रह हैं। मौन भग करते हुए रत्न स पूछा— अव एक वप मे तुम्हारा शोध-काय समाप्त हो जायेगा और डॉक्टरेट भी मिल जायेगी। तत्पश्चात सिहल लौटकर क्या करोगी ?

यह मेरे लिए समस्या है।

'शोध-काय आगे बढाओ। इसका यही एक उपाय है। एक विषय का शोध-काय दूसरे विषय या उसी विषय के लक्ष्य बिदु की आर ल जाता है। वह निरतर बढ़ता है। यह शोध शक्ति और अभिरुचि पर निभर है।

मैं नही समझती कि वयक्तिक रूप से अकेली शोध काय कर सकूगी।

एसा कभी नही सोचना चाहिए। अब भी तुम डाक्टरेट के लिए जो काय कर रही हो उसस तुम्हे शोध-काय की प्रेरणा मिलगी। वास्तविक काय तो अब होना है। फिर कुछ साचते हुए स बोल— या उपाधि पाने के पश्चात स्वदेश लौटकर शादी करके सुखमय जीवन बिता सको ता भी अच्छा है। एसी ही प्रवत्ति का पति मिल जाए ता दोना मिलकर शोध-काय का आग बढाओ।

रत्ने कुछ देर रुकी फिर धीरे से नि श्वास छोडा। डा० राव न सिर उठाकर रत्न को देखकर पूछा— क्या शादी म तुम्हारा विश्वास नही है क्या ?

है।

तो फिर ?'

रत्न न कोई उत्तर नही दिया। वात वदलकर डा० राव न पूछा—"इतिहास के प्रति रुचि रखकर शोध-काय करन की अभिलाषा तुममे कब जागी ? तुम्हारे परिवार मे किसी ने यह काय किया है जो तुम्हारे लिए प्रेरक वना ?

रत्न निस्सकोच होकर कहने लगी—'परिवार म अध्ययन के क्षेत्र म इतना आग बढनेवाला म मैं ही हूँ। पितामह के समय से ही व्यापार हमारा व्यवसाय रहा है। उससे पहले हम सिंहल स्थित पेलपोला के किसान थे। मैंने भी वह गाँव देखा है। वहाँ हमारी रवर और मिर्चों की वाडियाँ है। लेकिन व्यापार ही हमारे परिवार का मुख्य धधा वन गया है। मर भाई न वी० ए० शहर म किया। मैंने भी वहा से वी० ए० किया। उच्च शिक्षा के लिए कोलम्वो जाकर एम० ए० किया। तभी स मुझमे अध्ययन के प्रति अभिरुचि जागी। डिसिल्वा हमारे प्राध्यापक थ। सदा अध्ययन रत। लेकिन शोध प्रवृत्ति नही थी। मैं उनकी छात्रा थी। पढने का भूत मुझ पर तभी सवार हो गया था। परीक्षा की दष्टि स अध्ययन करना छोड जो भी ग्रथ मिलता, मैं पढती। मैंन बौद्ध धम की उत्पत्ति और विकास सबधी अध्ययन तभी किया था। हमार परिवार के सदस्य बौद्ध हैं कितु उस धम के बारे म कोई कुछ नही जानता था। सिंहल स्थित समस्त बौद्ध स्थानो पर मैं गयी। उनसे सबधित अनक ग्रथ पढे और नोट लेती रही। एम० ए० के लिए अध्ययन करते सामय मैं सस्कृत, प्राकृत का अध्ययन करती थी। इस भाषाओ के निकट परिचय के बिना बौद्ध धम को कौन समझ सकता है? खासकर भारत के इतिहास को कस जाना जा सकता है? तत्पश्चात कम्ब्रिज म पढन के लिए सरकारी छात्रवृत्ति मिली।

डा० राव उसकी वातें एकाग्र चित्त स सुनते रहे। रत्ने ने आग कहा— कम्ब्रिज म अध्ययन क्रम सीखा। लेकिन शोध विधान आपस ही सीखा। यदि आप न मिलत तो शायद मैं इस लेखन-काय को हाथ म न लेती। जब कभी शोध-काय के प्रति आपकी अनन्य निष्ठा देखती हूँ तो मेरा मन कल्पनातीत ऊँचाई पर उडने लगता है। मैं समझ ही नहीं पाती कि मेरा जीवन क्या है? मेरी आत्मा अपनी उत्कट

पहचानकर उसे उपलब्ध करने का प्रयास कब करेगी ? यहाँ आने के पश्चात आपने ही मुझे आत्मसम्मान कराया।

रत्ना से प्रशंसा के शब्द सुनकर डॉ० राव पुलकित हो उठे। आज तक किसी ने इतनी सहजता और मुक्तकंठ से उनकी ऐसी प्रशंसा नहीं की थी। उनके ग्रंथ को पढ़कर विद्वानों ने प्रशंसा-पत्र लिखे थे पत्रिकाओं में विद्वत्तापूर्ण समालोचनाएँ निकली थीं। लेकिन शिष्य भाव से किसी ने सामने ऐसी प्रशंसा नहीं की। कैम्ब्रिज में पढ़ी एक युवती से यह सब सुनकर डॉ० राव ने अद्भुत आनन्द का अनुभव किया लेकिन एक अव्यक्त लघु यातना से वे बोले— रत्ना विद्वानों और शोधकों का भाग भूतों के जीवन के समान है। सब सब कुछ भुलाकर अध्ययन में डूबे रहना पड़ता है। क्या स्त्री-सहज विवाहित जीवन की तुम पूर्णतः उपेक्षा कर सकती हो ?

प्रश्न सुनकर वह अवाक् रह गई। चमकदार आँखें झुक गई। तत्काल अपने को सँभालकर कुछ स्मरण करते हुए उत्तर दिया— मेरे विवाह का प्रश्न भी उठा था। मेरा भाई अपने व्यापार के अलावा एक पार्टनर के साथ नारियल का भी निर्यात करता है। दोनों समवयस्क हैं। भाई का सहपाठी होने के कारण वह घर आया था। उस समय मैं बीस वर्ष की थी और बी० ए० में पढ़ रही थी। वह बी० ए० करके व्यापार में लग गया था। एक दिन उस युवक ने मुझसे विवाह का प्रस्ताव किया। मैंने कुछ नहीं कहा। घरवालों ने सोचा लड़की शायद शरमा रही है। भाई को इस संबंध में बड़ी दिलचस्पी थी। उसका वह मित्र तो मेरे लिए पागल ही हो गया था। मैंने फौरन कोलम्बो जाकर एम० ए० करने की इच्छा प्रकट कर दी। विवाह के बदले मुझे और आगे पढ़ाना माता पिता को पसन्द न था। लेकिन मैंने जिद की। उन्हें मानना ही पड़ा। वह युवक यह सोचकर इंतजार करता रहा कि एम० ए० के बाद विवाह के लिए तैयार हो जाऊँगी। कोलम्बो से लौटने पर मुझे अपना आगे का मार्ग दीख पड़ने लगा। मेरा अध्ययनशील जीवन और व्यापारी पति का जीवन कभी एक पथ पर चल ही नहीं सकते—यह स्पष्टतः समझकर मैंने उसे लिख दिया कि वे मेरी प्रतीक्षा न करें। उसने पत्रोत्तर दिया तुम्हारे अध्ययन में बाधा नहीं पड़ेगी।

तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकता ।' फिर सोचा, हो सकता है कि मेरे अध्ययन में कोई बाधा न पड़े लेकिन आखिर हम किस समान क्षेत्र में मिलेंगे? अपने जीवन का जो लक्ष्य मैं निश्चित कर चुकी हूँ, उस मामले में वह शून्य है। उसके व्यापार धन दौलत के प्रति मुझे मोह नहीं है। दो विपरीत रुचियों के इस जीवन में क्या रखा है? अतः उस बात को मैंने महत्त्व नहीं दिया। हम दोनों की भलाई की दृष्टि से ही मैंने ऐसा किया। तत्पश्चात मैं कैम्ब्रिज में पढ़ने चली गई। दो वर्ष तक मेरी प्रतीक्षा करने के बाद उसने विवाह कर लिया।"

इतना कहकर रत्न चुप हो गयी। उस युवक के प्रस्ताव को अस्वीकार करते समय उसे मानसिक यन्त्रणा हुई थी। उसका मन डावाँडोल हुआ था। अध्ययन का पागलपन कितने दिन रहेगा? सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से प्रतिष्ठा प्राप्त सुन्दर युवक की प्रणय भिक्षा ठुकराना अविवेक नहीं तो और क्या है? प्रेमपूर्ण साम्राज्य में जहाँ दोनों का मिलन होगा, वहाँ अध्ययन की अभिलाषा दोनों को अलग कैसे रखेगी? गृहिणी जीवन और अध्ययन-जीवन इन दोनों में समन्वय लाना क्या असंभव है?" ऐसे अनेक प्रश्न उसके निर्णय को झकझोर रहे थे। अन्ततः उसने यही निर्णय लिया। दो वर्ष बाद युवक के विवाह की खबर सुनकर अनजाने ही दो अश्रु बिन्दु टपक पड़े थे। अपने आपको सँभालकर उसने भाई के साथ विवाह में उपस्थित रहकर शुभ कामनाएँ प्रकट की थीं।

लेकिन डा० राव पर उसने मन की इस भावना को प्रकट नहीं किया। लगभग आधे घण्टे तक किसी ने बात नहीं की। रत्न के निर्णय पर डा० राव सोचने लगे। उसने विवाह के पूर्व ही अपना जीवन-लक्ष्य निर्धारित कर लिया। लेकिन डॉ० राव के जीवन में ऐसा नहीं हुआ। विवाह के समय तक वे अपने जीवन का उद्देश्य समझ चुके थे। लेकिन उस उद्देश्य और अपने गृहस्थ जीवन के उद्देश्य के बीच जो समन्वय होना चाहिए इस बारे में उन्होंने कभी सोचा ही नहीं। उनका विवाह तब हुआ था जब वे पढ़ाई की दृष्टि से प्रौढ़ थे लेकिन वैवाहिक जीवन ज्ञान की दृष्टि से वे आज भी शैशवावस्था में थे। इसी विचार में वे तल्लीन हो गये।

रत्न ने एक-दो बार बोलने की कोशिश की, लेकिन चुप रह गई। यह देख डॉ० राव बोले— तुम शायद कुछ कहना ...।"

कुछ नही !

सकोच न करो ।'

"कुछ नही कहकर वह पुन चुप हो गयी। लेकिन कुछ क्षण बाद प्रश्न किया— आपका व्यक्तिगत जीवन ?'

मरे पास वयक्तिक नाम की कोइ चीज नही है। आखिर क्या जानना चाहती हो ?'

"आप सदा अध्ययन रत रहत हैं। आपकी पत्नी पढी लिखा नही है। आप दोना के बीच प्रेम भाव रहता है या नही '

यह क्या पूछ रही हो ?' आवाज म नाध नही है यह जानकर रत्न ने कहा— या ही ! अपने भाई के मित्र क प्रस्ताव को ठुकराना उचित था या नही इस आपके उदाहरण से जानना चाहती हूँ।

डा० राव हँस दिये। फिर कहन लगे— इस विषय म शिष्या ही गुरु से अधिक विवकी है।

वह कसे ?

अनजाने ही डा० राव अपनी विवाह सबधी बात बतान लग। रत्न ध्यान स सुनने लगी।

मैं माता पिता के स्वगवास के पश्चात मामा के यहाँ रहन लगा। तब बारह साल का था। पढन म शाला म प्रथम स्थान पाता रहा और लोअर सकेंडरी परीक्षा म प्रथम श्रणी म उत्तीण हुआ। मसूर क तातय्या अनाथालय म आश्रय मिला। मरिमल्लप्प हाइस्कूल म भर्ती हो गया। हाइस्कूल म तातय्या स्वय पढात थ। व अपन पुस्तकालय स मकाल जानसन आदि इतिहासकारा के लख पढन दते। मैं बी० ए० करन क पूव ही अपन विषय का महत्त्व समझ गया था। एम० ए० म मुख्य विषय क रूप म इतिहास ही लिया। अच्छे अका म उत्तीण होने पर उसी कॉलेज म लेक्चरार की नौकरी मिल गयी।

नागलक्ष्मी मेरे मामा की इकलौती बेटी है। उस समय वह तरह वप की थी और मैं तईस का। मामा न अपनी लडकी नागु का विवाह मुझस करन का प्रस्ताव रखा। मैं इनकार न कर सका। लडकी ऊची हृष्ट पुष्ट एव सुदर थी। लम्बे बाल और देखन म सुलक्षणा। गह-कार्यों म भी कुशल। मैंने अपने विवाह अथवा होनेवाली पत्नी के बारे

मे कभी सोचा भी नही था। मेरी धारणा केवल इतनी थी कि अध्ययन पूर्ण हो जाने के बाद विवाह करना जीवन का एक कर्तव्य है। विद्यार्थी-जीवन में मेरी कक्षाओं में छात्राएँ अधिक नही थी। मैंने अपनी कक्षा की छात्राओं से कभी बात नही की थी। अपने प्राध्यापकों द्वारा बताये ग्रथो को पढ़ता, नोट लिखता और विषय का मनन करता रहता था।

'मामा के प्रस्ताव के बाद जब पहली बार मैं गाँव गया तो नाग लक्ष्मी अपने आपको छिपाती रही। लेकिन मैं भी उसी घर में पला था, अत मुझे घर के हर कोने मे जाने की आजादी थी। वह मोगरे के फूलों से गुँथी वेणी की सुगध चारों ओर फैलती रहती और काम करते समय काँच की चूड़ियों की झकार मन को झकृत कर देती। ऐसी स्थिति में मैं मामा के प्रस्ताव को अस्वीकार न कर सका।

विवाह के बाद मैं मैसूर में ही बस गया। नागलक्ष्मी राज के साथ घर आया। राज कुणिगल हाईस्कूल में दो साल पढ़ चुका था। विवाहित जीवन के प्रारभिक दिनों में मैंने अपनी पत्नी को कभी दूर नही रहने दिया। मेरे प्राध्यापक मुझे डाक्टरेट के लिए प्रेरित करते रहे। विवाह के पूर्व से ही मैं काफी अध्ययन करता रहा हूँ। दो वर्ष बाद प्राध्यापक सेवा निवृत्त होने वाले थे। अत इससे पहले शोध प्रबंध पूर्ण कर लेना चाहिए था। घर के सारे काम-काज राज ही देखता था। मुझे कभी आर्थिक समस्याओं में भी नही उलझना पड़ा, क्योंकि पत्नी बड़ी मितव्ययिता से कुशलतापूर्वक घर-खर्च चलाती थी। मुझे और चाहिए भी क्या था। मैं शोध-कार्य में लग गया और दो वर्ष में डाक्टर सदाशिव राव बन गया। सेवा निवृत्त होने से पहले प्राध्यापक ने कहा था—केवल डाक्टरेट की उपाधि से ही सतुष्ट हो जाना विश्वविद्यालय के प्राध्यापक के लिए काफी नही है। अपना समस्त जीवन शोध कार्य मे लगा देने वाला ही प्राध्यापक है। तुम दूसरा ग्रथ लिखना प्रारभ कर दो।' इस बीच मेरा शोध ग्रथ प्रकाशित हो चुका था। ग्रथ रचना से प्राप्त यश ने मुझे इस ओर आगे बढ़ने को प्रेरित किया। मैं एक और ग्रथ की रचना में लग गया। पाँच साल निरतर काम किया और सफलता मिली। इन नौ वर्षों की अवधि में पृथ्वी जन्मा। लेकिन मेरा जीवनध्येय, जीवन क्रम एवं मानसिक स्थितियाँ **काफी बदल** चुकी

थी। घर-गहस्थी राज और नागलक्ष्मी के जिम्मे थी और अब तो मैं पूणत इतिहास शोध म लग गया हूँ।

अपन विवाहित जीवन का विवरण देत हुए डा० राव न आगे कहा—'विवाह के बाद दो चार दिन कोई भी स्त्री-पुरुष अपनी पत्नी या पति के प्रति आकर्षित रहता ही है। बस मुझ जसा को तो आजीवन एकाकी रहना चाहिए।

अपने गुरु की बातें अत्यत ध्यानपूवक और सहानुभूति स सुनने के बाद रत्ने बोली— यह अनिवाय नही है। कम्ब्रिज म मैंने देखा है मरे प्रोफेसर की पत्नी अपन पति के बौद्धिक जीवन म काफी सहयोग देती थी। मैं अब जो काय आपके लिए कर रही हू य सब वह अपने पति के लिए करती थी। वाक्य के उत्तराद्ध को यद्यपि वह बिना किसी पूव विचार के कह गई थी किन्तु बाद म उसन सकोचवश सिर झुका लिया। परतु डा० राव न इस ओर ध्यान नही दिया।

डा० राव न कहा— यह मुझ अकेन का प्रश्न नही है। यह भारत के लिए *सधिकाल है। माता पिता द्वारा निश्चित विवाह पूवकाल मे* उपयुक्त था। समाज के परम्परागत धधा मे उसी समाज की कन्या पति के काय म हाथ बँटा सकती थी। अब धधा कुल पर आधारित नही रहा। अब तो व्यक्ति की अभिरुचि उसकी वत्ति का निर्धारित करती है। लकिन इच्छानुसार विवाह करने का अवसर अब भी समाज दे नही पा रहा है। इस सधिकाल म विषम विवाह होना असभव नहा है। साथ ही विवाह सबधी स्वतत्र विचार की प्रवत्ति अभी जागी ही नहा है।

रत्न न पूछा— प्राचीन भारत म विवाह की कल्पना वतमान से भिन्न थी न?

"प्राचीन भारत म यह धारणा थी कि विवाह गहस्थ धम क लिए वशोद्धार के लिए है। प्रथम दृष्टिकोण अब भी थोडा बचा ह लकिन द्वितीय अश प्रमुख नही रहा। वशोद्धार की कल्पना अपना महत्त्व खो रही है। मेरा भी एक पुत्र है। मैं नही जानता कि वह मेरे नाम का रोशन करेगा या नही। लेकिन मरी यह अदम्य इच्छा है कि यह ग्रथ मरा शिशु बनकर मेरी इच्छा शक्ति बुद्धि शक्ति एव समस्त जीवन के रक्त मास के साथ चिरजीवी बन जाय। मेरी पत्नी जिसने शास्त्रोक्त रीति स मरा

ज्ञाय पकडा है, मेरे ग्रथ की रक्षा नही कर सकती। तुम इस काय म मेरी मदद कर रही हो।"

अतिम वाक्य सुनकर रत्ने का चेहरा शम स लाल हो उठा। बिना किसी विशिष्ट सकताय के उक्त वाक्य कहन मे डॉ० राव का कोई सकोच नहा हुआ। उन्होंने पुन कहा—"इस विषय म तुम मुझसे अधिक आगे बढ गयी हो। मुझे विश्वास है तुम अपना जीवन-साथी अपने योग्य ही चुनोगी। यह सत्य है कि स्त्री या पुरुष के लिए गहस्थ जीवन अनिवाय है। इसके बिना जीवन नीरस रहता है।'

रत्न अनजाने ही 'सच है' कहन जा रही थी कि चुप रह गयी।

शाम के छह बज चुके थे। निकलन से भी साढे छह की गाडी नहीं मिल सकती। अब तो मात्रे आठ की गाडी मिलती। अत आधा घण्टा वहा बठे रहे। दोनो अपने-अपने विचार-लोक म विचर रह थे। अपने जीवन के बारे म डॉ० राव न आज पहली बार स्पष्ट बात कही थी। रत्न को अपने जीवन-साथी का रूप दिखाई नहीं द रहा था, किन्तु आशा-पूण मन स वह उसकी कल्पना कर रही थी। करीब सात बजे तक सब ओर अधकार छा गया। वह विशिष्ट दिन नही था इसलिए वृदावन मे बिजली की रोशनी नही थी। विचारो की दुनिया स मुक्त होकर डॉ० राव न कहा— अँधेरा हो गया, हमे पता ही नही चला। उठो अब चलेंगे।

रत्न उठी। फल के पेडों का पार कर, नदी क बीचवाले पुल से होते हुए होटल जाना था फिर वहाँ स स्टेशन। डॉ० राव चश्मा लगाये थे फिर भी अँधेरे म स्पष्ट दिखाई न दन के कारण सँभल-सँभलकर पग रखत हुए चल रह थ। यह देखकर रत्न न अपना हाथ बढाकर कहा 'आपको चलने म कष्ट हो रहा है। प्रकाश आने तक आपका हाथ पकडे चलती हूँ।'

डॉ० राव उसका हाथ पकडकर जल्दी जल्दी चलने लग। दस कदम चलन के पश्चात् हँसत हुए कहने लग— शोध-काय म मैं तुम्हारा माग-दशक हूँ लेकिन इस अधकार म तुम मेरी मागदशक बन गयी हो।

रत्न का मन दूर भविष्य म खोया हुआ था। फिर भी उनकी यह

बात उसने सुन ली थी। वह उनके हाथ का और मजबूती से पकडकर जल्दी जल्दी चलने लगी।

८

कात्यायनी का कालेज अध्ययन सिलसिले से चल रहा था। वह सुबह ठीक पौने नौ बजे खाना खाकर और दोपहर के नाश्ते का डिब्बा तथा किताब लेकर वासती के साथ स्टेशन पहुँच जाती। दोनो नौ बजे की गाडी के लडीज डिब्बे मे बठती और चामराजपुर स्टेशन पर उतर जाती। उस डिब्बे म सात आठ और लडकियाँ भी पढने क लिए जाती थी। तीस चालीस लडक दूसरे डिब्बे म बठते थ। गाडी म एक घटा बीतता था। लडकियाँ हसी मजाक करते हुए समय काटती। यदि कोई लडकी अपन सहपाठी लडके से बात करती तो कानाफूसी शुरू हो जाती। किसी का विवाह निश्चित हुआ कि अभिनदन क बहाने मजाक शुरू। इस सब म कात्यायनी भी रस लेती। लकिन उसका कोई मजाक नही उडाता था। उसका वधव्य भी इसका कारण हो सकता है अथवा मा होन क कारण चहरे पर उभरा प्रौढ़ गाभीय।

कालज क नाटक सघ की ओर से महीने म एक बार नाटक प्रस्तुत किया जाता था। नाटक शाम को छह बजे शुरू होता था। कात्यायनी देखने क लिए नही रुकती थी लेकिन कई लडकिया नाटक देखकर रात को नौ बजे की गाडी स लौटती थी। कात्यायनी के मन म भी नाटक देखन की इच्छा होन लगी। लेकिन इतनी देर से घर लौटना वह ठीक नही समझती थी। साथ ही कालज के बाद मन चीनी को देखन क लिए बचन रहता था। वासती न कई बार आग्रह किया पर वह नही रुकी।

पीरियड न होने पर वह डा० राव के घर चली जाती। कालेज क लडीज कामनरूम म समय बर्बाद करने की अपेक्षा नागलक्ष्मी के घर हो आना वह उचित समझती थी। सुहाग टीका न लगाने वाली गभीर

कात्यायनी को हल्के हँसी मजाक में समय बिताने वाली अन्य लड़कियों के साथ रहने की अपेक्षा नागलक्ष्मी से बात करना अधिक भाता था। जिसमें अब भी निरहंकार और ग्रामीण मुग्धता शेष थी, उस नागलक्ष्मी का स्वभाव उसे बहुत भाता था। साथ ही नागलक्ष्मी भी इधर-उधर की बातें सुनना चाहती थी। कई बार वह कात्यायनी को खाने की नयी-नयी चीजें बनाकर देती। सामान्यतः कात्यायनी की कक्षाएँ तीन बजे समाप्त हो जाती थीं। शाम के पाँच बजे तक उसके लिए और कोई काम नहीं रहता।। राज कभी-कभी कात्यायनी को घर में मिल जाता। वह बातूनी था और कात्यायनी को भी बातों में लपेट लेता। वह उसका गुरु भी था। कात्यायनी की कक्षा को जनरल इंग्लिश और ऐच्छिक इंग्लिश का एक-एक पेपर पढ़ाता था। जनरल इंग्लिश के पीरियड में शेक्सपियर कृत मैक-बेथ नाटक वह इस ढंग से पढ़ाता था कि कालेज के सारे विद्यार्थी मुग्ध हो जाते थे। महाराजा कालेज के ही नहीं बल्कि दूसरे कालेजों के विद्यार्थी भी कक्षा में आने लगे थे। स्वयं मँजा हुआ कलाकार होने के कारण कक्षा में नाटक के पात्रों की भाँति तल्लीन होकर बात करता था। विभिन्न पात्रों के गुणों के अनुरूप भय, विस्मय, वीर आदि भावयुक्त ध्वनियों में पढ़ाने का क्रम और वातावरण बनाता जिससे विद्यार्थियों को ऐसा आभास होता कि वे रंगमंच पर नाटक ही देख रहे हैं। सारी कक्षा को वह मंत्रमुग्ध कर देता था।

अक्सर अपने घर आने जाने वाली कात्यायनी के प्रति राज में भी एक अव्यक्त आकर्षण जाग उठा था। कात्यायनी के तेज और गाम्भीर्य से राज में एक विशिष्ट सहानुभूति जाग रही थी। एक दिन राज ने पूछा—"आराम के समय आप कहानी उपन्यास आदि नहीं पढ़ती?

'पहले पढ़ती थी। अब समय नहीं मिलता। मिलता है तो कभी-कभी पढ़ लेती हूँ।

आपको कौन-सा उपन्यासकार पसन्द है?

'शरत्।'

'आप उनके उपन्यासों को क्यों पसन्द करती हैं?

कात्यायनी के पास इसका कोई स्पष्ट उत्तर न था। उसने कहा—'वे मुझे भाते हैं।'

'यह ता मरे प्रश्न का उत्तर नही हुआ ?'

वह शरत क स्त्री-पात्रो को बहुत पसद करती है। देवदास की पावती शप प्रश्न की कमला श्रीकात की राजलक्ष्मी न उसके मन को काफी प्रभावित किया है। इन पात्रा का क्यो पसद करती है इसका विश्लेषण वह नही कर पाती। उनके स्त्री-पात्र मुझ भात है उसन सिफ इतना ही कहा।

'शरत क स्त्री पात्र अत्यत प्रेमल ह। इस स्त्री-सुलभ गुण म उनका व्यक्तित्व भी डूब जाता है। क्या इसीलिए आप उन्ह पसद करती है?

इस प्रश्न का उत्तर दन म उसे सकाच हुआ। उसका चेहरा फीका पड गया। इस छिपाने के लिए उसन मुह दूसरी आर फेर लिया। क्षण भर म उसक चेहरे पर पसीने का बूदें उभर आयी। फिर वह उठकर भीतर नागलक्ष्मी के पास चली गयी।

इतने दिना स कात्यायनी यहाँ आ जा रही है लेकिन उसन डा० सदाशिवराव का घर म कभी नही देखा। वह जानती थी कि व हमेशा पुस्तकालय म रहत हैं। उसन बारीकी स अनुभव किया कि नागलक्ष्मी किस तरह एकाकी जीवन बिताती हागी। लकिन इस बारे म उ हान कभी स्पष्ट बात नही की थी। एक दिन कात्यायनी न कहा— आप घर म अकली ऊब जाती हागी। अपन देवर की शादी कर दीजिए। आपका एकाकीपन दूर हा जायगा।

पढत पढते मनुष्य की अक्ल मारी जाती है। इग्लैण्ड जान न पहल कहता था— वहा स लौटकर शादी करूँगा तुम्हारी पसन्द की। अब कहता है— शादी ही नहा करनी। उसका प्रश्न है क्या शादी क बिना आदमी नही जी सकता'?

कात्यायनी न सोचा जा सदा नाटक के प्रति अभिरुचि रखता है, कालज के विद्यार्थिया का प्रिय अध्यापक बन गया है अच्छी नौकरी पर है उसका मनाभाव एसा क्या? फिर सोचती कि इसके बारे म मैं क्या साचू!

एक दिन राज न उसस पूछा— इतन दिन हा गय आप एक बार भी हमारा नाटक दखन नही आयी?

देखन की इच्छा ता है लकिन समय पर घर पहुँचना पड़ता है। नाटक के लिए रुकू तो रात के दस बजे घर पहुँचूगी।

'नजनगूडु की कई लडकियाँ नाटक देखन के लिए रुकती हैं। आपकी सहली वासती ने गत वष एक नाटक म भाग भी लिया था।"

नागलक्ष्मी भी वहीं खडी थी। उसने कहा, "मैंन भी सुना था। नाटक के दिन किसी न कहा था कि वह लडकी नजनगूडु स आती है। कौन-सा पाट था उसका?"

"कलाम के एक नाटक म जीवू का पाट था।"

नागलक्ष्मी कात्यायनी स कहन लगी—'हर बार नाटक देखन के लिए राज मुझे भी ल जाता है। आप भी आइए। राज बहुत ही सुदर ढग से नाटक प्रस्तुत करता है।

घर म पूछूगी' कात्यायनी न उत्तर दिया।

यद्यपि अन्य लडकियाँ महीन म एक बार नाटक देखकर देर स घर लौटती थी, किन्तु कात्यायनी सदा समय पर घर पहुँचती। उसके साम ससुर यह जानकर सतुष्ट थे कि उनकी बहू अपनी स्थिति की गभीरता को जानती है। घर आते ही कपडे बदलती और हाथ-पर धोकर सास के कामकाज म हाथ बँटाने लगती तो भागीरलम्मा कहती— अरे कालज से थककर आयी है मैं बनाय लती हूँ। कभी-कभी श्रोत्रियजी उस खेती आय व्यय किसानो स अपना लेन-देन आदि के बारे म समझाते। बेटी, मैं बूढ़ा हो चला हूँ इन सबका पता तुझे होना चाहिए कहकर जमीन सर्वे नम्बर विस्तार लगान आदि की जानकारी देत। कुछ दिनो स तो जायदाद-सबधी सब कागज पत्र उसको ही सुपुद कर दिये। अब इन सबको व्यवस्थित रूप स पेटी म रखना, ससुर के माँगने पर आवश्यक पत्र ढूँढकर देना—यह सारी जिम्मेदारी उसी की हो गयी थी। पत्र माँगने का कारण, उसम सबधित विषयों की जानकारी देते हुए कहते—'तू पढी लिखी है इनके बारे म तुझे पूरी जानकारी होनी चाहिए। अगर कहीं मैंने बीच ही म आँखें मूद ली तो चीनी को कौन बतायगा?

वह कहती, ऐसा मत कहिए भगवान करे वह समय कभी न आये।

एक दिन कामसी न उनके घर आकर भागीरलम्मा से कहा—'आज एक अच्छा नाटक है अग्रेजी म। नाम है मकबेथ'। परीक्षा के लिए भी हम उसे पढ़ना है। आपकी बहू भी नहीं रही है। आप ही कहिए न?"

भागीरतम्मा की इच्छा नही थी, लेकिन श्रोत्रियजी ने कहा —' अगर परीक्षा मे सहायक है तो तू भी देख आ बेटी। नाटक दस बार पढने की अपेक्षा एक बार देखने से याद हो जाता है क्योकि वे प्रत्यक्ष दृश्य मस्तिष्क मे बैठ जाते हैं।

उस दिन पहली बार कात्यायनी ने नाटक देखा। राज ने ही मैकबेथ का पाट किया था। नाटक समाप्त होने के पश्चात रगमच पर आकर कालेज के प्रिंसिपल ने मुक्त कण्ठ से प्रशसा करते हुए कहा— मैंने कभी यह न सोचा था कि शेक्सपियर के पात्र को कोई भारतीय इतने उत्तम ढग से प्रस्तुत कर सकेगा।'

नाटक कैसा रहा ? अगले दिन राज ने कात्यायनी से पूछा।

'आपका पाट सचमुच अदभुत था। आपने कक्षा मे भी कभी 'मैकबेथ' इतने कलात्मक ढग से प्रस्तुत नही किया था।

खैर आपने कल एक नाटक तो देख लिया। आप-जैसो से प्रोत्साहन न मिले तो बडी मेहनत से प्रस्तुत करने वाले हम लोगो को तृप्ति कैसे मिलेगी ?

राज के मुख से अपनी प्रशसा सुनकर कात्यायनी पुलकित उल्लसित हो उठी लेकिन सकोचवश मौन रही। लेकिन नागलक्ष्मी ने कहा गाना नही नाच नही भाषा भी समझ मे नही आती। अग्रजी नाटक भी कोई नाटक है ? मैं तो ऊब गयी थी।

उसकी बात सुनकर राज हँस पडा और कात्यायनी को भी हँसी आयी।

कात्यायनी का कालेज का प्रथम वर्ष पूर्ण हुआ। नौ माह कैसे बीते पता ही न लगा। जूनियर परीक्षा के पेपर अच्छे हुए थे। वैसे रोज की रेल यात्रा से ऊब गयी थी। सोचती थी गर्मी की छुट्टियो मे इससे मुक्ति मिलेगी। लेकिन छुट्टी क्या मिली वह पहले से अधिक ऊब गयी। कालेज के दिनो मे वह जल्दी उठकर स्नान करती। सबके कपडे धोती। बालक के उठने से पहले दो घण्टे अध्ययन करती। पति की पुस्तको के अलावा पुस्तकालय से किताबें लाकर पढती। पाठ मे मन न लगने पर कालेज जाते और लौटते समय कोई उपन्यास उठा लेती, और विश्राम के समय

लेडीज कामनरूम मे बैठकर अधूरे उपन्यास को पूरा पढ डालने का यत्न करती अथवा नागलक्ष्मी के पास चली जाती।

छुट्टियाँ होने के एक सप्ताह बाद वासती श्रोत्रियजी के घर आयी। उसके चेहरे पर नयी आभा झलक रही थी, जिसे वह यत्न करने पर भी छिपा न सकी। वह फाइनल बी० ए० की परीक्षा दे चुकी थी। कात्यायनी ने पूछा-- आज बडी खुश नजर आ रही हो, क्या बात है ?"

नही तो !"

'छिपा क्या रही हो ? खुशी तो चेहरे से साफ साफ झलक रही है। क्या प्रथम श्रेणी मे आने की उम्मीद है ?"

ना बाबा ! वे दें तो भी मुझे नही चाहिए।"

आखिर बात क्या है ?"

खुश खबर देने के लिए ही वह आयी थी। शरमाते हुए उसने कहा, "अब बीस दिन बाद तुम्हे हमारे घर भोजन के लिए आना होगा।

सच ! बधाई है। वर कहाँ का है ?

मसूर का। हमारे कालेज से ही इस वर्ष एम० ए० की परीक्षा दी है।"

अरे मुझे तो कुछ पता ही नही लगा। यह प्यार छिप छिपकर ही चला ! खैर कोई बात नही। बधाई है बधाई।

वासती का चेहरा लज्जा से लाल हो उठा। अपनी ही जाति के लडके से वह प्यार करती रही थी। दूर का सबधी था। वे रोज कालेज मे मिलते थे। वासती विश्राम के समय लेडीज रूम मे नही जाती थी। अपने प्रेमी के साथ कुछ ही दूर तालाब के किनारे घूमने निकल जाती थी। इस सबध मे उसने कभी कात्यायनी से भी चर्चा नही की। हो सकता है कालेज की अन्य लडकियाँ जानती हो लेकिन सदा गभीर रहने वाली कात्यायनी से इस बार मे किसी ने कुछ नही कहा था।

वासती के चले जाने पर भी इस बारे मे सोचकर कात्यायनी प्रसन्न होती रही। भगवान से प्रार्थना की कि वासती के पति को लम्बी उम्र मिले उसका जीवन सुखमय हो वह खुशी से अपना भविष्य बिताये। लेकिन अपना भविष्य क्या है ? कालेज की पढाई एक साल तक और चलेगी। फिर यही घर मे रहना होगा। अपने पति के अपूर्ण कार्य को पूर्ण करने की

इच्छा से ही वह कालेज जा रही है। लेकिन वह इच्छा अब कुछ अनावश्यक प्रतीत होने लगी है। अगर वह बी० ए० कर लेती है तो स्वर्गीय पति को क्या मिलेगा? और जहाँ तक घर-बार के व्यवहार का प्रश्न है, बी० ए० करने से उस काम में कौन-सी विशिष्ट सुविधा मिलने वाली है? फिर भी अगले साल उसे कालेज जाना है।

कात्यायनी को नागलक्ष्मी की याद आती। नागलक्ष्मी के भोले स्वभाव एवं विश्वासपूर्ण मन का स्मरण करने पर हृदय में स्नेह उमड़ आता। साल-भर में एक दिन भी कात्यायनी ने डा० राव को नहीं देखा था। सुनने में आया कि आजकल उनके सिर पर लेखन कार्य का ही भूत सवार है। हमेशा लिखने में ही व्यस्त रहते हैं। इससे नागलक्ष्मी को कितना दुःख होता होगा? फिर भी वे सुहागिन हैं। कम-से कम उन्हें इस बात का संतोष तो है कि एक फर्लांग दूर पुस्तकालय में बैठकर पति लिख रहे हैं। वे रोज वेणी बाँधती हैं, माथे में सिंदूर और भौंहों के बीच चंद्राकार टीका लगाती हैं। क्या यह कम सौभाग्य है।

नागलक्ष्मी की याद के साथ ही कात्यायनी को राजाराव का स्मरण हो आता। वे कितने प्रभावशाली हैं। शेक्सपियर को इतने उत्तम ढंग से कौन पढ़ा सकेगा? सारा कालेज ही उनके अध्यापन पर मुग्ध है। नाटक सिखाना, उसे प्रस्तुत करना और स्वयं अभिनय करना—कितनी कुशलता है! कालेज की अनेक लड़कियाँ उनके प्रति आकर्षित हुई हैं। लेडीज रूम में लड़कियाँ निर्लज्जतापूर्वक परस्पर पूछतीं, 'आज कैसा था मैकबेथ?'

'ब्यूटीफुल!'

'ऐसी प्रशंसा नहीं करनी चाहिए? तू लेडी मैकबेथ थोड़े ही है!'

अगर मैं लेडी मैकबेथ होती तो क्या तू मुझसे ईर्ष्या न करती?

मिला! डाट वरी बी शल शेयर।

कात्यायनी सोचती, कई लड़कियाँ अध्यापकों के बारे में बातें करते समय गाम्भीर्य नहीं दिखातीं। वे शायद इसी तरह समय गँवाने के उद्देश्य से कालेज आती होंगी। फिर भी राजाराव प्रतिभाशाली हैं, स्नेह का पात्र हैं, विनोदी भी हैं। मुझ जैसी गूँगी को भी कितनी जल्दी बातें करना सिखा दिया! अपने नाम पर मुझे किताबें दिलाता है। इतना सब कुछ

होते हुए भी वह शादी करना नहीं चाहता ! न जाने क्या कारण है ! उसकी पत्नी बनकर कोई भी लडकी सुखमय जीवन बिता सकेगी।'

छुट्टी के दिन म दोपहर को कात्यायनी घर के पिछवाडे लगे फूल के पौधों एव साग-सब्जी की क्यारियों म पानी देती। आम के पेड से लिपटी मोगरे की लताओं को सींचते समय उसे पति की याद आ जाती। 'इसी लता को सींचते समय मुझे छेडते थे वे।' यह उसे प्रिय लगता था लेकिन किसी के देख लेने के भय से वह कृत्रिम नाराजी प्रकट करती। अब ? सोचकर पीडा होती और दूसरे पौधों के पास चली जाती। पहले वह बालों म फूल खोसती थी और पति को उतने से संतोष नहीं होता था। आज भी फूलों का ढेर लगता है। अधिकांश फूल देवपूजा के लिए होते है। पूजा के पश्चात आठ दस फूलों को प्रसाद रूप म उसकी सास लगा लेती है। बाकी शाम की पूजा के लिए और बचे हुए फूल मांगने पर अन्य स्त्रियों को दे दिये जाते।

कई बार मन मे आता कि फूलों का उपयोग पूजा के लिए अधिक उचित है या स्त्रियों की वेणी के लिए। देवपूजा के लिए इनके उपयोग के विरुद्ध वह नहीं थी लेकिन उनसे वेणी सजाने मे जो आनन्द मिलता है उसे कौन निश्चय कर सकता है ? एक दिन मोगरे की लता को सींचते-सींचते उसने देखा जिस आम्र-वृक्ष से लता लिपटी है, वह भीतर से सूख चुका है।

उसने ससुर को बताया तो उन्होंने नौकर के द्वारा उसे कटवा दिया। और लता को बाँस का आधार दिला दिया। कात्यायनी से कहा, "पास ही एक नया आम्र वृक्ष लगवा लेते हैं रोज पानी सींचा करो।' पंद्रह दिनों म नये अंकुर आ गये। बाद म श्रोत्रियजी ने लता को इस नये पौधे का आधार देने की सोची। कात्यायनी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि नये पौधे का आधार पाकर पुष्पलता म अधिक फूल खिलने लगे है। उसे भय था कि पेड के साथ ही लता भी मुरझा जायगी।

छुट्टियों म केवल डॉ॰ सदाशिवराव जैसे लोग काम करते है। राज के लिए यह नीरस समय था। फरवरी से लेकर कालेज प्रारंभ होने के पंद्रह दिन बाद तक उसका नाटक संघ भी सो जाता है। विश्वविद्यालय की परीक्षाओं

के पश्चात कुछ दिन उसे परीक्षा का कार्य करना पडता था। फिर लगभग दो महीनो के लिए उसे आलसी बनकर रहना पडता था। इस साल की छुट्टिया म उस एक अनात उदासी ने घेर लिया। उसे जीतने के लिए वह कालेज की व्यायामशाला म गया। लकिन यह क्रम तीसरे दिन रुक गया। सोचा अब शास्त्रीय सगीत सीखूं। अपने नाटक के लिए आवश्यक पाश्वगायन स्वय गाने का विचार था। एक शिक्षक नियुक्त किया। सगीतज्ञ न कहा— कण्ठ को गान के लायक बनान के लिए कम से-कम तीन वष परिश्रम करना होगा। अच्छा हो आप वाद्य सगीत सीखें। उन्होंने वायलिन सीखन की राय दी। उसी दिन एक पुरानी वायलिन खरीद लिया। और स-प-स सुर जमाना भी सीख लिया। रोज दो-तीन घण्टे परिश्रम करता लेकिन पद्रह दिन बीत जाने पर भी जब आवश्यक सुर नही निकाल सका तो उत्साह घट गया। सगीत अध्यापक आते रहे। उन्हे तो अपनी फीस चाहिए थी।

राज ने सोचा, इस बार ऐसी उदासी क्यो लग रही है। जितना सोचता उतना विचार म उलझता जाता। कोई कारण समझ मे नही आता। भाभी से बातें करने पृथ्वी का घुमाने ले जाने की इच्छा भी न रही। कभी अकेला ही मुह अँधेरे सात आठ मील साइकिल पर निकल जाता। लेकिन गर्मी के इन दिनो म आसपास के खेत सूखे दिखाई देते थे। इन्हे देखकर वह विचारो म खो जाता।

राज सोचता मानव कल्पित समाज रीति रिवाज नीति नियम आदि जीवन की मूलभूत शक्ति को कुठित कर दन वाली बीमारिया हैं। इन बुराइयो से ऊपर उठाकर जीवन की मूल चेतना का दशन कराना ही राज के मतानुसार साहित्य का उद्देश्य है। उसन सोचा पेड़-पौधा हरियाली तरु लताओ की आड म कूकती कोयला की मधुर ध्वनि के अभाव मे सूखे खेत क्या मूल चेतना के प्रतीक है? नही यह वस्तुस्थिति नही है। अत मे उसने उस ओर जाना ही छोड दिया।

उस साल चैत्र मास के पूर्वार्द्ध म तीन चार बार हल्की हल्की बारिश हुई। धरती की तपन घट गयी और वह मुस्करा उठी। कालेज के पीछे के विशाल मदान म हरी घास उग आयी। सारा शहर लहलहा उठा। एक सप्ताह बाद राज साइकिल पर सवार होकर जब उस ओर निकला तो

वर्षा से पद्रह दिनों मे ही हुए इस परिवतन को देखकर मुग्ध हो गया। किसान खत जात रहे थे। खेतो मे हरियाली खेल रही थी। मार्ग के दोनों ओर पेड नई शोभा लिये हुए से झूम रहे थे। पक्षी गाते चहचहाते स्वच्छन्दतापूर्वक उड रहे थे। यह परिवतन देखकर उसे लगा कि यही प्रकृति का मूल रूप है इसी म चेतना छिपी है। आगे वृक्ष सघन हो गये थे। कही-कही डालियाँ इतनी झुक गयी थी कि साइकिल पर से उचककर उन्हे पकडा जा सकता था। वट-वृक्ष झूले से झूल रहे थे।

और थोडा आगे दस पद्रह आदमी रास्त के पेडो पर चढकर डालिया काट रहे थ। राज को बडा दुख हुआ। साइकिल से उतरकर पेड काटने वाल मजदूरो के अधिकारी से पूछा—'इतन अच्छे घने वृक्षो को क्यो कटवा रहे हैं ?' बीडी का कश लेकर नथुनो स धुआ छोडते हुए उसने उत्तर दिया, 'गाँड की सन्तान की तरह घने वृक्षो से क्या लाभ ? आने-जाने वाली बसो की छतो से टकराते हैं। सरकारी सब-ओवरसियर ने काटने का आदेश दिया है।'

उत्तर सुनकर राज को अच्छा नही लगा। लेकिन वह क्या करता ? उस साइकिल घुमायी और घर की ओर लौट पडा। वह करीब पद्रह मील दूर निकल आया था।

दिन भर उसे अधिकारी का वह उत्तर कुरेदता रहा। जहा कही आदमी की गतिविधियाँ अधिक होती है, वहा प्राकृतिक शोभा की यही दुर्दशा होती है। लोग वास्तविकता म निहित नवीनता को नष्ट करके उस पर अपनी ही इच्छा लादते हैं। मानव जीवन पर भी ऐसे ही आघात होते रहते हैं—ऐसे ही बधन बाँध दिये जाते हैं। शहरी जीवन तो इन बेडियो म बुरी तरह जकडा हुआ है। कितने आदमी इसी तरह बँधे छटपटा रहे हैं ! इससे मुक्त हुए बिना मूल स्थिति के चैतन्य का अनुभव करना असभव है। उस दिन रात को जब वह लेटा तो प्रकृति शोभा को उजाडकर, मनुष्य का अपने लिए मार्ग आदि बनाने और आदमी के स्वच्छन्द आनद का दबाकर सामाजिक जीवन का नियमबद्ध करने की तुलना करते हुए उसका मन एक नाटक की कल्पना कर रहा था। उस नाटक का कोई पात्र नहा कथावस्तु नही। सारी प्रकृति ही उस नाटक की नायिका थी समस्त मानव-वर्ग उस नायिका के हत्यारे के रूप मे।

विराध शक्ति का निर्माण करके उसके मस्तिष्क म घूम रहा था। काफी रात बीते उसे नीद आई। तब तक डा० राव भी सो चुके थे।

सुबह-सुबह उसने एक स्वप्न देखा। स्वप्न म भी वही नाटक ! अब तक एक पात्र का सजन हो चुका था और नाटक को मूर्त रूप भी मिल गया था। लगभग बाइस-तईस की एक सुदर युवती ! मनमोहक लावण्य-मय रूप ! शरीर स्वस्थ शुभ्र ज्योत्स्ना सा चमक रहा है। चलती तो चरण एसे रश्मिम हो उठते मानो रक्त अब फूटने ही जा रहा है। लबी-लबी अँगुलियाँ केवल चित्रकार द्वारा ही चित्रित की जाने वाली अँगुलियों-सी। शरीर साचे म ढला सा। लम्बे लम्बे घने काले घुघराले बाल, जो पीठ पर सर्पिणी स लटक रहे है। मुख मुद्रा गभीर ! अग अग म सुकुमारता है प्रस्फुटित स्त्री चेतन्य। पूर्णत वस्त्रहीन एक अप्सरा एक पुष्प लता के नीचे चट्टान पर पैर लटकाये बैठी है। घनीभूत होकर सामने खड़ी चादनी सी उसकी सर्वांग शोभा शारीरिक सुघडता क सौगठव और तरुणाई के लावण्य म सजाव हो चमक रही है। प्राकृतिक सौदय छिपाने के लिए शरीर पर आवरण नही है। सामाय स्त्री को अपनी नग्नता पर जो सकोच हो सकता है उसका उसम अभाव है। उसके पार्श्व मे लाल गुलाबो का ढेर है। दोनो हाथो से एक सुदर पुष्पमाला गूथ रही है। पौधो के उस ओर स एक स्वर मे सैकडो लोगो क चिल्लाने की आवाज आ रही है—'तू विधवा है तरे इस हार को कोई स्वीकार नही करेगा।

स्वप्न टूट गया। आँखें खुली तो उसने निश्चय किया कि इसी कथा-वस्तु के आधार पर एक नाटक लिखूगा। स्वप्न की उस अप्सरा को अपने स्मृति-पटल पर लाने का प्रयत्न किया। उसका स्पष्ट चित्र राज के नेत्रो मे अवश्य था लेकिन याद नही आ रहा था कि चित्र किसका है। दो दिन बाद आँखो पर छाये बादल हट गये। वह चित्र किसी और का नहीं, उसी की छात्रा कात्यायनी का था। यह क्या ! उसे भी आश्चर्य हुआ।

गर्मी की छुट्टियो के पश्चात आज कालेज खुलने वाला था। सुबह दस बजे राज घर के आँगन मे कुर्सी पर बैठा अपने नाटक को उलट पलट रहा था। उसने इस साल का कायक्रम इसी नाटक से प्रारभ करने का निश्चय किया था। पाडुलिपि म दो-तीन बार सशोधन कर चुका था। टाइप करने

के लिए अपनी छात्रा को सौंपने से पहले वह आज फिर उस पर नजर डाल रहा था। उसे लगा, फाटक खोलकर कोई आ रहा है। सिर उठाकर देखा, कात्यायनी थी। उसके हाथ में रूमाल में बँधी एक पोटली थी। उसकी महक से राज जान गया कि मोगरे के फूल हैं। उठकर कहा—'ये मुझे दे दीजिए।'

अप्रत्याशित राज के आँगन में बैठे होने और फूल माँगने पर कात्यायनी क्या कर सकती थी! उसने फूल की पुड़िया राज को दे दी। राज ने उसे खोला। सुन्दर पुष्पहार था। राज विस्मित हो उठा। सोचने लगा, ये घटनाएँ आकस्मिक क्या घटती हैं? पूछा—'यह किसके लिए है?''

नागलक्ष्मम्मा के लिए।

भ्रमित होकर कहा— बैठिए भाभी पड़ोस में हल्दी-कुंकुम के लिए गयी हैं। एक दो मिनट में आ जायेंगी!'

कात्यायनी पास की कुर्सी पर बैठ गयी। उसकी छुट्टियों के बारे में राज ने प्रश्न किये। दोनों आपसी कुशल-समाचार की बातें कर ही रहे थे कि नागलक्ष्मी आ गयी। उसके साथ कात्यायनी भीतर चली गयी। राज ने पुष्पमाला भाभी को सौंप दी। आधे घण्टे बाद कात्यायनी रसोईघर से लौटी तो राज ने कहा, 'देखिए आपसे एक काम है।''

"मुझसे?' कात्यायनी ने आश्चर्य से पूछा।

'हाँ मैंने एक नाटक लिखा है।

'सच! मैं अभी तक यही समझती थी कि आप केवल नाटक प्रस्तुत करते हैं और उसमें भाग लेते हैं।'

'ऐसी बात नहीं है। कई नाटक लिखे हैं मैंने। लेकिन एक भी प्रकाशित नहीं हुआ है। यह नया नाटक है। इसमें आपको पाट करना होगा।

क्या कह रहे हैं मेरे! मैं तो मर जाऊँगी। वह हैरान थी।

'मैं जानता हूँ कि इंटर में पढ़ते समय आपने एक बार पाट लिया था।

किसने कहा?

किसी ने भी कहा हो। अब आपको स्वीकार करना पड़ेगा।

कात्यायनी गंभीर हो उठी। इतने में नागलक्ष्मी भी आ पहुँची

कात्यायनी ने कहा—'तब और अब म बहुत अतर है। कोई क्या कहेगा ?'

'कोई कुछ नही कहेगा। हमारी नाटक-सस्था मे कितनी ही लडकियाँ भाग लेती है। इस मैंने ही लिखा है। मरा विश्वास है नायिका की भूमिका आप ही अच्छी तरह निभा सकेंगी।

कात्यायनी नही मानी। वह कालेज चली गयी। दो-तीन दिन राज ने विवश किया तो मानना ही पडा। उसने एक बार मकअप करके रग-मच पर अभिनय करने का आनदानुभव किया था। अब भी वह विचार उसे आकषक लगा। लेकिन मन मे उस इस बात का भय भी था कि अगर सास-ससुर को पता लग गया तो ? लेकिन वासती इस साल कालज मे नही आ रही थी। वह अब ससुराल म थी। इसकी खबर देने वाला दूसरा कोई था ही नही।

आपने नाटक म अग्रेजी लिखा है मैं पाट नहा कर सकूगी।

मुझे पूण विश्वास है कि आप अच्छी तरह कर सकेंगी। कन्नड नाटक होता तो और किसी छात्रा को सौप देता। कई छात्राएँ पाट देन का आग्रह कर रही है। आप आप्शनल इग्लिश की छात्रा है आपको इसे करना ही पडेगा।

नाटक की टाइप की हुई एक प्रति कात्यायनी को दते हुए राज ने कहा— एक बात याद रख। यह नाटक है कला है। किसी व्यक्ति को दप्टि म रखकर नही लिखा गया। इसक सभी पात्र प्रतीक मात्र हैं। इस नाटक म पात्रा की केवल कथा ही नही है गहन अथ भी है। केवल कथोप-कथन पढ्ने स ही नाटक समझ म नहा आ सकता। यह तब स्पप्ट होगा, जब उस रगमच पर लाइटिंग इफेक्ट के साथ प्रस्तुत किया जायेगा। मैं आपको इस सबध म प्रशिक्षण दूगा।

कात्यायनी नाटक की पाडुलिपि लेती गयी। दूसरे दिन वह आई तो उसके चहरे पर तनिक कठारता थी किन्तु गुरु के सम्मुख नम्र होकर ही बोली— सर यह पाट किसी और से कराइए।

आप समझने की कोशिश कीजिए। यह कला है नाटक है।

मुझे दप्टि म रखकर ही आपन इसे लिखा है! उसकी आवाज म थी।

"नहीं, ऐसा कदापि न सोचिए। यह एक अलग ही ढंग से मेरे मस्तिष्क की उपज है। यह एक रूपक मात्र है" कहते हुए उसने प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु उसके मस्तिष्क में कैसे आई—यह समझाया। वह वस्त्रहीन स्वप्न सुन्दरी कौन थी—इस बार में कुछ नहीं बताया। अंत में कात्यायनी ने पाट करना स्वीकार कर लिया। केवल चार पात्रों का नाटक था। उसमें भी कुछ संवाद महीन सफेद परदे के पीछे और कुछ रंगमंच पर बोले जाने वाले थे। वह एक नयी शैली, नया रूप और नया संदेश लिये हुए था।

कात्यायनी अभिनय के लिए रोज नागलक्ष्मी के घर आती। यहीं राज उसे अभिनय सिखाता। नागलक्ष्मी अंग्रेजी नहीं जानती थी, फिर भी वह तल्लीनता से राज का प्रशिक्षण और कात्यायनी का अभ्यास देखती। शेष तीन पुरुष पात्र थे, जिन्हें वह कालेज में प्रशिक्षित करता था। नाटक का नाम था द प्राइमोडियल' (मूलतत्त्व)। 'प्रकृति' नायिका थी और पुरुष नायक। पुरुष रंगमंच पर घूमता है, उसे अधिक अभिनय नहीं करना है। केवल एक ही संवाद है। अन्य दो पात्रों में एक है जगत पर शक्ति व बल पर शासन करने वाला इंद्र और दूसरे हैं, उस पर धार्मिकता का अंकुश लगाने वाले देवगुरु बृहस्पति।

अगस्त की पहली तारीख। शाम के छह बजे नाटक शुरू हुआ। वर्ष का प्रथम नाटक था। अतः कुलपति ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। नये विद्यार्थी देखने को आतुर थे कि यह नाटक कैसा है और पुराने विद्यार्थी राजाराव द्वारा रचित नाटक देखने के लिए उत्सुक थे। कालेज का खुला नाट्यगृह खचाखच भरा हुआ था।

हरे भरे वन में टहलती प्रकृति पुष्प संचय कर रही है। बिल्कुल मौन, शांत! प्रस्तुत दृश्य का अर्थ नेपथ्य से सुनाई दे रहा है। संचित पुष्पों से प्रकृति एक बड़ी माला बनाती है। माला की शोभा को देखकर वह नाचने लग जाती है। इतने में रंगमंच पर पुरुष का प्रवेश होता है। पुरुष के सान्निध्य में आकर्षित हो प्रेमालाप करती हुई वह उसके पास पहुँचती है। हाथ की माला उसके गले में डालना चाहती है। लेकिन पुरुष ने उसका हाथ थामने के लिए हाथ बढ़ाया। इसी बीच बादलों की गड़गड़ाहट और चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार।

अगला दश्य है इद्र का यायालय। जजीरा म जकडी 'प्रकृति एक पाश्व म खडी है। इद्र सिंहासन पर विराजमान है। एक दूसर आसन पर विराजमान वृहस्पति कहत है— 'तुझ पर धमच्युति का आराप है।

"कस दवगुरु ?

तू पहले किसी और पुरुष के ससग म था। नानात्व हान पर वह तुमसे दूर चला गया। तू विधवा हुई। अब दूसर पुरुष को वरमाला पहनाना चाहती है। यह धम विरुद्ध है।'

जो प्रकृति चिर नूतन है चिर चनय है उसे कृत्रिम धम का रूढियो मे बाधना क्या अधम नही है गुरुदेव ? मेरा मूल गुण चेतनामय है। मन का आह्लादित कर देन वाली वनश्री, आखा को शीतलता पहुँचान वाले सुदर दश्य, चराचर जीवा को अन्न देने वाली मेरी याप्ति आदि पर काई भी धम वैधव्य का स्पश नही करा सकता। दवगुरु क्या आप मर एक प्रश्न का उत्तर देंगे ?

'अवश्य ! पूछा।

क्या प्रकृति के ससग से ही पुरुष की मुक्ति नही है ?"

हा, यह ठीक है।'

अगर आपने मुझ पर वधव्य का आरोप लगा दिया तो उन अनत कोटि पुरुषा का क्या होगा जिन्ह अब तक मुक्ति नही मिली है उन्हें मिलन वाली मुक्ति से वचित रखन वाला आपका धम कृत्रिम नहा ता और क्या है ?

देवगुरु निरुत्तर हो गये। प्रकृति फिर कहती है— 'मूलतत्त्व क मूल गुण को कृत्रिम रूप से रोकने वाले धम, नीति राजशासन सामाजिक नियम, जनमन का आरोप आदि असत्य के प्रतीक हैं। प्रकृति चिरयावना है। उसके सुन्दर स्वरूप को रौंदने का प्रयास करन वाला धम स्वय मिट जाता है।

पुन बादलाकी गजना। सभी ओर अधकार। फिर मन्द प्रकाश। इद्र और वहस्पति अपनी गलती पर पछता रहे हैं। दाना निजीव होकर गिर पडत ह। अब रगमच पर पूण प्रकाश पडता है। हाथ म पुष्पमाला लिय नत्य करती हुई प्रकृति रगमच पर प्रवश करती है। अपन चिरतन यौवन का गीत गाती है। पुरुष उसके निकट आता है। लकिन प्रकृति अब

उसे पुष्पमाला नहीं पहनाती। पुरुष कहता है—"प्रकृति, तू विधवा नहीं, चिर सुमंगला है।'

प्रकृति उस माला पहनाती है। दक्ष और बृहस्पति को एक बार कृपा दृष्टि से निहारती है। उनके हाथ-पैर आते हैं। दोनों उठते हैं और प्रकृति के चरणों में झुकते हैं। वह अभयदान देती है। दोनों खड़े हो जाते हैं। रंगमंच का प्रकाश धीरे धीरे मंद हो जाता है और परदा गिर जाता है।

दर्शकों की करतल ध्वनि से हाल गूंज उठा।

नेपथ्य में कात्यायनी आयी। उसके दोनों हाथों को जोर से दबाते हुए राज ने कहा—'अद्भुत! मेरी कल्पना को आपने साकार कर दिया है।'

प्रशिक्षण आपका ही था।" कात्यायनी अपना हाथ छुड़ाना भूल ही गयी।

इस बीच रंगमंच पर मेज-कुर्सियां रखी गयीं। प्रिंसिपल और कुलपति कुर्सियों पर बैठ गये। तीसरी कुर्सी पर राज बैठा। सभ्या के सचिव ने पुष्पमाला से कुलपति का स्वागत किया। पीछे बैठे विद्यार्थियों ने आवाजें दीं पुरुष को भी माला। क्योंकि उन्हें राज का अभिनय बहुत ही पसंद आया था। प्रिंसिपल ने उठकर विद्यार्थियों से शांत रहने की अपील की।

खामोशी छा गयी। कुलपति उठे और माइक के सामने खड़े होकर वक्तव्य देने लगे, "मैं जीवविज्ञान का प्राध्यापक रह चुका हूँ। मैं नाटक के सक्ताथ ठीक-ठीक तो नहीं समझ सका, किंतु निस्संदेह मिस्टर राजाराव ने उसे बहुत ही सुंदर ढंग से लिखा है। आप सब लोगों की ओर से मैं उनका अभिनंदन करता हूँ। नायिका के रूप में मिस, मिस मिस ' कहकर राज की ओर देखा। राज ने कहा "कात्यायनी।' 'हाँ तो मिस कात्यायनी ने अद्भुत अभिनय किया है। अन्य दोनों पात्रों का पाठ भी मनोरंजक रहा। संक्षेप में यही कहूँगा कि नाटक उत्तम रहा।'

जीवविज्ञान के विद्यार्थी के नाते मैं यह समझ सकता हूँ कि प्रकृति चिरनूतन है हमारे जीवकोश मरते रहते हैं और नये उत्पन्न होते हैं। मनुष्य के मरने पर भी उसके जीवकोश हवा में जीवित रह सकते हैं। अतः निष्कर्ष यही है कि सारा संसार जीवमय है।'

कार्यक्रम समाप्त हुआ तो रात के साढ़े आठ बज चुके थे। राज

कात्यायनी से कहा, 'इस वक्त आपका साथ देने के लिए कोई नहीं मिलेगा। चलिए मैं स्टेशन तक छोड़ आता हूं।'

मेकअप उतार और अपने कपड़े पहनकर कात्यायनी निकल पड़ी। राह चलते राज ने पूछा 'वाइस चांसलर ने आपको तीन बार मिस मिस, मिस कहा ध्यान दिया था?"

कात्यायनी कुछ न बोली। वह सोच रही थी उसे आज पाठ ही नहीं करना चाहिए था। जब तक रंगमंच पर रही, अपने-आपको बिसार चुकी थी। पूरी तन्मयता से अभिनय किया था। नाटक समाप्त होते ही संकोच ने घेर लिया। राह भर वह चुपचाप चलती रही। स्टेशन निकट आने पर कहा स्टेशन पर नंजनगूडु जानेवाले विद्यार्थी होंगे व उलटा-सीधा समझेंगे। अब आप घर जाइए।

राज चुपचाप लौट पड़ा।

९

एक साथ शोध कार्य करने वाले डा० राव और रत्न दोनों कुछ ही दिनों में निकट स्नेही बन गये। दोनों का ध्येय एक दिशा एक। एक के कार्य के लिए दूसरा आवश्यक था। विद्वत्ता के क्षेत्र में रत्न विद्यार्थी-स्तर को पार कर ऊपर उठ चुकी थी। अत डा० राव उससे छात्रा के अतिरिक्त मित्र-भाव से भी व्यवहार करते थे। काम करने का मूड न होने पर बैठकर बातें करते। लेकिन बात का विषय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपने शोध कार्य से ही सबंधित होता था। एक बार रत्न ने सलाह दी— प्राध्यापक बनकर आपको इंग्लैंड जाना चाहिए। डा० राव ने कहा— पहले यह काम पूरा हो जाय। आयु बची तो भविष्य में यह भी सोच सकता हूँ। रत्न कभी-कभी डा० राव की दृष्टि में न आयी हुई सामग्री लाकर प्रस्तुत करती तो वे कृतज्ञता से धन्यवाद देते। लेकिन यह कृतज्ञता उसे नहीं भाती थी। एक बार कुछ रूठी-सी आवाज में बोली— मैं कई बार कह चुकी

हूँ कि आप मुझे धन्यवाद न दें। इतना भी याद नहीं रख सकते तो आपका टाइपराइटर लेकर मैं अपने देश चली जाऊँगी।'

'ऐसा ही करो। वहा से सब टाइप करके भेज दिया करना' डॉ० राव हँस पड़े।

एक दिन काम का मन नहीं था तो दोनों रहने के होस्टल की ओर चल दिये। लौटते समय चाय पीने के लिए होटल की तरफ जा रहे थे कि बस कण्डक्टर की आवाज आयी— चामुंडी हिल, चामुंडी हिल, अर्जेंट!" मंगलवार था। रेने ने अब तक चामुंडी पहाड़ नहीं देखा था। डॉ० राव ने कहा— इस बस में पहाड़ तक जाकर शाम तक क्यों न लौट आयें?" उसने भी मान लिया।

दोनों कुछ समय तक पहाड़ पर स्थित देवालय महिषासुर की मूर्ति आदि देखते रहे। लौटने वाली बस पकड़ने का प्रयत्न करने के बदले वहीं रह गये और धूप ढलने पर पैदल ही लौटने का निश्चय करके एक पेड़ की छाया में बैठ गये। कुछ समय बाद रेने ने पूछा 'क्या आप पुनर्जन्म को मानते हैं?'

'क्या?'

'यों ही पूछा।'

'एक पुराने पथ को छोड़कर भारत के समस्त दर्शन पुनर्जन्म को मानते हैं। पुनर्जन्म और आत्मा की अनन्तता—ये दोनों एक ही वाद के दो रूप हैं। बौद्ध धर्मावलम्बी होने के कारण शायद तुम आत्मा की नित्यता को नहीं मानती होगी।'

'दर्शन-ग्रंथों का ज्ञान नहीं, इतना बताइए कि आप उसे मानते हैं क्या?'

डॉ० राव क्षण भर के लिए विचारमग्न हो गये। उन्होंने दर्शन-शास्त्र का अध्ययन किया था लेकिन यह सोचने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी कि इस सम्बन्ध में उनका व्यक्तिगत विचार क्या है। पाँच मिनट तक डॉ० राव को विचार में डूबे देखने के बाद रेने ने कहा—'आत्मा अवश्य अविनाशी है। यह प्रत्यक्ष देखा नहीं जाता कि देह त्यागने के पश्चात् आत्मा भी नष्ट होती है। लेकिन इस दुनिया में जन्म लेकर मरने के बाद कुछ पीढ़ियों तक व्यक्ति की मूल साधना के चिह्न के रूप में कुछ बच जाय तो मान सकते हैं कि वह उसी व्यक्तित्व का

'इतने सीमित अथ स काम चलेगा ?

मेरे लिए ता इतना बस है सोचती हूँ ! तो मुझ ऐसा ही लगता है। उत्कट भावात्मक क्षणा म मुझे भी लगता है कि पुनज म का मान लेना चाहिए। यह आशा स्वाभाविक है कि जो इस जावन म अप्राप्य है वह भावी ज म म प्राप्त हुआ लेकिन यह एक सा त्वना, मन की तसल्ली मात्र है।

डा० राव गभीरता स उसकी बातें सुनत रह। रत्न न पूछा — मेरी बात समझ मे आयी ?

न जाने रत्न ने क्या कहा और डा० राव क्या समझे। फिर भी हू कह दिया। वह भी चुप हो गयी। कुछ क्षणा क बाद रत्ने ने फिर कहा — उदाहरण के लिए आपक जान के पश्चात भी आपके ग्रथ रह जायेंगे। इस दष्टि से आप अविनाशी है।

शिष्या द्वारा श्रद्धा से कही गयी यह बात सुनकर डा० राव का शरीर पुलकित हो उठा। फिर भी उ होने कहा — तुम अपनत्व क कारण ऐसा कह रही हा। तुम्हार विचारा को मानन का मनोभाव मुझ म नही है सो बात नही। रत्न तुमम बुद्धिमत्ता है तुम विद्वत्ता की आर बढ़ रही हो इसी दिशा म चलती रही तो तुम मुझस भी आगे बढ जाओगी।

क्षण भर दोना चुप रहे। फिर नि श्वास छोडत हुए रत्ने ने कहा "हमारे वयक्तिक प्रयत्न करने स क्या होता है ? वाछित सहायता और *प्रोत्साहन चाहिए। मागदशन करने वाला भी चाहिए। अ यथा हमारी* चेतना का परिपूण विकास नही होता। सच है न ?

सच है।

उस दिन दोना अपन व्यक्तिगत जीवन की सीमा पार कर साधना जगत की बातें कर रहे थे। उनकी आत्माएँ निकट प्रतीत हो रही था। सूर्यास्त तक व वही बठ बातें करते रहे। वहा स मदिर तक पहुचने के पहले ही विद्युत-दीप जल चुके थे। नदी का पीछे छोड आग बढ और सीढ़ियों तक आये तो उ ह कुछ दिखायी नहा दे रहा था। रत्न ने उनका दाहिना हाथ थाम लिया। डा० राव ने हँसत हुए कहा— अभी-अभी तुमने कहा था न, कि मागदशन कराने वाले की जरूरत होती है। तुम न होती तो मैं लौट भी न पाता !

"हाँ हाँ ! इस पहाड से उतरने का रास्ता तो मैं नहीं जानती। आपके बिना मैं कुछ नहीं कर सकूँगी।" वह हँस पडी।

दोनों नीचे उतरे। रात के आठ बज गये थे। चामुंडीपुर में ताँगा मिला और उस पर सवार हुए। डॉ० राव गाइसराय रोड पर उतर गये और रत्न उसी ताँगे में आगे बढ़ गई।

डा० राव के ग्रंथ के प्रथम खण्ड का लेखन-कार्य समाप्त हो गया। उन्होंने दो-तीन बार उसे जाँच भी लिया। जिस लिखने में पाँच वर्ष लगने का अनुमान लगाया था। वह केवल तीन वर्षों में ही पूर्ण हो गया। रत्न के आने से पहले उन्हें अकेले ही काम करना पडता था। अब कार्य की गति में तीव्रता आ गयी है। रत्न की अपनी 'थीसिस' भी पूर्ण हो गयी। उसे उसने विश्वविद्यालय में प्रस्तुत कर दिया। लेकिन अपने गुरु के प्रथम खण्ड की सामग्री व्यवस्थित रूप में टाइप कर लेने के बाद ही स्वदेश लौटने की इच्छा से वह दिन रात परिश्रम करने लगी। छह सप्ताह में कार्य पूर्ण कर दिया। उसने एक प्रति खुद सुन्दर ढंग में 'पक' की और उसे डा० राव के पत्र के साथ इंग्लैंड के प्रकाशक को भेज दिया।

रत्न की स्वदेश वापसी की पिछली रात डॉ० राव सो न सके। उसने दो वर्ष उनके कार्य में सहयोग दिया। उनके लेखों को पढ़ा। त्रुटियाँ आदि की ओर ध्यान खींचा। वेतनिक सचिव से भी अधिक व्यवस्था से, अत्यन्त निकट सम्बन्धी की आत्मीयता से बौद्धिक सहयोग देने वाले विद्वान् मित्र की तरह उसने ग्रंथ का कार्य किया। डा० राव सोचने लगे, क्या शेष खण्डों को मैं अकेला पूर्ण कर सकूँगा ? जिसके हर तरह के सहयोग से इस महाग्रंथ का निर्माण हुआ, अब वह जा रही है, डॉ० राव को अकेला छोड़-कर। वह यहीं आती तो क्या मैं अकेला काम न करता ? उन्होंने शान्त रहने का प्रयत्न किया, किन्तु व्यर्थ !

वे रात भर नहीं लेटे, नींद भी नहीं आई। सुबह चार बजे उठे। रत्न के हॉस्टल की ओर निकल पड़े। हॉस्टल में कोई अब तक उठा नहीं था, लेकिन रत्न के कमरे में बत्ती जल रही थी। पहरेदार कम्पाउण्ड के फाटक पर सोया हुआ था। उसे उठाकर सूचना दी— कहो रत्न से कहा कि डॉ० राव बुला रहे हैं।

'इतन सीमित अथ से काम चलेगा ?

'मरे लिए ता इतना बस है सोचती हूँ ' ता मुझे एसा ही लगता है। उत्कट भावात्मक क्षणा म मुझ भी लगता है कि पुनज म को मान लना चाहिए। यह आशा स्वाभाविक है कि जा इस जीवन म अप्राप्य है वह भावी ज म म प्राप्त हुआ लकिन यह एक सा त्वना मन की तमल्ली मात्र है।

डा० राव गभीरता स उसकी बातें सुनत रहे। रत्न न पूछा – मरी बात समझ म आयी ?

न जान रत्न ने क्या कहा और डा० राव क्या समझे। फिर भी हू कह दिया। वह भी चुप हो गयी। कुछ क्षणा के बाद रत्ने ने फिर कहा — उदाहरण के लिए आपक जान के पश्चात भी आपके ग्रथ रह जायेंगे। इस दष्टि से आप अविनाशी है।'

शिष्या द्वारा श्रद्धा स कही गयी यह बात सुनकर डा० गव का *शरीर पुलकित हो उठा। फिर भी उ होने कहा — तुम अपनत्व क कारण* ऐसा कह रही हो। तुम्हारे विचारा को मानन का मनाभाव मुझ म नही है सो बात नही। रत्ने तुमम बुद्धिमत्ता है तुम विद्वत्ता की ओर बढ़ रही हो इसी दिशा मे चलती रही तो तुम मुझस भी आग बढ जाओगी।

क्षण भर दोना चुप रहे। फिर नि श्वास छोडत हुए रत्न न कहा हमारे वयक्तिक प्रयत्न करन स क्या होता है ? वाछित सहायता और प्रोत्साहन चाहिए। मागदशन करन वाला भी चाहिए। अ यथा हमारी चेतना का परिपूण विकास नही होता। सच है न ?

सच है।

उस दिन दोना अपन व्यक्तिगत जीवन की सीमा पार कर साधना जगत की बाते कर रहे थ। उनकी आत्माएँ निकट प्रतीत हो रही थी। *सूर्यास्त तक व वही बठे बातें करत रहे। वहा से मदिर तक पहुँचने के* पहल ही विद्युत दीप जल चुके थे। नदी को पीछे छाड आगे बढ़ और सीढ़ियां तक आये तो उ ह कुछ दिखायी नही द रहा था। रत्न न उनका दाहिना हाथ थाम लिया। डा० राव न हँसते हुए कहा— अभी अभी तुमने कहा था न कि मागदशन कराने वाल की जरूरत होती है। तुम न होती तो मैं लौट भी न पाता !

'हाँ हाँ। इस पहाड से उतरने का रास्ता तो मैं नही जानती। आपके बिना मैं कुछ नहा कर सकूगी।' वह हँस पडी।

नाना नीचे उतरे। रात के आठ बज गये थे। चामुडीपुर म ताँगा मिला और उस पर सवार हुए। डॉ० राव वाइसराय रोड पर उतर गये और रत्ने उसी ताँगे म आगे बढ गई।

डा० राव के ग्रथ के प्रथम खण्ड का लेखन काय समाप्त हो गया। उन्होंने दो-तीन बार उसे जाँच भी लिया। जिसे लिखने म पाँच वप लगने का अनुमान लगाया था। वह केवल तीन वर्षों म ही पूण हो गया। रत्न के आने से पहले उन्हे अकेले ही काम करना पडता था। अब काय की गति म तीव्रता आ गयी है। रत्ने की अपनी 'थीसिस' भी पूण हो गयी। उसे उसने विश्वविद्यालय मे प्रस्तुत कर दिया। लेकिन अपने गुरु के प्रथम खण्ड की सामग्री व्यवस्थित रूप म टाइप कर देने के बाद ही स्वदेश लौटने की इच्छा से वह दिन रात परिश्रम करने लगी। छह सप्ताह म काय पूण कर दिया। उसने एक प्रति खुद सुन्दर ढग से पक' की और उसे डा० राव के पत्र के साथ इग्लड क प्रकाशक को भेज दिया।

रत्न की स्वदेश-वापसी की पिछली रात डॉ० राव सो न सके। उसने दो वप उनके काय म सहयोग दिया। उनके लेखो को पढा। त्रुटियो आदि की ओर ध्यान खीचा। वतनिक सचिव से भी अधिक व्यवस्था से, अत्यन्त निकट सम्बन्धी की आत्मीयता स, बौद्धिक सहयोग देने वाले विद्वान मित्र की तरह उसने ग्रथ का काय किया। डॉ० राव सोचने लगे, क्या शेष खण्डो को मैं अकेला पूण कर सकूगा? जिसके हर तरह क सहयोग स इस महाग्रथ का निर्माण हुआ, अब वह जा रही है डा० राव को अकेला छोड कर। वह यहा आती तो क्या मैं अकेला काम न करता? उन्होंने शान्त रहने का प्रयत्न किया किन्तु व्यर्थ।

वे रात भर नहीं लेटे नींद भी नहीं आई। सुबह चार बजे उठे। रत्न के होस्टल की ओर निकल पडे। होस्टल म कोई अब तक उठा नहीं था, लेकिन रत्न क कमरे म बत्ती जल रही थी। पहरेदार कम्पाउण्ड के फाटक पर सोया हुआ था। उसे उठाकर सूचना दी— 'करुण रत्ने स कहो कि डॉ० राव बुला रहे हैं।'

पहरेदार की नींद पूरी खुली न थी। उसने उसी खुमार में कहा—"इस वक्त लड़कियाँ बाहर नहीं आ सकती—यह रूल है।'

उन्होंने झकझोरकर उसकी खुमारी भगा दी और उसे बुलाने के लिए भेजा। रत्ने उसके पीछे-पीछे आ गयी।

चलो टहल आयें।

कमरे में ताला लगा आऊँ।'

वह ताला लगाकर लौटी। कुक्करहल्लि के तालाब की ओर दोनों चल पड़े। सुबह के साढ़े चार बजे थे। रत्ने ने बात प्रारम्भ की—'क्या बात है इतनी सुबह यहाँ उठकर आना पड़ा?'

न जाने क्या रात भर नींद नहीं आई। तुम आज जा रही हो न?

वह बोली नहीं। अपना हाथ बढ़ाकर उसने डा० राव का हाथ पकड़ लिया। एक बार वृन्दावन में डा० राव ने जो बात कही थी वह याद हो आई। दोनों चुपचाप तालाब के पास पहुँचे। पास ही एक लता मंडप देखकर रत्ने ने कहा 'और कितनी दूर जायेंगे। यहीं बैठ जायें।

दोनों बैठ गये। घड़ी देखी पाँच बज गये थे। सारा मैसूर शांत था। सामने तालाब के पानी में कोई हल्की सी भी लहर नहीं थी—शांति-ही-शांति। दोनों समझ ही नहीं पाये क्या बोलें। डा० राव ने पूछा—इतनी जल्दी उठ गयी थी?

मुझे भी रात भर नींद नहीं आई—कहते हुए उसने डा० राव का हाथ जोर से भींच लिया। उभरते दुःख को उसने अब तक दबा रखा था। रात भर जिस बेचैनी का अनुभव किया था उसका स्मरण आते ही वह रोने लगी। सान्त्वना देते हुए डा० राव ने उसे अपनी बाहों में कस लिया। रत्ने ने उनकी गोद में सिर रख दिया।

गत तीन सालों से उनकी परस्पर आत्मीयता गहरी होती जा रही थी। अब दोनों एक दूसरे की आकांक्षाओं को समझ गये थे। एक ही ध्येय को लेकर दोनों का जीवन चल रहा था। कई बार दोनों ने गम्भीर विषयों से हटकर आत्मीयता की बातें की थीं।

रत्ने की मानसिक व्याकुलता को समझकर डा० राव ने कहा—"स्वदेश जाकर क्या करोगी?

"आप तो जानते ही हैं।" कुछ समय चुप रहने के बाद रत्ने ने कहा,

"दूसर खण्ड को आप जल्दी प्रारभ करें।"

तुम्हार बिना नहीं हा सकता।

कृपया एसा न कहे। मैं न आती तो भी आप उसे निपत ही। एक कताय की हैसियत स मैंने आपकी सेवा की है। टाईपिग के लिए आप किसी का नियुक्त कर लीजिए।'

कुछ रुककर फिर बोला—'मेरे बिना भी आपका महाग्रय पूरा होगा। मेरा मन कहता है कि आपसे सम्पक न रहने पर मेरी अल्प शक्ति का सदुपयोग नही हो सकेगा। किन्तु कोई चारा नही।'

अब पछी जाग गये थ। मद मद उजियाला फलता जा रहा था। "उठिए, अब चलें कहकर रत्न न हाथ पकडकर उठाया। दोनो धीरे धीरे चलकर होस्टल पहुँचे। छह बज चुके थ। हास्टल क फाटक के पास पहुँचकर डॉ० राव न कहा— साढे सात बजे गाडी छूटती है। तुम्ह सामान बाधना हो तो जाओ। मैं यही इन्तजार करता हूँ, स्टेशन चलूगा।"

मामान बाँध लिया है। कही दिखाई पडे तो एक तागा बुला लीजिए। अभी चलना उचित होगा। देर हुई तो विदा देने के लिए एक-दो सहेलियाँ आ सकती हैं।"

साढे छह बजे तक स्टेशन पहुँचे। ट्रेन प्लेटफाम पर आ चुकी थी। द्वितीय श्रेणी म मामान रखवाकर दोनो गाडी मे बठ गये। यहा और काई न था। एक दिन पहले ही रत्न न धनुष्कोटि का टिकट कटा लिया था। कुछ समय तक दानो मौन रहे। बाद म रत्ने ने कहा—'प्रथम खण्ड की छपाई का काम एक सप्ताह म प्रारम्भ हो जायेगा। आज ही प्रकाशक का लिख दीजिए कि प्रूफ जाँचने के लिए, अनुक्रमणिका बनाने के लिए, फार्मों का सीधा मेरे सिंहल के पते पर भेजें।' फिर द्वितीय खण्ड के बारे म कुछ बातें हुइ। इतने म उस डिब्बे म और भी यात्री आकर बठ गये। वे इधर-उधर की बातें कर रहे थे कि गाडी छूटने का समय हो गया। घण्टी बजी। डा० राव उतर गये। रत्ने भी उतर आई और डॉ० राव के चरण छूकर नमस्कार किया। गार्ड न सीटी दी। गाडी चलने लगी। खिडकी से रत्ने का हाथ पकडकर डॉ० राव भी गाडी के साथ-साथ चलने लगे। गाडी की रफ्तार बढ़ी और दोनो के हाथ छट गये। रत्ने की

आँखो से आँसू बह चले।

डा० राव द्वितीय खण्ड के लिए अध्ययन करने लगे। व यथावत् सुबह नौ बजे पुस्तकालय जाते। रात के आठ बजे तक पढते लिखते। लेकिन अकेले होने के कारण पहले का सा उत्साह नही रहा। सदभ ग्रथो का ढूढना विषयो के क्रम के लिए निशान लगाना आदि काय स्वय को करने पड रह थ। उनका अधिकाश समय इसी म व्यतीत होन लगा। अपन विद्यार्थी हानय्या की जो एम० ए० करने क बाद अब उन्ही के ही कालेज मे लेक्चरार है मदद लेनी चाही। लेकिन उसकी न अध्ययन म रुचि थी और न शोधकाय म। शादी के बाद वह अब पत्नी के साथ सुखमय जीवन बिताना चाहता था। रत्ले की तरह विद्वत्ता अंग्रेजी पर अधिकार सस्कृत प्राकृत का ज्ञान शीघ्रलिपि टाइप और परिश्रम क प्रति उत्साह दिखाने वाला उन्ह कोई न मिला।

फिर भी डा० राव अपना काय करत रहे। रत्ले के पत्र आ रहे थे कि लदन स प्रूफ बराबर आते रहते है। एक दिन प्रकाशक का पत्र आया जिसमे लिखा था कि छपाई का काम पूण हो चुका है तुरत भूमिका लिखकर भेजिए। डा० राव न भूमिका म महाराज से प्राप्त प्रोत्साहन एव रत्ले से मिली अनुपम सेवा का उल्लख कर प्रकाशक के पास भेज दिया।

एक महीने म खण्ड प्रकाशित हो गया। वह डा० राव के रक्त माम इच्छा शक्ति बौद्धिक ज्ञान एव जीवन की एकमात्र महत्वाकाक्षा के फल-स्वरूप निर्मित महाग्रथ का प्रथम खण्ड था। काली 'स्टिफ' बाइडिंग पर स्वर्णाक्षरो म छपा हुआ था — भारत का सास्कृतिक इतिहास प्रथम खण्ड डा० सदाशिवराव। जिस दिन ग्रथ डा० राव के हाथ आया वे आनन्द विभोर हो उठे। मन ही मन प्रतिज्ञा की कि अन्य खण्डो को लिख-कर ही दम लूगा। रत्ले के पास भी एक प्रति भेज दी। महाराज क निजी सचिव को एक पत्र लिखकर इच्छा व्यक्त की कि व स्वय आकर कृष्ण राजेन्द्र महाराज को ग्रथ समर्पित करना चाहते है। निजी सचिव का उत्तर मिला की महाराज की अस्वस्थता क कारण अभी भेंट होना असम्भव है। स्वस्थ होते ही भेंट की व्यवस्था कर दी जायगी। चार दिन

के बाद समाचार पत्रों में महाराज के स्वर्गवास का समाचार था।

डॉ० राव के अवचेतन में यह भावना सदा रही कि महाराज उनके कार्य में अनुग्रह का हाथ बढ़ाने वाली एक शक्ति हैं। अब वह शक्ति भी नहीं रही। उन्हें चिंता हुई कि अगर फिर बाधाएँ आईं तो कौन रक्षा करेगा? महाराज के निधन पर कालेज में जो शोक-सभा हुई थी, उसमें बोलने के लिए वे भी आगे आये थे। उसी दिन कालेज के विद्यार्थियों और नये प्राध्यापकों ने उन्हें पहली बार प्रत्यक्ष देखा था। स्वर्गीय महाराज को श्रद्धांजलि देकर बैठने से पहले डा० राव ने दो बार आँखें पोंछी थीं।

प्रथम खण्ड प्रकाशित होने से कालेज से सम्बन्धित लोगों में डॉ० राव की कीर्ति और बढ़ गयी। कई प्राध्यापक विश्राम के समय किसी भी विषय पर उनसे चर्चा करना अपना गौरव समझने लगे। अनायास ही भेंट हो जाने पर 'द्वितीय खण्ड का कार्य कहाँ तक हुआ' पूछना, सामान्य शिष्टाचार की बात हो गयी थी। इसी बीच इतिहास विभाग के प्रोफेसर सेवा निवृत्त हो गये। अब इस विभाग को उन्हें ही सँभालना पड़ा। फिर भी वे पुस्तकालय के बाहर बहुत कम आते थे।

जैसे-जैसे दिन बीतते गये, वैसे-वैसे डा० राव रत्न की अधिकाधिक आवश्यकता महसूस करने लगे। किसी भी विद्वान के लिए श्रेष्ठ शोध-कार्य में चिंतन और विषय निरूपण के साथ अन्य कामों की जिम्मेदारी सँभालना कठिन है। छह महीने बीत जाने पर भी द्वितीय खण्ड के लिए उपयुक्त सामग्री का अल्पांश भी तैयार नहीं हुआ। केवल ग्रंथ खोजने, नोट्स लेने में ही सारा समय चला जाता। इसके अतिरिक्त अध्ययन के समय मन में उठती शंकाओं पर विचार विमर्श के लिए योग्य व्यक्ति के अभाव में उनकी स्थिति मरुभूमि के एकाकी यात्री-सी हो गयी थी।

जिसका फिर यहाँ आना संभव नहीं उसे याद करने से क्या लाभ? उसे भुलाने का प्रयत्न कर वे यथाशक्ति अपने आप काम करने की कोशिश करते। लेकिन उन्हें रत्न की जरूरत केवल एक क्लर्क अथवा विद्वान मित्र के रूप में ही नहीं थी। डॉ० राव अपने जिस महाग्रंथ के निमित्त समस्त शक्ति अर्पित कर रहे थे, उन्हें विश्वास था उसी प्रकार रत्न में भी उसके लिए अपना जीवन निछावर करने की शक्ति है। उसकी मदद के बिना अपनी शक्ति के परे काम करना उन्हें नीरस प्रतीत हो

रहा था।

इतन म रत्ने की 'थीसिस' का नतीजा निकला। परीक्षका न उसे 'डाक्टरेट उपाधि दने के साथ-साथ 'थीसिस प्रकाशित करने की भी सिफारिश की। इसकी सूचना एव अपनी ओर से अभिनन्दन भजत हुए डा० राव न लिखा—

तुमन अपने पिछले पत्र म मेरे काय के बारे म पूछा था। वह तो चल ही रहा है। अब मैं अडतीस का हो गया हूँ रात म बहुत ही कम दिखाई दता है। सोलह साल की उम्र से निरतर पढता आ रहा हूँ। कम-स-कम ग्रथ पूण होन तक भगवान् मेरी ज्योति बनाय रख। तुम्हारे न रहन स मरा समय और शक्ति अन्य तयारिया म ही व्यय हो जाती है। प्रथम खण्ड को पाँच वष म पूण करने की याजना थी लेकिन तुम्हारे सहयोग स तीन वष मे ही वह पूरा हो गया। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओ म उसकी प्रशसा हुई है। शष खण्डो को मैं अकेला पूरा कर सकूगा इस बात म मरा विश्वास घटन लगा है। जब तक जिन्दा रहूगा तब तक प्रयत्न तो करूँगा ही। आग भगवान की इच्छा।

आजकल तुम क्या कर रही हो?

एक सप्ताह बाद रत्ने का उत्तर आया—

डाक्टरेट के लिए परिश्रम मैंने किया लेकिन सारा श्रेय आपको ही मिलना चाहिए। आपकी प्रखर विद्वत्ता का ही यह फल है। अगर मुझे वहाँ आना पडा तो उपाधि-पत्र सवप्रथम आपके चरणा म रख दूगी।

'प्रथम खण्ड की समालोचना मैंने देखी है। गव अनुभव हुआ। भूमिका मे मरी सवा की प्रशसा अधिक हुई है। केवल आत्मतृप्ति के लिए मन यथा शक्ति सहयोग दिया है। लेकिन हर वाक्य म उसका जो उल्लेख किया वह आपकी परिपक्वता का द्योतक है। इसे जितनी अधिक आत्मीयता म मैं समझ सकती हूँ और कोई नही समझ सकेगा।

'आपने मेरे कार्यों के बार मे जो पूछा है, अभी तो कुछ नही कर रही हूँ। दो माह पूव मरी माताजी गुजर गयी। इसी दुख म डूबी हूँ। अकेली हूँ। मरे मानसिक जीवन मे प्रवश करने वाला कोई साथी न होने से इस द्वीप म सुप्तावस्थापूण जीवन का अनुभव कर रही हूँ। कभी-कभी सोचती हूँ अगर आप सिंहल के होत और हमारे ही गाँव म रहते, अथवा

मैं मैसूर की होती और वही रहती तो अपने इन ग्रथा के लिए परिश्रम कर पाती। खण्डा को आपके न कहकर अपने वह रही हूँ। जो आत्मा एक बार प्रकाश देख लेती है उसे अधकार मे रहना बडा ही कष्टप्रद लगता है।

पत्र अवश्य लिखा कीजिए।"

गुरु से विदा लेकर अपने देश लौटते समय रत्ने मे अपने माता पिता और भाई स मिलने का उत्साह था। लेकिन उसे इस बात का बडा दुख भी था कि अब कभी गुरु के दर्शन न कर सकेगी। लेकिन स्वदेश लौटने के सिवा कोई उपाय न था। घर पहुँचने के बाद दो-तीन दिन घरवाला से नया-पुराना होने मे बीत गये। फिर थोडा समय भाई के दो बच्चा के साथ खेलने म बीत जाता। किन्तु अब देश मे उसका मन नही लगता था। शोध प्रबंध पूर्ण हो जाने के बाद माता पिता ने अब शादी के लिए आग्रह किया है। उसने स्पष्टत इकार कर दिया कि आगे इस विषय म चर्चा न करें। वह किसी विश्वविद्यालय म प्राध्यापिका बनकर जीवन बिताना चाहती है। माता को इस उत्तर से बडी निराशा हुई।

घर पहुँचने के पद्रह दिन बाद ही प्रथम खण्ड के प्रूफ आने लगे। लगभग दो महीने इस काय म लगी रही। लेकिन अब वह चाहती थी कि उसके काय को डॉ० राव अपनी आँखा स स्वय देखकर ठीक कह देते। इसके बाद पद्रह दिन म उसकी माँ का स्वर्गवास हो गया। शोक मे शोध-काय के प्रति रुचि घट गयी। लगभग महीना भर माँ की याद मे आँसू बहाती रही। अब वह समझने लगी कि शोध-काय म लगे बिना दुख भुलाना कठिन है। अत वही कालेज स, इतिहास-सबधी ग्रथ लाकर पढने लगी। मन मसूर की ओर खिंच जाता। कभी वह सोचती डा० राव के काय म सहायिका बनकर मसूर ही क्या न चली जाऊँ! क्या वहाँ जीवन-यापन के लिए अध्यापिका की नौकरी नही मिलेगी? अपनी इस निष्क्रियता को दूर कर अपनी अतरात्मा द्वारा प्रेरित काय म प्रवृत्त हुए बिना, चन से जी नहीं सकूगी! वह इसी उधेड-बुन म थी कि उसे डॉ० राव का पत्र मिला—

कई दिनो की मानसिक विकलता का अनुभव करने के पश्चात् यह

पत्र लिख रहा हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है तुम इसे सामान्य दृष्टि से नहीं देखोगी। हम दोनों का सम्बन्ध केवल गुरु शिष्या का ही सम्बन्ध नहीं रहा है। हम एक महान ग्रंथ के निर्माण में लगे हुए दो जीव हैं। हमारी आराध्य देवी एक ही है। उसकी सेवा में जीवन निछावर करने वाले हम दो भक्त हैं। *उसकी पूजा करना हम दोनों के लिए आवश्यक है।* एक का कार्य मंत्र पठन है और दूसरे का नृत्य। एक पूजा के लिए उद्यत होता है और दूसरा फूल चन्दन अक्षत तैयार करता है। ऐसी सेवा में ही उपासना निरन्तर चल सकती है।

'न वहाँ तुम्हें अपनी आत्मा की पुकार दबाकर छटपटाने की जरूरत है और न यहाँ मुझे असहाय होकर कराहने की। पत्र पाते ही तुरन्त चली आओ। शोध-कार्य के लिए तुम यहाँ रह सकती हो। तुम्हें अपने खर्च के लिए अपने पिता से पैसे माँगने की जरूरत नहीं। प्रकाशक ने रायल्टी की आधी रकम भेज दी है। वह तुम्हारे लिए चार वर्ष के लिए काफी होगी। अगर तुम यह नहीं चाहती तो हम दोनों शादी कर लेंगे। इस दाम्पत्य से अपनी आकांक्षा के रूप में हम इस ग्रंथ को मेरी मृत्यु से पहले ही तैयार कर लेंगे। *पत्रोत्तर न दो। तुरन्त चली आओ।*

पत्र की अंतिम पंक्तियाँ पढ़कर रत्ने का शरीर पसीने से तर हो गया। मैसूर में कई दिनों तक दोनों में आत्मीयता से बातचीत हुई थी। अत्यन्त प्रेमपूर्वक जीने वाले दम्पति के स्नेह की अपेक्षा इनकी परस्पर वार्ता में अधिक आर्द्रता रहती थी। जिस दिन रत्ने मैसूर से रवाना हो रही थी, उस सुबह डा० राव ने तालाब के पास उसका आलिंगन किया था। उसका सिर उनकी गोद में था। ऐसे संदर्भों में भी उसके मन में उचित-अनुचित का कोई प्रश्न नहीं उठा था। बाह्य जगत का अनुभव न था। उन क्षणों में उसके साथ कोई था तो विद्या सागर में तैरता एक विद्वान जो उसकी सेवा की चाह रखता था। अब भी वह अकेला है। उसे रत्ने की सेवा की आवश्यकता पहले की अपेक्षा आज अधिक है। *लेकिन जब विवाह-बंधन की बात आई तो उसके मन में अनेक* समस्याएँ उठ खड़ी हुईं। वे गृहस्थ हैं। घर में पत्नी है, एक संतान भी है। वह जानती थी कि उनके मन में अपनी पत्नी के प्रति कैसी भावना है। उसने सोचा कि नागलक्ष्मी के विवाहित जीवन में मेरा प्रवेश विष

का बीज बाना है जा नितात अनुचित है। इस सबध को रत्न ने कभी नीति-अनीति की दप्टि स नही देखा था, आज भी नही। भविष्य म भी देखन वाली नही। उसकी दप्टि म यह केवल सामाजिक प्रश्न है—पति के विमुख होन पर भी उस श्रद्धा भक्ति से दखन वाली एक नारी का प्रश्न है। उसन जब गहराई से साचा कि क्या उस साध्वी से पति को छुडाकर उनके साथ शादी करना उचित है ? उसे याद आया कि उनमे जो निकटता उनके जीवन का द्विमुख बनकर रहना चाहिए था, उसे सूखे कई साल बीत गये हैं।

वह यह भी साचने लगी कि क्या दोना पत्नियाँ एक ही घर म रह सकेंगी ? रत्ने आधुनिक युवती है। कम्ब्रिज की छात्रा रह चुकी है। उसका आधुनिक मन प्रारम्भ से ही द्विपत्नी प्रथा के विरुद्ध रहा है। जिस तरह एक पत्नी का एक ही समय दा पतिया के साथ निभाना कल्पनातीत है उसी तरह एक पति का दो पत्नियो के साथ निभाना असाध्य है। या ता मैं उनकी पत्नी रहूँगी या उनकी आज की पत्नी। यह सत्य है कि वे मानसिक रूप म आज अपनी पत्नी के पति नही हैं। जब उन दाना के बीच का सम्बन्ध-सूत्र इतना क्षीण हा चुका है तब अगर मैं उनसे शादी कर भी लू तो नागलक्ष्मी का क्या हानि होगी ?

इस जटिल समस्या को वह सुलझा न सकी। जसे-जसे साचती उलझती जाती। स्वदेश स विदश जाकर एक विधर्मी विदशी से विवाह, जिसकी पत्नी अभी जीवित है एस विवाह के लिए उसके पिता या भाई तैयार नही हाग। माँ की मत्यु म पहले ही मुरझाय हुए उनक सतप्त मन का यह खबर सुनाकर और ठेस पहुँचाना नहा चाहती। पिता से इतना अवश्य कहा— आप जानत ही हैं मरी इच्छा क्या है। कम से-कम माँ की मत्यु का दु ख कम करन के लिए मुझे अध्ययन म लग जाना होगा। मेरे प्राध्यापक न लिखा है 'तुम चली आआ तुम्हे छात्रवृत्ति मिलन की सभावना है। मैं जाना चाहती हूँ।'

पिता न तुरन्त स्वीकृति नहीं दी। भाई का भी यह पसन्द नही था, लेकिन वह बहन की अभिरुचि और इच्छा शक्ति स परिचित था। भाई न उसक आग्रह का मान लिया तो पिता स भी स्वीकृति मिल गई। अपन कपडे लत्ते बाधकर पिता के चरण छुए और घर से निकली तो

उसकी आँखो से आँसू छलक पडे। 'बेटी तेरे मन को शाति मिल' —पिता ने आशिष दी। पहुँचाने के लिए भाई स्टेशन तक आया। भारी मन से उसने कहा— 'तेरी शादी का समय अभी बीता नही है। जब शादी की इच्छा हो मुझ निस्सकोच लिखने न भूलना। मैं योग्य वर की खोज करूँगा।

भाइ के चरण छकर गाडी म चढी तो मन कह रहा था शायद फिर देश न लौट सकू।'

१०

नाटक म अभिनय के पश्चात कात्यायनी का नाम कालेज म प्रसिद्ध हो गया। लेडीज रूम म बठनेवाली लडकिया ने उससे परिचय कर लिया। लेकिन कात्यायनी गभीर रहती। अत उससे कोई भी ज्यादा नहा बोलती। गत वप उसके साथ आनवाली वासती को छोड और कोई सखी नही थी। हाँ परिचित तो कई थी।

अगस्त म मूलतत्त्व नाटक प्रस्तुत किया गया था। कालेज के प्रारभिक दिनो म किसी न पढाई की ओर ध्यान नही दिया था। नाटक के कथनो-पकथन कण्ठस्थ कर लेने म कात्यायनी को एक माह लगा था। नाटक के बाद पूववत अपने अध्ययन म लग गई। उस नाटक का हर वाक्य अभी तक उसकी स्मृति म घूमता रहता था। पढने बठती तो पन्ने पलटती जाती लेकिन पाठ समझ म न आता। नाटक का हर दृश्य हवा म चुटकी चुटकी छोडी गइ रुई की तरह कल्पना म उभरता रहता।

पढाई म मन न लगने पर कात्यायनी नीचे उतर आती। पूजागह म पूजा के समय ससुर द्वारा पठित मत्र घटा घोष-सा कानो म गूजने लगता। मत्र-ध्वनि से वह नाटक की बातें भूल जाती। रसोईघर म चीनी से बातें करती हुई भागीरतम्मा रसोई बनाती। अकस्मात कही से बाहर आती और बहू को देखकर तो कहती— काम मैं कर लूगी तू पढ ले

परीक्षा रती है।' ऊपर जाकर वह फिर पढने का प्रयास करती लेकिन निष्फल। वह नीचे उतरकर घर के बगीचे म चली जाती।

एक दिन सुबह कात्यायनी बगीचे म गई। कुछ दिन पहले लगाये गये कले के कम खड-खडे मुस्करा रहे थे। अन्य पौधे भी हरियाली लिये लहलहा रहे थे। घर के पिछवाडे का स्थान भी हरियाली मे आच्छादित था। कात्यायनी को सबसे अधिक आकर्षित कर रही थी मोगर की लताएँ। उसके आधारस्वरूप रोपा गया पौधा अब अपनी जडें फैला चुका था। मोगर का बेल अपनी सुकुमार बाँह प्रेमपूवक फलाकर उसकी तरुण बाहो मे लिपट गई थी। प्रात सूय अपनी शुभ्र किरणा को सभी दिशाओ म बिखेर रहा था। उस प्रकाश मे मोगर की लताएँ चुपचाप अपने आश्रय को दृढतापूवक पकडे खडी थी। उनकी इस चुप्पी म ही चेतना रूप और सौन्दय प्रस्फुटित हो रहे थे। मोगर की लता म क्या है? पास जाकर कात्यायनी ने लता को आहिस्ता स स्पश किया। बाह्य जगत के कृत्रिम कलक म न डरते हुए वह अपने मूलधम के अनुसार लहलहा रही थी। उसके हर पत्ते के बीच म अपना मुख छिपाकर कलिया खेल रही थी, झूम रही थीं। लता प्रतिदिन ढर सारे फूल देती थी।

कात्यायनी के कानो म नाटक की बातें स्पष्ट सुनाई पडती—"जो प्रकृति चिरनूतन है चिर चेतन है, उस कृत्रिम धम के बन्धनो म बाँधना अधम है न देवगुरु? मेरा मूल गुण ही चेतन है। मन को हर्षित कर देने वाली वनश्री आँखो को तृप्त कर देने वाले सुन्दर दृश्य चराचर जीवियो को अन्न देने वाली मेरी व्याप्ति, इन पर किसी भी वधव्यपूण धम का स्पश नहीं हो सकता।

कात्यायनी अब तक इन बातो का केवल अथ समझ रही थी। आज हँसती हुई मोगर की लता के सम्मुख खडे होकर उसके भाव का भी अनुभव किया। उस भाव के अनुभव म उसका पूरा शरीर काँप गया। नाटक म कैसी चिरन्तन सत्य बातें भर दी हैं उन्होने कहकर मन ही मन राज की कल्पना की सराहना की। तुरन्त उसका चित्र आँखो के सामने नाच उठा। नाटक के पश्चात राज ने उसका हाथ पकडा था उस बात का स्मरण करके उसे सूक्ष्म रोमाच हुआ। यह भी स्मरण हो आया कि बाद म भाषण देते हुए कुलपति ने उसके नाम के पहले मिस शब्द लगा

कर उसके अनिवाहित होने का सकन दिया था। एक असह्य अवर्णनीय चेतना उसके व्यक्तित्व को घेरकर उसके शरीर को कँपाने लगी। उसके प्रहार को सहन म अपने को असमथ पाकर वह जमीन पर चुपचाप बठ गई। न जाने कितना समय या ही बीत गया।

धुधली विस्मृति म बठी कात्यायनी को देखकर सास न कहा—'अरे यहाँ क्या बठी है? समय हो गया। चल भोजन कर ले।

भीतर भोजन करने बठी लेकिन मन न लगा। रोज की तरह किताबें और टिफिन करियर लेकर स्टेशन पहुँची और ट्रेन म बठ गई। चलती गाडी से प्रकृति का चिरनूतन रूप दिखाई दे रहा था। गाडी के माग म पडने वाली नदी, नाना आम के हरे भरे वृक्ष, लहलहाती फसलें सभी प्रकृति की चिर-नूतनता दिखा रहे थे। थोडी दूर पर स्थित चामुंडा-पहाड हरी साडी पहन खडी अदभुत स्त्री के समान दीख पडा। उसके चारो ओर मँडराते बादलो को देखकर उसे ऐसा लगा मानो उसका प्यार पाने के लिए कोई पुरुष आ रहा है।

उस दिन पहला पीरियड था अंग्रेजी कविता का। राज इस साल अंग्रेजी कविता पढा रहा था। उन दिनो कीटस का द ईव आफ सेंट आग्नस पढाया जा रहा था। भाव को इस तरह मग्न होकर समझाना कि छात्रो का मन राग रंजित हो उठता। सारी कक्षा म ऐसी नीरवता छा जाती कि सुई के गिरने की आवाज भी सुनाई पड जाय।

कात्यायनी सोचती, इस वणन म आनेवाला दृश्य भी प्रकृति की मूल चेतना म व्यक्त एक स्वरूप ही है। उस दिन वह नोटस नहा ले सकी। भाव विभोर हो कविता के भाव समझाने वाले राज को वह अपलक देख रही थी। वही नही, सारी कक्षा राज को देख रही थी। वह यद्यपि अन्य प्राध्यापको की तरह सारी कक्षा को देखता रहता किन्तु बीच-बीच मे कात्यायनी को विशिष्ट दृष्टि से देखता। इस वह ताड गई थी। उस दिन तो राज न अप्रत्याशित अधिक बार उसे देखा। इस दृष्टि का सामना करने म अपने को असमथ पा कात्यायनी अपनी दृष्टि पुस्तक की ओर फेर लेती लेकिन एक अव्यक्त मधुर शक्ति फिर निगाह ऊपर उठाकर राज को देखने के लिए विवश कर देती।

राज बचपन से ही नागलक्ष्मी के पास पला था। पहले तो उसने उसे वात्सल्य महली के रूप म और बाद म भाभी के रूप म देखा। एम० ए० कर लेने के पश्चात नौकरी पर लग गया तो लोगों म उसे अपना दामाद बनाने के लिए होड सी लग गई थी। नागलक्ष्मी सोचती कि अगर राज की शादी हो जाय तो घर का सूनापन कम हो जायगा। लेकिन वह शादी के लिए तयार न था। वह छात्रवृत्ति पाकर इंग्लैड जाने की कोशिश में रहता था। उसका विश्वास था कि एक न-एक दिन वह अपने प्रयत्न म सफल होगा। इसी विचार से वह अब तक शादी टालता रहा था। नागलक्ष्मी चाहती थी कि छात्रवृत्ति मिलने पर विदेश जाने म पहले राज की शादी हो जाय, लेकिन डा० राव ने इसका अनुमोदन नहीं किया। विदेश म रहने से उसमे विवाह की रूढ़ियों को तोडने का मनोभाव जाग गया था। मैसूर लौटकर कालेज म प्राध्यापक बनकर आया तो डॉ० राव से उसने कहा—"मुझे शादी ही नही करनी है।" इस इरादे के कारण वे भाई के गले जबरदस्ती किसी लडकी को बाँध देने को तयार न थे। अपने जीवन की ओर दृष्टिपात करने पर उन्हे राज की बात ठीक जान पडती। इसलिए उन्होने स्पष्ट कह दिया—"इच्छा होने पर उसकी मन पसद लडकी से शादी करा देना हमारा कर्तव्य है।" राज के नाटक सघ के चारों ओर मँडराने वाली कुछ आधुनिक लडकियाँ स्वय राज से शादी का प्रस्ताव रखने के लिए तैयार थीं। इसे वह भी भाँप गया था। लेकिन उनम से कोई भी उसके मन को लुभा सकने म सफल नहीं हुई। जब कहीं ऐसी बातें उठने की सभावना होती वह वहाँ से होशियारी से खिसक जाता था।

राज का मन पूर्णत कात्यायनी के प्रति आसक्त हो चुका था। उसकी आँखो म कात्यायनी का रूप छाया हुआ था। उसकी याद म रात भर करवटें बदलता रहता था। भोजन के प्रति भी उसकी रुचि नहीं रही। नाटक के प्रति जो उत्साह था वह भी कम होने लगा था। कात्यायनी अविवाहित होती तो अपनी इच्छा अब तक व्यक्त कर देता। लेकिन उसकी स्थिति राज के साहस को कुंठित कर देती। जब उसने यह समझ लिया कि वह उसके प्रति कुछ लगाव छिपा रही है तो उसे थोडी-सी सान्त्वना मिली। उसने निश्चय कर लिया कि इस अनिश्चित परिस्थिति

को समाप्त करके किसी एक निष्कष पर पहुँचेगा।

एक दिन कालेज म कात्यायनी से उसने पूछा—"कल आप कालेज आयेंगी न?

'कल छुटटी है न!

कोई बात नही। आपसे मुझे एक महत्त्व की बात करनी है। कल आइए। मैं सघ के कमरे म मिलूगा अय कोई नही होगा। बेझिझक बातें कर सकेंगे।

पूछ सकती हूँ कि बातें किस विषय पर होगी?

इतना सरल विषय नही है कि खडे खडे बातें कर लें। मुस्कराते हुए लेकिन दढता से राज ने कहा।

दूसरे दिन दस बजे स पहले ही राज नाटक सघ के कमरे म जा बठा था। मन छटपटा रहा था। मस्तिष्क म अनजान उद्विग्नता भरी थी। उसने दस बीस बार सोचा कि बात किस तरह प्रारभ की जाय। कोई समुचित उपाय नही सूझा। आखिर वह इस निष्कष पर पहुँचा कि उस समय जो भी सूझ जायेगा वही ठीक होगा। इतने म कात्यायनी कमरे म आ पहुँची। रोज की तरह उसके हाथ म पुस्तकें और टिफिन था। 'भीतर आइए खडे होकर राज ने कहा। वह हिचकिचाती हुई बाहर ही खडी रही। दुबारा बुलाया तो भीतर गयी और कुर्सी पर बठ गयी। वह चुपचाप लेकिन मानो किसी निश्चित विषय की प्रतीक्षा म बठी थी। राज दो चार मिनट सोचता रहा फिर उसने पूछा—"आप जिस गाडी स रोज चलती हैं वह कितने बजे यहाँ पहुँच जाती है?

'दस बजे।

फिर मौन! नये विषय का खोजकर राज ने पूछा— आप पहले से दुबली हो गई है।

कात्यायनी ने सिर उठाकर उसे देखा। अपनी असम्बद्ध बात पर राज को हँसी आ गई। कात्यायनी के चेहरे पर मद मुस्कान खेल गई। अब गभीर होकर राज ने पूछा— घुमा फिराकर पहली बुझाने की जरूरत नहा। क्या आप जानती है कि मैंने आपको क्या बुलाया है?

जी नहा।'

'एमा कहकर आप सत्य स दूर भाग रही है। कोई बात नही! अब

आप और मैं केवल छात्रा और प्राध्यापक नहीं हैं। यद्यपि हम दोनों में से किसी ने कुछ कहा नहीं, किन्तु बात आप भी जरूर जानती हैं। सच है न?'

वह खामोश बैठी रही। राज ने ही कहा—'आपके लिए मेरा मन तड़प रहा है। मैंने सोचा था मैं इस जिन्दगी में कभी शादी नहीं करूँगा। लेकिन अब यह निर्णय हिल गया है।

यह सुनते ही कात्यायनी को पसीना आ गया। यद्यपि यह अनपेक्षित नहीं था किन्तु उसका मन अभिमान, आश्चर्य और आनन्द से पुलकित हो उठा। साथ ही उस परिस्थिति का स्मरण हो आया जो नये अनुभव के दिनों में कभी स्पष्ट न थी। अपने पुत्र, सास-ससुर, पति का स्मरण एक साथ उसके स्मृति पटल पर दौड़ गया। उस अपनी द्वंद्व-परिस्थिति का बोध इतना स्पष्ट कभी नहीं हुआ था। अब उसे अपने अस्तित्व के द्वंद्व का तीव्र आभास होने लगा।

चुप क्यों हैं?

मेरी परिस्थिति से आप पूर्णतः परिचित हैं न?

हाँ! यह भी जानता हूँ कि आपका एक बच्चा है। इंग्लैंड में मैंने देखा है कि प्रथम पति की संतान होने पर विधवाएँ पुनः शादी कर लेती हैं। वे बच्चे भी माँ के साथ रहते हैं। आपका वह पुत्र भी मेरा पुत्र है। मैं उसे प्यार करूँगा।'

जिस द्वन्द्व के बारे में कात्यायनी कहना चाहती थी, उसके एक अंश का उत्तर राज ने स्वयं दे दिया था। लेकिन यह उसकी परिस्थिति का पूर्ण हल नहीं था। उसने कहा—'मेरे सास-ससुर हैं। उनके कुल-गौरव गाँव में मान सम्मान आदि के बारे में भी सोचना पड़ेगा।

'कात्यायनी यह प्रश्न नया नहीं है। यह तुम अकेली का प्रश्न नहीं। क्षमा करना मैं एकवचन में बोल रहा हूँ'—कहकर वह उसके चेहरे की ओर देखने लगा। कात्यायनी की असम्मति का कोई संकेत दिखाई न पड़ा तो उसने आगे कहा मान-सम्मान का प्रश्न तो मानव जीवन में आनेवाले समस्त विरोधों का मूल है। 'मूलतत्व' नाटक में मैंने इसी समस्या को तो प्रस्तुत किया है।

कात्यायनी की चुप्पी को राज उसकी मौन-सम्मति मानकर उसका

हाथ पकडकर कहन लगा 'क्या कहती हो ? मन क मूल धम से अन्याय करना अनुचित है तुम्हे भी इतना समझ लना चाहिए ।

कात्यायनी न हाथ नही छुडाया। उसका मन प्रचण्ड विचार भवर मे फँसा चक्कर काट रहा था । वह समझ नहा पा रही थी कि क्या हो रहा है । कुछ देर बाद वह शात हुआ। मेरी बात का जवाब दो कहकर राज न उसका हाथ दबाया।

आपके बिना मैं जी नहा सकती' कात्यायनी न कहा।

दोना क मन को शाति मिली । झझावात की दो लहरें जस परस्पर मिलकर शात होती है उसी तरह इन दोनो को शाति मिली । लगभग एक घण्टे तक दोना बातें करत रह। इसके बाद कात्यायनी न नागलक्ष्मा से मिलना उचित समझा लेकिन राज न भाभी को अभी इस सम्बन्ध म कुछ बतान स मना कर दिया। कमरा बन्द कर वह भी साथ हो लिया।

दिन भर कात्यायनी का मन प्रफुल्लित रहा। शाम को ट्रेन म बठा तो लग रहा था मानो आज सारी प्रकृति आनन्द म हँस रही है। अब तक सिद्धि सौन्दय के बिना केवल अपने चतन्य स लहलहानेवाले प्रकृति सौन्दय मे एक नया अथ दिखाई देने लगा। सूखी हरियाली म अब फल लगने वाले थ।

शाम का घर पहुँची। रात के भोजन के पश्चात लेटी तो कात्यायनी का मन विपरीत दिशा म घूमन लगा। परीक्षा की तयारी के लिए इस साल ऊपरी मजिले म वह अकेली सोती थी। चीनी नाच दादी के साथ सो जाता था। लक्ष्मी भा भागीरतम्मा के कमरे म सोना थी। अनायास ही आज कात्यायनी को कालेज का पहला दिन स्मरण हो आया। सास ससुर क चरण छूकर जिस उद्दश्य स वह कालेज गइ थी, उसकी याद हो आई। अपने स्वर्गीय पति के अपूण काय अपूण इच्छा का पूण करने क उद्देश्य ने उसके मन को विचलित कर दिया। उसके बताय हुए कारण स सास और खासकर ससुर, दोनो न तुरत अनुमति द दी थी। फीस पुस्तकें रेल किराये आदि के लिए ससुर स काफी पस मिलते थे। अब कुछ समय स घर के हिसाब किताब की जिम्मेदारी भी उसी पर आ पडी थी। बच्चा चार साल का हो गया है। अगले वर्ष उस स्कूल भजना पडेगा। इस [illegible] का स्पष्ट चित्र जब उसकी आखो के सामने उभरा तो उस लगा

बजे नीचे उतरकर उसने स्नानगृह में हाथ पैर धोये। वहाँ से पूजागृह में जाकर भगवान् को नमस्कार किया। वह ऊपर जा रही थी कि बैठक में पड़े रहे श्रोत्रियजी ने पूछा— क्या बेटी अभी सोई नहीं?

भगवान को नमस्कार करने गयी थी।'

अच्छा! जल्दी सो जाओ।

वह ऊपरी मंजिले पर पहुँची। अभी तक ससुर को पढ़ते देखकर उसने अपने-आप निश्चय कर लिया कि परीक्षा के पश्चात् श्रद्धापूर्वक रोज उनसे भगवद्गीता उपनिषद का अध्ययन करेगी।

एक सप्ताह तक कात्यायनी राज से नहीं मिली। कक्षा में भी नहीं गयी। इस डर से कि किसी के द्वारा बुलवा न ले, वह लेडीज कामन रूम में भी नहीं बैठती। उस सप्ताह उसकी मन स्थिति बड़ी विचित्र रही। दौड़कर उनसे मिलू—ऐसी एक अदम्य अभीप्सा उसके संयम को चीरकर ऊपर उठती। लेकिन वह उसे दूनी दृढ़ता से दाब देती। वह आस-पास की प्रकृति के बारे में अब नहीं सोचती। अचेत स्वरूप प्रकृति के चेतन रूप में वह स्वयं प्रचण्ड द्वन्द्व-स्थल जो बन गयी थी। धर्म, समाज, नीति आदि काल्पनिक और कृत्रिम रूढ़ियाँ उतनी ही प्रचण्ड शक्ति के साथ फनी हुई था। उसके मन में यह जानने की उत्कट जिज्ञासा थी कि ये केवल अभ्यास बल से प्राप्त विश्वास हैं या उसकी अन्तरात्मा के मूल्य स्वरूप? लेकिन जिज्ञासा के सूत्र को पकड़कर सत्य को ढूंढना उसकी बुद्धि के परे था। कारण उसके मन में जो इन दो शक्तियों की युद्धभूमि थी, जिज्ञासा के लिए आवश्यक शांति और सहन शक्ति का अभाव था।

एक दिन रात भर उसे नींद नहीं आई। कर्म धर्म की बात सोच-सोच-कर उसका दिमाग खाली हो गया था। अन्तरात्मा से उपजी मन की

पुकार के सम्मुख शेष समस्त भावनाएँ लुप्त हो गयी थी। वह आधी रात के समय खिडकी के पास खडी होकर बाहर देख रही थी। अभिषिक्त सी पूर्ण चादनी में मोगरे की लता नये आम्र-वृक्ष का आलिंगन कर मुस्कराती खडी थी। सुबह तीन बजे तक वही दृश्य देखती रही। तब श्रोत्रियजी जागे। पिछवाडे बगीचे से होते हुए वे गुडल नदी की ओर चले गये। कात्यायनी खिडकी के पास ही बैठी थी। श्रोत्रियजी लौटे। कपडे लेकर सामने के द्वार से वे स्नानघाट की ओर गये। कात्यायनी को सब सुनाई दे रहा था।

शेष दो घण्ट का समय बडी मुश्किल से बिताकर वह नीचे आयी। अब तक वह एक दृढ निश्चय पर पहुँच गयी थी। स्नान करके कपडे पहने। टिफिन लिया और बगीचे से चमेली के पुष्प चुने। लम्बी-पतली माला बनाई। कदली पत्र में लपेटकर उसे अपने रूमाल में रख लिया। भोजन करके घर से निकली तो माँ जल्दी आना—चीनी की यह आवाज उसे स्पष्ट सुनाई नहीं दी। ट्रेन के धीमी गति से चलने के कारण उसे मन में कोसती हुई वह चामराजपुर स्टेशन पर उतरकर कालेज पहुची। अभी सवा दस बजे थे। साढे दस बजे राज का पीरियड था। इस विश्वास से कि राज अब तक आ गया होगा वह सीधे प्राध्यापक-कक्ष के द्वार पर पहुँची। चपरासी से राजाराव को बुलाने के लिए कहा। वह बाहर कात्यायनी को देखकर हर्षित हो उठा। उसके इतने दिनों से ' वाक्य पूर्ण करने से पहले ही कात्यायनी बोल उठी, आज छुट्टी ले लीजिए कहीं एकान्त स्थान पर जायेंगे। मुझे आपसे बहुत कुछ कहना है। कालेज के पीछे खडी रहो दो मिनट में आता हू कहकर राज भीतर चला गया।

राज अपनी साइकिल लेकर आया। दोनों चल पडे। कुक्करहल्लि के पेडों की छाया में चलते हुए राज ने पूछा 'इतने दिन मेरी नजरों से छिपती क्या रही?'

'अभी कुछ मत पूछिए। चलिए कहीं बैठकर बताऊँगी अब कभी ऐसी भूल न होगी।

चारों ओर हरे भरे खेत फैले थे। उनके बीच कहाँ-कहीं ऊँचे हरे पेड खडे थे। आधे घण्टे तक चलने के बाद भी लोग रास्ते में घूमते हुए मिलते रहे। अंत में राज ने कहा, तुम साइकिल पर बैठ जाओ। जल्दी जा

सकेंगे। कुछ दूर और चलेंगे तो लोग नहीं मिलेंगे।"

मुझे साइकिल पर बैठने की आदत नहीं है, गिर गयी तो ?'

'मेरी पकड़ में रहोगी, गिरने का प्रश्न ही नहीं उठता' और वह कात्यायनी के चेहरे की ओर देखकर हँस पड़ा। कोई देख लेगा इस संकोच से वह हिचकिचाई लेकिन राज ने उसका हाथ पकड़कर साइकिल पर आगे बैठाया और फिर स्वयं सवार हो गया। कात्यायनी का मन एक साथ अनेक छोटे-बड़े विचारों में उलझा हुआ था। उसे दोनों हाथों से घेरकर राज हैंडल पकड़े हुए था। शरीर को थोड़ा झुकाकर पैडल मारता तो कात्यायनी उसकी छाती से सट जाती। आते जाते लोग उन्हें देखते। दो मील जाने के बाद राज ने पूछा— और कितनी दूर चलेंगे ?

'मरने तक चलते चलो।

और एक मील जाने पर एक गाँव मिला। वन-समूह, तालाब आदि को पारकर लगभग चार मील और आगे बढ़े। उस निर्जन क्षेत्र में एक झरना मिला। झरने के पास उतरे। राज साइकिल लिये हुए मुख्य मार्ग छोड़ छोटे जंगल की ओर बढ़ा। लगभग दो फर्लांग चलने पर निर्जन स्थान मिला। छोटे छोटे वृक्षों से आवृत वहाँ एक झरना बह रहा था। वहीं साइकिल रखकर राज ने कहा— यहीं बैठें।'

कात्यायनी घास पर बैठ गयी। बगल में बैठते हुए राज ने पूछा— 'अब कहो, तुम इतने दिनों तक मुझसे छिपती क्यों रही ?

दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए उसने कहा— मन में एक अजीब-सा द्वन्द्व चल रहा था। कल रात ही निर्णायक स्थिति में पहुँची हूँ।

कात्यायनी का हाथ पकड़कर राज ने प्रश्न किया— क्या द्वन्द्व अब भी है ?

'आप हाथ पकड़े रहते हैं तो नहीं रहता। सदा के लिए पकड़े रहें ताकि फिर वह कभी न उठ सके।'

राज की दृष्टि रूमाल में रखी पुष्पमाला की ओर गयी। सुगंध से यद्यपि वह जान गया था, फिर भी पूछा— 'इसमें क्या है ?'

'आपके लिए ही लाई हूँ' कहकर रूमाल खोलकर माला हाथ में लेकर उसने उसे राज को पहनाना चाहा। बैठी हुई कात्यायनी की विशिष्ट भंगिमा, पहनी हुई साड़ी, हाथ में पुष्पमाला देखकर राज की आँखें चौंधिया

गया।

'कुछ समय बाद पहनाना। तब मिनट या ही बैठी रहो।' और वह उसे अपलक निहारने लगा।

कात्यायनी लगभग तईस वर्ष की सुन्दर युवती थी। मनमोहक रूप था। गठा शरीर चमक रहा था। चलती तो चरण एस लाल-लाल हो उठते मानो रक्त प्रस्फुटित होना चाह रहा हो। चाँदनी-सा रंग था। अँगुलियाँ इतनी सुन्दर कि केवल चित्रकला में ही चित्रित की जा सकती है। शरीर पर कोई आभूषण नहीं। सुन्दर घने घुँघराले काले बाल पीठ पर सर्पिणी-से लटक रहे हैं। गंभीर लेकिन मुस्कराता चेहरा। स्त्री-सुलभ रूप सुकोमल अंगों में प्रस्फुटित हो रहा था।

आश्चर्य से राज उसे देख रहा था।

'ऐसे क्या देख रहे हैं आज?'

आश्चर्य! मैंने मूलतत्त्व संबंधी अपने एक स्वप्न की बात कही थी न! उसमें तुम इसी सुंदर भंगिमा में—इन्हीं मोहक अंगों सौम्य भावों में—स्वप्न में दिखाई पड़ी थी। इसी तरह हाथ में माला थी, लेकिन वह लाल गुलाब की थी। वह निर्वस्त्र थी किन्तु तुम सफेद साड़ी में हो।

लज्जा से कात्यायनी ने सिर झुका लिया। फिर पूछा—'क्या मैं ही आपके नाटक की प्रेरणा थी?'

"हाँ अब ऐसा आभास हो रहा है।

'तब क्या नहीं कहा कि स्वप्न में मुझे ही देखा था?'

'तब हममें इतनी निकटता नहीं थी।

राज अब भी अपलक उसे निहार रहा था कि कात्यायनी ने पुष्पमाला उसके गले में डालकर अपनी आँखें मूंद लीं। राज ने धीरे से भुजाएँ पकड़ उसे अपनी गोद में लिटा लिया और अपनी बाँहों में कस लिया। चारों ओर हरियाली की चेतना लिये वृक्ष खड़े थे। झरने का मन्द मन्द झरता पानी प्रचण्ड चैतन्य का प्रतीक हो उठा था। गले में पड़ी चमेली की माला की सुगंध ने उन दोनों को असाधारण मनःस्थिति में पहुँचा दिया। युवती के अपूर्व स्पर्शानुभव से राज काँप उठा। पुरुष के सामीप्य से प्रकृति उन्मत्त होकर उस अचेत स्थिति में भी उसका चैतन्य अपनी मूल शक्ति लिए नाच रही थी। अधखुली आँखों से उसके मोहक मुखड़े को निहारते हुए

राज न कहा, प्रकृति !'

'प्रकृति विधवा है ?'

चिर-नूतन चिर चेतन प्रकृति पर धम की पाबदी लादना अधर्म है।

नाटक के कण्ठस्थ वाक्य कात्यायनी को स्मरण हो आय। उसी धुन म तन्मय होकर उसन कहा— चेतना ही मेरा मूल गुण है। मन को हर्षित कर देनवाली वनश्री आखो को तृप्त करन वाले य सुदर दृश्य, वह बहता झरना क्या इन पर कोई भी धम वधव्य की छाह छोड सकता है ?'

दोनो मौन ! व अगाध चेतनायुक्त नि स्त धता म अपन-आपको भूल गय। दोपहर का सूय पश्चिम की ओर झुक रहा था। अपन गल का हार उसक गल म भी डालकर एक माला म आबद्ध हो राज न पूछा— 'अब तुम्हारा अ तद्व द्व रुक गया ?

वह अवणनीय अनुभव की मौनावस्था म थी। राज न उसके चेहरे को ऊपर उठाते हुए पूछा—' अब कहो, मन शा त हुआ ?

धीरे स नि श्वास छोड अपनी अनुभूति को तात्पय रूप म समझाने की आवाज म बोली— मैंन कई बार सोचा है ! मुझ म द्व द्व कभी मूल रूप म नहीं रहा। ससार का अनुभव पूण होन से पहले ही, अनुभव को धोखा देने की स्थिति किसी पर बीतती है तो एस द्व द्व का अनुभव होता है। अपनी अनुभूति कह सुनाऊँ तो आप शायद मुझे निलज्ज समझ बठें।

नहीं, कहो।'

' स्त्री को अनुभवो से वचित करन के लिए हजारो बाधाएँ हैं। व सब मानव निर्मित हैं। कई बार य बाधाएँ स्त्री की मूल शक्ति का सामना करन मे विफल होती ह। तब पुरुष सबडो भय मिश्रित रिवाज फलाता है। हमार बड स्वरूपो पर गदगी का आरोप लगाकर, पुरुषो को हमसे वचित करन का प्रयत्न चलता रहता है। पुरुष तो हमस दुबल है न ?'

यह बात क्या मुझ पर भी लागू होती है ' राज न उसे बाँहो म समेट लिया।

नहीं ! इसीलिए तो हम एक हुए हैं। कहिए आप कभी कृत्रिम बाधाओ को मानकर मुझसे विमुख न होंगे ?

विमुखता मेरा मूल गुण नही है।"

काल-देश को भूल, सुप्त स्थिति म वे दोनो अपनी मूल स्थिनि म पहुँच चुके थ। उस हरियाली के आगन म उनके सामीप्य म विघ्न डालने वाला कोई रीत रिवाज नही था।

कात्यायनी उस दिन सुख स सोयी। उसका मन जो कई दिनो से अन्तद्वन्द्व की युद्धभूमि था अब सुन्दर नृत्य मच बन गया था। वह नियमित रूप से हर रोज राज स मिलती। एक दिन सुबह जल्दी उठकर स्पेशल पीरियड का बहाना बनाकर सात बजे की गाडी से मसूर चल दी। वह मालगाडी थी। उसम यात्रिया के लिए दो डिब्बे लग थे। स्त्रिया के लिए अलग डिब्बा न होने की वजह से कात्यायनी का पुरुषो के साथ ही बठना पडा। आज उसे प्रकृति म नया चतन्य दिखाई पडा। अपने चारा ओर के यात्रिया की वाता स ऊबी नही न ही बीडी का धुआँ असह्य लगा। खिडकी के उस पार देखते हुए एक किसान ने कहा इस बार फसल अच्छी है।

फसल जरूर अच्छी है लेकिन अब भी बारिश की जरूरत है। पथ्वी और आकाश बार-बार आलिंगित नही हुए ता फसल अच्छी न होगी। लगता है आज बारिश होगी। बादल चढ रहे हैं —पास ही बठे एक अनुभवी वद्ध न कहा।

कात्यायनी सुनती रही। उसन बाहर दखा। विशाल खेत वरुण देव की प्राथना कर रहे थे। सूखी जमीन आकाश स जल की आशा कर रही थी। उस वातावरण से लगता था मानो कई दिना स पानी का दशन ही नही हो रहा है। किसान कह रहा था— गर्मी पड रही है बारिश आ भी सकती है।'

कात्यायनी चामराजपुर म न उतरकर सीधे बडे स्टशन गयी। साढे आठ बज एक शटल गाडी अरसीकेरे की ओर जा रही थी। दाना के टिकट लेकर राज वहाँ प्रतीक्षा कर रहा था। उसके पास एक बिस्तर और थला था। वह पूरे सूट म था। शटल म बठकर दोना कनवाडी उतर। कात्यायनी की किताबें राज ने थले म रखी। कुली स सामान लदवाकर व दावन स्थित बडे होटल म ठहरे। राज ने विजिटर्स बुक म लिखा कि दाना मद्रास स आय हैं। फिर होटल के नौकर द्वारा बताये

सुसज्जित कमरे मे प्रवेश किया।

पौन दस बजे दोनो ने नाश्ता किया। बाहर कडी धूप थी। दूसरी ओर आकाश म घने बादल छाये थे। वातावरण म गर्मी बढ गयी थी जो कात्यायनी और राज को असह्य प्रतीत हो रही थी। सिर के ऊपर पूण गति से घूमता पखा उन्ह राहत न पहुँचा सका। बाहर फली सूखी पथ्वी वर्षा की प्रतीक्षा म थी। वर्षा के अभाव म पथ्वी पर व्याप्त शोभा मुरझान जा रही थी। माँगना पृथ्वी का स्वभाव नही! आकाश के बादल अपने अभिमान म धरती का स्पश न कर, सकोच स ऊपर ही ऊपर मँडरा रहे थे। अपने भार को वहन करने की क्षमता उनमे नही थी। यह पथ्वी और बादल का मुख्य अतर था। पथ्वी पर भरपूर वर्षा हुई थी। वर्षा रुकने के कुछ दिना बाद पथ्वी पुन आकाश की ओर ताक रही थी। लकिन अब मँडराने वाले बादल नय थे और एक ही बार जल बन जान की सामथ्य उनमे नही थी। फिर भी बादल इतने घने थे कि एकाएक बरस पडें तो उस प्रवाह मे पथ्वी का सारा सौन्दय मिटकर केवल विकार रह जाय। बादल मे पूर्वानुभव का अभाव था। वह आश्चय सन्देह एव नई स्थिति के कारण अनजान अपरिचित भय से निष्क्रियावस्था का अनुभव कर रहा था।

सारे जग का दग्ध कर देन वाली गर्मी राज और कात्यायनी के लिए असह्य बन गइ। वर्षा नही हुई, ता गर्मी कम न होगी। कात्यायनी मूकवत बठी थी, राज खिडकी स बाहर देख रहा था। बादल अनिश्चित स्थिति म मँडरा रहे थे। एकाएक बिजली चमकी। बादला न शायद अपने ही प्रकाश म धरती के सौंदय को देखा, धरती की तष्णा को समझा। सारे बादल एकाएक धरती पर टूट पडे। वर्षा की प्रचण्ड शक्ति स सदेह माना दूर हो गया। निष्क्रय ही क्रियाशक्ति बनकर बादला ने धरती का आलिगन किया। बादला की गडगडाहट, बिजली की चमक और तूफान के झाको के बिना ही अपन-आप प्रचण्ड वर्षा प्रारभ हो गई।

मध्याह्न होने-होने वर्षा थमी। राज-कात्यायनी के भाजन करने तक मौसम की उष्णता घट गई थी। मन को तृप्त कर देन वाली ठण्डक छा गई थी। दूर स बहकर आती हुई हवा गीली मिट्टी की सुगध फला रही

थी। भाजन करते समय वातावरण इतना प्रगाढ़ था कि आपस में बात तक न हुई। धरती की हरियाली में एक नई आभा आ गई थी। भाजन समाप्त होते-होते बादल फिर घिर आये। मनिन व नये बादल लगते थे, पहले से घने हो रहे थे। स्थान-स्थान बूंदा-बांदी होने लगी। इनमें किसी तरह की मस्ती न थी पागलपन न था। मानो धरती इस बार वर्षा का स्वागत कर रही थी। आकाश में काला आवरण नहीं था। अब बादलों में भी आकाश मन्द मन्द प्रकाश से मुखरित था।

लगभग चार बजे राज और कात्यायनी वहां से स्टेशन की ओर चले। वर्षा रुक गई थी। किन्तु और थैला लिये कुली आगे-आगे चल रहा था। अब प्रकृति अट्टहास कर रही थी। धूप निकल आई थी। बादल ओझल हो चुके थे। वे एक शटल गाड़ी में बैठकर मसूर पहुँचे तब पाँच बज रहे थे। कात्यायनी नजनगूडु जाने वाली तैयार खड़ी ट्रेन में चढ़ गई। स्टेशन से बाहर निकलने से पहले राज ने कहा - कल कालेज में मिलेंगे। स्वीकृति में कात्यायनी ने सिर हिलाया। उसके मुख से कोई शब्द न निकला।

११

डॉ० राव राज की तरह पुस्तकालय में बैठकर अपने काम में लगे हुए थे। कमरे में अब ग्रंथों की संख्या बढ़ गई थी। आवश्यक ग्रंथ वे वहीं मँगा लेते थे। उन्हें व्यवस्थित रखने या उनका उपयोग हो जाने के बाद लौटाने में वे असमर्थ थे। ग्रंथों के उस ढेर में से आवश्यक ग्रंथ ढूंढ़ निकालना कभी मुश्किल होता था।

रत्ना को पत्र लिखे दस-पन्द्रह दिन बीत गये थे। उसका कोई उत्तर नहीं आया था। डॉ० राव सोच रहे थे शायद वह नहीं आयेगी। यह सोचते ही उनका मन रत्ना को और अधिक याद करने लगता। अदम्य उत्कण्ठा से उनका मन कहता कहीं वह आज ही न आ जाये? एक दिन

वे शून्य भाव से आरामकुर्सी पर सिर टिकाकर बैठे थे। कार्य करने का उस दिन कोई उत्साह नहीं था। पंखा धीमी गति से चल रहा था, वे उसे ही एकटक देख रहे थे। चश्मा बायें हाथ में लिये निर्जीव-से पड़े हुए थे। पीछे से फ्लश द्वार खोलने की आवाज भी सुनाई नहीं पड़ी। द्वार खोलकर बहुत पास आने पर उन्हें लगा कि कोई आया है। उन्होंने आँखें उठाईं—रत्ने थी। वही रत्ने जो उनके साथ काम करती थी सफेद साड़ी, सफेद ब्लाउज पहन सामने खड़ी थी। हड़बड़ाकर उठते हुए डॉ० राव ने पूछा, 'आ गयीं ?'

"हाँ !" इतना ही कहकर एक कुर्सी खींचकर रत्ने उनके पास बैठ गई।

पाँच मिनट तक डा० राव समझ न पाये कि क्या बोलना चाहिए। उनका मन खुशी से नाच उठा। अपना हाथ आगे बढ़ाकर डा० राव ने उसका दाहिना हाथ पकड़ लिया। रत्ने भी कुछ बोल न सकी, केवल अपने दोनों हाथों में उनके हाथ को भींच लिया। फिर डा० राव ने पूछा—'सामान कहाँ है ?

स्टेशन पर छोड़ आई हूँ।

'उठो, लेडीज हॉस्टल में एक कमरे की व्यवस्था करेंगे।"

होस्टल मुझे पसन्द नहीं।

यह भी ठीक है कहकर वे चुप हो गये। कुछ समय बाद बोले—चलो, पहले भोजन कर आयें।

दोनों हिन्दू होटल गये। साढ़े बारह बज रहे थे। डॉ० राव घर से खाकर आये थे। फिर भी रत्ने का साथ दिया। खाने के बाद दोनों पुस्तकालय लौटे। थोड़े समय तक देश, घर के बारे में बातचीत करने के पश्चात डा० राव ने पूछा— क्या सोचा है ?'

मेरा कोई विचार नहीं। आपके साथ काम करके आत्म-तृप्ति पाना ही मेरा उद्देश्य है। शेष विचार आपका है।'

पहले दोनों शादी कर लें !

आवाज पर नियंत्रण रखते हुए आँख नीचे कर रत्ने ने पूछा, 'शादी न करें तो क्या रहेगा ?'

मेरा भी ऐसा ही विचार था। हम दूसरों की तरह 'दाम्पत्य के लिए

नही मिलते। लेकिन कितन दिन ऐसे रहना सभव है ? हम सारा जीवन साथ-साथ बिताना है। हास्टल म तुम कितन दिन रह सकागी ? तुम्हार लिए अगर अलग कमरा लिया जाय तो किसी सामाजिक बधन के बिना मैं वहा कस आ सकूगा ? तुम दिन भर यहा अकेली कसे काम कर सकागी ? लोग क्या कहेंगे ? विश्वविद्यालय भी हम पर अनतिकता का आराप लगाए बिना नही रहगा। अगर शादी कर लत हैं तो इन सारी झझटा स मुक्त हो सकते हैं।'

'लोग यह नही कहेंगे कि पत्नी क हाते हुए भी ऐसा किया ?

केवल चार दिन। दूसरी शादी लोगा के मुह के लिए चार दिन का आहार हो सकता है लकिन हम पर अनतिकता का आरोप नही मढा जा सकता। हम दोना साथ-साथ अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रता से काय कर सकते है।

वह पूछना चाहती थी कि इस बार म घर म बताया या नही लेकिन यह सोचकर चुप रह गई कि इस सुलझाना इनका काम है मैं क्यों अप्रासगिक स्थिति म डालू !

दोना स्टेशन गय। हिंदू होटल म एक कमरे की व्यवस्था कर रत्ने का सामान रखवाया। शोधकाय के सिलसिले म आई है केवल एक माह के लिए कमरा चाहिए — कहकर डा० राव ने होटल के मनजर क पास पसे जमा करा दिये। फिर दाना पुस्तकालय म आय ता शाम क पाच बज रहे थ। कमरे म अव्यवस्थित पडी पुस्तकें देखकर रत्ने पूछ बठी— 'यह अव्यवस्थित ढेर क्या ? मैं श्रम स जमाय देती हूँ। अब तो आवश्यक ग्रथ एव पष्ठ निकालने के लिए मैं आ ही गई हूँ।'

सफर म थक गई होगी थोडा विश्राम कर लो।'

इतने दिन काम न हाने से मरी तबीयत बिगड गइ थी। अब सुधर जायेगी कहती हुई वह ग्रथा का व्यवस्थित करन म लग गई।

डा० राव न उसी दिन निश्चय कर लिया कि अपनी इस इच्छा का घर मे तुरत बता देना चाहिए। लेकिन पद्रह दिना तक ऐसा नही कर सके। विषय का प्रारम्भ कसे करें—कसे कहा जाय इसस उत्पन्न प्रतिक्रिया का सामना कसे किया जा सकता है आदि सोचने पर उनका मन

विचलित हो जाता। वे निश्चित रूप से जानते हैं कि यह जानकर नाग-लक्ष्मी को बड़ा आघात लगेगा। उनका मन कहता कि इस निर्णय से निरपराधिनी नागलक्ष्मी को बड़ा आघात लगेगा। उनका मन कहता कि इस निर्णय से निरपराधिनी नागलक्ष्मी के प्रति क्रूर अन्याय किया जा रहा है। लेकिन उनके निर्णय में नैतिक सांत्वना यह थी कि अगर इस निर्णय से पीछे हट जायें तो अपने जीवन की महत्त्वाकांक्षा रूपी शोध-कार्य अपूर्ण ही रह जायगा। किन्तु नागलक्ष्मी के निरपराध होते हुए भी उनका विचार इस विषम दाम्पत्य से पूर्णतः अलग रहने का न था। उन्हें रत्ने चाहिए, नागलक्ष्मी नहीं, ऐसी बात नहीं। उसे छोड़ देने की बात क्षण-भर के लिए भी उनके मस्तिष्क में नहीं उठती थी।

एक दिन रात को डा० राव घर पर अध्ययन-कक्ष में बैठे थे। पढ़ नहीं सके। ग्यारह बजे बत्ती बुझाकर, शयन-कक्ष में जाकर दरवाजा बंद कर लिया। अंदर बड़े पलंग पर नागलक्ष्मी और पथ्वी साथ थे। बगल में डॉ० राव का बिस्तर लगा था। आज वे इस निश्चय से आये थे कि अपना निर्णय पत्नी को बता देना ही चाहिए। उसे नींद आ चुकी थी। बगल में बैठकर उसकी बाँह को हिलाकर पुकारा 'नागु'। वह जागी। कमरे में मंद प्रकाश था। अधखुली आँखों से पूछा— 'क्या समय हुआ?'

'ग्यारह!'

'अच्छा!' कहकर पुनः आँखें मूँदकर पति की बाँहों को अपनी बाहों में भरकर नागलक्ष्मी ने पूछा—'आज मेरा भाग्य खुल गया। कैसे जल्दी सोने आ गये?'

डॉ० राव की समझ में नहीं आया कि आगे क्या बोलें। धीरे से केवल 'नागु' कहा। पति के कृश शरीर को अपनी दोनों भुजाओं में कसकर प्यार से बोली—'पढ़ाई में दिल नहीं लगा क्या? कितने सालों बाद ग्यारह बजे आकर मुझे 'नागु' कहकर पुकारा है! मैं समझती हूँ। मैं आपकी पत्नी हूँ न? सो जाइए।' डॉ० राव कुछ नहीं बोले। नागलक्ष्मी अपने पति की चश्माविहीन आँखों में गौर से देखते हुए उन्हें एक बार चूमकर बोली—'मैं एक बात कहती हूँ सुनेंगे?'

'क्या?'

'आपके शरीर में काफी उष्णता है। बुखार-सा लग रहा है। अधिक

पढने के कारण आखें भी धँस-सी गई हैं। आँखें गइ तो फिर क्या हागा? भविष्य म हर रविवार का थोडा जल्दी उठिए। पुस्तकालय जान म पहले मैं एक बाल्टी गरम पानी से स्नान कराऊँगी। राज भोजन के बाद कुर्सी पर वठ जाइए मैं तलवा म तेल मल दिया करूँगी।

डा० राव कुछ न बाल। आँखें मूदकर पत्नी की भुजा पर सिर रख कर लेट गय। 'सो गय?' नागलक्ष्मी न पूछा तो उत्तर नहा दिया। 'सो जाइए!' और पीठ थपथपान लगी मानो माँ बच्चे को सुला रही हो। डा० राव का मन थोडा सा जल रहा था। उनकी बुद्धि काबू म नहीं थी। इच्छा शक्ति पिघल चुकी थी। मन म निहित महत्त्वाकाक्षा की विद्युतशक्ति पत्नी क स्निग्ध प्रेम से क्षीण हो गइ। थोडी दर बाद एक दीघ नि श्वास ली। क्या नाद नहीं आई? नागलक्ष्मी न चेहरे की ओर देखत हुए पूछा। उनकी आँखा म आसू दीख पडे।

क्या सोच रहे हैं? मुझसे नही कहगे? कोई उत्तर नहा मिला। 'आप नही चाहत तो मत कहिए। बचपन म ही माता पिता क गुजर जाने स अच्छी तरह से आपकी दखभाल के लिए कौन था! हमार यहाँ भी अधिक न रहे। पढन क लिए मसूर चले आय। माँ को खोकर बच्चा को जीना नही चाहिए। लेकिन अब मैं हू न! आपका किस बात की चिन्ता है! इस तरह चिता करना क्या उचित है? और अपने आचल स उनके आसू पाछन लगी।

कोइ चिन्ता नहीं। कुछ नीद आ रही है सो जा कहकर डा० राव पास क तकिये पर लेट गये। उनके शरीर पर शाल डालकर नाग लक्ष्मी भी चुप हो गई। सारी रात डा० राव का नाद नही आइ। रात के लगभग दो बजे नागलक्ष्मी का नीद आई। वह पति का अपनी बाया बाँह से प्रेम लिपटाकर सायी थी माना रात क अधकार से भयभीत बच्चे को मा ने अपन अक म छिपा लिया हो। उसकी नीद म बाधा न पड इस ख्याल म डा० राव अचल लेटे रहे। रात भर उनके मस्तिष्क म द्वन्द्व रहा। इसका कसूर क्या है? इस प्रश्न का उत्तर नही मिलता। उनका मन केवल इतनी सात्वना द रहा है कि मैं कम त्याग नही रहा हूँ। अपने जीवन की महत्त्वाकाक्षा पूर्ण करन क लिए ही और एक लडकी का अपना रहा हूँ—बस!

दूसरे दिन डॉ० राव पाँच बजे उठे। इन दिनों राज सुबह जल्दी उठता और स्नान करके टहलने निकल पड़ता था। वह स्नान की तयारी मे था कि डॉ० राव ने कहा—'टहलने जाते समय मुझे बता देना, मैं भी चलूगा।' हँसते हुए राज ने पूछा—'क्या आप भी स्वास्थ्य की ओर ध्यान देने लगे?'

दोनो भाई टहलने निकल पड़े।

'मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता था' डॉ० राव ने कहा।

राज जानता था कि अवश्य कोई बात भाई के मन को कुरेद रही है। क्या विषय होगा इसकी अस्पष्ट कल्पना भी उसके मन म न आई थी। "कौन-सी बात?' राज ने जिज्ञासा प्रकट की। कसे प्रारभ करूँ इसी दुविधा म डॉ० राव ने कोई उत्तर नहीं दिया। राज ताड गया। भाई को उस दुविधा म उबारने के लिए कहा—'सुना है करुणरत्न आइ हैं।'

'तुम्हे कैसे मालूम?'

'लाइब्रेरी म सुना था कि हिन्दू होस्टल म रहती हैं।'

राज से यह सुनकर डॉ० को आश्चर्य सा हुआ लेकिन इसे अच्छी भूमिका समझकर उन्होने कहना आरम्भ किया। अपने ग्रथ निर्माण मे आनेवाली बाधाओ की बात कही। अपनी आँखो की कमजोरी के बारे म कहने के पश्चात् बोले—'रत्ने के बिना ग्रथ पूर्ण नहीं होगा। ग्रथ का काम न बना तो बिना उसके मैं जिन्दा भी नहीं रह सकूगा। उसका इस तरह साथ साथ रहना सामाजिक दृष्टि से अनुचित है। अत सोच रहा हूँ सिविल मरेज कर लू।'

राज कुछ न बोला। कभी-कभी वह भी महसूस करता था कि भविष्य म ऐसा ही कुछ होकर रहेगा। महान विद्वान् साहित्यकार अन्यतम कलाकार वगैरह आदि के जीवन म ऐसा होता रहता है। खासकर विषम ववाहिक जीवन म इसका अधिक गुजाइश है। लेकिन यह जानकर वह असमजस म पड गया कि उसका भाई भी ऐसा करने की सोच रहा है। अत उसने पूछा—'नागु के बारे म क्या सोचा है?'

'उसे समझाना तुम्हारी जिम्मेदारी है इसीलिए तुम्हे यहाँ ले आया हूँ। करुणरत्ने को अपनाने का मतलब नागु को त्यागना नहीं है।'

'फिर भी क्या वह मान जायगी?' 'तुम नहीं छोड़ता,

कहने से क्या कोई भी स्त्री अपने पति को दूसरी शादी की स्वीकृति देती है ? मामाजी ने हम अनाथों की देखभाल की। नागु के साथ आपकी शादी करा दी। वे अब नहीं हैं। मामी भी सिधार गई। आप ग्रंथ लिखते हैं तो इसमें नागु की क्या गलती है ? शादी के समय उसकी स्वीकृति की अपेक्षा आपकी स्वीकृति मुख्य थी। आपने पसन्द किया था उसे।

थोड़ी देर सोचकर डॉ० राव ने कहा— चर्चा से इस प्रश्न को सुलझा नहीं सकते। तुम आक्सफोर्ड-जैसे स्थानों में रहे हो। मैं जानता हूँ कि नागु के प्रति तुम्हारा बड़ा स्नेह है। मैं भी उसे प्यार करता हूँ। अगर यह ग्रंथ पूर्ण न हुआ तो मैं अशांति से मर जाऊँगा। रहने नहीं तो क्या तुम मेरी मदद कर सकते हो ? मैं घर नहीं छोड़ूँगा। नागु को नहीं त्यागूँगा। मेरा विश्वास है कि तुम समझ सकते हो। तसल्ली दिला सकते हो। क्षण भर के लिए इस विषय को मेरी दृष्टि से समझने की कोशिश करो।

राज ने भाई की दृष्टि से विषय को समझने की कोशिश की। अधिक प्रयास किये बिना ही उसे स्फटिक-सा स्पष्ट दिखाई दे रहा था। भाभी के प्रति उसका अगाध प्रेम था। भाई की बौद्धिक साधना के प्रति अपूर्व गर्व था। कोई ये हैं डा० सदाशिवराव के भाई कहकर परिचय कराता तो उसकी छाती फूल उठती। इन दोनों के बीच वह कर भी क्या सकता है ! वह जानता था कि उसका भाई इतना आगे बढ़ चुका है जहाँ से पीछे हटना मुश्किल है। वह उनसे कठोर बातें नहीं कहना चाहता था। उससे कोई लाभ भी नहीं। यह सोचकर वह चुप रहा। इतना ही कर सकता था कि अधिकतम स्नेहपूर्वक भाभी को समझाकर तसल्ली दिलाये।

डा० राव की योजना नागलक्ष्मी के कानों में पड़ी। वह तीन दिन खाना न खा सकी। रात भर पलकें नहीं मुँदीं। वह जानती थी कि पति के लेखन-कार्य में वह मदद नहीं कर सकती, लेकिन इसका यह अर्थ तो नहीं कि पति दूसरी शादी कर लें ! अपने अध्ययन के हेतु डॉ० राव पत्नी के प्रति बेरुखे ही रहे। फिर भी नागलक्ष्मी ने सब कुछ सहा। लेकिन उनका दूसरी शादी कर लेना उसके लिए असह्य था। राज जानता था कि भाभी का मन अनियंत्रित हो गया है। अतः तीन दिन वह कॉलेज नहीं

गया। घर मे ही रहा।

डॉ० राव घर आते। रात के भोजन के बाद अध्ययन-कक्ष म चले जाते। नीद आने पर वही आरामकुर्सी पर सो जाते। जब नागलक्ष्मी को यह पता लगा उसी दिन रात को उनके कमरे म जाकर पति से पूछा, मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया कि आप दूसरी शादी कर रहे हैं?'

डा० राव के ओठ नहीं खुले। "आप जब तक नहीं बोलेंगे तब तक मैं इस कमरे से नहीं जाऊँगी" कहकर वही बैठ गई। एक स्त्री ऐसी परिस्थिति म लज्जा को सीमित कर जितना बोल सकती है उसने वह सुनाया। लेकिन डा० राव मूकवत बैठे रहे। केवल इतना कहा—'राज सब-कुछ बता देगा।"

तीसरे दिन दोपहर को नागलक्ष्मी निराहार बैठी रही। राज ने कहा नागु तुम ऐसे बैठी रहोगी तो मैं भी कैसे खा सकूँगा?'

मुझे अपनी किस्मत पर छोड दो तुम खा लो।'

तुम्हारे बिना मैं नही खाऊँगा उठो। राज ने बहुत मनाया, लेकिन वह न मानी। ऐसी विपत्ति म हर तरह से तसल्ली देने वाले देवर के प्रति उसके भोजन न करने पर वात्सल्य उमड पडा।

राज माँ गुजर गई। पिताजी चल गये। और अब इन्होंने ऐसा करने की ठान ली है। तुम क्या मेरी चिंता कर रहे हो?

भैया के बारे म तुम समझी नही। उन्हें अपने ग्रथ की ही धुन है। रत्ने के बिना ग्रथ पूर्ण नहीं होगा। इतना निश्चित है कि अगर ग्रथ पूर्ण न हुआ तो भैया मानसिक रोग से अंतिम साँस लेंगे। क्या ऐसा मौका आने देना उचित होगा?'

इस पागलपन म वे मुझे क्या छोडना चाहते हैं?'

तुम्हें छोडने का उनका विचार बिल्कुल नही है। रत्ने से शादी करने के पश्चात वह भी यहाँ आयेगी। इस घर के लिए आवश्यक सामान लाना निगरानी रखना मेरी जिम्मेदारी है और भीतर की जिम्मेदारी तुम्हारी। वह रहना चाहती है तो रहने दो। क्या किया जा सकता है।"

"इन्हें ग्रथ के लिए विद्वानों की मदद चाहिए तो तुम भी विद्वान् हो। तुम्हारी मदद क्यो नही लेते?'

"इतनी दूर इसीलिए जाना पडा कि यह काम मुझसे नहीं हो

सकता। नागु तुम जितना हठ करोगी काम उतना ही बिगड़ेगा। दूसरी शादी की बात मान लो। वह आकर तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। उसे भी रात दिन अध्ययन करने की धुन है। तुम एक वट की छाँह में भी साथ रहूँगा ही। इस घर में तुम्हें कोई नीचा नहीं दिखा सकता। वह भी बुरी स्त्री नहीं है। भैया भी तुम्हारी उपेक्षा नहीं करेंगे।

नागलक्ष्मी ने मन-ही मन सोचा रत्ने की अपेक्षा वह सुंदर है। उसके शरीर का सौन्दर्य अब भी कायम है। प्रौढ़ भाव ने पहले के सौन्दर्य को और बढ़ा दिया है। मुझ जैसी पत्नी को छोड़कर उस काली लड़की से शादी कर लेने की इच्छा तो इनके पागलपन का सबूत है। चार दिनों में ही अक्ल आ जायगी और अपने-आप रास्ते पर आ जायेंगे। लेकिन इस दलील ने उसके दुख को कम नहीं किया। अब भी खाने के लिए नहीं उठी। पृथ्वी स्कूल गया था। फाटक खोलकर किसी के आने की आहट हुई। राज ने द्वार खोला। आप तीन दिन से कालेज नहीं आ रहे हैं! मंद स्वर में कहती हुई कात्यायनी भीतर आई। नागलक्ष्मी जानती है कि आजकल कात्यायनी राज से खुलकर बात करने लगी है। लेकिन उसने इस ओर अधिक रुचि नहीं दिखाई। नागलक्ष्मी को चेहरा देखकर कात्यायनी को आश्चर्य नहीं हुआ। लगता था उसे इसका पूर्वाभास हो गया था। फिर भी उसे व्यक्त न कर पूछा— आपको देखे पाँच छह दिन हो गये। अरे! आपको यह क्या हो गया? तबीयत अच्छी नहीं है क्या?

नागलक्ष्मी कुछ न बोली। कात्यायनी रूमाल से वेणी निकालकर उसकी ओर बढ़ाते हुए बोली लीजिए।

वेणी को दाहिने हाथ से परे हटाते हुए बोली— अब फूलों से मुझे क्या लेना! और उसके आँसू बह चले।

नागु तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए। वेणी अस्वीकार करने जैसा क्या हो गया है? राज की बात मानकर उसने वेणी पास रख ली। पाँच मिनट सब मौन रहे। कात्यायनी की नजर राज के चेहरे पर जा पड़ी। तिरछी नजर से राज ने भी देखा। कात्यायनी ने पूछा—'कालेज में एक समाचार सुना था। क्या यह सच है?'

कैसा समाचार?

'मालूम नहीं सच है या झूठ। नागलक्ष्मी के आँसू देखकर तो सच लगता है।"

"कहो, बात क्या है ?'

खबर है कि आपके भाइ साहब ने रिसच स्टूडेंट मिस करुणरत्ने के साथ कल सिविल मरज कर ली है।'

'किसने कहा ?'

आज लेडीज क्ब म चर्चा का यही विषय रहा। कहते है कल दोपहर को सब रजिस्ट्रार के दफ्तर म शादी हुई है।

राज ने सोचा न था कि उसके जाने बिना ही यह सब होगा। वह सोच रहा था कि पत्नी की अनुमति पाये बिना ही भाइ ने ऐसा क्यों किया। कात्यायनी देखिए' कहकर नागलक्ष्मी की ओर लपकी। यह जानकर कि पति की दूसरी शादी हो गई नागलक्ष्मी चक्कर खाकर नीचे गिर पड़ी और बहोश हो गई। राज दौडकर ठडा पानी लाया। कात्यायनी ने नागलक्ष्मी क सिर पर पानी छिडका। राज पखा झलने लगा। पाँच मिनट बीत गय लकिन उसे होश न आया। वह न तो पूरी बहोशी की स्थिति म थी और न होश ही म। अधचेतना की स्थिति म नागलक्ष्मी लेटी थी। मैं जाकर डॉक्टर को बुला लाता हूँ तुम पखा झलती रहो कहकर राज साइकिल लेकर चल दिया।

उसके जान क पाँच मिनट बाद नागलक्ष्मी को होश आया। उसने उठने की कोशिश की तो कात्यायनी ने टोका और सिर के नीचे तकिय का सहारा दिया। कात्यायनी का हाथ पकडे वह चुपचाप लेटी रही।

दस मिनट म डाक्टर आया। भाभी को होश म आया देखकर राज को तसल्ली हुई। 'ऐसा क्या हुआ बहन ? डाक्टर का प्रश्न था।

मैं नहीं जानती' नागलक्ष्मी बोली।

एक इजक्शन देता हूँ।'

नहीं डाक्टर !

आया है तो कुछ तो देना ही चाहिए। कुछ गोलियाँ देकर डाक्टर चला गया।

'नागु तुम तीन दिन स कुछ नहा खा रही हो। तुम्हारी हालत क्या हुई जा रही है ? चलो उठो अब खा लो राज ने समझाया।

मैं नही खाऊँगी, तुम खा लो लेटे ही-लेटे बोली।

कात्यायनी परिस्थिति भाप गई। उसने गा को आखा स सकेत किया। वह उठकर बाहर चला गया। लगभग एक घण्टे तक कात्यायनी ने किसी तरह समझाकर नागलक्ष्मी को भोजन के लिए मना लिया। उसके राज का बुलाओ कहने पर वह भी आ गया। वह दोना को भीतर ले गई। कात्यायनी ने ही परोसा। दोना म स किसी ने एक कौर से ज्यादा नही खाया।

शादी के बाद भी रत्ने के कार्यों म किसी तरह का परिवतन नही हुआ। डा० राव स भी उसन स्वय यह नही पूछा कि भविष्य म किस तरह रहना है। वह हर रोज सुबह नो बजे पुस्तकालय म पहुँच जाती। शाम का सात बजे तक काम करती और उस दिन के शीघ्रलिपि म लिखे गय नोट लेकर होटल पहुँचती। डा० राव का टाइपराइटर उसी के पास है। वह रात के बारह बजे तक नोट टाइप करती। डा० राव न द्वितीय खण्ड का लखन काय प्रारम्भ नही किया था। रत्न के आन के बाद पढे हुए ग्रथा के नोट भी उसी को लिखान लग। उन्हे भी शीघ्रलिपि म लिख टाइप कर वह व्यवस्थित रख देती थी।

पति के घर आन पर नागलक्ष्मी भोजन परोसती लेकिन उसने बात करना ता पूणत छोड दिया था। राज भी साथ म भोजन के लिए बठता था। पथ्वी पिता से कभी खुलकर नहा मिलता था। रात का अध्ययन के पश्चात कमरे म जाकर नागलक्ष्मी और पथ्वी के साथ सोना तो डा० राव न छोड ही दिया।

एक दिन डॉ० राव ने रत्न से कहा— 'अब तुम्हे होटल म रहने की क्या आवश्यकता है? घर म बातें करेंगे। तुम भी वही आ जाओ।'

एक बात मैं स्पष्ट कह देना चाहती हूँ, आप मुझ गलत न समझें।'

कहो।'

पूव सप्रदाय मे पत्नी के साथ रहन के लिए मान जायेंगी, लेकिन मेरा सस्कार भिन्न है। एक छाया के नीचे एक पति के साथ दो पत्निया का जीवन बिताना मेरा सस्कार पसन्द नहा करता। दूसरे घर म रहने से खच थोडा अधिक अवश्य हागा।

घच की दृष्टि से मैं यह नही कह रहा हूँ।'

'ना किसलिए ?"

"हम तीना के मन की शाति की दष्टि से।'

डा० राव का हाथ पकडकर रत्ने ने वहा—'उसी दष्टि से मैं विरोध करती हूँ। शाति से रहना कठिन है। मैं अलग रहूँगी। मैं अपना खाना आप पकाऊँगी। आप उन्ही के साथ भोजन कीजिए। रात का वहा सोइए, मैं 'ना नही कहती। मुझे कोई एतराज नहा। हम दाना के एक होने का उद्देश्य ही अलग है। है न ?'

डॉ० राव उसका मुख निहारने लगे। उसकी आँखें इच्छा शक्ति से चमक रही थी। यह सब कहने की क्या आवश्यकता है ?' और रत्ने के हाथा को धीरे से दबाया।

एक सप्ताह मे सरस्वतीपुर म मनपसद घर मिल गया। किस्मत से रत्न को एक विश्वसनीय नौकरानी भा मिल गई। उसने डॉ० राव से अपने साथ रहने के लिए नही कहा। वे कुछ दिन पत्नी बच्चे के साथ ही रहे। लेकिन पति-पत्नी के बीच बातचीत बद थी। राज ने प्रयत्न भी किया कि नागलक्ष्मी अपने पति से बोले लेकिन वह विफल रहा। रसोई-घर म अपना बिस्तर बिछाकर वह पच्चों को लेकर वही सोती। एक-दो महीने इसी तरह बीत गये। एक दिन डॉ० राव अपने सारे ग्रथ एक गाडी मे लदवाकर रत्न के घर ले गये। उस समय राज घर पर नहा था। नागलक्ष्मी चुपचाप पूर्ण उपेक्षा स रसोईघर मे ही रही जसे उसे कुछ मालूम ही न हो।

डा० राव के स्थान-परिवर्तन कर लेने पर रत्ने ने कहा—"यह सत्य है कि इससे हमारे अध्ययन म सुविधा होगी, लेकिन मैं कभी यह नहीं कहूँगी कि आप यही रहे।

उस बात को जाने दो।' डॉ० राव ने कह दिया कि उस विषय पर वे कुछ भी कहना नही चाहते।

दूसरे दिन भाई को ढूँढता हुआ राज पुस्तकालय पहुँचा। इससे पहले वह स्वय कभी वहाँ नहा गया था। रत्न समझ गई कि कल की घटना के बारे म होगा। उसने राज का स्वागत किया। पाँच मिनट बात की, **और** बाहर चली गई।

मैं तुम्हे बुला भेजने वाला था। बिना बोलचाल के साथ रहना कब तक चलेगा ? इसके अतिरिक्त यहीं रहने से मेरे अध्ययन में अधिक सुविधा होगी। वहाँ रहने के बारे में रहने की कोई आपत्ति नहीं है। नागु से कहना कि जिस दिन उसका मन शात हो जाय उस दिन मुझे बुला भेजे। मैं घर आता रहूँगा।"

वह बडा दु खी है।

मैं समझता हूँ।

उसके बुलावे की प्रतीक्षा मत कीजिए। आप स्वय आते रहिए। थोडे ही दिनो म सब ठीक हो जायेगा।

अच्छा डा० राव ने स्वीकार किया। थोडी देर सोचकर फिर कहा - देखो इस समय मुझे तुमसे दूना वेतन मिलता है। पुस्तक की रायल्टी भी मिलती है। नागु और पत्नी की ओर शुरू से तुम्हीं ने ध्यान दिया है। मैं वहा जाता रहूँ तो भी जिम्मेदारी तुम्हारी ही है। हर महीने मेरे वतन के दिन यहा आना। खर्चे के लिए कुछ रुपये दूगा।

'उसकी जरूरत नहीं। राज ने खिन्न होकर कहा— नागु के खाने का पसा आप देंगे ! हमारी माँ जिदा होती तो क्या बडे बेटे से पसा लेकर छोटे बेटे के घर खाना खाती ? खर्चे के लिए पसे कम पडे तो मैं स्वय आकर कहूँगा। आपको बार बार शोधकार्य के लिए बाहर जाना पडता है ग्रथ खरीदने के लिए भी पसा की जरूरत पडती है। पसा की चिता न कीजिए।

राज जाने लगा तो डॉ० राव ने कहा यहा आकर हमारी भी खबर लेते रहना !

अच्छा कहकर राज चला गया।

आठ दिन रत्न ने खाना पकाया। लेकिन वह डा० राव को नहीं भाया ! इसके अलावा वे यह नहीं चाहते थे कि वह रसोईघर में समय बर्बाद करे। इसलिए एक नौकर रख लिया और दोनो अपनी उद्देश्य साधना में रत हो गये।

नवरात्र की छुटि्टयाँ समाप्त हुइ। बडे दिना की छुटि्टयाँ भी बीत गइ। राज और कात्यायनी रोज कालेज म मिलते। नाटक सघ के कमरे में बठे दाना बातें करते। कात्यायनी राज के घर भी हो आती। आजकल नागलक्ष्मी किसी से भी नहीं बोलती। रसोई बनाकर राज और पथ्वी का परोसती और चुपचाप रसोईघर के एक कोने म सिमट-कर बठ जाती। राज उसके पास बठकर, दस बार बात करता तो उत्तर एक ही बार मिलता। पहले भी पथ्वी पिता के पास नहा जाता था। उसम अब भी कोई परिवतन दिखाई नहीं पडा। वह इतना ही समझ सका कि उसकी माँ पहले पलग पर सोती थी आजकल रसोईघर के फश पर सोती है। वह पाँच साल पार कर, पडोस के बच्चा के साथ स्कूल जाता था। चाचा बाजार जाता तो उसे भी साइकिल पर बठा ले जाता।

एक दिन राज ने नागलक्ष्मी से पूछा—'नागु इस साल मैं शादी कर लू?

देवर के मुख स यह सुनकर उसन तुरत प्रश्न किया "मुझसे पूछ रहे हो?

'लडकी कौन है, जानती हो?'

कात्यायनी!

तुम कस जानती हो? उसने आश्चय से पूछा।

एसी बातें स्त्रिया की समझ म जल्दी आ जाती हैं। वह जब घर आती है और तुम दोना कमरे मे बैठकर देर तक बातें करते रहते हो, इससे कोई भी समझ सकता है।'

'तुमने तो कभी नहीं बताया कि तुम जानती हो।'

'तुमने क्या नहा बताया कि मैं उससे शादी करने जा रहा हूँ?

राज शम से गड गया। नागलक्ष्मी बोली, "उसका भी एक बच्चा है। उसे छोडकर वह कैसे रह सकेगी?'

"उसे भी ले आयगी। तुम्हे यह शादी पसन्द है?'

मेरी पसन्द की बात क्या पूछ रहे हो? सामाजिक रूढ़िया, धम-

धम के विरुद्ध चले तो भविष्य म सबका कल्याण कमे होगा ?

धम-कम सबधी अपन विचार उसने कई बार नागलक्ष्मी को बताये थे। अब पुन उस सम्बन्ध म भाषण देने लगा—'जो मुझे पसन्द नही है ऐसी किसी लडकी से शादी करके मैं उसके साथ जीवन कम बिता सकूगा ! इसलिए मुझे लगता है कि कात्यायनी ही मरे लायक लडकी है। तुम भी इसे पसन्द करोगी न ?'

नागलक्ष्मी को अपना जीवन स्मरण हो आया। अब जीवन को वह निर्लिप्त भाव स देखने की कोशिश कर रही थी। उसने कहा— तुम ठीक कह रहे हो। वैसा ही होने दो।

उस दिन दोपहर को कात्यायनी ने आकर नागलक्ष्मी स कहा—'आप मुझे अपनी बना लीजिए।

नागलक्ष्मी मन-ही-मन कह उठी तुम दोनो का कल्याण हो।'

माघ के तीसरे सप्ताह म कात्यायनी की परीक्षा थी। फरवरी के अन्त म एक दिन राज ने कात्यायनी से कहा अब देर नही करनी चाहिए। अपने घर से अनुमति ले लो तो हम शादी कर लें। तुम्ह अब कालेज म मिलने वाली लडकी की तरह नही रहना चाहिए।'

८ इसके लिए कात्यायनी भी उत्कठित थी। घर की सारी बात बताकर सास ससुर की अनुमति लेकर अपने भावी पति के घर जाने की आतुरता गत तीन महीनो मे थी। लकिन घर म कहे तो कस ? वह जानती थी कि उसके इस निणय स श्रोत्रिय परिवार पर वज्रपात सा होगा। वह अच्छी तरह से जानती थी कि उस परिवार का स्तर मान सम्मान सामाजिक प्रतिष्ठा और परम्परा से प्राप्त उनका विश्वास आदि उसके इस निणय स चूर चूर हो जायेंगे। अब भी वह उसका घर था। पाच साल पहले इस घर की देहली पर चावल से भरे बरतन को बायें पर से ठोकर मारकर सम्पत्ति का ज्वार आने का सकेत देकर वह उस घर म प्रविष्ट हुई थी। श्रोत्रिय परिवार के वश वक्ष म उसका नाम अमिट रूप में लिख गया था। उसे मिटाने के लिए वह तयार थी लकिन वह यह जानती थी कि उस स्वच्छ विशाल पथ का वह स्थल कलकपूण दिखाई दगा। और उन सास ससुर का क्या होगा जो पुत्र के स्वगवास के पश्चात् वश-वद्धि के लिए अपने पौत्र का मुह जोहते जी रहे हैं ?

ये विचार उसके मन म पहले भी उठे थे। जब पहली बार दिल खोल-कर उसने राज से बात की थी, उसी दिन यह विचार मन म चक्कर काट रहा था। लेकिन उसके अतप्त गहस्थ जीवन ने इन विचारा को दबाकर उस पूणत घेर लिया था। सास-ससुर को अपना निणय बताने का दिन आया ना वह विचलित हो गई। राज हर रोज प्रश्न करता, "घर म पूछा ? और एक दिन क्रोध म वह बैठा—"अगर इतना साहस नही था ता मेरे साथ इतनी दूर क्या चली आइ ? कात्यायनी क मन म यह विचार भी आया कि बिना बताये एक दिन बेटे को लेकर मैसूर चली जाय और पत्र द्वारा अपना निणय सास ससुर को बता दे। लेकिन वह यह सोचकर चुप रह गयी कि यह नीच काम होगा। उस पर ससुर का जो विश्वास था, उस ओछे तरीके स कलकित करने के लिए उसका मन तयार न था।

माच का पहला सप्ताह बीत गया। अब पन्द्रह दिना तक कालेज की छुट्टी के कारण परीक्षा प्रारम्भ होने तक कात्यायनी मसूर नहीं जा सकती थी। उस दिन राज ने स्पष्ट कह दिया— 'अगर तुम घर म नहीं बताओगी तो मैं पत्र लिखकर बता दूगा। तुम्हे आज नजनगूडु जाना ही नही चाहिए।'

आज रात अवश्य कहूँगी। कल क्लास नही है फिर भी मैं आऊँगी। आप भी आइए। नतीजा बता दूगी —यह आश्वासन देकर कात्यायनी शाम की गाडी से लौटी। रास्ते भर वह यही सोचती रही कि पूछूँ कस। बात प्रारम्भ कस की जाय। आखिर कुछ भी न सूझा। ट्रेन नजनगूडु स्टेशन पर पहुँची तो उसके दिल की धडकन बढ चली। अनजान अव्यक्त भय स वह काप रही थी। शरीर पसीने स तर हो गया था। चाल असतुलित हो गयी थी। किसी तरह वह घर पहुँची।

'क्या बेटी, इतना पसीना क्या ? चक्कर आ रहा है क्या धूप है बाहर पर ग्यारह भी कठिन है। सरकार अभी मे परीक्षा समाप्त क्या नहीं कर देती ?' श्रोत्रियजी ने पूछा।

ससुर को बिना उत्तर दिये वह ऊपर चली गयी। पुस्तकें अलमारी म रखकर नीचे उतरी। हाथ पर धाव, कपडे बदले। चीनी ने पास आकर पूछा 'माँ इतनी देर क्या हुई ?' बेटे को अक म भर लिया। रात के

भोजन तक किसी से नही बोली। ऊपर अकेली विचारमग्न बठी रही। अपनी सारी इच्छा शक्ति का बटोरा और निश्चय किया कि भोजन के पश्चात् ससुर से बात करनी ही है। भोजन के बाद श्रोत्रियजी दीवानखान मे थे। लेकिन बोलने का साहस नही कर सकी। नीचे उतरने के लिए जब उठी, तो पैर इतने अशक्त लगे मानो लुढ़क ही जायगी। वह वसे ही बठ गयी। नीचे सब सो गये थे। ग्यारह बजे के करीब उसे एक बात सूझी मुझे जो कुछ भी कहना है पत्र म लिख दू। कल उसे ससुर को सौपकर मसूर चली जाऊँगी। शाम को लौटगी तो वे स्वय ही बात छेड़ेंगे। तब बात करना आसान होगा।

हाथ मे कागज-पेंसिल लेकर सोचने लगी कि क्या लिखू। लेकिन कुछ नही सूझा। पाच मिनट बाद वह लिखने लगी। सुबह के लगभग तीन बजे तक लिखती रही। पूरे चौदह पन्ने अपने विचारो से भर दिये। उसने लिखा था कि मनुष्य के मूल स्वभाव को कुचलकर समाज मे किस तरह कृत्रिम रीति रिवाज और रूढ़िया फलती है। इसका भी विस्तार-पूवक विश्लेषण किया कि स्त्री पुरुष के सहज सुखमय जीवन मे समाज के आचार विचार किस तरह बाधक बनते है। धम के मूल प्रश्न को उठा-कर जिज्ञासा व्यक्त की और अन्त म लिखा

"मेरा नम्र निवेदन है कि आप समाज के अधविश्वास के परदे को उठाकर इसे मानवीय दृष्टि से देखें। मेरी जगह अगर आपकी अपनी बेटी ऐसा कदम उठाती तो उसके प्रति जो सहानुभूति आप दिखाते मैं उसी की अपेक्षा करती हूँ। मैने आपके विश्वास को कभी ठेस नही पहुँचायी। आपकी अनुमति लेकर आपका पवित्र आशीर्वाद पाकर ही अपने नये जीवन का प्रारम्भ करने जा रही हूँ। आपको सारी बातें कह सुनाना कठिन है अत पत्र लिखना पडा। आपके चरणो म मस्तक नवाकर प्रार्थना करती हूँ कि जब मैं शाम को लौटू तो मुझे आशीर्वाद दें।'

लिखे हुए पन्नो मे वह पिन लगाने लगी तो वह टेढ़ी हो गयी। तब छेद करके उन्हें धागे मे बाध दिया और एक बड़े लिफाफे मे बद कर सो गयी। एक तरह से तसल्ली मिली और उसे नीद आ गयी। आँख खुली तो सुबह के साढे सात बज गये थे। जल्दी जल्दी स्नान किया। भोजन के पश्चात टिफिन और पुस्तक उठाइ। लिफाफा उठाने लगी तो हाथ कांपने

लगा। फिर भी मन को मजबूत बनाकर नीचे उतरी। भगवान् की पूजा कर श्रोत्रियजी बाहर निकल ही रहे थे कि कात्यायनी ने आवेश के साथ उनके चरणों को स्पर्श किया।

'आज क्या विशेष बात है बेटी ? परीक्षा के अभी पन्द्रह दिन बाकी हैं।'

'कोई विशेष बात नहीं इस पत्र को देख लीजिए'—कहकर लिफाफे को उनके हाथ में थमाकर फुर्ती से घर से निकल पड़ी। विस्मित होकर श्रोत्रियजी कुछ देर उसे देखते रहे। बाद में लिफाफे की याद आई।

घर से निकलने पर कात्यायनी उद्विग्न थी। किसी तरह ट्रेन में चढ़ी। चामराजपुर में राज दिखाई पड़ा। वह भी आकुल था। बातें करते हुए दोनों घर की ओर चल पड़े। पत्र के बारे में बताकर कात्यायनी बोली—'मैं कल उत्तर दे दूंगी।' राज ने कहा—"अब तुम्हारा आ जाना ही मेरे लिए अंतिम उत्तर है।'

शाम को घर लौटते समय कात्यायनी संकोच में दबी जा रही थी। घर पहुँचते ही ससुरजी क्या पूछेंगे मैं क्या उत्तर दूंगी, अनेक कल्पित प्रश्न उसके मस्तिष्क में उठ रहे थे। एक अव्यक्त भय भी था। फिर भी आज उसके धीरज इच्छा शक्ति की परीक्षा का दिन था। अपना समस्त साहस बटोरकर घर में प्रवेश किया। श्रोत्रियजी एक विमान से बातें कर रहे थे। वह ऊपर चली गई। राज की भाँति सास के पास जाने की आज हिम्मत नहीं हुई। वह जानती है कि श्वसुर किसी भी हालत में नाराज नहीं होते। लेकिन सास की बात ही और है। स्वभाव से शांत होते हुए भी उन्हें क्रोध आ जाता है। कभी-कभी अपने पति पर भी बिगड़ उठती हैं। कात्यायनी की कल्पना थी कि श्रोत्रियजी ने पत्र की सारी बातें पत्नी से कही होंगी, घर में बड़ी उथल-पुथल मचेगी। कात्यायनी ने इसके लिए मानसिक तैयारी कर रखी था। लेकिन सास को पता ही न लगा कि वह लौट आई है। वे रसोईघर में चीनी से बातें कर रही थीं। कात्यायनी नीचे नहीं उतरी।

साढ़े आठ बजे पूजा से बाद श्रोत्रियजी ने उसे खाने के लिए पुकारा। साहसपूर्वक वह नीचे उतरी। श्रोत्रियजी और चीनी खाने के लिए साथ

बैठे। भागीरतम्मा परोस रही थी। कात्यायनी चर्चा की प्रतीक्षा म थी, लेकिन वातावरण बिल्कुल खामोश था। श्रोत्रियजी सिर झुकाये चुपचाप भोजन करते रहे। चीनी को दादी लाड प्यार से परोस रही थी। खाने क पश्चात कात्यायनी ऊपर चली गइ। उस सीढिया चढते श्रोत्रियजी ने दखा लेकिन व कुछ न बोले। यह मौन कात्यायनी का असह्य लगा। असम्मति की प्रतीक्षा मे वह वाद विवाद के लिए भी तयार थी। लेकिन वह मौन—शायद उपक्षा रूपी मौन—उसकी सहनशक्ति क लिए अपरिमित था। बचनी मे वह छटपटाती रही। अत मे साहस कर नीचे आई। श्रोत्रियजी दीवानखाने म बठे थे। उनके हाथ म कुछ कागज थे। लगता था किसी विचार म डूबे हुए और कही देख रहे हैं। कात्यायनी ने पास जाकर पूछा —"पिताजी जरा ऊपर आयेंगे ?

'आता हूँ, चलो !

वह ऊपर गई। दो मिनट बाद श्रोत्रियजी ऊपर गये और अपने कमरे मे प्रवश करते हुए कात्यायनी को बुलाया। उसके प्रवश करने से पहल व खिडकी के पास बिछे व्याघ्र चम पर बठ गय। वह खम्भे के पास खडी हो गई। ससुर ने 'आओ पास बठो' कहा तो कुछ निकट सरककर चादर पर बठ गई। कुछ समय तक दोनो कुछ नही बोले।

पाच मिनट बाद नीरवता भग करते हुए कात्यायनी न पूछा— आपने पत्र पढ लिया होगा।

"हा !'

अनुमति दीजिए।'

एक मिनट मौन रहकर अपने शात सामान्य स्वर म श्रोत्रियजी ने कहा— मेरी अनुमति लेने का प्रश्न ही नही है। तुम्हारी बुद्धि क अनुसार निणय करने की तुम्ह स्वतत्रता है।'

श्रोत्रियजी की बात म भत्सना नहा थी। अत्यत शात स्वर म ही उन्होने यह कहा था। फिर भी कात्यायना को खटका। आप एसा कहग, तो फिर क्या होगा ? आप घर के प्रमुख हैं। आपकी अनुमति क बिना मैं कुछ नही कर सकती।

तुम अब भी मान रही हो कि मैं घर का प्रमुख हूँ ? तुम भी इस परिवार की एक सदस्या हो। जब तक तुम्हार मन म यह भाव रहेगा,

तब तक तुम्हारे काय-कलाप पर मेरा अधिकार रहना स्वाभाविक है। लेकिन जिस क्षण तुम्हारे मन म अलग माग पर चलने का विचार उठा, उस क्षण स वह अधिकार मैं खो बठा। ठीक है न ?"

कात्यायनी न जाने किन किन तर्कों के लिए तैयार होकर आई थी। अपने निश्चय के औचित्य को सिद्ध करने के लिए सैकडो तक उसके मस्तिष्क म घूम रहे थे। लेकिन वह सब भूल गई। उसका मस्तिष्क शून्य मे भटकता रहा। फिर भी उसने कहा—'इस समाज म अगर स्त्री के जीवन म कोइ दुघटना घटी तो उसे पुन सुधारने की सभावना नही है। विधुर पुरुष दस बार विवाह कर ले तो कोई आपत्ति नही स्त्री क अत-करण का समझने की सहानुभूति का प्रारम्भ स ही अभाव है। और "

उसे बीच ही म टोकते हुए श्रोत्रियजी ने कहा—"अब समाज या दुनिया के व्यवहार की चर्चा नही करनी है। यह तुम अकेली का प्रश्न है। तुम्हार निणय म मैं बाधक नहीं बना और न बनूगा। अपनी इच्छानुसार चलने की तुम्ह स्वतत्रता है। लेकिन हमारा निणय सकल्प आदि हमारे अपने अपने धम जिम्मेदारी आदि के अनुसार होना चाहिए न?'

क्या योग्य समय पर विवाहित होना मानव का सहज धम नही है ?'

"जिसे सहज धम कहते हैं वही धम नही है।' इस स्थिति मे भी वे हँसकर बोले— विवाहित जीवन का सुख पाना ही जीवन का परम लक्ष्य नहीं है। गाहस्थ्य जीवन है वशोत्पत्ति के लिए। वश बढ जान पर अगर अचानक घर मिट जाय तो फिर उसी म लौटना धम नही।

कात्यायनी समझ न पाई कि आगे क्या बोले। श्रोत्रियजी भी मौन रहे। दस मिनट दोनो मूकवत बैठ रह। फिर श्रोत्रियजी बोले—'वाद विवाद म एस विषयो का निपटारा नही किया जा सकता। व्यक्तिगत सुख के लिए सकुचित विचारो स ऊपर उठकर देखन पर ही धर्माधम स्पष्ट गोचर होन ह। तुमन कहा कि पुरुष की दस शादियाँ भी हो सकती हैं। मैंन अभी अभी कहा कि दुनिया की बात नही करनी। कुछ साल पहले मेरे जीवन म भी शादी की बात आयी थी। मैंन माग म हो धम को अपनाया। नही कहना तो यह चाहिए कि धम ने पथ दिखाकर मरी रक्षा की। जो व्यक्ति अपन-आपको धम के हाथो सौंप देता है, उस धम सदा हाथ

घर चलाता है। तुम्हारे पति ने शायद इस बारे में कहा होगा। नहीं तो, अब भी नीचे जाकर तुम अपनी सास या लक्ष्मी से पूछ लो। अब बहुत देर हो गई है सो जाओ।"

श्रोत्रियजी उठे। कमरे के द्वार पर रुककर बोले— इस विषय में पूर्ण आजादी है तुम्हें। मुझे भी विश्वास है कि व्यक्ति पर बाह्य जगत द्वारा जबर्दस्ती लादी जाने वाली रूढ़ियाँ धर्म का पूर्ण रूप नहीं हैं।'

वे धीरे धीरे सीढ़ियाँ उतरकर सोने के लिए दीवानखाने में चले गये। कात्यायनी को याद आया कि उसने आज सास ससुर चाचा किसी का बिस्तर नहीं लगाया तो उसे दुःख हुआ। वह उठकर अपने मान के कमरे में गई। उसकी शक्ति शिथिल हो गई थी। उसे लगा मानो प्रचण्ड रूप से उमड़ती हुई उसकी सहज चेतना अब सूख गई है। काफी उड़कर थकने पर पंख समेटकर जिस तरह पक्षी एक किनारे जा बैठता है उसी तरह कात्यायनी अपने बिस्तर पर सिमटकर पड़ गई।

कात्यायनी का पति नजुड श्रोत्रिय अपने पिता के बारे में उससे अभिमान से बोला करता था। श्रीनिवास श्रोत्रिय के जीवन में भी ऐसी ही एक कठिन समस्या उठ खड़ी हुई थी। धर्म-पथ पर चलकर, परीक्षा में सफल होकर वे आगे बढ़े थे। धीरे धीरे वे सारी बातें विस्तार पूर्वक कात्यायनी को याद आने लगीं।

१३

श्रीनिवास श्रोत्रिय की माँ का जब स्वर्गवास हुआ तो वे पंद्रह साल के थे। वे अपने माता पिता के इकलौते पुत्र थे और मसूर की संस्कृत पाठशाला में पढ़ते थे। *मृत्यु के समय माँ लगभग पचास वर्ष की थी। पचपन वर्ष के* वृद्ध पिता ने पुत्र को मसूर से बुला लिया और फिर नहीं भेजा। घर में पिता पुत्र ही थे। घर के पीछे एक कुटिया थी, जिसमें उन्हीं के भरोसे जीने वाला घर का नौकर माचा अपनी बेटी लक्ष्मी के साथ रहता था।

बेटी को जन्म देकर पत्नी के मरने के बाद मामा ने दूसरी शादी नहीं की। तीन साल की बच्ची को अपने संबंधियों के घर छोड़ दिया और जब वह बड़ी हो गई तब अपने पास ले आया। मालिक के घर में बाप-बेटी दोनों काम करके खाते-पीते और वहीं रहते। छोटी उम्र से ही लक्ष्मी उस घर का काम करने लगी थी।

पत्नी की मृत्यु के बाद घर में और कोई स्त्री न होने के कारण वृद्ध नंजुंड श्रोत्रियजी को स्वयं ही भोजन बनाना पड़ता था। पुत्र श्रीनिवास भी मदद करता। पिछवाड़े की कुटिया में मामा अपने एवं बेटी के लिए अलग बनाता था। जब लक्ष्मी दस साल की थी। श्रीनिवास से पांच साल छोटी। नंजुंड श्रोत्रिय रोज रसोई करते-करते ऊब गये थे। पुत्र का मन पढ़ाई में ही रमा हुआ था। मैसूर की पढ़ाई रुक जाने पर भी वह यकप्पा शास्त्री के घर जाकर न्याय वैशेषिक आदि दर्शन सीखता था। अपनी छह वर्ष की उम्र में ही श्रीनिवास को अमर-कोश कण्ठस्थ हो गया था। उसने मैसूर में संस्कृत साहित्य रामायण, महाभारत आदि का अध्ययन किया था। संस्कृत ही उस शाला में पढ़ाई का माध्यम थी। अतः भाषा-सौंदर्य के प्रति अधिक रुचि के कारण वह उसमें प्रभुत्व पाने का प्रयत्न करता था।

पुत्र की विद्या पिपासा में पिता नंजुंड बाधक नहीं बने। फिर भी विद्या के लिए धन खर्च करने को वे तैयार न थे। अब श्रीनिवास श्रोत्रिय जितनी जायदाद के मालिक हैं उस समय भी उतनी थी। पूजागृह और रसोईघर के बीच वाले कमरे में गड्ढा खोदकर एवं बड़े बरतन में चांदी के रुपये एवं सोना-चांदी गाड़ रखी थी। नंजुंड श्रोत्रिय रोज उस पर बिस्तर बिछाकर सोते। पिता की कंजूसी और पुत्र की ज्ञान पिपासा को यकप्पा शास्त्री जानते थे। अतः बिना किसी प्रतिफल की अपेक्षा किये ही वे श्रीनिवास को पढ़ाते थे। लेकिन अध्ययन के लिए आवश्यक ग्रंथ खरीद देने की सामर्थ्य उनमें न थी। इस प्रकार श्रीनिवास का अध्ययन लड़-खड़ाता हुआ चल रहा था।

रोज रसोई बनाने से छुटकारा पाने के लिए पत्नी की मृत्यु का वार्षिक श्राद्ध होते ही, नंजुंड श्रोत्रिय ने पुत्र का विवाह करना चाहा। यद्यपि यह सर्वविदित था कि वे बड़े कंजूस हैं हर कौड़ी का हिसाब

भगवान के डिब्बे म डालते हैं फिर भी उनकी स्थिति देखकर लडकी देने के लिए लोगो मे होड लग गयी थी। श्रीनिवास सुन्दर था। पिता की तरह काला घुडा-सा शरीर नही था। गोर वर्ण हँस मुख भरा-पूरा शरीर बडी-बडी चमकीली आँखें, चौडा ललाट दोनो कानो म वजनदार लाल पत्थर जडी बालियाँ पहनता था। इस लडके को दामाद बनाने के लिए नजनगड् के भी कई लोग आगे आये लेकिन उसी गाँव की लडकी लेना श्रोत्रियजी को पसन्द न था। दूर का इलाका हासन की एक लडकी से शादी तय की। लडकी अच्छे घराने की थी। साथ ही वर-वधू की जन्म-कुडलियाँ जसी मिली वसी विरली ही मिलती हैं। शादी स पहले उस जमान म वर द्वारा कन्या देखा जान की प्रथा न थी। लडकी छोटी उम्र की थी लेकिन श्रोत्रियजी ने यह सोचकर उस पसन्द किया कि राज रसोई के काम से तो छुटकारा मिलेगा ही। ग्यारह साल की भागीरतम्मा काली होते हुए भी सुलक्षणी थी। लेकिन कद की दृष्टि स बहुत नाटी थी। शादी के दिन कुछ लोगो ने इस पर व्यग्य भी कसा था। वरोपचार के रूप मे एक चाँदी का रुपया, ताँबे का पचपात्र थाली, चप्पल, छाता आदि देकर लडकी के पिता न सुचारु रूप से आठ दिन की शादी की।

बहू के हाथो पकाया भोजन श्रोत्रियजी के भाग्य म न था। शादी के छह महीने बाद ही व पेचिश स चल बसे। कुछ लोगो न कहा शायद बहू का नक्षत्र ससुर से नही मिला। मरने स पहल उन्होने पुत्र को पास बुलाकर जमीन म छिपा हुआ धन बताया। पिता के श्राद्ध के पश्चात एक रात जब उस स्थान को खोदा गया तो चादी के छह हजार सिक्को के अलावा सोना चादी इतनी निकली कि श्रीनिवास अकेला न उठा सका। वह जानता था कि गहनो मे अधिकाश तो उन लोगो के गिरवी रखे हुए हैं जो छुडाने म असमर्थ थ। यह सारी सम्पत्ति और घर का सारा अधिकार अपने हाथ म आते ही पूरे घर का स्वरूप ही बदल गया। विद्या गुरु यज्ञप्पा शास्त्री की बेटी की शादी म एक हजार रुपये देकर व गुरु ऋण स मुक्त हुए। गुरु के बताये ग्रथो म से उपलब्ध ग्रथो को खरीदा और इनसे मजले का अध्ययन कक्ष सजाया।

नौकर माचा की बेटी लक्ष्मी तब बारह साल की थी। माचा ऊँचा-

१

पूरा आदमी था। कहते हैं पहले उसने नीलगिरि के चाय-बगान में काम करते हुए एक सुन्दर विधवा युवती से प्यार किया और उसे भगाकर ले आया। नञ्जुड श्रोत्रिय ने दम्पति को आश्रय दिया था। उन्हें भी अपनी जायदाद और धन सम्पत्ति की रखवाली के लिए माचा-जैसे हृष्ट पुष्ट एवं विश्वस्त व्यक्ति की आवश्यकता थी। लक्ष्मी ने अपनी माँ का गोरा वर्ण और सुन्दरता हँसमुख स्वभाव और पिता का सा कद पाया था। लोग कहते थे माचा की पत्नी पति से दो वर्ष छोटी थी। लेकिन रूप ने उसकी उम्र को ढँक दिया था। चार साल पति के साथ रहकर वह लक्ष्मी को जन्म देकर चल बसी। बारह वर्ष की अवस्था में ही लक्ष्मी इतनी सुन्दर थी कि जिसे चाहे आकर्षित कर सकती थी। बचपन से ही साथ पले श्रीनिवास को वह श्रीनप्पा कहकर पुकारती। इसी घर में पली होने के कारण वह शुद्ध भाषा बोलती। शादी के दिन अपनी पत्नी को देखकर श्रीनिवास ने एक बार सोचा था—'काश, यह लक्ष्मी ही मेरी पत्नी होती।'

लक्ष्मी के रूपवती होते हुए भी उसकी शादी के लिए उसके पिता के पास पैसे नहीं थे। कुछ लोगों ने लक्ष्मी का हाथ माँगा भी, लेकिन उनकी हालत अच्छी नहीं थी। एक दिन श्रीनिवास श्रोत्रिय ने माचा से कहा, 'किसी अच्छे घर का योग्य लड़का ढूढ़कर शादी कर दो। मैं एक हजार रुपये दूँगा।' माचा ने दौड़ धूप शुरू की और मंडय के इलाके में सीमा-प्रदेश काडियाल के एक युवक को चुना। लक्ष्मी की शादी धूमधाम से सम्पन्न हुई।

एक साल बाद बड़ा होकर भागीरतम्मा के आने पर श्रीनिवास का घर फिर से सज गया। पत्नी के आने के बाद भी उनका अध्ययन जारी रहा। बार-बार मैसूर जाते और उपलब्ध ग्रंथ खरीद लाते थे। जब कभी कोई विषय समझ में न आता, तब वे संस्कृत के विद्वानों से पूछ लिया करते थे। यकप्पा शास्त्री ने खुशी से उन सब विषयों को शिष्य को समझाया जो वे जानते थे। श्रीनिवास श्रोत्रिय का जीवन सुख से बीत रहा था कि एक दिन नञ्जनगूडु में प्लेग फैल गया। मृतकों में माचा भी एक था। लक्ष्मी को बुलाया लेकिन उसके आने से पहले ही माचा के प्राणपखेरू उड़ चुके थे। वह शव संस्कार के दूसरे दिन आई। वह वापस जाने लगी तो

श्रोत्रियजी न उसे सान्त्वना दी और सौ रुपय हाथ म रखते हुए कहा—' माचा का श्राद्ध अपन गाँव म ही करा देना। यहाँ भी आती रहना। तू भी इसी घर की लडकी है।

मीनप्पा का औदार्य देखकर लक्ष्मी अवाक रह गयी। उनके चरण छूकर वह चली गयी।

श्रोत्रियजी का अध्ययन चलता ही रहा। नये दाम्पत्य के नये दिन उत्साहपूर्ण थे। तीन वर्ष बीत गये, लेकिन भागीरतम्मा गर्भवती नहीं हुई। इन दिनों श्रोत्रियजी ने धर्मशास्त्र, वेद उपनिषद् दर्शन आदि विषयों का काफी ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वे रोज रामायण का पारायण करते थे। ये ग्रंथ श्रोत्रियजी के जीवन पर गहरा व अमिट प्रभाव डालते थे। मानव जीवन का लक्ष्य क्या है? गृहस्थाश्रम का क्या तात्पर्य है? गृहस्थ के क्या कर्तव्य हैं आदि विषयों पर वे विस्तारपूर्वक चिंतन मनन करते थे। विवाह के तीन साल बाद भी संतान न होने से वे दुःखी थे। उनका विश्वास था कि वंश वृद्धि के लिए संतान प्राप्ति ही विवाह का प्रथम उद्देश्य है। लेकिन अब भी समय था।

एक दिन शाम के छह बजे लक्ष्मी घर आई। आते ही शीनप्पा के पैर पकडकर जोर-जोर से रोने लगी। अनेक तरह से समझाकर उन्होंने कारण बताने को कहा। बात यह थी कि माचा धोखा खा गया था। लक्ष्मी का पति जुआरी था। हमेशा अँगुली में सोने की अँगूठी और गले में चेन पहने लडके को सुन्दर एवं योग्य समझकर माचा ने लडकी दी थी। बीस दिन पहले जुए में उसने दूसरों के सारे पैसे जीत लिए थे। रात के दो बजे हारे हुए लोग उसका खून करके भाग गये। अब तीन दिन पहले वे खूनी पुलिस के हाथ लगे। असहाय लक्ष्मी ने यहाँ आकर आश्रय माँगा।

श्रोत्रियजी ने 'सब मानव के कर्मानुसार होता है। तू चिंता न कर लक्ष्मी। तुझे इस घर में खाना नहीं मिलेगा क्या,' आदि सान्त्वना के शब्द कहे। भागीरतम्मा को भी लक्ष्मी का सहयोग अपेक्षित था। इसके पश्चात् उस हत्या के मामले में पूछताछ के सिलसिले में लक्ष्मी को दो-तीन बार मैसूर कोर्ट में जाना पडा। उसे श्रोत्रियजी ही लिवा ले गये थे। अपराधियों को आजीवन सजा मिली।

और दो साल बीत गये। भागीरतम्मा गर्भवती नहीं हुई। श्रोत्रियजी

अब चौबीस वर्ष के थे और भागीरतम्मा उन्नीस की। श्रोत्रियजी चिंतित हो उठे। रामायण महाभारत में आये निःसन्तान राजाओं में जो व्याकुलता थी, वही श्रोत्रियजी भी अनुभव कर रहे थे। लेकिन एक दिन भी पत्नी को उन्होंने खरी-खोटी नहीं सुनाई। उसके सम्मुख अपना दुखड़ा नहीं कहा। किन्तु भागीरतम्मा पति की व्याकुलता ताड़ गयी थी। उसे भी यह चिन्ता सता रही थी कि अब तक वह माँ न बन सकी। पति के प्रति उसका अगाध प्रेम और विश्वास था, उनके सौम्य स्वभाव के प्रति गर्व था। दम्पति ने सब देवी देवताओं की मनौती की। श्रोत्रियजी ने नंजुंडेश्वर का सुवर्णपाद चढ़ाने का संकल्प लिया। एक वर्ष में भागीरतम्मा ने गर्भ धारण किया। प्रसव के लिए उसे लेने उसके पिता आये, लेकिन श्रोत्रियजी ने उसका वहाँ रहना उचित समझा। प्रसव के तीन महीने पहले भागीरतम्मा की माँ नंजनगूडु आ गयी। प्रसव के दिनों में भागीरतम्मा का स्वास्थ्य अच्छा रहा। लेकिन प्रसव वेदना प्रारम्भ हुए तीन दिन बीतने पर भी प्रसव नहीं हुआ। वैद्य को बुलाया। उन्होंने मैसूर जाने के लिए कहा। फोन किया। मोटर आयी। पीड़ा से कराहती भागीरतम्मा के साथ सब बैठ गये। मोटर मैसूर के बड़े अस्पताल की ओर तेजी से भगायी गयी। श्रोत्रियजी परेशान थे। थैली में चाँदी के रुपये लिये अस्पताल के बाहर खड़े थे। मन बेचैन था। पास खड़ी लक्ष्मी धीरज बँधा रही थी। चार-पाँच घंटे बाद डाक्टर ने आकर कहा—'आपरेशन करना पड़ेगा, अन्यथा प्राण-हानि की सम्भावना है।'

डाक्टर ने फार्म पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा। श्रोत्रियजी ने हस्ताक्षर कर दिये। श्रोत्रियजी, उनकी सास और लक्ष्मी—तीनों बाहर बैठ गये। नंजनगूडु के कुछ और लोग उनसे मिलने आ गये। श्रोत्रियजी बैठे-बैठे मन ही मन निम्न श्लोक गुनगुना रहे थे—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

लगभग तीन घण्टे बाद भीतर से खबर आई "आपरेशन हो गया है।। बालक स्वस्थ है। माँ को भी किसी प्रकार का भय नहीं है।'

सबने सन्तोष की साँस ली। लेकिन श्रोत्रियजी का "दुःखेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृहः— पठन चलता रहा।

भागीरतम्मा एक महीना अस्पताल मे रही। माँ और लक्ष्मी उसके पास रही। श्रोत्रियजी रोज देखने जाते। अस्पताल से लौटने के दिन श्रोत्रियजी को अलग बुलाकर डाक्टर ने कहा— बच्चा माँ के गर्भकोश के आकार से बड़ा था। दैहिक दृष्टि से यह विषम दाम्पत्य है। इस बार आपरेशन के कारण बच गयी। अगर पुन गर्भवती हुई तो मृत्यु निश्चित है। अब दैहिक सबध को रोकना ही पडेगा।

श्रोत्रियजी का भरा ऊचा शरीर और चेहरे पर चमकती कांति देख कर डाक्टर को शायद खेद हुआ होगा। उनसे डाक्टर ने जो बात कही थी, वही नर्स ने भागीरतम्मा से कही।

शीनप्पा ने बच्चे का नाम अपने पिता नजुड श्रोत्रिय के नाम पर रखा। बच्चा उन्ही का प्रतिरूप था। आठ महीने बेटी की देखभाल कर भागीरतम्मा की माँ हासन लौट गयी।

घर आने के बाद माँ-बेटे नीचे के कमरे म सोते थे और श्रोत्रियजी ऊपर अपने अध्ययन-कक्ष म। भागीरतम्मा की मा के रहने तक श्रोत्रियजी का मन काबू म रहा लेकिन सास के जाने के बाद उनका मन पत्नी के लिए विचलित हो उठा। घर म और कोई नही था। लक्ष्मी दिन भर गाय बछडा के साथ बाहर रहती। घर म सिर्फ पत्नी थी। लेकिन डाक्टर ने कहा था न कि दैहिक दृष्टि से यह विषम दाम्पत्य है। इस बार आपरेशन के कारण बच गयी। अगर पुन गर्भवती हुई तो मृत्यु निश्चित है। अब दैहिक सम्बन्ध रोकना ही पडेगा।

डाक्टर की चेतावनी श्रोत्रियजी के कानो म सदा गूजती रही। बच्चे को स्तन पान कराते समय वे कभी-कभी पत्नी को देखते। भरा शरीर, हृष्टपुष्ट हँस मुख बालक माँ की गोद म लेटा दूध पीता। बच्चे के शरीर को देखते हुए भागीरतम्मा लडकी सी दीखती। पत्नी को देखकर पति के मन म सहानुभूति जाग उठती थी। 'आइए बैठिए —कहकर वह बुलाती तो भी वे वहाँ न ठहरते। घर से खिसक जाते। इस तरह दो महीने बीत गये। चचल चित्त उनके वश म न रहा। अध्ययन के समय भी मन काबू म न रहता। पूजा के समय भी मन अपने शात स्वभाव को त्याग हवा म जलते दीप की तरह काँप उठता। अनमना भाव से पूजा करने से क्या लाभ —यह सोचकर वे बीच ही म उठ जाते।

भागीरतम्मा यह ताड़ गयी थी लेकिन विवश थी। उस की बात ने उसे भी डरा लिया था। उसे इस बात का पूर्ण विश्वास था कि पति जबर्दस्ती नहीं करेंगे लेकिन वह उनके मन में उठ रहे स्वाभाविक परिवर्तन को समझ रही थी। दाहिक सुख देने में असमर्थ होने के कारण वह पहले से अधिक पति की सेवा करने लगी। एक-दो महीने बीत गये। श्रोत्रियजी ने दूध पीना छोड़ दिया, घी खाना भी बंद कर लिया। हर रोज उठने के पश्चात घर के पिछवाड़े के बड़ बगीचे का खोदकर, बगिया बनाने लगे। इस शारीरिक परिश्रम और पौष्टिक आहार के त्याग से रात को लेटते ही आँख लग जाती। सुबह तक गहरी नींद लेते। लेकिन एक दो महीने में वे दुबले हो गये। पहले का-सा शरीर न रहा, चेहरे की चमक जाती रही। 'इस तरह घी-दूध छोड़ने से कैसे चलेगा?' —कहकर भागीरतम्मा घी-दूध परोसने लगती तो श्रोत्रियजी कहते—'मानव मन का नियंत्रण में रखने के लिए इन सबको त्यागना ही पड़ेगा।'

भागीरतम्मा को पति से अपार प्रेम था। उनकी सुंदर काया के प्रति गर्व था। दिन प्रतिदिन पति का दुबला होना, उसके लिए असह्य हो उठा था। उसके मन में एक विचार आया। गाँव में बारह साल की उसकी एक अविवाहित बहन है। उसे बुलाकर पति से शादी कर दी जाय तो समस्या सुलझ जायगी। वह बहन होने एवं उसकी दीदी होने के कारण घर में मान-सम्मान में भी किसी तरह का अन्तर नहीं पड़ेगा। लेकिन डर था कि माता पिता मानेंगे या नहीं।' एक महीने में श्रोत्रियजी और भी दुबले हुए। भागीरतम्मा का निर्णय बल पाने लगा। नम की चेतावनी से लेकर पति के स्वास्थ्य तक की हर बात बताते हुए उसकी सलाह के साथ, माँ का पत्र लिखवाया। भागीरतम्मा की बहन उसकी तरह नहीं थी। सुंदर व गठे बदन की थी। एक सप्ताह बाद श्रोत्रियजी के ससुर नजनगूडु आये। दूसरे दिन दामाद को लेकर बाहर निकले। दोनों नदी पार कर एक निर्जन स्थान पर बैठ गये। ससुर ने बात शुरू की— मैं सारी बातें जानता हूँ। सब प्रभु की लीला है। भागू भी मान गयी है। घर में सबकी स्वीकृति है। कावेरी से तुम शादी कर लो। दोनों बहनें साथ साथ रहेंगी।"

श्रोत्रियजी को आश्चर्य हुआ। पूछा—'क्या इसीलिए आप आये हैं?"

भागीरतम्मा एक महीना अस्पताल म रही। माँ और लक्ष्मी उसके पास रहा। श्रोत्रियजी रोज देखन जात। अस्पताल स लौटन क दिन श्रोत्रियजी को अलग बुलाकर डाक्टर ने कहा— 'बच्चा माँ के गभकोश क आकार से बडा था। दहिक दृष्टि से यह विषम दाम्पत्य है। इस बार आपरेशन क कारण बच गयी। अगर पुन गभवती हुई तो मत्यु निश्चित है। अब दहिक सबध को रोकना ही पडगा।'

श्रोत्रियजी का भरा ऊँचा शरीर और चहरे पर चमकती कांति देख कर डाक्टर को शायद खेद हुआ होगा। उनस डाक्टर न जो बात कही थी, वही नस न भागीरतम्मा स कही।

श्रीनप्पा न बच्चे का नाम अपने पिता नजुड श्रोत्रिय के नाम पर रखा। बच्चा उन्ही का प्रतिरूप था। आठ महीन बेटी की देखभाल कर भागीरतम्मा की माँ हासन लौट गयी।

घर आने के बाद माँ-बटे नीचे के कमरे म सोते थे और श्रोत्रियजी ऊपर अपने अध्ययन-कक्ष म। भागीरतम्मा की माँ के रहन तक श्रोत्रियजी का मन काबू म रहा लेकिन सास क जान के बाद उनका मन पत्नी के लिए विचलित हो उठा। घर म और कोई नही था। लक्ष्मी दिन भर गाय बछडा क साथ बाहर रहती। घर म सिफ पत्नी थी। लकिन डाक्टर ने कहा था न कि दहिक दृष्टि से यह विषम दाम्पत्य है। इस बार आपरेशन के कारण बच गयी। अगर पुन गभवती हुई तो मत्यु निश्चित है। अब दहिक सम्बध रोकना ही पडगा।

डाक्टर की चेतावनी श्रोत्रियजी क कानो म सदा गूजती रही। बच्चे को स्तन पान कराते समय वे कभी-कभी पत्नी को देखत। भरा शरीर, हृष्टपुष्ट हस मुख बालक मा की गोद म लेटा दूध पीता। बच्चे क शरीर को देखत हुए भागीरतम्मा लडकी सी दीखती। पत्नी को देखकर पति के मन म सहानुभूति जाग उठती थी। 'आइए, बठिए'—कहकर वह बुलाती तो भी व वहाँ न ठहरते। घर से खिसक जाते। इस तरह दो महीन बीत गय। चचल चित्त उनके वश मे न रहा। अध्ययन क समय भी मन काबू म न रहता। पूजा के समय भी मन अपने शात स्वभाव को त्याग, हवा म जलत दीप की तरह काप उठता। अनमना भाव से पूजा करन से क्या लाभ —यह सोचकर वे बीच ही म उठ जाते।

भागीरतम्मा यह ताड़ गयी थी, लेकिन विवश थी। उन्हें इस बात ने उसे भी डरा दिया था। उसे इस बात का पूर्ण विश्वास था कि पति जबर्दस्ती नहीं करेंगे लेकिन वह उनके मन में उठ रहे स्वाभाविक परिवर्तन को समझ रही थी। दक्षिण सुख देने में असमर्थ होने के कारण वह पहले से अधिक पति की सेवा करने लगी। एक-दो महीने बीत गये। श्रोत्रियजी ने दूध पीना छोड़ दिया, घी खाना भी बन्द कर दिया। हर रोज उठने के पश्चात् घर के पिछवाड़े के बड़े बगीचे को खोदकर, बगिया बनाने लगे। इस शारीरिक परिश्रम और पौष्टिक आहार के त्याग से रात को लेटते ही आँख लग जाती। सुबह तक गहरी नींद लेते। लेकिन एक-दो महीने में वे दुबले हो गये। पहले का-सा शरीर न रहा, चेहरे का चमक जाती रही। इस तरह घी-दूध छोड़ने से कैसे चलेगा?'—कहकर भागीरतम्मा घी-दूध परोसने लगती तो श्रोत्रियजी कहते—'मानव मन का नियंत्रण में रखने के लिए इन सबका त्यागना ही पड़ेगा।'

भागीरतम्मा को पति से अपार प्रेम था। उनकी सुन्दर काया के प्रति गर्व था। दिन प्रतिदिन पति का दुबला होना, उसके लिए असह्य हो उठा था। उसके मन में एक विचार आया, गाँव में बारह साल की उसकी एक अविवाहित बहन है। उसे बुलाकर पति से शादी कर दी जाय तो समस्या सुलझ जायेगी। वह बहन होने एवं उसकी दीदी होने के कारण घर में मान-सम्मान में भी किसी तरह का अन्तर नहीं पड़ेगा। लेकिन डर था कि माता पिता मानेंगे या नहीं। एक महीने में श्रोत्रियजी और भी दुबले हुए। भागीरतम्मा का निर्णय बल पाने लगा। नर्स की चेतावनी से लेकर पति के स्वास्थ्य तक की हर बात बताते हुए, उसकी सलाह के साथ, माँ को पत्र लिखवाया। भागीरतम्मा की बहन उसकी तरह नहीं थी। सुन्दर व गठे बदन की थी। एक सप्ताह बाद श्रोत्रियजी के ससुर नंजनगूडु आये। दूसरे दिन दामाद को लेकर बाहर निकले। दोनों नदी पारकर एक निर्जन स्थान पर बैठ गये। ससुर ने बात शुरू की— मैं सारी बातें जानता हूँ। सब प्रभु की लीला है। सासू भी मान गयी है। घर में सबकी स्वीकृति है। जावरी में तुम शादी कर लो। दोनों बहनें साथ-साथ रहेंगी।"

श्रोत्रियजी को आश्चर्य हुआ। पूछा—"क्या इसीलिए आप आये हैं?"

श्रोत्रियजी के मस्तिष्क में उनके माने हुए जीवन-आदर्शों एवं अदम्य शक्ति के प्रकृति गुणों में सदा परस्पर संघर्ष चलता रहता था। अध्ययन के फलस्वरूप वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि प्रकृति की पकड़ से मुक्त हुए बिना मनुष्य स्वतंत्र नहीं है। इस अनुभव को वर्तमान वास्तविक जीवन के अनुरूप ढालकर उन्हें प्रकृति प्रभाव पर विजय प्राप्त करनी है। इसलिए अपनी समस्त शक्ति से वे उसका सामना कर रहे थे। वे दिन का अधिकांश समय शारीरिक परिश्रम में बिताते। शेष समय अध्ययन में लगाते। मन शांत हो जाने पर अपनी जीत पर मुस्कराते। लेकिन एक-दो घण्टे बाद फिर मन में खलबली मच जाती। देखी हुई सुन्दर स्त्रियों के मुख उनकी आँखों में नाच उठते। लगता, वे उन स्त्रियों से बातें कर रहे हैं। कभी यह भी कल्पना करते कि किसी निवस्त्र सुन्दरी ने उनका हाथ पकड़ रखा है। उनकी प्रज्ञा ऐसी कल्पनाओं को रोकने का प्रयत्न करती लेकिन अतृप्त कामनाएँ एवं जवानी की अभीप्सित इच्छाएँ मिलकर प्रज्ञा के दुर्बल तार तोड़कर अपनी भीषण शक्ति से आगे बढ़तीं। जब कल्पना प्रवाह रुककर मन शांत होता तो वे उन विचारों पर पछताते। उनका शरीर दिनों दिन टूटता जा रहा था।

गाँव लौटने से पहले पिता ने जो सलाह दी थी, वह भागीरतम्मा को नहीं रुची। लेकिन उनके पुनर्विवाह को अस्वीकार कर दो और उनकी विगड़ती तन्दुरुस्ती को देखकर वह डर गई। उसके पिता व्यावहारिक जीवन के अनुभवी थे। उनकी सलाह भी व्यावहारिक ही थी। भागीरतम्मा ने लक्ष्मी के बारे में सोचा—उसके भी माता पिता नहीं हैं। पति के साथ चार साल जीवन बिताया ही है। उसे सन्तान की आशा न होगी क्या? वह अगर मेरे पति के साथ किसी तरह का संबंध रखे तो समाज को पता ही नहीं चलेगा। इसके प्रति सजग रहना चाहिए। अनायास कुछ विपरीत लक्षण दिखाई पड़े तो चुपचाप दवा लेनी पड़ेगी। अत्यंत आवश्यकता पड़ी तो उसी के पिता की एक परिचित स्त्री ही दवा जानती है भागीरतम्मा की कल्पना-सरिता निरन्तर बह रही थी। रखैलिया को रख लेना पुरुषों के लिए नई बात नहीं है। उसके पिता, प्रपिता चाचा इस तरह बाहरी गृहस्थी चला चुके हैं। पिता की अब भी बाहरी गृहस्थी है। फिर भी घर में उसकी माँ बच्चों के साथ सुखी है।

हाँ भागू न पत्र लिखवाया था। तुम्हे देखकर तरस आता है। तुम्हारे शरीर की क्या हालत हो गयी है ? मैं सब समझ सकता हूँ।' श्रोत्रियजी के ससुर रमिया थ। हासन म उनकी तीन रखलें थी, यह बात दामाद भी जानता था।

श्रोत्रियजी मौन रहे। उसे उनकी सम्मति समझकर ससुर ने उठते हुए कहा— ज म-कुडलियाँ भी मिलती है। मैं दिखाकर आया हूँ।"

रोज की तरह उस रात श्रोत्रियजी अपने अध्ययन-कक्ष म सो गये। पठित समस्त ग्रथ उनकी स्मृति मे छा रहे थे। प्रतिदिन पारायण की हुई पोथियाँ, उनकी आखो के सम्मुख आ गयी। मन म तीव्र सघर्ष शुरू हो गया। यह सब आधी रात तक चलता रहा। दूसरे दिन सध्या दवाचना की और ससुर के नाश्ते के बाद श्रोत्रियजी उ ह लेकर बाहर निकले। दलवाई पुल के पास निजन नदी तट की एक शिला पर बठते हुए श्रोत्रिय जी न कहा— मैन कल रात सब सोचा। विवाह गहस्थ धम निभान और वंशोद्धार क निमित्त ही होता है। वंशोद्धार के लिए पुत्र ने ज म लिया है। गहस्थ जीवन के लिए भागू है ही। पुन विवाह करना अधम है। मैं उसके लिए तयार नहीं हूँ।'

दामाद के विचार सुनकर ससुर को आश्चय हुआ। इन आदर्शों को व जानत थे। वे भी सस्कृत के ज्ञाता थे शास्त्रों का अध्ययन भी कुछ हद तक किया था। वे बोले— फिर भी हम शरीर की उपेक्षा नही कर सकत। अपनी त दुरुस्ती की ओर ध्यान दो। शरीर है तो जीवन है। वह क्षीण होगा, तो क्या होगा ? तुम्हारी यही स्थिति रही तो भागू का क्या होगा ?

ससुर की बातें श्रोत्रियजी को प्रभावित नही कर सकी। दोनो घर लौटे। उस रात पत्नी और ससुर दोनो ने श्रोत्रियजी को फिर व्यावहारिक बातें बतायी। लेकिन व्यथ। ससुर दो दिन वहा रहे। उ होने दामाद के घर की स्थिति का अध्ययन किया। घर म काम करने वाली लक्ष्मी की ओर भी उनकी दष्टि पडी। बेटी को अपने अनुभव की अत्युत्तम सलाह दी। दामाद ने उ ह एकागुल किनारदार धोती दी। उ होने पौत्र के हाथ मे एक तोले का सुवण सिक्का दिया। बेटी और दामाद ने पर छुए और व अपने गाँव का रवाना हो गये।

श्रोत्रियजी के मस्तिष्क में उनके माने हुए जीवन-आदर्शों एवं अदम्य शक्ति के प्रकृति गुणों में सदा परस्पर संघर्ष चलता रहता था। अध्ययन के फलस्वरूप वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि प्रकृति की पकड़ से मुक्त हुए बिना मनुष्य स्वतंत्र नहीं है। इस अनुभव को वर्तमान वास्तविक जीवन के अनुरूप ढालकर उन्हें प्रकृति प्रभाव पर विजय प्राप्त करनी है। इसलिए अपनी समस्त शक्ति से वे उसका सामना कर रहे थे। वे दिन का अधिकांश समय शारीरिक परिश्रम में बिताते। शेष समय अध्ययन में लगाते। मन शांत हो जाने पर अपनी जीत पर मुस्कराते। लेकिन एक-दो घण्टे बाद फिर मन में खलबली मच जाती। देखी हुई सुन्दर स्त्रियों के मुख उनकी आँखों में नाच उठते। लगता, वे उन स्त्रियों से बातें कर रहे हैं। कभी यह भी कल्पना करते कि किसी निर्वस्त्र सुन्दरी ने उनका हाथ पकड़ रखा है। उनकी प्रज्ञा ऐसी कल्पनाओं को रोकने का प्रयत्न करती, लेकिन अतृप्त कामनाएँ एवं जवानी की अभीप्सित इच्छाएँ मिलकर प्रज्ञा के दुर्बल तार तोड़कर अपनी भीषण शक्ति से आगे बढ़तीं। जब कल्पना प्रवाह रुककर मन शांत होता तो वे उन विचारों पर पछताते। उनका शरीर दिनों दिन टूटता जा रहा था।

गाँव लौटने से पहले पिता ने जो सलाह दी थी, वह भागीरतम्मा को नहीं रुची। लेकिन उनके पुनर्विवाह को अस्वीकार कर देने और उनकी बिगड़ती तन्दुरुस्ती को देखकर वह डर गई। उसके पिता व्यावहारिक जीवन के अनुभवी थे। उनकी सलाह भी व्यावहारिक ही थी। भागीरतम्मा ने लक्ष्मी के बारे में सोचा—उसके भी माता पिता नहीं हैं। पति के साथ चार साल जीवन बिताया ही है। उसे संतान की आशा न होगी क्या? वह अगर घर पति के साथ किसी तरह का संबंध रखे तो समाज को पता ही नहीं चलेगा। इसके प्रति सजग रहना चाहिए। अनायास कुछ विपरीत लक्षण दिखाई पड़े तो चुपचाप दवा लेना पड़ेगी। अत्यंत आवश्यकता पड़ी तो उसी के पिता की एक परिचित स्त्री ही दवा जानती है। भागी..ना की कल्पना-सरिता निरंतर बह रही थी। रखैलिया को रख लेना पुरुषों के लिए नई बात नहीं है। उसके पिता, प्रपिता चाचा इस तरह बाहरी गृहस्थी चला चुके हैं। पिता की अब भी बाहरी गृहस्थी है। फिर भी घर में उसकी माँ बच्चों के साथ सुखी है।

भागीरतम्मा और लक्ष्मी दोनों साथ सोती थी। रात में कभी बच्चा हठ करने लगता तो लक्ष्मी उठकर उसे खिलाती पिलाती। एक दिन रात को भागीरतम्मा ने लक्ष्मी से पूछा—'वे मुझसे क्या छिपा रहे हैं तू कारण जानती है?'

'मैं क्या जानूँ बहन!'

'सच कहना।' भागीरतम्मा उसका चेहरा गौर से देखने लगी।

'उस दिन जो कुछ कहा था वह आपने ही बताया था और अब अपने पिताजी के आने का कारण भी आपने ही बताया।'

'आह! मैं भूल ही गई थी।'

बात वहीं रुक गई। भागीरतम्मा पुनः बोली—'एक बात है!'

'कहो बहन!'

'मैंने सब सोच लिया है। उन्हें जिंदा रहना ही होगा। तू भी यह चाहती है न?'

'क्या कहती हैं बहन! श्रीनप्पा अगर मर गये तो क्या मैं जिन्दा रहूँगी?'

'बाहर किसी को पता नहीं लगेगा। तू उनके साथ सम्बन्ध बना ले। पत्नी होकर भी इस तरह रहना मेरे भाग्य में लिखा है'—कहकर आँसू बहाने लगी। 'एक दिन दोपहर में तू घर में नहीं थी। बच्चा सोया था। उनके चेहरे से मैं समझ गई थी। मैंने उनसे कहा कि डाक्टर की बात झूठ भी हो सकती है और एक दिन में होता भी क्या है। लेकिन वे यह कहकर बगीचे की ओर निकल गये कि डाक्टर का हमसे कोई वैर थोड़े ही है जो वह झूठ बोलेगा। भाग्य ही खोटा है। एक दिन में भी अनहोनी हो सकती है। डाक्टर के मना करने पर भी मैं तेरे प्राण कैसे ले सकता हूँ। आखिर मैं भी तो मनुष्य हूँ।'

भागीरतम्मा की सलाह ने लक्ष्मी को चकित कर दिया। उसने सोचा कौन पत्नी स्वेच्छा से ऐसा चाहेगी! बचपन से ही उसने श्रीनप्पा को देखा है। उनके महान गुणों के प्रति उसके मन में श्रद्धा और आदर है। उसका पति जब कभी जुआ खेलने जाता तब उसे श्रीनप्पा की याद आ जाती थी। कई बार उसने चाहा था कि मेरा पति श्रीनप्पा जैसा ही होता! पति की हत्या के बाद जब वह श्रोत्रियजी के घर आई, तब भ्रमित थी। लेकिन

श्रीनप्पा के स्नेहमय व्यवहार और भागीरतम्मा की सहनशीलता से कुछ ही दिनों में वह सँभल गई थी। यौवन की कामना उसे भी सता रही थी। पति जुआरी क्या न रहा हो, उसके बिना जीवन उसे असह्य लग रहा था। वह जब गाय-बछड़ा को चराने बाहर जाती तो अनेक युवक शवर की नजरों से उसे देखते। लेकिन उसका मन सदा निश्चल था। श्रीनप्पा के प्रति उसमें एक मधुर एवं सूक्ष्म आकर्षण अवश्य था, लेकिन केवल विषय-वासना नहीं थी।

उसे भागीरतम्मा की बात स्वीकार न थी। भागीरतम्मा करीब पन्द्रह दिन उन्हीं बातों को दुहराती रही तो एक दिन बोल पड़ी—'उन्हें स्वीकार है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।' इसके बाद दो-तीन दिन सिर उठाकर वह श्रीनप्पा को देख न सकी। तब तक श्रीनप्पा से एकवचन में बोलती थी और श्रीनप्पा को भी यह पसन्द था। लेकिन अब दो दिन से वह बहुवचन का प्रयोग करने लगी तो उन्हें आश्चर्य हुआ। फिर भी उन्होंने उस ओर ध्यान न दिया। एक दिन रात के भोजन के पश्चात पति का हाथ पकड़ कर भागीरतम्मा बोली—'एक बात है। आपको स्वीकार करनी होगी।'

पहले बताओ।'

'आपको स्वीकार करना ही पड़ेगा।''

'शादी की बात है न? तू पगली है। मुझे क्या हुआ है जो ऐसा कहना चाहती है?'

'शादी की बात नहीं' कहकर पति को पास बैठाकर अपनी सलाह बतायी। हड़बड़ाकर श्रोत्रियजी ने पूछा—लक्ष्मी को तू क्या समझ बैठी है?

'उसने मान लिया है। उसे भी स्वीकार है।'

श्रोत्रियजी स्तब्ध रह गये पत्नी का मुख देखने लगे। भागीरतम्मा ने कहा—मैं तो आपकी सेवा नहीं कर सकती। दूसरे भी तो ऐसा करते हैं। मेरी माँ के रहते हुए भी पिताजी की तीन रखैल हैं। कुछ गड़बड़ी हुई तो उपाय भी है। आपको पहले की तरह हृष्ट-पुष्ट रहना चाहिए। कहा गया है न कि चिन्ता ही आदमी की चिता है। श्रोत्रियजी सुनते जा रहे थे। 'आज लक्ष्मी ऊपर मंजिल पर सोयेगी। मैंने कह दिया है। आप

ऊपर जाइए ' भागीरतम्मा ने समझाया।

श्रोत्रियजी कुछ न बोले। उनका मन मोह में फँस गया था। उनके अतवृद्ध के दिनों में भी उन्होंने इस दृष्टि से लक्ष्मी की कल्पना नहीं की थी। उसके प्रति उनमें स्नेह था, सहानुभूति थी। वह उसी घर में पली और घर के सुख दुःख से पूर्णत परिचित थी। उनकी मदद से ही उसका विवाह हुआ था। पुन उसी घर में आश्रय लेने आई थी। अब उसने भी इस प्रस्ताव को मान लिया है। यह योजना पत्नी की है लक्ष्मी को भी उसी ने मना लिया है। मुख खोलकर उनको हाँ करने की भी जरूरत नहीं केवल ऊपर जाना ही काफी है। मानव जीवन के लिए अपेक्षित लेकिन उनका अनुपलब्ध अत्यंत सुखानुभव अब अपने-आप उनके पास पहुँच गया है। उसे ठुकराना क्या पागलपन नहीं होगा ?

बाहर ठंडी हवा बह रही थी। यद्यपि शरीर को वह अच्छी लग रही थी फिर भी कभी-कभी जोर का झोंका आ जाता था।

श्रोत्रियजी के अध्ययन-कक्ष जिसमें वे सोते थे के बगल वाले कमरे में ही लक्ष्मी लेटी थी। श्रोत्रियजी बिस्तर पर बैठे थे। उनका चित्त विचलित था। प्रकृति की समस्त मूल शक्तियाँ पागल होकर आज उनके मस्तिष्क में नाच रही थी। अपूर्व भाव से आज वे लक्ष्मी के रूप की कल्पना कर रहे थे। लक्ष्मी नीलगिरि इलाके की मा के गर्भ से जन्मी और पूरे शरीर वाले माचा की बेटी है। मा सुन्दर थी। तेईस वर्ष की लक्ष्मी ऊँची और गठे हुए बदन की थी। श्रोत्रियजी के समान ही ऊँचा शरीर था। कूर्ग की नारंगी के समान उसके शरीर का रंग था। अंग सुपुष्ट थे। बाहर जाते समय आँचल से मुँह ढँक लेने पर भी उसका सुन्दर रूप किसी को भी लुभा सकता था। वह बगल के कमरे में शायद श्रोत्रियजी की प्रतीक्षा में थी। बाह्य जगत की किसी आपत्ति के बिना वे उसका उपभोग कर सकते हैं। उनका मन काँप उठा। मन उन्माद के प्रवाह में बह चला और साँस की गति बढ़ गयी।

पति के स्वर्गवास के चार वर्ष बाद आज लक्ष्मी पुन गृहस्थानुभव पाने की प्रतीक्षा में लेटी है। वह सोचती है श्रीनप्पा यहाँ आयेंगे। आयें तो क्या बोलना चाहिए ? किस तरह बर्ताव करना चाहिए ? बचपन से ही

शांत गंभीर स्वभाव के हैं, लेकिन प्यारा घर मालिक हैं, मेरी शादी के समय बड़ी मदद की थी अब पत्नी-सुख के अभाव में दुःखी हैं आज से हम दोनों का संबंध आजीवन चलता रहेगा। लक्ष्मी को पाप-पुण्य दिखाई नहीं पड़ा। अपने होने वाले संबंध को पति पत्नी के रूप में देख रही थी। शीनप्पा के कमरे में कुछ आवाज हुई। शायद वे अब बिस्तर में उठे होंगे। पैरों की आहट हुई। अब आ रहे होंगे। उसका शरीर काँप रहा था। वह सिर झुकाए बैठ गई।

उधर, श्रोत्रियजी उठ खड़े हुए। लक्ष्मी के कमरे की ओर कदम बढ़ाये। वह रही ठंडी हवा में भी शरीर में पसीना छूटने लगा। पाँच मिनट में सारी छाती पसीने से तर-बतर हो गई। छाती और पीठ पर पसीने की घनी बूँदें दिखाई पड़ीं। धोती से मुख पोंछकर खिड़की के पास खड़े हो गये। बाहर अँधेरा था। लेकिन अंधकारमय आकाश में नक्षत्र चमक रहे थे। वे अनादिकाल से इसी तरह चमकते आये हैं—उनके प्रकाश में किसी तरह की कमी नहीं हुई है। कमरे के दूसरे द्वार से श्रोत्रियजी बरामदे में आये। द्वार पर सप्तर्षि मंडल चमक रहा था। अरुंधती नक्षत्र भी चमक रहा था। उत्तर की ओर दृष्टि दौड़ाई। अटल, शांत ध्रुव नक्षत्र अब भी प्रकाश दे रहा है। सप्तर्षि, अरुंधती और ध्रुव नक्षत्रों का काल गिनने का प्रयत्न किया लेकिन अपना पागलपन समझ, विचार बदल दिया। उनका विश्वास बढ़ रहा था ये सब अनादि, अनंत ज्योति पुंज हैं। उनका मन शांत हो रहा था। लगभग आधे घण्टे तक बरामदे में ही खड़े रहे। पर दुखने लगे तो धीरे धीरे अपने कमरे में आकर बिस्तर पर लेट गये।

दस मिनट में पुनः चित्त विकार प्रारंभ हो उठा। लक्ष्मी की मूर्ति मानस-पटल पर छा गई। उसके निवस्त्र अंग-अंग की कल्पना हो आई। कल्पना में ही उन्होंने वासना-तृप्ति की। लगभग दस मिनट तक श्रोत्रियजी अपना विवेक खो चुके थे। वे पसीने से तर हो गये। धीरे से उठे लक्ष्मी के कमरे की ओर पग बढ़ाये।

प्रतीक्षा में लक्ष्मी बेसब्र हुई जा रही थी। धमनियों में रक्त प्रवाह बढ़ चला था। शीनप्पा कमरे में चहलकदमी कर रहे थे। उनका बरामदे में जाना, भीतर आकर लेटना, फिर उठकर टहलना—लक्ष्मी को सब

गतिविधियाँ मालूम होती रही थी। उसन सोचा, शायद श्रीनप्पा सकोच कर रहे हैं मैं ही उनके पास क्या न चली जाऊँ ! उसके रोमाचित सर्वांग शात होना चाह रहे थ। लेकिन स्वय शक्ति से उनका शात होना प्रकृति के विरुद्ध था। पुरुष के सपक से आनन्द पाकर ही अपनी आतरिक चेतना शात हो सकती थी।

भागीरतम्मा चीनी के साथ नीचे लेटी थी। उसे नीद नहीं आ रही थी। पति का ऊपर गये डढ घण्टा हो रहा था। पति और लक्ष्मी अब तक एक हो गय होंगे ! इस चित्र की कल्पना वह न कर सकी। उसकी आँखें भर आइ और सिसक सिसककर रो पडी। साडी का पल्ला गोल करके मुह म ठूस लिया ताकि सिसकियाँ उन्ह सुनाई न पडें। पति की तरह उसकी भी भोग की इच्छा थी। डाक्टर न गभवती न होने की चेतावनी अवश्य दी थी लेकिन उसकी सभोग प्रवृत्ति लुप्त नही हुई थी। एक बच्चे की माँ बनकर ही अपनी वासना को किसी तरह दबा सकन मे सफल हुई थी। हृष्ट पुष्ट पति का यौवन-सुख उस नही मिला लकिन मन निराश नही था। उसके जीवन म वह अत्यत दुखमय रात थी। लेकिन इसका कारण वह स्वय थी। पति की घटती काया क्षीण होती तन्दुरुस्ती उसे स्मरण हो आई। हो सकता है कि कुछ दिनो म वे मनोरोग का शिकार हो जायें। दूसरी शादी की अस्वीकृति उसके प्रति अधिक प्यार का कारण था। उस अपन पिता की उप पत्नियो की याद आई। माँ का चित्र भी एक बार घूम गया। उसने अपने को तसल्ली दिलाने का प्रयत्न किया और बच्चे को आहिस्ते से उठाकर उसका मुख चूम लिया।

श्रोनियजी न पसीना पोछा। ओढे हुए शाल की ओट म दियासलाई स कमरे की लालटेन जलाई। लक्ष्मी को प्रकाश दिखाई पडा। अब व आते ही होगे या मुझ ही वहा बुलायेंगे ! उसक हृदय की धडकन बढ चली। चेहरा लाल हो उठा। उन्मादित आँखें अर्धनिमीलित हो गइ।

एक बार श्रोनियजी के मन म आया कि लक्ष्मी को बुला लिया जाय लकिन जीभ निर्जीव सी निश्चेष्ट थी। स्वय उसक पास जाने के उद्देश्य से पग बढाये लकिन अचानक इतन लज्जित हो गये कि अपने आपको भी न देख सके। अपनी सुषुप्त लज्जा को छिपाने के लिए उन्होंने कमरे मे जलती लालटेन बुझा दी। लक्ष्मी समझ गई। सोचा लज्जा से ऐसा

किया, तो मैं ही उठकर वहाँ क्यो न चली जाऊँ ? बगल के कमरे म परो की आहट सुनाई पडी। सोचा, उनके पैरों के पास जाकर बठ जाऊँ। धीरे धीरे पग बढाय। द्वार तक पहुँची तो उद्वलित हो उठी। उद्वेग मे दम घुटता सा लगा। अव्यक्त भय भी उसे घर रहा था। आगे बढने की शक्ति न रही—वह द्वार पर ही बठ गई।

बाहर जोरो की हवा बह रही थी। उसकी आवाज भीतर आने लगी। दो बार कमरे की खिडकी जोर मे खुली और बन्द हुई। श्रीनप्पा ने खिडकी बन्द करने स पहले दीप जलाने के लिए दियासलाई जलाई। उस प्रकाश म उन्होंने लक्ष्मी को देख लिया। लकिन हवा के झोंके से दियासलाई बुझ गई। लालटेन नही जली। उन्होंने अनुभव किया, मानो मानव की समस्त काम शक्तियाँ उन्हें खीच रही है। अँधेरे म वे लक्ष्मी की ओर बढ रहे थे कि अज्ञात भय ने उनके अन्त करण को झकझोरा। वे वही जमीन पर बठ गय। आगे बढने की शक्ति नही रही। आधे घंटे से भी अधिक वहीं बठे रहे। लक्ष्मी दरवाजे के पास थी। वे धीरे धीरे उठे और दूसरे द्वार से बरामदे मे चले गये।

लगभग एक घण्टा वहीं खडे रहे। भीतर गये तो लक्ष्मी द्वार के पास नहीं थी। चुपके से द्वार के पास जाकर उन्होंने द्वार बद किया। भीतर आय। खिडकी बद की। दीप जलाया। 'साख्यकारिका' ग्रथ निकाला और व्याघ्रचर्म पर बठकर पढने लगे।

वे प्रकृति पुरुष स सबधित अतिम भाग पढ रहे थ—

रगस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा नृत्यात्।
पुरुषस्य तथात्मान प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृति ॥

अर्थात् नर्तकी या वेश्या नाट्यशाला म उपस्थित दर्शकों को अपना नृत्य दिखाकर जिस तरह नृत्य से निवृत्त होती है उसी तरह प्रकृति पुरुष को अपना स्वरूप दिखाकर निवृत्त होती है।

श्रोत्रियजी का मन इसी प्रश्न म मग्न था कि प्रकृति का उद्देश्य क्या है ? इसका अन्त क्या है ? एक और श्लोक था—

प्रकृते सुकुमारतर न किंचिदस्तीति मे मतिर्भवति।
या दृष्टास्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य ॥

अर्थात् प्रकृति सुकोमल है, अत्यत लज्जामय है। **यह जानकर** कि पुरुष

उसे अपने से भिन्न समझता है वह पुनः उसकी दृष्टि में नहीं पड़ती। तात्पर्य यह कि विवेक ज्ञान पाने तक ही प्रकृति का प्रभुत्व हम पर रहता है। वह ज्ञानान्य मुझे कब होगा ? श्रोत्रियजी जानते हैं कि वह केवल बुद्धि से कल्पित ज्ञान नहीं है। वे चिंतन मनन करने लगे कि प्रकृति के मोहजाल से मुक्ति पाना ही इस ज्ञान का संकेत है या ज्ञानोदय होने पर ही यह बंधन पिघल जाता है ?

प्रतीक्षा करते-करते लक्ष्मी ऊब गई। वह नीचे उतरी स्नान घर में गई। फिर ऊपर आई। उसके सीढ़ियाँ चढ़ने की आवाज भागीरतम्मा लेटे लेटे सुन रही थी। स्त्री होने के नाते वह समझ गई थी कि लक्ष्मी स्नानघर में क्यों गई। रुलाई को दबाने के प्रयत्न के बावजूद वह रो पड़ी। असहाय हो उसने सोने की चेष्टा की लेकिन नींद नहीं आई।

प्रतीक्षा से परेशान हो लक्ष्मी बिस्तर पर पड़ गई। श्रीनप्पा के स्वभाव को पहले से ही जानती थी। वह समझ गई कि धर्म-कर्म के विचार ने श्रीनप्पा को ऐसा करने से रोक दिया है। उस दिन दोनों में जो संबंध होना चाहिए था लक्ष्मी की दृष्टि से उसमें किसी तरह की अनैतिकता का प्रश्न ही नहीं था। वे दोनों मान गये हैं। पत्नी को भी स्वीकार है डाक्टर ने पति पत्नी को अलग रहने की सलाह दी है तो यह लोक रूढ़ि है। श्रीनप्पा के विचार उसे विचित्र लगते थे। अब उसके मन का आवेग घटने लगा। उन्माद शरीर-कंपन सामान्य स्थिति में आने लगा। आँखें मूँदकर वह लेट गई। फिर भी आशा की एक मद्धिम किरण उसे दिखाई दे रही थी। उसे ओझल कर मन सोने के लिए तैयार न था।

श्रोत्रियजी ढाई बजे तक पढ़ते रहे। मन शांत हुआ नियंत्रित हुआ। केवल नींद उड़ गयी थी। ग्रंथ को बंद करके रखा। दीप वैसा ही जलता छोड़, सीढ़ियाँ उतरे और नदी की ओर चल दिये। कपिला शांत बह रही थी। कुछ समय पानी में पैर लटकाए पत्थर पर बैठे रहे। अब तक चाँदनी थी। कृष्णपक्ष की दशमी का चाँद आँवले के आकार-सा आकाश में चढ़ आया था। श्रोत्रियजी ने धोती पहने ही नदी में डुबकी लगाई और गीली धोती में ही घर लौटे। भागीरतम्मा जब तक सो चुकी थी। श्रोत्रियजी ने पूजागृह का दरवाजा भीतर से बंद किया। माथे पर भभूत लगाई। संध्या प्रारम्भ किया। एक हजार आठ गायत्री मंत्र जपा।

तत्पश्चात् चंदन घिसा। बगीचे से फूल लाकर पूजागृह में पुनः आ गये। बहुत देर तक नींद न आने के कारण अंतिम बार साष्टांग प्रणाम करते समय श्रोत्रियजी कह रहे थे—'धर्मो रक्षति रक्षितः।'

पूजागृह से निकलने तक श्रोत्रियजी की धोती शरीर पर ही सूख गयी थी। भागीरतम्मा उठी। स्नानादि से निपटकर रसोईघर में गयी। पूजागृह का द्वार खुलने की आवाज सुनी। भागीरतम्मा बाहर आई। "क्षण भर वैसे ही खड़े रहिए"—कहकर अनजान खड़े पति के चरण छुए और बाँहों में आँखें डालते हुए उसने कहा—"नमी ने मुझे सब बता दिया है। मैंने कभी नहीं सोचा था कि आप इतने महान हैं।

श्रोत्रियजी पूजा की धुन में ही थे। कुछ नहीं बोले। उनका मन एक अव्यक्त और वर्णनातीत शांति से भरा था। चुपचाप बगीचे में गये और पौधों की क्यारियों में पानी देने लगे।

दोपहर में भोजन के लिए बैठे तो उन्होंने कहा—"मैंने संकल्प किया है कि पौष्टिक आहार का सेवन करते हुए भी मन को वश में रखना चाहिए। मुझे पूरा विश्वास है कि मेरी विजय होगी। आज से घी भी परोसो, पीने के लिए दूध भी दो।"

दही भात खाते समय उन्होंने पूछा—"यह विचार तुझे कैसे आया?"

'पिताजी ने जाने से पहले कहा था कि बेटी पुरुष के स्वास्थ्य के बारे में तू नहीं जानती। जैसा मैं कहता हूँ वैसा कर।

श्रोत्रियजी भीतर ही भीतर मुस्कराये। कुछ बोले नहीं। उस दिन से वे पौष्टिक आहार लेने लगे। मैसूर के विद्यार्थी-जीवन में जिस तरह सुबह उठकर आसन लगाया करते थे, पुनः वैसा ही करना प्रारम्भ कर दिया। अध्ययन में पहले से अधिक समय लगाने लगे। उनका पुस्तक-भंडार बढ़ता जा रहा था, इस तरह अपने मन को वश में रखने में वे समर्थ हुए।

लक्ष्मी कमजोर होने लगी। उस रात के बाद से वह भागीरतम्मा के साथ सोने लगी। लेकिन खाने-पीने की रुचि घटने लगी। पतिगृह से लौटने के पश्चात जो चित्त शांति मिली थी, वह खत्म हो गयी। उठते-बैठते उसकी आँखों के सामने शैय्या का चित्र आने लगा। मन सदा

कल्पना-सुख म मग्न रहना। स्नान करते समय अपने शरीर के सौष्ठव को देखकर स्वय मोहित हो उठती। लेकिन श्रीनप्पा के विचित्र स्वभाव से मन ही-मन कुढती जाती। उसने उनसे बोलना भी छोड दिया। सदा उनसे आँखें बचाती रहती। इस पर उनका ध्यान अवश्य गया था फिर भी उन्होने बात करने का प्रयत्न नही किया।

लगभग एक महीने म लक्ष्मी बहुत छीज गयी—वर्षा ऋतु की गाय सी। भरे चेहरे की हड्डियाँ स्पष्ट दिखाई दे रही थी। चाल म पहले की-सी स्थिरता न थी। उस अपने जीवन का कोई उद्देश्य दिखाई नही पडा। मन म भयानक भ्रम उत्पन्न हो गया। आँखें धँस गया—कांति नष्ट हो गयी। ये सारे परिवतन श्रोत्रियजी की समझ म नही आये। वह उनके सम्मुख आती ही न थी। भागीरतम्मा ने पूछा—'तुझे क्या हो गया है लक्ष्मी? किसी ने कुछ खिला तो नही दिया?' लक्ष्मी ने कोई स्पष्ट उत्तर नही दिया। भागीरतम्मा समझ न सकी कि आखिर लक्ष्मी का मन प्रचण्ड सघर्ष का रगमच कसे बन गया!

एक रात लक्ष्मी को बुखार आ गया। भागीरतम्मा ने श्रोत्रियजी को बताया। उन्होने लक्ष्मी की नाडी और चहरा देखा। वे सब-कुछ समझ गये। डेढ माह पूव उनका चेहरा भी ऐसा ही हो गया था। चदन-अक्षत लगाते समय आइने म वे अपना मुख देखा करते थे। उस समय वे कुछ नहीं बोले। वद्य को लाये। लक्ष्मी सन्निपात म इक्कीस दिन तक बिस्तर पर पडी रही। उस अवधि मे श्रोत्रियजी लक्ष्मी को छोडकर कहा नही गये। वद्य के परामश पर सतकतापूवक उसकी सेवा शुश्रूषा की। उन दिनो वे नियमित सध्या, देवाचना न कर सके। मन ही मन कुछ मत्र जपते रहे। तभी भागीरतम्मा को मासिक धम हो गया। अब रसोई बनाना भी श्रोत्रियजी के जिम्मे आ गया। लक्ष्मी की साडी से पसीने की बदबू आती तो वे उसकी साडी बदलते। कभी कभी अद्ध बेहोशी म लक्ष्मी कहती— श्रीनप्पा अगर तुम छोड दोगे तो और कौन मेरा हाथ थामेगा? गृहस्थ जीवन की तमन्ना मुझे नही है। तुमने ऐसा क्या किया?

इक्कीसवें दिन उसका बुखार उतरा। होश आने पर अपने पास श्रीनप्पा को बठे देखकर लक्ष्मी को सकोच हुआ। उसके सकोच को देखकर भी वे मुक्त होकर बोलते थे। दो सप्ताह मे लक्ष्मी बिस्तर से उठ

वठी। श्रानियजी न पत्नी से कहा—"अव लक्ष्मी को थोडा समझाना पड़ेगा तू वहाँ न आना।" लक्ष्मी के पास बठकर उन्होंने उसका दाहिना हाथ पकडा। लक्ष्मी ने सिर झुका लिया। हाथ पकडे हुए ही उन्होंने कहा—"मनुष्य का गिरना आसान है उठना बहुत कठिन। सबको अपने कम का फल भोगना पडेगा। गहस्थ जीवन भी वसा ही है। पत्नी के रहते हुए भी, मेरा धम सकल्प है कि मैं ऐसा ही रहूँ। विधवा जीवन विताना तेरा कम है। तू अब तेईस या चौबीस की होगी। मैं अट्ठाईस का हूँ। अब दस-बीस वर्षों के सुख के लिए नीचे गिरना, दोनो की धम-च्युति है। बहुत कठिन होते हुए भी सहना पडेगा। तूने भी सुना है न कि जो धम का उल्लघन करते है, उनकी सात पीढी के पितर रौरव नरक म गिरते हैं। क्या इस कारण अपने पितरो को कष्ट देना उचित है?'

लक्ष्मी चुप रही। वह श्रानियजी की बातो के बारे मे सोच रही थी। श्रानियजी ने पुन कहा—'किसी भी हालत म मैं तेरा हाथ नही छोडूगा। इसीलिए हाथ पकडकर कह रहा हूँ। आज से सुबह उठते ही तू भी स्नान कर। पूजा के बाद चरणामत प्रसाद दूगा। श्रद्धा से स्वीकार कर। मन को शांति मिलेगी। रोज पूजा के लिए फूल लाना तेरा काम होगा। प्रात उठकर गाय की पूजा कर।

लक्ष्मी कुछ दिनो मे चलने फिरने लगी। वह शीनप्पा से एकवचन म ही नि सकोच बात करती। एक दिन उसके हाथ म एक पत्र देकर श्रानियजी ने कहा—"लक्ष्मी किसी का भी जीवन शाश्वत नहा है। जब तक मैं जिन्दा हूँ तेरा हाथ नही छोडूगा। अचानक कुछ हो गया तो तुझ पर मुसीबत नहीं आय इसलिए तेरे नाम दो एकड जमीन लिख दी है। पत्र को अपने सदूक म रख ले। सरकारी दफ्तर मे इसका दज करा दिया है। यदि अचानक यह पत्र कहीं खो भी गया तो भी हिसाब सरकार के पास रहेगा।

लक्ष्मी की आँखें डबडबा आइ। "शीनप्पा, यह सब क्या किया? एक कौर अन्न खाकर रोज तुम्हे आँख भर देख लेना ही मेरे लिए काफी था।

'तू ठीक कह रही है लक्ष्मी ! फिर भी व्यवहार की दुनिया म ऐसा ही करना उचित है' श्रीनप्पा ने कहा।

१४

कात्यायनी को पति की कही हर बात मध्य रात्रि बीत जाने पर भी याद आ रही थी। उसकी सास भागीरतम्मा न भी एक दिन बहू को यह सब बताया था। कात्यायनी म कल्पना शक्ति थी। वह उन बातो का स्मरण करती तो घटनाए सजीव होकर उसक सम्मुख आ जाती। अभी भी लक्ष्मी और उसके ससुर परस्पर आत्मीयत स जीवन बिता रह हैं। श्रोत्रियजी क भोजन किये बिना लक्ष्मी भोजन नही करती। सुबह उठते ही स्नान के पश्चात वह सबस पहले उनके द्वारा दिया गया चरणामृत लेती है। अभी तक नियमित रूप से वह गो-पूजा करती है। इस परिवार म उसका अपना एक स्थान है। हर मुख्य काय म उसकी राय को महत्त्व दिया जाता है।

कात्यायनी जानती है कि इस घर मे लक्ष्मी की अपेक्षा उसका महत्त्व अधिक है। आय दिन श्रोत्रियजी लेन देन भी कात्यायनी को बताकर ही करते हैं। चार वष पूव डा० राव को एक हजार रुपय देते समय भी उन्होने बहू से पूछ लिया था। रुपया स भरे लिफाफ को एक थाली म पान सुपारी के ऊपर रखा और उस पर केला रखकर सास के हाथो एक चम्मच पानी डलवाकर श्रोत्रियजी ने पसे दिये थे। कात्यायनी क मन मे कई बार प्रश्न उठता था कि घर म मुझे जो मान-सम्मान मिल रहा है मुझ पर उनका जो अपार विश्वास है क्या उन सब को पाने की योग्यता मुझ म है ? उसकी नींद लगी तब तीन बज चुके थे।

सुबह आठ बजे उठी। स्नान किया। आज ससुर जाकर राजाराव को घर के बारे मे बताना ही पडेगा। लेकिन कहूँगी क्या ? ससुरजी ने इस विषय म पूरी स्वतन्त्रता द दी है। मैं जब तक किसी एक निष्कप पर

पहुँचकर चलन की शक्ति नहीं रखती तब तक ससुर जाकर क्या कहूँगी? किसी निष्कर्ष पर पहुँचने म मैं असमर्थ हूँ। इन विचारो म ही उसने शीघ्र स्नान कर लिया। भोजन भी जल्दी किया। एक नोटबुक और सास का दिया टिफिन लिया अभ्यास-वश स ही राह चलकर स्टेशन पहुँची। मन म अनिर्दिष्ट अनिश्चित विचारो का द्वन्द्व चलता रहा। राज को अपना निश्चय बताय पाँच महीन बीत गय थ। उस हर तरह स पति मानकर ही वह चल रही थी। अनुभव का सस्कार वात्सायनी को राज म कभी किचित भी विमुख नहीं होन देता था। रेल यात्रा क समय ही किसी निर्णय पर पहुँचन के लिए उसका मन छटपटान लगा। पाँच महीने पहल जिस निष्कर्ष पर पहुँची थी कल रात वह शिथिल पड गया था, लकिन पूर्णत समाप्त नहीं हुआ था। हो सकता है व आज स्टेशन आय हो। आतकित होकर सोच रही थी कि गाडी स उतरत ही क्या करूँगी?

गाडी धीमी गति से चल रही थी। खिडकी मे चामुण्डी पहाडी दिखाई द रही थी। गाडी कडकोला पहुँची। गर्मी के अतिम दिन थे पहाडी के पड-पौधे सूखकर काले पत्थर-से दिखाई दे रह थ। पूर्व का सूरज पहाडी क पृष्ठभाग मे आ चुका था। पहाडी की छाया दिखाई दे रही थी। अनायास उसे अपन ससुर की याद हो आइ। उनकी देहाकृति भी पहाडी-सी भव्य है। उसन सोचा, साठ की इस उम्र म भी उनकी ऊँचाई, गठा बदन, चलत समय पडते स्थिर कदम, पूजा क समय आँखें मूदकर बैठन की भगिमा इन सब की तुलना इस पहाडी स हो सकती है। इस पहाडी और श्रोत्रियजी की मन निग्रह शक्ति, सयम और जीवन की समस्याओ का सामना करन की दृढता आदि म उसे साम्य दिखाई पडा। उसका पति जब सिधारा तो सभी रो रहे थ, लेकिन श्रोत्रियजी इकलौते पुत्र को खोकर भी पहाडी-स स्थिर समस्त दुखो का घूट पीकर शात दिखाई दे रहे थे। मन-ही मन वह ससुर के उच्च व्यक्तित्व और इच्छा-शक्ति की प्रशसा कर रही थी।

इन्ही विचारो म डूबी थी कि चामराजपुर स्टेशन आ गया। हडबडाकर खिडकी के बाहर देखा। राज नहीं आया था। वह गाडी मे उतरकर स्टेशन क बाहर आई। पहाडी अब भी दीख रही थी। दस बज चुके थे।

धूप की तपिश बढ रही थी। लकिन पहाडी का आवपण कायम था। आज उम पर चढ़ने की अकारण इच्छा जागी। वह सीधी चल पडी। कृष्णमूर्तिपुर से होती हुई चामुडीपुर पारकर बगीचा व बीच म आगे चली। रास्त भर धूल थी। हवा का एक झोका आया और शरीर पर धूल जम गयी।

कात्यायनी इसस पहल भी एक दो बार इस पहाडी पर गयी थी। एक बार पति के साथ गयी थी। सीढियो से ऊपर पहुँचने वाल माग से वह परिचित थी। प्रखर सूय सिर पर आ गया था लकिन उसकी चिता किय बिना उसने नीलगिरि माग पार किया। पहाडी की तराई म पहुँची ही थी कि नयी और बडी अग्नि ज्वाला दिखाइ पडी। ठहरकर उस ओर देखा। ज्वालाएँ काफी ऊपर तक उठ रही थी। कुछ लोग उस घेर कर देख रहे थे। एक के हाथ म एक लबा बाँस था। उसने मसूर का श्मशान देखा नही था लकिन सुना था कि मतक को पहाडी के पास ल जात हैं। समझ गयी कि शव का दाह-सस्कार हो रहा है। और कोई समय होता तो वह भयभीत हो जाती। लकिन आज वह आवपक लगा। थोडी दर म चिता के बीच से जोर की 'टप आवाज हुई। जिसके हाथ मे लम्बा बास था वह अधजल शव का पुन आग म धकेल रहा था। पगडी पहन ब्राह्मण खड-खड मत्र पढ रहे थे। सस्कार पूण कर व सब बिना पीछे देखे लौट पड।

चिता अभी तक जल रही थी। कात्यायनी कुछ पास जाकर उस एकटक देखती रही। शव पूणत भस्म हो चुका था। हमारा आशा आकाक्षाएँ सुखाभिलाषाए सब की सब जलकर खाक हो जाती है। ये विचार उसके मन मे व्याप्त हो गये। फिर उसने एक नि श्वास छोडा। थाडी दूर पर और एक शव का ल आते उसने देखा। शव बास की बनी अर्थी पर था। चार व्यक्ति उसे कधा दिये हुए थे। कोई आगे आग भारी कदमो से चल रहा था। उसके हाथ म आग थी। शव के पीछे और दो युवक सिर झुकाय आ रह थ। उनके पास ही लाल शाल ओढे पुरोहित निर्विकार भाव स हाथ म कुशा की गडडी लिय हुए थ। व पास आय। अर्थी को एक जगह रखा। कात्यायनी के पास जाकर पुरोहित जी ने कहा, यहाँ औरतो का क्या काम? आपका यहा आना उचित नहा है।

"इस स्थान पर आपको नहीं आना चाहिए। यहाँ से जाइए।" वात्यायनी और चलने लगी और पहाडी की तराइ म पहुँची। सामने की ओर सीढियाँ चढ़न लगी। थोडा चढने के बाद वह थक गयी। सास फूलने लगी थी पसीना छूट रहा था। फिर भी वह चलती ही गयी। लगभग आधी ऊँचाई तक चढ़ते चढते वह बिलकुल थक गई। चक्कर सा आने लगा। वह एक पत्थर पर बठ गयी। नीचे दक्षिण मे मसूर नगर चक्कर काटकर फला हुआ दीख रहा था। उसके ऊँचे-ऊचे मकान, शान स खडा राज प्रासाद, बडे-बडे महल आदि सभी यहाँ से बहुत छोट छोटे दिखाई पड रहे थे।

नगर की पश्चिम दिशा मे चमकत तालाब के इस ओर दिखाई देने वाले कालेज को उसन पहचान लिया। तुरत उसे राज की याद हो आयी। सोचा, शायद व कालेज मे मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। अचानक प्रबल इच्छा हुई कि सीधे कालेज जाकर उनस मिलना चाहिए लेकिन विचार बदल दिया और पहाडी पर चढने लगी।

चलना दूभर हो रहा था। अब तक हवा नाम मात्र के लिए ही थी। अब ठडी हवा लगी। मन ने राहत की सास ली। हवा का ठडापन बढने लगा। एक निश्चय पर पहुँचने का मन म हठ था। पहाडी के एक ओर मसूर दूसरी ओर लगभग दस मील की दूरी पर नजनगूडु—इन दोनो के बीच झूलता हुआ उसका मन मानो एक तूफान ही बन गया था। पाँच मिनिट बाद आधी चल पडी। सूखे पत्ते, कागज के टुकडे आदि हवा के भँवर म तीव्र गति से चक्कर काट रहे थे। सारा वातावरण लाल धूल से भर गया। जो मसूर नगर केवल दस मिनिट पहले साफ दिखाई दे रहा था अब ओझल हो गया। तज हवा का एक भँवर पत्थरो से आवत नदी की भँवर की भाँति उसके आसपास चक्कर काट रहा था। वात्यायनी डर गयी। कहीं वह भँवर म न फँस जाय। वही पास की एक चट्टान को पकडकर बठ गयी। धूप से बचने के लिए आँखें मूद ली, क्षणाध मे तूफान थमा। उसने आँखें खोली। आकाश मे बादल देखकर आश्चय हुआ। एक बादल ने उसके सिर पर आकर धूप रोक दी थी। वह उठी और फिर चढने लगी। गर्मी क कारण पसीने से भीगे उसके कपडे शरीर से चिपक रहे थे। ऐसी गर्मी का उसे कभी एहसास नहीं हुआ था। मन गरम तवे

भी तरह था। श्मशान म धधकती आग उसे अब भी दीख रही थी। चित्त थककर मुरझा गया था। ससुर और राजाराव दोनो स्मृति-पटल से ओझल हो गय थे। कात्यायनी भीतरी गर्मी म उलझी थी।

दस मिनिट बाद वर्षा की बूदें टप-टप पडने लगी। कात्यायनी न सिर उठाकर देखा काले बादल सिर के ऊपर जमे थे। मूसलाधार वर्षा होने लगी। दौडकर किसी पेड के नीचे नहा गयी वर्षा झट तेज हो गयी। वह बठकर वर्षा का आनन्द लेन लगी। करीब पद्रह मिनिट पानी बरसता रहा। पहले का तूफान लाल धूल वातावरण को कलुषित करने वाले कूडा ककड आदि अब नही थे। चारो ओर शात वातावरण था। नये प्रकाश म मसूर नगर नया सा दिखाई दे रहा था। दूर स लघु आकार म दृष्टिगोचर होने वाला कालेज भी नवीनता लिये खडा प्रतीत होता था। बादल छँट गये। सूर्य पुन सिर पर चमकने लगा। लेकिन उसमे न पहले-सी तीक्ष्णता थी न गर्मी ही। अजीब वर्षा है! अचानक आई और उतने ही आकस्मिक ढग से चली भी गयी।

भीगी साडी को हवा धूप म फलाकर कात्यायनी ऊपर चढने लगी। अब चढना कठिन न था उसमे एक तरह का आनन्द था। उसे ससुर का स्मरण हो आया। इस तरह के आनन्द को वे जीवन भर अनुभव करते होंगे लक्ष्मी को भी इसी तरह के आनन्द का मार्गदर्शन कराया होगा उनकी सुख शांति का मूल इसी चढाई म होगा! इसी बारे मे सोचती हुई वह आगे बढती गयी। पाच मिनिट मे पहाडी की चोटी पर पहुँच गयी। वहा से मन्दिर मे गयी। श्रद्धापूर्ण नमस्कार कर बाहर आयी और एक पेड के नीचे बठ गयी। उस ऊँचाई पर उसका मन उल्लसित था। मन म कोई द्वन्द्व न था पाषाण रहित रेतीले समतल म बहती नदी के समान शान्त था। उस शांति मे वह एक निष्कर्ष पर पहुँची।

भूख लगने लगी। मदिर के पास नल से पानी पिया। फिर उसी पेड के नीचे बैठ गयी और टिफिन की सामग्री खाने लगी। अब तक साडी सूख गई थी। नोटबुक पूरी तरह नही सूखी थी। पहाडी से उतरने म थकावट नही हुई। श्मशान म जो लोग दूसरा शव लाये थे वे जा चुके थे। मसूर नगर की गलिया म धूल नहीथी। पर दुख रहे थे, फिर भी दोपहर बाद चार बजे कालेज पहुँची। राज को अपना निष्कर्ष सुनाते ही कात्यायनी आयी

थी यहाँ। नाटक मडली का कमरा बद था। गाडी आन मे और एक घण्टे का समय था। कालेज के मजले पर जाकर सामन के बरामद मे खडी हो गयी। पहाडी न पुन उसे आकर्षित किया। उस निहारती रही। न जाने कितनी दर इसी तरह खडी रही। नीचे देखा तो राजाराव साइकिल लिये खडा, कात्यायनी की तरफ दख रहा था। उसके चहरे पर गभीरता थी। उसन कहा—'नीच आओ।'

कात्यायनी राज की ओर न देखकर, पहाडी को दखने लगी। दो मिनट चुप रहन क बाद बोली—'आप ही ऊपर आइए।

सुबह स प्रतीक्षा करते करत राज परशान हो चुका था। उसने इस उपक्षा समझा। क्रोध म साइकिल पर सवार हुआ। साइकिल उतार पर अनायास आगे बढती चली गयी।

कात्यायनी की नजर अब भी पहाडी पर ही लगी हुई थी।

शाम को घर पहुँची। कपडे बदलने क बाद उसन ससुर को ऊपर बुलाया। श्रोत्रियजी पूजा के लिए तयार हो रहे थे फिर भी व ऊपर गय। उनक चरण छूकर कहा— किसी अशुभ घडी म मैंन कुछ निर्णय किया था अब महसूस कर रही हूँ कि वह गलत था। मुझे क्षमा करें।"

प्राय सभी के मन म कभी-कभी गलत बात आ ही जाती है। उसके लिए पछताने की जरूरत नहीं। पढाई म मन लगाओ" उन्होने शात स्वर मे कहा।

व नीचे उतर रहे थ कि कात्यायनी ने पुन आवाज दी और सकोच स पूछा— कल रात को हमारी बातचीत और उस पत्र के बारे म आपन सासजी को बताया है क्या?'

नहीं। और बताऊँगा भी नही। वह पत्र दीवानखान म है। जाओ, अपन हाथो से फाड दो' कहकर वे उतर गय।

कात्यायनी सुबह दस बजे स प्रतीक्षा करा रही थी। शाम को चार बजे मिली भी तो उपक्षा की दृष्टि से। राज को उस पर बडा गुस्सा आया। उसन सोचा शायद अनुमति नहीं मिली होगी' वह जानता था कि जिस सम्प्रदायनिष्ठ समाज म माता पिता ही ऐसे सबध के लिए राजी न हो वहाँ सास-ससुर से स्वीकृति की अपेक्षा रखना मूर्खता है। यह विवाह तब तक

सम्भव नहीं जब तक कात्यायनी स्वयं उन्हें छोडकर बाहर नहीं निकलती। उसने क्या उपेक्षा क्या की ? क्या वह यह कहना चाहती थी कि मैं उसे भुला दूं !

दूसरे दिन भी वह कालेज में कात्यायनी की प्रतीक्षा करता रहा लेकिन वह नहीं आई। दो-तीन दिन स्टेशन तक आकर निराश लौट गया। एक बार सोचा पत्र लिख दूं। लेकिन अनुचित समझा। दस दिन बाद उसकी परीक्षा होने वाली है। उसके लिए तो अवश्य आयेगी—इस विचार से मन को तसल्ली देने का प्रयत्न किया। घर में भी समय बिताना कठिन था। कई बार उसने नागलक्ष्मी से बात करने का प्रयत्न किया लेकिन उसका मन ऐसा जड़ हो गया था कि केवल हां हूं कहने के लिए भी हिलता नहीं था। नियमित रूप से रसोई बनाने के अलावा और किसी बात में उसकी रुचि नहीं थी।

एक दिन खाना परोसते हुए नागलक्ष्मी ने पूछा— 'पड़ोस में एक ज्योतिषी आये थे। कहते थे श्रीराम नाम लिखने से अगला जन्म अच्छा होगा। मरने से पहले मैं एक करोड़ श्रीराम-नाम लिखना चाहती हूँ। उसके लिए कागज और स्याही आदि ला दो।'

राज उस दिन शाम को बाजार गया तो वह एक नोटबुक और पेन ले आया। पेन को देखकर बोली— मैं इससे नहीं लिख सकती। मुझे होल्डर ही ला दो। दूसरे दिन राज होल्डर लाया। स्याही तैयार की गयी। स्याही की बोतल होल्डर नोटबुक तीनों भगवान के सामने रखकर हल्दी कुंकुम फूलों से उनकी पूजा की। पुस्तक उठाकर श्रद्धापूर्वक मस्तक से लगाई। तत्पश्चात बाहर आकर राज से बोली— एक पंक्ति में कितनी बार श्रीराम लिखूं और इस पुस्तक में कुल कितने नाम होंगे ? एक करोड़ नाम लिखने में इस तरह की कितनी किताबें लगेंगी ? हिसाब लगाकर बता दो।

नोटबुक के पन्ने की पंक्तियां गिनने के बाद राज ने कहा—'एक पंक्ति में दस बार श्रीराम लिखा जाय तो एक पन्ने में दो सौ नाम होंगे। दो सौ पन्ने की इस पुस्तक में कुल चालीस हजार नाम होंगे। इस प्रकार ढाई सौ पुस्तकें पूर्ण करोगी तो एक करोड़ नाम होंगे।

ठीक है ! जैसे-जैसे मैं समाप्त करती जाऊँ, नयी कापी और स्याही

ला दोगे न ?'

"अवश्य ला दूँगा। केवल नाम लिखने से क्या मिलने वाला है ?

केवल नाम कौन लिख रहा है ? श्रद्धा से लिखूँगी।'

उसकी श्रद्धा को देखकर राज को मन-ही मन हँसी आ गई, लेकिन प्रकट नहीं होने दी। नागलक्ष्मी ने श्रीराम सेवा प्रारंभ की। पुस्तक की हर पंक्ति में ग्यारह बार 'श्रीराम-श्रीराम-श्रीराम' लिखती रही। हर पृष्ठ के अन्त में श्रीराम जयराम जय-जय राम सीताराम लिखकर समाप्त करती। माध्यमिक शाला में पढ़ने समय वह लिखती थी। राज जब विदेश में था, उस बड़ी पत्र लिखती थी। इन दिनों लिखने की आदत ही छूट गयी थी। अतः पहले पहल लिखते समय अँगुलियों में दर्द होता था। लिखावट में गति भी नहीं थी। उसे अपनी मृत्यु तक करोड़ नाम लिखने थे। इसी विचार में वह धीमी गति से लिखती जा रही थी। पहले अवकाश के समय अन्यमनस्क नागलक्ष्मी को अब समय बिताने का एक आधार मिल गया।

राज परीक्षा के दिनों की प्रतीक्षा में था। उसे भी निरीक्षक का काम सौंपा गया था। परीक्षा प्रारंभ होने से आधा घंटा पहले उसे आफिस पहुँच जाना चाहिए था, और परीक्षा समाप्त होने तक वहीं रहना पड़ता था। अतः छह दिन से कात्यायनी से भेंट ही न हो सकी। सातवें दिन सौभाग्य से राज उसी कमरे में निरीक्षक बना जिसमें कात्यायनी परीक्षा दे रही थी। राज को अन्दर प्रवेश करते देख वह भ्रमित हो गयी। उस दिन वह ठीक-ठीक उत्तर न दे सकी। बीच में एक बार मौका देखकर, उसके पास झुककर राज ने धीरे से कहा—"परीक्षा के बाद मुझ से मिलना।'

विह्वलता भरा उत्तर मिला 'हूँ।

परीक्षा के बाद वह मिली। दोनों कालेज के पश्चिम में एक पेड़ के पास आये तो कात्यायनी ने कहा—'आप मुझे भूल जाइए।' आवाज भारी थी।

ऐसा क्यों कहती हो ?"

'कुछ न पूछिए ! आपने एक अयोग्य स्त्री से प्यार किया है। किसी दूसरी लड़की से शादी करके सुख से रहिए। मैं उम्र में आपसे बड़ी लगती

हूँ। उसकी आँखें भर आई थीं।

अब हममें से कोई अधिक न बोले। भविष्य में हम दोनों का मिलना असम्भव है कहकर वह जल्दी जल्दी वहाँ से चल पड़ी। राज अवाक्-सा उसकी ओर देखता रहा।

दूसरे दिन प्रधान निराभव से निवेदन करके उसने कमरा बदल लिया। उसका मस्तिष्क शान्त हो उठा था। गत छह महीने से राज के जीवन को नया मोड़ देने वाली कात्यायनी बोलने का अवसर न देकर, इस प्रकार का उत्तर देकर चली गयी थी। उसके दिल दिमाग और भावनाओं को नयी जिंदगी देने वाली युवती को वह कैसे भूल सकता है? इस जन्म में तो असंभव है। उस पाने का मार्ग भी राज को दिखाई नहीं दे रहा था। उसकी आँखें डबडबा आयीं। उसने अध्ययन के सिलसिले में पढ़ा था कि अपार दुःख में ही मानव अपने अस्तित्व को पहचानने लगता है। उसने मन ही मन सोचा कि ऐसा अनुभव और किसी को न मिले। मन की व्याकुलता को रोकने में असमर्थ होकर एक दिन वह नागलक्ष्मी को हाल सुनाने लगा तो वह बोली— यह दुनिया ही ऐसी है। तुम भी राम-नाम लिखो। मन को शान्ति मिलती है। फिर किसी दूसरी लड़की से शादी कर लो।

तुम यह बात समझ नहीं सकती कहकर वह बाहर चला गया। अगर अन्त में यही उत्तर देना था तो प्रारंभ में उसने मेरे प्रति आत्मीयता क्यों दिखाई? राज को इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिला। केवल तेईस पार करने वाली सुघड़ सुंदर युवती के मुख से मैं उम्र में आपसे बड़ी लगती हूँ सुनकर राज की ग्रहण शक्ति भ्रमित हुई जा रही थी। अपने आपको कैसी मिथ्या कल्पना में आबद्ध किया है! उसे आश्चर्य हुआ। उसके साथ बिताये हुए दिनों की याद में ही उसका मन पिघल गया।

जिस दिन परीक्षा समाप्त हुई कात्यायनी का मन राज को देखने के लिए मचल उठा। लेकिन उसी ने राज को अपने से दूर कर दिया था। एक बार सोचा शिष्या के नाते गुरु के पास जाकर कृतज्ञता व्यक्त करनी चाहिए। लेकिन इस विचार का त्याग नंजनगूडु की गाड़ी पकड़कर घर

पहुँची। सास से कहा—'आज से रोज मैसूर जाने से मुक्ति मिली।

हाँ री इस परीक्षा म पास हुई तो उसका नाम रहेगा" कहकर भागीरतम्मा ने अपने स्वर्गीय पुत्र का स्मरण किया।

अब कात्यायनी अपने बेटे के साथ पहले की अपेक्षा अधिक समय बिताने लगी थी। चीनी पाँच साल का हो गया है। इस साल उसे स्कूल भेजना पड़ेगा। इस बार चैत्र-वैशाख म शुभ मुहूर्त देखकर उसका मुंडन-संस्कार करा चाँदी के सिक्के से शहद चटाकर, चावल से भरी थाली पर श्री ओ३म लिखवाने का काय नियमित रूप से होना चाहिए। भागीरतम्मा पोते के मुंडन-संस्कार पर लड्डू आदि खाने की चीजों की तयारी बड़े पैमाने पर करने की सोच रही थी। उन कर्मों पर श्रोत्रियजी का विश्वास था। तीसरे वष म ही बालक का मुंडन-संस्कार होना चाहिए था। एक तरह की उदासीनता के कारण उस समय उन्होंने वसा नही किया था। यह काय क्रम यद्यपि धूमधाम से मनाने की उत्सुकता उनमे नही थी फिर भी अगर उससे घर के सदस्यों को खुशी होनी है तो उन्हें कोई एतराज नही था।

चीनी की बातों का कोई अन्त नही होता था। जिस किसी चीज को देखता, तो क्या है यह?' क्यों है? 'कहाँ से आई है?' 'यह यही क्या है?—जसे सकडो प्रश्न पूछता। और उसके प्रश्नो का उत्तर देते देते दादा-दादी थक जाते। वह अब लक्ष्मी क साथ गायों के पीछे पीछे भी जाता है। कई दिनो से हठ कर उसी क पास सोने भी लगा है।

परीक्षा के बाद कुछ दिनों तक कात्यायनी उदास रही। फिर सोचा, धीरे धीरे अपने-आप ठीक हो जायगा—घर के कामों म अधिक समय बिताने की कोशिश करने लगी। स्वयं ही कुछ काम ढूँढ निकालती। दोपहर के समय भगवद्गीता भी पढ़ने लगी। सुबह स्नान के पश्चात् पूजा कर तीर्थप्रसाद लेती। एक महीना बीत गया। लेकिन उसकी उदासी दूर नही हुई। अपितु चित्त की अशान्ति बढ़ती गई। रात को ऊपरी मंजले से उतरकर वह नीचे सास के पास सोने लगी। प्रारंभ से ही अभ्यस्त होने के कारण चीनी दादी के पास ही सोता था। कात्यायनी को रात म नींद न आती। सदा राज की याद आती। वे अब क्या करते होंगे? क्या मुझे इसी तरह याद करते होंगे? उस दिन की मेरी उन बातों से क्रुद्ध तो न

हुए होंगे ? या दूसरी किसी लडकी से शादी कर लेने का निर्णय न कर लिया होगा ? यह कल्पना भी उसके लिए असह्य थी कि राज किसी और लडकी से शादी कर रहा है।

मन कल्पना के जाल बुनने लगता तो वह भगवदगीता उठा लेती। श्लोकों को एक एक कर पढती, उनके अर्थ समझने का प्रयत्न करती। उसकी बुद्धि तो उन्हें समझ लेती लेकिन मन ग्रहण न करता। भगवद-गीता के श्लोकों में निहित विचार को लाँघकर उसका अपना विचार-प्रवाह आगे बढ जाता। स्व निर्मित सुन्दर नाव में राज के साथ बैठकर उसका मन विहार करने निकल जाता। जैसे जैसे दिन बीतते गये वैसे-वैसे कात्यायनी की उदासी भी बढती गयी। जीवन का उद्देश्य समझ में न आया। खाने-पीने में रुचि नहीं। सदा आशा भरा उसका शरीर अब अग्निज्वाला में फँसी कोमल लता सा मुरझाता जाता था। शारीरिक शक्ति घट रही थी। शारीरिक शक्ति जितनी घटती गई आशा शक्ति उतनी ही प्रबल होती गई। मान प्रकृति इन दोनों के संघर्ष में प्रकृति की जीत होती और जीवन निराशा के अंधकार में खो जाता। आठों पहर खाते पीते उठते-बैठते राज ही आँखों के सम्मुख आता। उसके साथ टहलने जाना, शरीर-से शरीर सटाकर बैठना, वृन्दावन की यात्रा, प्यार की बातें हँसी-मजाक—सब स्मरण होने लगते। जो अनुभव कुछ दिन पहले चाँदनी-से शीतल थे वे स्मृतियाँ अब श्मशान की अग्नि-सी जलाने लगीं। एक दिन सुबह एक कौर भी खा न सकी। दोपहर के विश्राम में आँखें न लगीं। रात के भोजन के पश्चात् हाथ धोते धोते उलटी हो गई। रात सोई तो शरीर तपने लगा। बुखार आ गया था। रात भर करवटें बदलती रही। सोचा शायद नहीं बचेगी। रात के लगभग दो बजे एक विचार आया— ससुर से कहकर कल ही मसूर चली जाऊँ। लेकिन उनसे कैसे कहा जाय ? उनके सम्मुख खड़े होकर बोलने की कल्पना से ही वह डर जाया करती थी। साँप को देखने पर जो भय होता है वैसा भय नहीं अपितु अपराधी को भगवान के स्मरण में जो भय होता है वैसा भय। उन्हें बताये बिना कैसे जाय ? अगर ऐसे ही चली गई तो क्या उनके विश्वास को आघात नहीं लगेगा ? प्रश्न प्रबल होते गये लेकिन मन कह रहा था कि उन्होंने ही तो कहा था कि किसी भी कार्य में उसे

पूरी आजादी है। विवेक ने प्रश्न किया—"फिर भी बिना बताये जाना क्या आजादी का लक्षण है ?

मन के तीव्र प्रवाह के सम्मुख औचित्य-अनौचित्य का विचार टिक न सका। अपनी भावी भूमिका के बारे में निश्चय कर लिया। उस पात्र को स्वीकारना होगा अथवा उसी के लिए जीवन बिताना पड़ेगा। मरने के लिए वह तैयार न थी।

दूसरे दिन उठते ही उसने सास से कहा—"भूल गई थी। आज हमारी मैडम' की शादी है। मुझे भोजन के लिए बुलाया है। आज तीन तारीख है। मैं मैसूर हो आती हूँ।"

श्रोत्रियजी पूजा में थे। भागीरतम्मा ने कहा—'हो आओ।'

सफेद साड़ी पहनकर कात्यायनी बाहर निकली। चीनी ने पूछा—माँ कहाँ जा रही हो?' उस बेटे की याद आ गई। यह सोचकर कि जब तक वह स्वयं नहीं जाती, बच्चे को कौन ले जाय। चीनी के पास जाकर उसके दोनों गालों को चूम लिया। चीनी, 'माँ मैं भी चलूंगा"—कहकर रोने लगा, तो 'तू बाद में आना बेटा' कहकर जल्दी-जल्दी वहाँ से चली। उस गली में मुड़ते समय उसने एक बार मुड़कर देखा तो उसकी आँखों में आँसू थे। उसे रोड पर गाड़ी मिली। मैसूर पहुँचने तक उसके दिल की धड़कन बढ़ती जा रही थी।

राज के घर पहुँची। द्वार खटखटाया। पृथ्वी ने द्वार खोला। "चाचा कहाँ हैं ?' पूछने पर उसने कमरे की ओर संकेत किया। वह अंदर प्रविष्ट हुई। राज को देखकर उसे विश्वास न हुआ। वह इतना दुबला हो चुका था कि केवल अस्थि पंजर ही दीख रहे थे। दाढ़ी बढ़ गई थी। पहने हुए कपड़े मैले हो गये थे। उसने कात्यायनी को शंका की दृष्टि से देखा। कात्यायनी ने द्वार बंद किये। राज के पास जाकर उसके सीने पर अपना सिर रख दिया। फिर कहने लगी—'विश्वास कीजिए, मैं अब वहाँ नहीं जाऊँगी। चलिए समाज के सम्मुख आज ही हम पति पत्नी बन जायें।'

कात्यायनी की बात पर राज ने तुरन्त विश्वास नहीं किया। विस्मय-पूर्ण आँखों से वह कात्यायनी को निहारने लगा। कात्यायनी ने कहा—'मुझे देखिए, पहनी हुई साड़ी में ही निकल आई हूँ। जैसे आप चाहेंगे शादी कर लेंगे—सिविल मैरेज, मंदिर में अथवा कहीं और। मुझे सब स्वीकार है।

यदि आप या हो अपने पास रखना चाहें तो वह भी मुझे स्वीकार है। कुछ भी हो आप मेरे पति हैं कहकर अपनी बाँहों में भर लिया। राज को उसकी बातों पर विश्वास हुआ। उसने भी कात्यायनी को बाँहों में कस लिया। दोनों के मन का संघर्ष शांत हुआ। छाती की धड़कन थमी और आनंद विभोर हो कात्यायनी अपने-आपको भूल गई।

१५

शाम को छह बजे तक कात्यायनी नहीं लौटी, तो घरवाला ने सोचा शायद रात को दस बजे की गाड़ी से आयेगी। कालेज की गर्मी की छुट्टियां होने के कारण रात को अकेली लौटेगी इस विचार से श्रोत्रियजी स्टेशन तक गये। गाड़ी आयी लेकिन कात्यायनी नहीं। थोड़ी देर तक प्लेटफार्म की बेंच पर बैठकर राह देखी बहू के न आने के बारे में सोचने लगे। उन्होंने ताड़ लिया था कि गत एक-दो सप्ताह से बहू का मन बेचैन है। लेकिन उस बारे में सोचना अनुचित समझा। वह पांच वर्ष के लड़के की माँ है। घर के व्यवहार को निभाने में लगी हुई है। इस साल बी० ए० भी कर लेगी। वह अपनी जिम्मेदारी, धर्म कर्म सब जानती है। यह सोचकर उसकी असामान्य मनोदशा का पुनः छेड़ना नाजुक विषय है—उन्होंने उस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। एक बार उन्होंने सोचा शायद राज के पास गयी होगी लेकिन इस तरह की शंका करना उचित न समझा। घर लौटकर उन्होंने कहा— इस गाड़ी से भी नहीं आयी। शादी में गयी है। वहीं रहने के लिए किसी ने आग्रह किया होगा। कल आ जायेगी।

उस दिन चीनी भी नहीं सोया था। लेकिन नींद आने से पहले एक-दो बार पूछा था अब तक भी माँ क्या नहीं आयी? दादा ने जब 'कल आने' की सांत्वना दी तो सो गया। रात बीती। कल आया। मैसूर से आनेवाली सुबह की गाड़ी भी आकर चली गयी। सब भूलकर श्रोत्रियजी पूजा में लग गये थे। लगभग नौ बजे पूजा समाप्त कर भागीरतम्मा, लक्ष्मी,

चौनी को चरणामृत देने के पश्चात् भागीरतम्मा ने उनके हाथ में एक लिफाफा थमा दिया। वह डाक से आया था। उस पर लिखे पते से ही श्रोत्रियजी समझ गए कि कात्यायनी का पत्र है। उनका अंतःकरण तुरंत सारी बातें समझ गया था। लिफाफा तुरंत न खोलकर, एक-दो मिनट बाद मन स्थिति कुछ स्थिर होने के पश्चात् दीवानखाने में गए। पाँच मिनट बाद उसे खोला। पूरे चार पन्नों का उनकी बहू का ही पत्र था। उनकी कल्पना सच निकली। गत बार उनसे अनुमति लेते समय की मनोदशा अपने पूर्व निर्णय से विमुख होना अंतर्वेदना आदि का विवरण देकर उसने लिखा था—"आपके उत्तुंग व्यक्तित्व की प्रेरणा से मैंने संयम साधने का प्रयास किया लेकिन असफल रही। हर व्यक्ति का अपना वैशिष्ट्य शक्ति और सीमाएँ हैं। जाने से पहले सारी बातें बताना चाहती थी लेकिन आपके सम्मुख खड़े होने की हिम्मत न कर सकी। आगामी तीन दिनों में, एक सामाजिक समारोह में, मेरा विवाह होगा। उस अवसर पर आपको आमंत्रित करने की धृष्टता नहीं कर सकती। लेकिन आपके चरणों में नतमस्तक हो निवेदन करती हूँ कि मेरे नूतन विवाहित जीवन की सुख शांति के लिए हार्दिक आशीर्वाद दें।'

श्रोत्रियजी मूकवत् बैठे रह गए। उसकी मनोदशा की कल्पना न कर सके। फिर भी उसके प्रति क्रोध प्रकट नहीं किया। प्रकृति के आकर्षण से अपने-आपको न बचा पाने वाली एक अभागिन का चित्र उनकी आँखों में घूम गया। मन सहानुभूति से भर गया। जिस दिन से वह बहू बनकर घर आई थी, उसके आचार विचार का उदाहरण स्मरण किया। उसने कभी अपने सास-ससुर के सम्मुख खड़े होकर आघात पहुँचाने वाली बातें न की थीं। उनकी सेवा इस तरह करती रही थी मानो वे ही उसके माता पिता हों। पति के जीवन-काल में वह प्यारी पत्नी रही। उस घराने के लिए श्रोत्रियजी द्वारा अपेक्षित सारे गुण उसमें निहित थे। अंत में वही इस तरह घर से निकल खड़ी हुई!

उन्हें अपने घराने की याद आ गई। श्रोत्रिय-वंश में ऐसा कभी नहीं हुआ था। घर में श्रोत्रिय-वंशावली थी। उसमें लगभग गत बारह पीढ़ियों का विवरण था। इन बारह पीढ़ियों से पहले की जड़ इतनी गहरी थी कि वह दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी। उनका विश्वास था कि वह गहराई में

छिपी ऐसी जड है जो सजीव और पवित्र है। उनके घर म लिखित वशावली म अकाल मत्यु पाने वालो के नाम है एक पत्नी के रहते हुए दूसरी शादी कर लनेवालो का भी उल्लेख है विधवाओ के नाम भी हैं, लकिन उन्होंने कभी कात्यायनी की तरह नही किया था। दूसरे वश से कन्यादान के रूप मे प्राप्त हुई एव इस वश म स्वीकारी हुई तथा इसी वश मे अतिम साँस लेने वाली स्त्रिया के नाम भी मिलते है। जिस तरह महानदी मे विलीन होती सहायक नदियो को अपना निजत्व बचाना असम्भव है उसी तरह इस वश मे आई कन्या का दूसरे वश से सम्बन्ध जोडना असम्भव था। कात्यायनी के इस कदम से इस वश के इतिहास पर अमिट कलक लगा है। भविष्य मे वह जिस वश की होकर जीना चाहती है क्या उसकी पवित्रता बच सकती है ? उसे जो अपनाना चाहते हैं क्या उन्हे अपने वश की पूर्ण जानकारी होगी ? द्वितीय प्रश्न उनके प्रथम प्रश्न का उत्तर था।

वे विचार म डूबे हुए थे कि घडी ने बारह के घटे बजाये। दीवानखाने म भागीरतम्मा आकर कहने लगी— ऐसे कैसे बैठ गये ? भोजन के लिए उठिए। वह अभी तक नहीं आई। यह पत्र कैसा है ?

किसी आचरण स सम्बधित है —कहकर श्रोत्रियजी भोजन के लिए उठ। दादा के साथ चीनी राज की तरह बैठा और जो भी भाया माँग मागकर भर पेट खाया। श्रोत्रियजी खा नहा सके। प्रयत्न करने पर भी मुह का कौर गले स नीचे न उतार पाये।

'आज क्या हो गया है आपको ? तबीयत ठीक नहीं है क्या ? भागीरतम्मा ने पूछा।

'तुम लोग खा लो। न जाने क्यो नही भा रहा है कहकर वे उठ गये। लक्ष्मी और भागीरतम्मा के भोजन के पश्चात् दादा को भीतर कमरे मे बुलाकर बैठाया। कात्यायनी के बारे म बताकर कागज पढ सुनाया।

भागीरतम्मा स्तब्ध रह गई। पूछने लगी— तो क्या पहले भी उसने आपसे बात की थी ?

हाँ !'

हम क्यो नहा बताया ?

उसने न बताने का अनुरोध किया था। साथ ही स्वय सोच-समझकर उसी ने कहा कि यह विचारधारा गलत थी।

'अब ऐसा कर लिया न ! उसे अपनाने वाला कौन है ?'

डॉ० सदाशिवराव को जानती हो न ? उनका छोटा भाई राजाराव !

'अच्छा !' भागीरतम्मा के क्रोध का पारा चढ़ गया। 'हमारे घर का नमक खाये हुए डॉक्टर राव के भाई ने यह काम किया ?

'भाई ने किया तो वे क्या करें ?'

छोटे भाई को समझाने के लिए बड़े भाई की जबान नही है ?"

'शायद बडा भाई यह नही जानता। व अब दूसरी पत्नी के साथ रहते हैं श्रोत्रियजी न डॉ० राव की दूसरी शादी के बारे म जितना वे जानत थ, कह सुनाया।

'आपसे किसने कहा ?'

'कात्यायनी ने ही कहा था।'

उसने सब-कुछ बताया था। हमे आपन कुछ नही बताया। पापिन ! कुलटा ! भोली भाली बनकर जिस घर म आई उसी पर कलक लगा गयी। अच्छा होता वह मर जाती । ' भागीरतम्मा बहू, राजाराव और उसके भाइ डा० सदाशिवराव—तीनो को शाप दन लगी।

एसी बातें तुम्हारे मुख से नही निकलनी चाहिए। इस उम्र में भी तुमम सहनशक्ति नही।' श्रोत्रियजी ने शात करना चाहा, लेकिन व्यथ।

'आप चुप रहिए। इतनी उम्र होने पर भी आपको समझ नही आयी।। उस कुलटा को कालज भेजन को मैंने मना किया था, लेकिन आपने मेरी एक न चलने दी। पति का नाम रखने के लिए कालेज गयी और पति क वश पर कलक लगा दिया। पति क मरते ही सिर मुडाकर लाल साडी पहना देनी चाहिए थी। स्वर्गीय बेटे की जगह पर मेरी बहू-मेरी बहू कह-कर लाड प्यार मे आपने ही उसे सिर पर चढा रखा था। उसने आपके लायक ही काम किया। कहिए, अब भी मेरी बात सुनेंगे या नहीं ? इज्जत तो बचानी चाहिए।'

"क्या कहना चाहती हो ? शाति मे कहो।'

'आपकी सहनशक्ति आपको मुबारक हो। मैं जैसा कहती हूँ वसा कीजिए। लिखा है न कि शादी दो-तीन दिन म हो जायेगी। चलिए मैं भी चलती हूँ। उसके होने वाले पति की आरती उतारकर बहू की खोपडी म

चार जमाकर उसके बाल पकड़कर घसीट लायें।'

श्रोत्रियजी चुपचाप पत्नी की सलाह पर सोच रहे थे। भागीरतम्मा ने फिर पूछा— चुपचाप क्या बैठे हैं?

इसमें मैसूर जाने से कोई लाभ नहीं। वह अब अबोध बच्ची नहीं है। उसके मन में भी कम द्वंद्व नहीं चला था। जबर्दस्ती करें तो भी अधिक दिन टिकने वाली नहीं है। सब अपने पूर्वजन्म के कर्म के अनुसार चलते हैं।

आप हमेशा दर्शन ही बघारते हैं। आप युधिष्ठिर हैं। घर में बैठे रहिए। मैं लक्ष्मी को ले जाकर घसीटकर लाती हूँ।

अब तक चुपचाप सारी बातें सुन रही लक्ष्मी बोली— श्रीनप्पा का कहना ठीक है। जबर्दस्ती ले आने से कोई लाभ नहीं। वह भी उसका कर्म है।

तू मुझे दर्शन पढ़ा रही है भागीरतम्मा कह रही थी कि लक्ष्मी इसे समझाओ कहकर श्रोत्रियजी वहाँ से उठकर अपने अध्ययन-कक्ष में चले गये। उनका मन भी विचलित हो चुका था।

श्री प्रकाश भोजन और वसतिगृह हाल में बीस तीस मित्रों की उपस्थिति में राज और कात्यायनी ने एक-दूसरे को पुष्पमाला पहनाई। पुरोहित ने वर के हाथों वधू को मंगलसूत्र पहनवाया। इस एक घंटे के पौरोहित्य कार्य के लिए पंडित ने पचास रुपये लिये थे। उपस्थित मित्रों ने अक्षता द्वारा आशीर्वाद दिया उपहार दिये और वैयक्तिक रूप से वर वधू का अभिनंदन किया। सभी राज के मित्र थे। गर्मी की छुट्टियाँ थीं दो ही दिनों में विवाह भी होना था इस कारण अधिक लोग नहीं आ सके थे। घर से बाहर निकलने का उत्साह न होते हुए नागलक्ष्मी भी होटल में चली आयी थी। दोनों पक्षों से कन्यादान देने या लेनेवाला कोई बुजुर्ग न था। कलकत्ता विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में उपलब्ध कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के अध्ययनार्थ डा० राव रत्न के साथ कलकत्ता गये हुए थे। अतः इस बारे में वे कुछ नहीं जानते थे। राज और कात्यायनी के प्यार के बारे में उन्हें कुछ भी मालूम नहीं था।

विवाह-कार्यक्रम समाप्त हुआ। वे उसी होटल के एक कमरे में गये

और द्वार बन्द किया। नागलक्ष्मी के चरण छूकर कात्यायनी बोली, 'दीदी, मैं नहीं जानती कि मैंने जो कुछ किया, उसमें आप सहमत हैं या नहीं? आप घर की मालकिन हैं। ज्योतिषीजी ने यद्यपि कन्यादान विधि नहीं निभाई तो भी आपने मुझे अपना लिया है। मुझे मार्गदर्शन दें।'

निगमवन भाव से नागलक्ष्मी ने कहा — 'राज की पत्नी हो, अब तुम हमारे घर की ही हो। मैं सीख गयी हूँ कि गृहस्थी में रहकर कैसे उसमें अछूता रहा जा सकता है। भविष्य में हम सबको चलाने की जिम्मेदारी तुम्हारी है।'

बाहर भोजन की सारी व्यवस्था हो चुकी थी। पत्तलें बिछ गयी थीं। उपस्थित मित्रों के आग्रह के अनुसार नवदम्पति साथ ही खाने बैठे। मीठा, नमकीन, चरपरी चीजें, फल दही, छाछ आदि परोसे गये। खाते खाते मित्र परस्पर बतिया रहे थे एक ने कहा 'राजाराव बड़ा लक्की है चांस मार लिया। लड़की विधवा है तो क्या हुआ बड़ी डीसेंट है। इतनी लवली है कि चार बार विधवा हुई हो तो भी शादी हो सकती है।' दूसरा तुरन्त बोल उठा इस विचार में अगर तुमने उससे शादी कर ली तो वह बेचारी पाँचवी बार विधवा हो जायगी सावधान रहना।' 'बड़े भाई की तरह ही छोटा भाई भी रोमान्टिक है। शायद खानदानी परम्परा है —दूसरे खानदानी मित्र ने कहा।' अरे हाँ, डा० राव तो कहाँ दिखाई नहीं दे रहे हैं' तो दूसरा बोला—' पाणिग्रहण के समय पीले रंग की साड़ी पहने जो महिला राजाराव के पास बैठी थी, वह डा० राव की पत्नी पत्नी है।' तीसरे ने समझाने की कोशिश करते हुए कहा— नो-नो यू हैव मिस्टेकन। वे शोध-कार्य के लिए कलकत्ते गये हुए हैं। इस बारे में व कुछ नहीं जानते। डॉ० राव को रोमांटिक नहीं कहना चाहिए। वे अपने-आपको भूलकर शोध-कार्य में लगे रहने वाले विद्वान् हैं। चौथे ने, जो अब तक चुप था और जिसने कभी राज के नाटक में एक बार अभिनय किया था, कहा— 'महोदय भोजन बढ़िया बना है! उसे छोड़कर खिलानेवाला पर ही कामेंट करने चले हैं।' सब लोग खाने पर जुट गये। भोजन परोसते समय संस्कृत के प्रवक्ता ने सस्वर दो श्लोक सुनाये। एक ने शालावार भुजंगप्रयात सुनाया। गत वर्ष अन्तर्कॉलेज गायन स्पर्धा में जिसने पुरस्कार पाया और इस वर्ष एम० ए० का

विद्यार्थी है उसने क नड कविता सुनायी—"भृ गद वे नरिवनु कल्पना विलास ।। इस कविता की समाप्ति के पश्चात सबके बायें हाथ स जांघ पर ताल दने तक दही भात समाप्त हो चुका था। ताबूल लेकर वयक्तिक रूप से सब पुन वर-वधू का अभिन दन कर चले गये। राज ने होटल का बिल चुकाया और राज कात्यायनी नागलक्ष्मी और पृथ्वी के साथ तांग म घर लौटे।

विवाह क बाद लगभग पद्रह दिन तक नवदम्पति ससार को भूले रहे। नागलक्ष्मा नित्य की भाँति रसोई बनाती। पृथ्वी पास-पडोस के बच्चा क साथ खेलन खिसक जाता। राज-कात्यायनी कमर म घुसे रहते। बाहर नहा निकलते थ। उन्ह सिनमा-नाटक किसी म रुचि नहीं थी। व परस्पर अपना वह विरह-अनुभव सुना रह थ जब उन दोना को एक दूसरे स अलग रहना पडा था। दोना परस्पर अपन मिलन म छिप अद्भुत अनुभव को अनत बतात। राज उस अनुभव का वणन अनत अमर सत्य निरतर आनि शब्दा म करना। वह अब अमरत्व की बात मानन लगा है। कात्यायनी के अनन्य सौन्दय की वह प्रशसा करता तो वह राज के आकषक मुख मडल का वणन करती। रात का दिन म और दिन का रात म बदलकर प्रकृति-पुरुष के सम्मिलन म समय अपना नियम खो चुका था।

पहनी हुई साडी म ही आई हुई कात्यायनी क लिए राज न नय-नये डिजाइन की साडियाँ खरीदी। उन्हें पहनकर सिर म फूल खासकर माथ पर सिंदूर लगाकर आइन म अपन को देखती तो कात्यायनी को लगता कि उसका स्त्रीत्व साथक हो रहा है। राज उसे अपनी बाँहो मे भर लता उसके अग-सौष्ठव की प्रशसा करता तो वह सार्थकतापूण भावो म विभोर हो जाती। अपन पति को सिर नवाकर चुपचाप अपने आपको उसकी बाँहो म सौंप दती। इस भाव स आनन्द उमड पडता कि उसका अस्तित्व परस्पर एक-दूसरे क लिए ही है।

कुछ दिनो क बाद कात्यायनी नागलक्ष्मी के काम म हाथ बँटान लगी। वह आती तो नागलक्ष्मी ना' नहा कहना और नहीं आती तो बुरा नहा मानती। उस अपना काम करना हो है। काम स निपटन के पश्चात् श्रीरामनाम लिखन म खो जाना। कात्यायनी कभी बात करन

का प्रयत्न करती तो वह उत्साह नहीं दिखाती। इस स्थायी परिवर्तन का समझकर कात्यायनी भी उससे अधिक बात करने का प्रयास नहीं करती थी। हो सका तो रसोई बनाने म हाथ बँटा देती।

पृथ्वी पहले से ही कात्यायनी को जानता था। वह यह भी जानता था कि उसकी शादी उसके चाचा के साथ हुई है। रास्ते म खेलते समय लडका ने कहा था—'तेरे चाचा ने विधवा से शादी कर ली है।" वह इसका अर्थ भी जानता था। सात साल के पृथ्वी की बुद्धि विलक्षण थी। राज के कहने पर वह उसे 'चाची' कहकर पुकारता था। चाचा पृथ्वी को पहले की तरह ही प्यार करता था। कभी-कभी उसे साइकिल पर बिठाकर ले जाता। कात्यायनी उसे पास खींचकर उसके सिर पर हाथ फेरती। चाची के साथ खुलकर रहने म वह झिझकता और वहाँ से भागने की कोशिश करता। लेकिन चाची बुरा न मान जाय इस ख्याल से वहीं खड़ा रहता। कभी आप सबोधन करता तो कात्यायनी कहती—' नहीं, जिस तरह अपने चाचा को 'तुम' कहते हो उसी तरह मुझे भी 'तुम' कहा करो।' राज ने भी यही कहा। उसके बाद वह कहने लगा, "चाची यहाँ आओ यह देखो।' कभी-कभी 'चाची उसके लिखे पाठ देखकर, गलतियाँ सुधारती।

पृथ्वी को देखते ही कात्यायनी को चीनी का स्मरण हो आता। उसी के उम्र का मास पिंड है चीनी। घर से निकलते समय उसने "माँ मैं भी चलूंगा" कहा था तो "तू बाद म आना बेटा' कहकर आयी थी। अब उसे बच्चे की याद सताने लगी। पहले पृथ्वी को देखने से चीनी की याद आती थी, लेकिन अब उठते बैठते, खाते-पीते, हर क्षण चीनी का चेहरा उसकी आँखों के सामने घूमता रहता। अत उसने निश्चय किया कि बच्चे को ले आना ही ठीक होगा। कभी-कभार सास-ससुर की भी याद आ जाती। कभी यह भी सोचती कि बच्चे को न लाऊँ तो उनको कौन सहारा देगा। उनके बुढ़ापे के बारे म सोचती तो उनके प्रति सहानुभूति जाग पड़ती। उसकी अतरात्मा की गहराई से एक मद्धिम ध्वनि निकलकर कहती, तुमने उन्हें छोड़कर शायद उचित नहीं किया। लेकिन उसका मन उसे छिपाता रहा—बच्चे को वहाँ छोड़ने की कल्पना उसके लिए असह्य थी।

विद्यार्थी है उसने क नड कविता सुनायी—"भ गद वे नरिवतु कल्पना विलास । इस कविता की समाप्ति के पश्चात सबक वायें हाथ से जाघ पर ताल दने तक दही भात समाप्त हो चुका था। तावूल लेकर वैयक्तिक रूप से सब पुन वर वधू का अभिन दन कर चले गये। राज ने होटल का बिल चुकाया और राज कात्यायनी नागलक्ष्मी और पथ्वी के साथ तागे मे घर लौटे।

विवाह के बाद लगभग प द्रह दिन तक नवदम्पति ससार को भूले रहे। नागलक्ष्मा नित्य की भाति रसोई बनाती। पथ्वी पास पडास के बच्चा क साथ खेलने खिसक जाता। राज-कात्यायनी कमरे मे घुस रहते। बाहर नही निकलते थे। उ ह सिनेमा-नाटक किसी म रुचि नही थी। वे परस्पर अपना वह विरह-अनुभव सुना रह थे जब उन दोना को एक दूसरे से अलग रहना पडा था। दोना परस्पर अपा मिलन म छिप अद्वत अनुभव को अनत बताते। राज उस अनुभव का वणन अनत क्षमर सत्य, निर तर आदि शब्दा मे करता। वह अब अमरत्व की बात मानन लगा है। कात्यायनी के अन य सौंदय की वह प्रशसा करता तो वह राज क आकषक मुख मडल का वणन करती। रात को दिन म और दिन का रात म बदलकर, प्रकृति-पुरुष के सम्मिलन म समय अपना नियम खा चुका था।

पहनी हुई साडी म ही आई हुई कात्यायनी के लिए राज ने नय नये डिजाइन की साडिया खरीदी। उ हे पहनकर सिर म फूल खासकर माथ पर सिंदूर लगाकर आईन म अपने का देखती तो कात्यायनी को लगता कि उसका स्त्रीत्व साथक हो रहा है। राज उसे अपनी बाँहो मे भर लता उसके अग-सौष्ठव की प्रशसा करता ता वह साथकतापूण भावा म विभोर हो जाती। अपने पति को सिर नवाकर चुपचाप अपने आपका उसकी बाहा म सौंप दती। इस भाव से आन द उमड पडता कि उसका अस्तित्व परस्पर एक-दूसरे क लिए ही है।

कुछ दिना क बाद कात्यायनी नागलक्ष्मी क काम म हाथ बँटाने लगी। वह आती तो नागलक्ष्मी ना नही कहती और नही आती तो बुरा नहा मानती। उसे अपना काम करना ही है। काम से निपटन के पश्चात श्रीरामनाम लिखन म खो जाती। कात्यायनी कभी बात करने

का प्रयत्न करती तो वह उत्साह नहीं दिखाती। इस स्थायी परिवर्तन को समझकर कात्यायनी भी उससे अधिक बात करने का प्रयास नहीं करती थी। हो सका तो रसोई बनाने में हाथ बँटा देती।

पृथ्वी पहले से ही कात्यायनी को जानता था। वह यह भी जानता था कि उसकी शादी उसके चाचा के साथ हुई है। रास्ते में खेलते समय लड़कों ने कहा था—'तेरे चाचा ने विधवा से शादी कर ली है।' वह इसका अर्थ भी जानता था। सात साल के पृथ्वी की बुद्धि विलक्षण थी। राज के कहने पर वह उसे 'चाची' कहकर पुकारता था। चाचा पृथ्वी को पहले की तरह ही प्यार करता था। कभी-कभी उसे साइकिल पर बिठाकर ले जाता। कात्यायनी उसे पास खींचकर उसके सिर पर हाथ फेरती। चाची के साथ खुलकर रहने में वह झिझकता और वहाँ से भागने की कोशिश करता। लेकिन चाची बुरा न मान जाय, इस ख्याल से वहीं खड़ा रहता। कभी 'आप' संबोधन करता तो कात्यायनी कहती—"नहीं, जिस तरह अपने चाचा को 'तुम' कहते हो, उसी तरह मुझे भी 'तुम' कहा करो।" राज ने भी यही कहा। उसके बाद वह कहने लगा, 'चाची यहाँ आओ, यह देखो।'' कभी-कभी चाची उसके लिखे पाठ देखकर, गलतियाँ सुधारती।

पृथ्वी को देखते ही कात्यायनी को चीनी का स्मरण हो आता। उसी के गर्भ का मांस पिंड है चीनी। घर से निकलते समय उसने "माँ मैं भी चलूँगा' कहा था तो 'तू बाद में आना बेटा' कहकर आयी थी। अब उसे बच्चे की याद सताने लगी। पहले पृथ्वी को देखने से चीनी की याद आती थी, लेकिन अब उठते-बैठते, खाते-पीते, हर क्षण चीनी का चेहरा उसकी आँखों के सामने घूमता रहता। अतः उसने निश्चय किया कि बच्चे को ले आना ही ठीक होगा। कभी-कभार सास-ससुर की भी याद आ जाती। कभी यह भी सोचती कि बच्चे को ले आऊँ तो उनको कौन सहारा देगा। उनके बुढ़ापे के बारे में सोचती तो उनके प्रति सहानुभूति जाग पड़ती। उसकी अंतरात्मा की गहराई से एक मद्धिम ध्वनि निकलकर कहती: तुमने उन्हें छोड़कर शायद उचित नहीं किया। लेकिन उसका मन उसे छिपाता रहा—बच्चे को वहाँ छोड़ने की कल्पना उसके लिए असह्य थी।

ही छाने म दोना स्टेशन आये। कात्यायनी गाडी म चढ गई। लेकिन मन भयभीत था। राज शाम को छह बजे स्वय स्टेशन आने की बात कह ही रहा था कि गाडी चलन लगी। लगभग डेढ महीने के बाद वह नजनगूड जा रहा है। शायद यह अन्तिम सफर है। आकाश म सूय का पता लगाना मुश्किल था। नजनगूड पहुँचने तक वारिश होती रही। कवलीमठ पार कर गाडी जब धीमी गति से पुल पर से गुजर रही थी तो अधभरी कपिला साफ साफ दिखाई द रही थी। दूर कतार मे दीख रहे स्नान घाट मदिर, नदी की दाया आर दूर-दूर तक ऊँचे-ऊँचे पेडो का झुड—सभी चिर-परिचित दृश्य। अनायास उसे याद आया—ऐसी ही ज्यष्ठ मास की बारिश म कपिला न उसके पति को अपने म आत्मसात् कर लिया था। उस दिन कितन आँसू बहाय थ। उन दिनो की मानसिक वेदना को स्मरण कर रही थी कि स्टेशन आ गया।

गाडी से उतरते-उतरते कात्यायनी का दिल जोर-जोर से धडकने लगा। रास्त म कोई पहचान ले तो? नय जीवन के विषय मे सारा नगर जानता है। यह सोचकर कि वह किसी से क्यो डरे—वह घर की ओर चलन लगी। अब तक पत्र उन्ह मिल गया होगा। घर के सदस्य अब तक किसी निष्कप पर पहुच गय होंगे। अगर व बच्चे को सौपन से इन्कार कर दें तो? सास जरूर आग-बबूला होगी, लेकिन ससुर सारासार का विचार करेंगे ही। सारी बातें तो पत्र मे लिख दी हैं। बोलने की आवश्यकता ही नही है। इन्ही विचारो मे खोई, कदम बढा रही थी। द्वार पर पहुँची। द्वार आधा खुला था। भीतर दीवानखाने मे प्रवेश किया। वहाँ से भीतरी प्रागण के बगल म रसोईघर भोजनघर और पूजाघर हैं। सीधे भीतर जाने का साहस नहा हुआ। दीवानखाने म कुर्सी पर बठ गई। भीतर से मत्रोच्चार की सस्वर ध्वनि आ रही थी —

काश्यपगोत्रोत्पन्नस्य मम पितु नजुडशमण
वसुरूपस्य प्रातिसावत्सरिक श्राद्ध निमित्त प्राचीनावीती

एसा लगा कि घर मे कोई धार्मिक काय चल रहा है। एक बार मुडकर द्वार की ओर देखा। दीवानखाने के फश पर दृष्टि पडी। सारा घर साफ किया गया था लेकिन रगोली नही मानी गई थी। आभास हुआ कि श्राद्ध मनाई जा रही है। आज किसकी पुण्य तिथि है? अचानक उस याद आया

कि इसी ज्यष्ठ मास म उनका पति स्वग सिधारा था हर साल इस दिन श्राद्ध मनाया जाता है। आह ! किस दिन मैं यहाँ आई हूँ ! जिन माचे स्वय मायभम बनाकर आज ही जाना था ! क्या न लौट चलूँ ! और किसी दिन आऊँ ! सोचती हुई द्वार तक पहुँची ही थी कि लक्ष्मी सामन आ गई। सिर झुकाय खड़ी कात्यायनी स लक्ष्मी बोली— अभी आयी क्या ? लौट क्या रही है ? आ बठ।

नहीं लक्ष्मी आज श्राद्ध है।

हाँ नन्दुड का श्राद्ध है। तुम यहाँ नही ? चल बठ। तेरा पत्र आया था।

अब क्या किया जा सकता था ! कुछ कहना व्यथ था। नौखानखाने म बठ गई। लक्ष्मी कुछ दर वहाँ बठी। लकिन किसी की समझ नहीं पड रहा था कि क्या बोला जाय। कात्यायनी सिर झुकाय बठी थी। लक्ष्मी उठकर बगीचे म चली गयी। भीतर मत्र जाप चल रहा था। एस ही विशेष कार्यों म उपस्थित रहन वाला पुरोहित-वग आज भी उपस्थित था। मत्रोच्चार स्पष्ट सुनाई नहीं द रहा था। शास्त्री बीच-बीच म प्रश्न कर रहा था। श्रोत्रियजी धीमी आवाज म उत्तर द रहे थे। करीब पद्रह मिनट म भोजन काय समाप्त हुआ। शास्त्रीजी कह रहे थ अन्न च पायस भक्ष्य—पहले अन्न उसके बाद खीर और तत्पश्चात मिठाई परोसिय। और एक आवाज आई— बड परिश्रम से प्राप्त एसा भोजन ब्राह्मण जन इतना खायें कि रात को न खाना पड।' दोनों ब्राह्मणों न अस्तु कहा। गगाजली की आवाज हुई। मत्र-पठन खत्म हुआ। भोजन प्रारम्भ हुआ। आवाज स ही कात्यायनी सब-कुछ समझ रही थी। *भागीरतम्मा परास रही था।*

कुछ दर शांति रही। फिर एक न पूछा— देव-काय और पितृ-काय म मुख्य अतर क्या है ?

कात्यायनी को आश्चय हुआ। वह समझ गई कि प्रश्नकर्त्ता उसके पिता श्रीकण्ठय्याजी हैं। व आज क्या आय ? दामाद की मत्यु क बाद कुछ दिनों के लिए बेटी को अपन घर ले गये थे। बस उसके बाद कभी नहीं आय। एक पत्र तक नहीं लिखा था। पहल उसे बहुत प्यार करते थे, लेकिन उसने दूसरे विवाह के पश्चात वह प्यार किसी और के हिस्स म

चला गया था । पौत्र के बारे मे बातचीत करने के लिए आज शायद श्रोत्रियजी ने ही बुलाया होगा ।

भीतर श्रोत्रियजी प्रश्न का उत्तर दे रहे थे—' देवकाय म यज्ञोपवीत बायी भुजा से दाहिने बगल के नीचे रहना चाहिए । मुख पूव या उत्तर दिशा की ओर हो । दाहिनी ओर मुडकर प्रदक्षिणा करनी चाहिए । तपण करते समय 'स्वाहा' और वषट कहना चाहिए । पितृ-काय मे यज्ञोपवीत बायी ओर आना चाहिए । दक्षिण की ओर मुख हो । तपण करते समय 'स्वधा कहना चाहिए । देवकाय मे काटे गय कुशा का उपयोग किया जाता है और पित-काय के लिए जड सहित उखाड गये कुश चाहिए ।"

उनकी बातें एक विषय से दूसरे विषय पर चलती रहीं । श्रीकठय्यजी वकील थे, अत उन्होने कानून-सबधी प्रश्न पूछा—' पुत्र का अथ क्या है ? पुत्र का अथ केवल उसके माता पिता तक ही सीमित है अथवा भावी पीढी तक उसकी अथ-व्याप्ति होती है ? '

श्रोत्रियजी कह रहे थे— 'इसका भी उत्तर मिलता है । 'अत एव पुत्र पद प्रपौत्र पयतर तत्पयतानमेव पावण विधिना पिण्डदानोपकारकत्वस्या-विशेषात । पुत्र भावी तीन पीढिया तक म समाया है । कारण, वे तीनो पावण श्राद्ध मनाने के अधिकारी हैं । उनके द्वारा अर्जित पिंड से पितृ एक समान सतुष्ट होते हैं ।' उनकी बातें श्राद्ध स पत्रिक सपत्ति पर आ टिकी— 'पिता की जायदाद न मिलने पर भी पिता का कज ब्याज के साथ अदा करना पुत्र का कत्तव्य है । पौत्र केवल मूलधन अदा करेगा । प्रपिता के यदि पुत्र-सतान ही न हो तो उस कज को कौन अदा करेगा ?

क्या य जानते हैं कि मैं यहाँ अकेली हूँ —कात्यायनी सोचने लगी । इतने मे चीनी बाहर आया । वह भी, अपने पिता के श्राद्ध म भाग ले रहा था । पाँच वष का बालक एक गीली लँगोटी पहने था । दीवानखाने म बैठी कात्यायनी को उसने देख लिया । पहले तो दूसरी कोई महिला समझ पास नहीं आया लेकिन कुछ देर बाद पहचानकर पूछा—"माँ इतने दिन कहाँ गई थी ? ' भीतर के लोग भी उसकी आवाज सुन सकते थे । कात्यायनी न हाथ के सकेत से उसे पास बुलाया । वह आगे बढा और दीवान-खाने के द्वार के पास रुक गया ।

' मेरे पास आओ चीनी —धीरे से कात्यायनी ने कहा ।

'माँ आज पिताजी का श्राद्ध है तुम नहा जानती ? मैं शुद्धाचार म हूँ। तुम मुझे छू नही सकती ।' और भीतर दौडा। कात्यायनी दुविधा म पड गई। लेकिन पाच मिनट बाद वह फिर सीधा माँ क पास आया और उसकी गोद मे अपना हाथ टककर पूछन लगा—' इतन दिन तक तुम कहाँ गयी थी माँ ?

'मसूर गयी थी बेटे ।

अब कभी न जाना बालक न कहा। कात्यायनी उसका सिर अपनी छाती से लगाने के लिए आगे झुकी लकिन पिताजी का श्राद्ध काय समाप्त हाने पर आऊँगा । दानीजी प्रसाद दन वाला हैं । तुम्हे भी लाकर दूगा —कहकर भाग गया। द्वार क पास रुककर वहाँ क्यो बठी हो, अदर आओ । —कहता हुआ भीतर दौडा ।

ब्राह्मणो का भोजन हुआ। पुन मत्र जाप प्रारभ हुआ। आधे घण्टे के बाद श्राद्ध का कायक्रम समाप्त हुआ। दस मिनट बाद पुरोहित जी रसोईघर म गय और भागीरतम्मा स बातें करने लग। आखिर म यह कहकर कि अब हम चलत है आपका भोजन करना बाकी है निकल पडे। दीवानखाने मे निकल तो कात्यायनी का दखा। दूसरे आगतुको की नजर भी उस पर पडी। कात्यायनी को मानो शूल चुभ रहे थे। वह दीवार को ही देखती रही। कभी नजर उठाकर न दखन वाले इन ब्राह्मणो का व्यवहार उसे असह्य लगा। लेकिन लाचार थी।

थाडी देर बाद श्रोत्रियजी भी वहाँ आय और बोल— पत्तल बिछी है उठ भोजन कर ल बेटी । पहले जसा ही ममतापूण व्यवहार और मधुर ध्वनि सुनकर उसे तसल्ली हुई। मरा भोजन हो चुका है। आप कर लीजिए।' कोई बात नहा अब तक पच गया होगा' —कहकर वही खडे रहे। बिना अधिक बोले वह भोजन क लिए उठी। श्रोत्रियजी, श्रीकठय्या और चीनी एक पक्ति म बठे थ। कात्यायनी के लिए अलग पत्तल बिछायी गयी थी। खाते समय सभी मौन थ। भागीरतम्मा परोस रही थी। खीर पकौडो, भजिया लड्डू आम केले आदि से पत्तल भर गयी थी। कात्यायनी दो ही कौर दाल भात खायी। अधिक खाने के लिए किसी न विवश नही किया। दही भात आने तक चीनी ऊँघने लगा था। आज, जबकि साल म एक बार स्वर्गीय पिता का भोजन कराने के

उपलक्ष्य में सुबह से उसे उपवास करना पड़ा था, दो और पेट में पहुँचा तो सबकी आने लगी। श्रोत्रियजी के आचमन करने के पश्चात् श्रीकण्ठय्यजी भी उठे।

हाथ धोकर कात्यायनी दीवानखाने में वहीं आकर बैठ गई जहाँ पहले बैठी थी। आधे घण्टे तक वहाँ कोई नहीं आया। हर क्षण उसे यातना देने लगा। श्रोत्रियजी आये और पास ही खाट पर बैठ गये। कात्यायनी की समझ में नहीं आ रहा था कि किस तरह बात प्रारम्भ की जाय। पाँच मिनट बाद श्रोत्रियजी बोले—'तेरा पत्र मिला था।'

"उसमें मैंने सब-कुछ लिख दिया था" साहस बटोरकर कात्यायनी बोली। इस बीच भीतर से भागीरतम्मा आयीं और एक ही साँस में उबल पड़ीं—'न लिखती तो और क्या करती? तूने तो अपने कर्म से अपने माता पिता, सगे-सम्बन्धियों की प्रतिष्ठा बनाई है न? अब बच्चे को ले जाकर क्या अपनी तरह ही कुकर्म कराना चाहती है? इस घर को गूँगा बनाना चाहती है?' श्रीकण्ठय्याजी भी आकर श्रोत्रियजी की बगल में बैठ गये। वे ऊँचे स्थूल शरीर के पूर्ण व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे। उतने ही कट्टर सनातनी भी थे। भागीरतम्मा फिर बोलीं—'इस शर्मनाक काम से तेरा जी नहीं भरा? अब बच्चे को अपने नये पति से परिचय कराने कि 'चीनी यही तेरे पिताजी हैं' और इसे ले जाने आई है? तुझमें कोई लाज शर्म बची भी है? तेरे पिता भी यहीं बैठे हैं। वे तेरे आचार विचार को उचित मानें तो कहें। दूसरी बातें बाद में होंगी। क्या हमने तुझे खाने-पीने के लिए नहीं दिया? गालियाँ दीं? कपड़े-लत्ते की कमी थी? उनसे ही कह।

श्रीकण्ठय्याजी ने एक बार खाँसकर मानो कात्यायनी से यह कहना चाहा कि वह उनकी ओर देखकर बोले। वातावरण शांत हुआ। वे पुनः खाँसे। कात्यायनी कुछ न बोली। तीसरी बार पहले की अपेक्षा जोर से खाँसना भी बेकार गया। वे अंग्रेजी में बोलने लगे। उन्हें अदालत की भाषा बोलने की आदत थी। यद्यपि भागीरतम्मा भाषा नहीं समझ सकीं तथापि बात का आशय समझ गई थीं। श्रोत्रियजी को विवरण समझ में नहीं आया, किन्तु बात के ढंग से भाव समझ गये। धर्मशास्त्र पर आधे घण्टे का भाषण देकर, कानूनी मुद्रा बनाते हुए श्रीकण्ठय्यजी ने कहा—

'माँ आज पिताजी का श्राद्ध है तुम नही जानती ? मैं शुद्धाचार मे हूँ। तुम मुझे छू नहा सकती ! और भीतर दौडा। कात्यायनी दुविधा मे पड गई। लेकिन पाच मिनट बाद वह फिर सीधा माँ के पास आया और उसकी गोद म अपना हाथ टेककर पूछन लगा—' इतने दिन तक तुम कहाँ गयी थी माँ ?

'मसूर गयी थी बेटे ।

अब कभी न जाना बालक ने कहा। कात्यायनी उसका सिर अपनी छाती से लगाने के लिए आग झुकी लेकिन पिताजी का श्राद्ध काय समाप्त होने पर आऊँगा। दादीजी प्रसाद दन वाला है। तुम्हे भी लाकर दूगा —कहकर भाग गया। द्वार क पास रुककर वहाँ क्यो बठी हो, अदर आओ। —कहता हुआ भीतर दौडा।

ब्राह्मणो का भोजन हुआ। पुन मत्र जाप प्रारभ हुआ। आधे घण्टे के बाद श्राद्ध का कायक्रम समाप्त हुआ। दस मिनट बाद पुरोहित जी रसोईघर म गय और भागीरतम्मा स बातें करने लगे। आखिर म यह कहकर कि अब हम चलत हैं आपका भोजन करना बाकी है ' निकल पडे। दीवानखाने से निकले तो कात्यायनी को देखा। दूसरे आगतुको की नजर भी उस पर पडी। कात्यायनी को मानो शूल चुभ रहे थे। वह दीवार को ही देखती रही। कभी नजर उठाकर न देखने वाल इन ब्राह्मणो का व्यवहार उसे असह्य लगा। लेकिन लाचार थी।

थोडी देर बाद श्रोत्रियजी भी वहाँ आय और बोल— पत्तल बिछी है उठ भोजन कर ल बेटी। पहले जसा ही ममतापूर्ण व्यवहार और मधुर ध्वनि सुनकर उसे तसल्ली हुई। मेरा भोजन हो चुका है। आप कर लीजिए। कोई बात नही अब तक पच गया होगा' —कहकर वही खडे रहे। बिना अधिक बोल वह भोजन क लिए उठी। श्रोत्रियजी श्रीकठय्या और चीनी एक पक्ति म बठे थ। कात्यायनी के लिए अलग पत्तल बिछायी गयी थी। खात समय सभी मौन थे। भागीरतम्मा परोस रही थी। खीर, पकौडा, भजिया लड्डू आम, केले आदि स पत्तल भर गयी थी। कात्यायनी दो ही कौर दाल भात खायी। अधिक खाने के लिए किसी न विवश नही किया। दही भात आने तक चीनी ऊँघने लगा था। आज, जबकि साल म एक बार स्वर्गीय पिता को भोजन कराने के

उपलक्ष्य में सुबह से उसे उपवास करना पड़ा था, दो बजे घर में पहुँचा तो इसकी जान गयी। श्रोत्रियजी के आचमन करने के पश्चात् श्रीकण्ठय्यजी भी उठे।

हाथ धोकर कात्यायनी दीवानखाने में वहाँ आकर बैठ गई जहाँ पहले बैठी थी। आधे घण्टे तक वहाँ कोई नहीं आया। हर क्षण उसे यातना देने लगा। श्रोत्रियजी आये और पास ही खाट पर बैठ गये। कात्यायनी की समझ में नहीं आ रहा था कि किस तरह बात प्रारम्भ की जाय। पाँच मिनट बाद श्रोत्रियजी बोले—'तेरा पत्र मिला था।'

'उसमें मैंने सब-कुछ लिख दिया था' साहस बटोरकर कात्यायनी बोली। इस बीच भीतर से भागीरतम्मा आयीं और एक ही साँस में उबल पड़ीं— न लिखती तो और क्या करती? तूने तो अपने कर्म से अपने माता-पिता, सास-ससुर की प्रतिष्ठा बढ़ाई है न? अब बच्चे को ले जाकर क्या अपनी तरह ही कुकर्म कराना चाहती है? इस घर को सूना बनाना चाहती है? श्रीकण्ठय्याजी भी आकर श्रोत्रियजी की बगल में बैठ गये। वे ऊँचे स्थूल शरीर के पूर्ण व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे। उतने ही कट्टर सनातनी भी थे। भागीरतम्मा फिर बोलीं—'इस कमबख्त काम से तेरा जी नहीं भरा? अब बच्चे का अपने नये पति से परिचय कराने कि चीनी, ये ही तेरे पिताजी हैं और इन्हें ले जाने आई है? तुझमें कोई लाज शर्म बची भी है? तेरे पिता भी यहाँ बैठे हैं। वे तेरे आचार विचार को उचित मानें तो कह। दूसरी बातें बाद में होंगी। क्या इतने दिन तुझे खान-पीने के लिए नहीं दिया? गालियाँ दीं? कपड़े-लत्ते की कमी थी? उनसे ही कह।'

श्रीकण्ठय्यजी ने एक बार खाँसकर मानो कात्यायनी से यह कहना चाहा कि वह उनकी ओर देखकर बोले। वातावरण शांत हुआ। वे पुनः खाँसे। कात्यायनी कुछ न बोली। तीसरी बार पहले की अपेक्षा जोर से खाँसना भी बेकार गया। वे अंग्रेजी में बोलने लगे। उन्हें अदालत की भाषा बोलने की आदत थी। यद्यपि भागीरतम्मा भाषा नहीं समझ सकीं तथापि बात का गाम्भीर्य समझ गईं थीं। श्रोत्रियजी को विवरण समझ में नहीं आया, लेकिन बात के ढंग से भाव समझ गये। धर्मशास्त्र पर आधे घण्टे का भाषण देकर, कानूनी मुद्रा बनाते हुए श्रीकण्ठय्यजी ने कहा—

"इग्लड मे भी बच्चे पर पिता के वश का अधिकार है। माँ विधवा होकर दूसरी शादी कर लेती है तो भी उन बच्चा क वश का नाम पिता के वश के साथ चलता है। अत म बेटी के कारण अपने वश म लग कलक का उल्लेख कर धिक्कारा— यू आर ए डिस्ग्रेस टु द फेमिली। वटर इफ सच एन अनवर्दी डाटर इज नाट बान (कुटुब के लिए तू कलक है। ऐसी नालायक बेटी जन्म न लेती तो ही अच्छा था।') । व बालत जा रहे थे। श्रोत्रियजी समझ गय। उठकर श्रीकठय्यजी स बोले— जा होना था हो चुका। अब डाँटने से क्या लाभ। हमारे मुख से अपशब्द नहीं निकलने चाहिए। आप दोना भीतर जाइए। मैं उससे बात करता हूँ।

श्रीकठय्यजी की बातो म भागीरतम्मा का यकीन था। पति की बात न मानकर वहा खडी होकर बोलने लगी— आप क्या जानत हैं युधिष्ठिर ? व वकील है। आप चुप रहिए उन्हे बोलने दीजिए। कात्यायनी का दुख उमड पडा। उसके पिता यहाँ कभी नहा आत थे। उन्होंने कभी यह नहा पूछा कि बेटी जिदा है या नहीं। व ही आज उस एसे डाट रहे हैं जस कोई पुलिस चोर को। उस लगा— अगर मरी माँ होती मन ने प्रश्न किया मेरी मा क मरने क पश्चात इन्होंने दूसरी शादी नहीं कर ली थी ?' अपनी इस अत पीडा स वह सिसक सिसककर रो पडी।

श्रोत्रियजी न पुन कहा— आप दाना भीतर जाइए।

मैं नहीं जाऊगी। वह आपका ही नहीं मेरा भी पोता है। बेट का लालन पालन मैंन किया है। मेरे दुख को आप क्या जानें ? यह मेर बटे की वश-बल है। पालन पोषण मैंन किया है कहकर भागीरतम्मा जार-जोर से रोने लगी।

आप बुजुग रोयेंगे तो किसी का भला नहीं होगा। धीरज धरिए — कहकर श्रीकठय्यजी भागीरतम्मा को समझाने लग। 'सारी बात मुझ पर छोड दीजिए अधिकारपूण वाणी म कहकर श्रोत्रियजी उठे और दोना को एक एक हाथ मे पकडकर दरवाजे क बाहर ल गये। भागीरतम्मा अभी भी रो ही रही थी। श्रोत्रियजी ने अन्दर स कुडी लगा दी। अब दीवानखाने म केवल कात्यायनी और श्रोत्रियजी थ।

कात्यायनी अब भी सिसक रही थी। श्रोत्रियजी एक कुर्सी खीचकर

उसके पास बैठकर समझाने लगे—'ऐसे मामलो म रोने से कोई लाभ नही। धीरज धरो बेटी ! अब गुस्से म बोलने वाला कोई नही है। जो भी कहना है मुझसे कहो।'

कात्यायनी ने सिर उठाकर श्रोत्रियजी का चेहरा देखा। शात मुद्र ! पाँच मिनिट बाद कात्यायनी की रुलाई थमी। आँचल से आँसू पाछकर कहने लगी— आप जानते हैं कि जन्म देने वाली माँ के लिए अपनी सतान का छोडकर रहना कितना कठिन है। मुझे अधिक कहने की आव श्यकता नही।

'सच है !' श्रोत्रियजी ने सिर हिलाया।

'म जानती हूँ कि आप भी उसके बिना घर म ऊब जाते हैं। लेकिन चीनी के बिना मैं कैसे रह सकती हूँ ? उसे मेरे साथ भेज दीजिए।'

दो मिनिट चुप रहकर श्रोत्रियजी ने शात चित्त से कहा—'बेटी यह केवल मन या हृदय का प्रश्न नही है। इसे विस्तृत पृष्ठभूमि में देखना पडेगा। बच्चे के प्रति माँ की ममता है। पर क्या ममता हममे नही है ? तेरा पति गुजर गया तुझे नया पति मिल गया। क्या हम मृत बेटे के बदले नया बेटा मिल सकता है ?'

कात्यायनी के पास इसका कोई उत्तर न था। श्रोत्रियजी आगे बोले—'मृतक हमारा बेटा था। उसका वंश केवल तेरा बेटा कैसे हो सकता है ? मेरे मतानुसार बच्चे न केवल पिता के होते हैं और न माता के—वे वश की निधि हैं। वर्यक्तिक रूप से कोई अधिकार स्थापित करने का प्रयास करता है तो बच्चे उसके हाथ नही लगते। जब तक व्यक्ति वश के सदस्यो म एक बनकर रहता है तब तक उस वश की हर वस्तु पर उसका अधिकार रहता है। उस दायरे से बाहर निकल जाने के पश्चात् यह कहना कहाँ का न्याय है कि उस वृत्त का केंद्र बिंदु मेरा है ?

मैंने हक, अधिकार की बात नही की केवल माँ के हृदय की पुकार सुनाई है।

'वश-वृक्ष का छोडकर कोई भी मातृत्व का गौरव नहा पा सकता। मातृत्व, पितृत्व, भ्रातृत्व—सभी वश की पृष्ठभूमि म रहते हैं। वश का उद्देश्य पूर्ण करने के लिए ही स्त्री-पुरुष पति-पत्नी बनते हैं। इस उद्देश्य से बाहर मातृत्व कहाँ से आता है ?

'आपका और मेरा जीवन-दृष्टिकोण भिन्न है। आपके मतानुसार व्यक्ति वश के लिए है और मैं व्यक्ति के जीवन को ही अधिक महत्त्व देती हूँ।

श्रोत्रियजी चुप रहे। इस बहस को और आगे न बढ़ाकर इतना ही कहा— मूल दृष्टिकोण म ही अतर है तो चर्चा से कोई लाभ नहीं। चर्चा आगे नहीं बढ़ानी चाहिए। यह तो तुम भी मानती होगी कि बच्चे जिस तरह अपने माता पिता के हैं उसी तरह दादा दादी नाना नानी के भी हैं।

कात्यायनी को पुरानी घटना याद आई। चीनी छह महीने का था। कात्यायनी और नजुड दोनो रसीली बातचीत म मग्न थे। पति कहता था मुन्ना मेरा है और पत्नी कहती नहीं, मेरा है। इतने म श्रोत्रियजी वहाँ पहुचे। बेटे ने पिता का फसला सुनाने को कहा। हँसते हुए उन्होंने कहा था— बच्चे न केवल पिता के हैं और न माता के व दादा के पोते हैं। इस निर्णय को पति-पत्नी दोनो ने स्वीकार किया था। अब कात्यायनी समझ गई कि प्रारम्भ स ही उनका यही दृष्टिकोण है।

श्रोत्रियजी ने पूछा— मान ले कि तू बच्चे को ले जाती है। क्या तू उसे इस काबिल बना सकती है कि वह गर्व से श्रोत्रिय वश का नाम ले सके? आज की तरह भविष्य म भी अपने पितरो का श्राद्ध करके उनसे उऋण हो सकता है? तेरे नये जीवन मे ये सब विचित्र और उल्टे दिखाई देते हैं न?

इन सब पर मेरा विश्वास नहीं है।

तुझे विश्वास नहीं है। खर छोड। भविष्य म यह बालक बडा होने पर सरकारी कानून के अनुसार श्रोत्रिय वश की समस्त सम्पत्ति का अधिकारी बने। जिस वश के विश्वास मत सस्कार धार्मिक जिम्मेदारियो आदि को ठुकराया है, उस वश की सपत्ति को स्वीकार करना कहाँ का न्याय है? मैं ये सारी बातें केवल धन की दृष्टि स ही नहीं कहता—बड गहरे अर्थ मे कह रहा हूँ। माता पिता स शरीर के साथ उनके दैहिक मानसिक एव अ य सस्कार हमे उपलब्ध होते हैं। यह कहना कि हम केवल शरीर चाहिए सस्कारो स हमारा कोई सबध नहीं—टेढा तक है।

कात्यायनी चुप थी। कोई भी तर्क उसे सूझ न रहा था। श्रोत्रियजी कहते गये—'एक वंश के बीज को आगे बढ़ाने के लिए ही एक क्षेत्र का एक और वंश वाले दान करते हैं। उस वंश के बीज को अपने में अंकुरित वृक्ष बनाने के पश्चात वह क्षेत्र अपनी सार्थकता को प्राप्त करता है। एक बार जो माता बनती है, वह सदा-सर्वदा के लिए माता है। वह पुनः कुमारी के समान पत्नीत्व को कैसे अपना सकती है? विकास की दौड़ में अनुभव का एक स्तर से दूसरे स्तर पर लौटना सृष्टि नियम के विरुद्ध है। विकास पथ में खाये स्तर को पाने की आशा रखना पाप है।"

कात्यायनी का मुख कुम्हला गया। चेहरे पर वेदना की सूक्ष्म लकीरें दृष्टिगोचर हो रही थीं। उन्हें देखकर मधुर ध्वनि में श्रोत्रियजी बोले—"बेटी, मैंने तेरा जी दुखाने के उद्देश्य से यह नहीं कहा। जो कुछ मन में था, कह दिया। सरकारी कानून के अनुसार तू बच्चे को ले जा सकती है। लेकिन कानून से धर्म नहीं मिलता। श्रोत्रिय-वंश की प्रतिष्ठा को अदालत में घसीटने का मौका मैं नहीं दूंगा। मैं अंतिम बात कहना चाहता हूँ, सुनेगी?'

'कहिए।'

श्रोत्रियजी की आवाज दृढ़ हुई किन्तु कठोर नहीं। 'अंतिम निर्णय करने की पूरी आज़ादी तुझे ही है। बालक को उठाकर तुझे सौंपने का अधिकार मुझे नहीं। वंश-वृक्ष की एक डाली तोड़कर दान देने का अधिकार दूसरी डाली को नहीं है। अपने लिए या भीतर रो रही उस वृद्धा के लिए भीख भी मैं नहीं मांगता। तिल भर भी प्रलोभन नहीं कि हमारे बुढ़ापे में वह हमारा सहारा बने। बालक ऊपर सो रहा है। अगर तेरी अंतरात्मा उसे ले जाने को कहती है तो ले जा। इसकी जिम्मेदारी मैं लेता हूँ कि ले जाते समय तेरे पिता या मेरी पत्नी तुझे न रोकें।

इतना कह श्रोत्रियजी उठे और द्वार खोलकर भीतर चले गये। द्वार पर खड़ी भागीरथम्मा ने आतुरता से पूछा—'क्या किया?

तुम मुँह मत खोलो, चलो!' कहकर पत्नी की बाँह पकड़कर रसोई-घर में ले गये। रसोईघर में भीतर से कुंडी लगा ली। कात्यायनी सब सुन रही थी।

वार्तालाप का इस तरह समाप्त होना कात्यायनी के लिए अनपेक्षित

उसने करवट बदल ली। उस पर जो शाल था, वह खिसक गया। बालक निवस्त्र था। माँ ने अपनी सिसकी दबाकर मुह बद कर लिया। बालक का पूरा शरीर दिखाई दे रहा था। उसने एक बार आँख भर बालक को देखा। अपने पहले पति नजुड श्रोत्रिय की याद आई। मन अनियंत्रित होकर अतीत की ओर भागने लगा। छाती मे असह्य वेदना उठी। धीरे से झुककर उसने एक बार बालक के ललाट को चूम लिया। उसके चेहरे पर कठोर निश्चय की एक रेखा उभर आई। पुन झुककर बालक के चरणो को चूमा। फिर उठ खडी हुई। महाप्रवाह सा दुख उमड रहा था। आवाज के रूप मे वह दुख फूटने से पहले ही उसने पल्ला मुह मे ठूस लिया और जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर गयी। नीचे अब भी खामोशी थी। रसोईघर का द्वार बद था।

रुलाई मुह से निकलने से पहले वह घर के बाहर जा चुकी थी।

बाहर वर्षा की बूदें पड रही थी। आकाश मे बादल छाये थे। अत समय का अदाज लगाना मुश्किल था। अँधेरा छा रहा था। कच्ची सडक पर कात्यायनी जल्दी जल्दी चल रही थी। उस गली को पार कर स्टेशन वाले रास्ते की ओर मुडी तो सामने लक्ष्मी मिली। कात्यायनी को देख कर लक्ष्मी खडी हो गयी थी। 'मेरे साथ थोडी दूर तक चलो' हाथ पकडकर कात्यायनी ने बुलाया। लक्ष्मी के हाथ मे छाता था। दोनो स्टेशन पहुचा और एक बेंच पर बैठ गयी। लक्ष्मी सब जानती थी। श्रीनप्पा ने किस तरह बात की होगी, इसकी भी उसे कल्पना थी। अकेली कात्यायनी को देखकर सारी बात समझ गयी थी। कात्यायनी ने पूछा—'मेरे पिताजी यहाँ कब आये ?'

कल रात।'

किसने बुलाया था ?

भागम्मा ने।

सच ! ससुरजी ने नही ?

भागम्मा ने उन्हे बुलाने की सलाह दी तो श्रीनप्पा ने कहा था कि यह हमारे घर का मामला है हम ही निपटना चाहिए। उनके आने की जरूरत नही। उसे बिना बताये ही भागम्मा ने तेरे पिता को कागज

लिखवाया।'

सारी बातें कात्यायनी की समझ मे आ गया। उसने एक बार लंबी साँस ली।

"मुझे बताये बिना तुमने ऐसा क्या किया ?" लक्ष्मी ने प्रश्न किया।

'यह तुम्हें खुद मालूम होना चाहिए।'

लक्ष्मी अनमुखी हुई। पाँच मिनट बाद बोली, 'हमारे कर्म हमसे ऐसा कराते हैं।'

कात्यायनी मौन रहना चाहती थी अत बोली—"अँधेरा हो गया, तुम घर जाओ।'

धीरज से काम लो। चिंता करने से कोई लाभ नहीं' लक्ष्मी ने कात्यायनी की पीठ पर हाथ रखकर कहा और वहाँ से चली गयी।

चारो ओर अँधेरा छाया हुआ था। गाडी का अब तक भी पता न था। टिकट लिया था। टिकटघर के पास गयी तो पता लगा कि एक जगह भारवाही पटरी से उतर गयी है जिसके कारण फिलहाल गाडियाँ नहीं चलेगी। स्टेशन की घडी म सवा सात बजने वाले थे। अब मसूर कैसे पहुँचा जाय ? वह पुन उसी बेंच पर बैठ गयी। कम परिचितों म अनेक घर है, लेकिन किसी के यहाँ रात भर ठहरने का आश्रय मांगने के लिए उसका मन तैयार न था। वहीं बैठी रहती है तो कोई-न-कोई पहचान लेगा। स्टेशन पर ही रात बिताई भी जा सकती है, लेकिन लोगों के सोने से पहले तक बैठी हो आना उचित समझकर वहाँ से उठी। कदम कपिला की ओर बढ़े। नदी किनारे पहुँच, गौरी घाट की सीढी पर बैठ गयी। नदी की गति सामान्य थी। उस अँधेरे म भी दूर के बिजली के खम्भे का मंद प्रकाश दिखाई पड रहा था। लेकिन उस प्रकाश म उसे कोई भी वस्तु स्पष्ट दिखाई नहीं दे रही थी। इस समय वह बिल्कुल अँधेरा चाहती थी। ऊपर से वर्षा की बूँदें पड रही थी। अब तक उसकी साडी भीग चुकी थी। साडी का एक पल्ला खींचकर सिर ढँक लिया। मन अब भी उस घटना को दुहरा रहा था।

उस दिन दोपहर की सारी घटना स्मृति मे आकर अदृश्य हो गयी, तो उसका मन पाँच साल पीछे की ओर दौडने लगा। पाँच साल पहले इसी नदी पर घटी घटना ताजी हो उठी। पाँच वर्ष पूर्व, इसी ज्येष्ठ मास

उसने करवट बदल ली। उस पर जो शाल था, वह खिसक गया। बालक निवस्त्र था। माँ ने अपनी सिसकी दबाकर मुह बद कर लिया। बालक का पूरा शरीर दिखाई दे रहा था। उसने एक बार आख भर बालक को देखा। अपने पहले पति नजुड श्रोत्रिय की याद आई। मन अनियत्रित होकर अतीत की ओर भागने लगा। छाती मे असह्य वेदना उठी। धीरे से झुककर उसने एक बार बालक के ललाट को चूम लिया। उसके चेहरे पर कठोर निष्कप की एक रेखा उभर आई। पुन झुककर बालक के चरणो को चूमा। फिर उठ खडी हुई। महाप्रवाह सा दुख उमड रहा था। आवाज के रूप मे वह दुख फूटने से पहले ही उसने पल्ला मुह मे ठूस लिया और जल्दी-जल्दी सीढियां उतर गयी। नीचे अब भी खामोशी थी। रसोईघर का द्वार बद था।

रुलाई मुह से निकलने से पहले वह घर के बाहर जा चुकी थी।

बाहर वर्षा की बूदें पड रही थी। आकाश मे बादल छाये थे। अत समय का अदाज लगाना मुश्किल था। अँधेरा छा रहा था। कच्ची सडक पर कात्यायनी जल्दी जल्दी चल रही थी। उस गली को पार कर स्टेशन वाले रास्ते की ओर मुडी तो सामने लक्ष्मी मिली। कात्यायनी को देख कर लक्ष्मी खडी हो गयी थी। मेरे साथ थोडी दूर तक चलो ! हाथ पकडकर कात्यायनी ने बुलाया। लक्ष्मी के हाथ मे छाता था। दोनो स्टेशन पहुचा और एक बेंच पर बठ गयी। लक्ष्मी सब जानती थी। शीनप्पा ने किस तरह बात की होगी, इसकी भी उसे कल्पना थी। अकेली कात्यायनी को देखकर सारी बात समझ गयी थी। कात्यायनी ने पूछा—

'मेरे पिताजी यहाँ कब आये ?

कल रात।

किसने बुलाया था ?

भागम्मा ने।

'सच ! ससुरजी ने नही ?

भागम्मा ने उन्हे बुलाने की सलाह दी तो शीनप्पा ने कहा था कि यह हमारे घर का मामला है हम ही निपटना चाहिए। उनके आने की जरूरत नही। उसे बिना बताये ही भागम्मा ने तेरे पिता को कागज

लिखवाया।"

सारी बातें कात्यायनी की समझ में आ गयी। उसने एक बार लंबी साँस ली।

"हमें बताये बिना तुमने ऐसा क्या किया ?" लक्ष्मी ने प्रश्न किया।

"यह तुम्हें खुद मालूम होना चाहिए।'

लक्ष्मी अनमुखी हुई। पाँच मिनट बाद बोली 'हमारे करम हमसे ऐसा कराते हैं।'

कात्यायनी मौन रहना चाहती थी अन्त बोली—"अँधेरा हो गया, तुम घर जाओ।'

धीरज से काम लो। चिंता करने से कोई लाभ नहीं' लक्ष्मी ने कात्यायनी की पीठ पर हाथ रखकर कहा और वहाँ से चली गयी।

चारों ओर अँधेरा छाया हुआ था। गाड़ी का अब तक भी पता न था। टिकट लेना था। टिकटघर के पास गयी तो पता लगा कि एक जगह मालगाड़ी पटरी से उतर गयी है जिसके कारण फिलहाल गाड़ियाँ नहीं चलेंगी। स्टेशन की घड़ी में सवा सात बजने वाले थे। अब मैसूर कैसे पहुँचा जाये ? वह पुन उसी बेंच पर बैठ गयी। वसे परिचित के अनेक घर हैं, लेकिन किसी के यहाँ रात भर ठहरने का आश्रय माँगने के लिए उसका मन तैयार न था। वहाँ बैठी रहती है तो कोई न-कोई पहचान लेगा। स्टेशन पर ही रात बिताई भी जा सकती है लेकिन लोगों के सोने से पहले तक कहीं हो आना उचित समझकर वहाँ से उठी। कदम कपिला की ओर बढ़े। नदी किनारे पहुँच गौरी घाट की सीढ़ी पर बैठ गयी। नदी की गति सामान्य थी। उस अँधेरे में भी दूर के बिजली के खम्भे का मंद प्रकाश दिखाई पड़ रहा था। लेकिन उस प्रकाश में उसे कोई भी वस्तु स्पष्ट दिखाई नहीं दे रही थी। इस समय वह बिल्कुल अँधेरा चाहती थी। ऊपर से वर्षा की बूँदें पड़ रही थीं। अब तक उसकी साड़ी भीग चुकी थी। साड़ी का एक पल्ला खींचकर सिर ढँक लिया। मन अब भी उस घटना का दुहरा रहा था।

उस दिन दोपहर की सारी घटना, स्मृति में आकर अदृश्य हो गयी, तो उसका मन पाँच साल पीछे की ओर दौड़ने लगा। पाँच साल पहले इसी नदी पर घटी घटना ताज़ी हो उठी। पाँच वर्ष पूर्व, इसी ज्येष्ठ मास

मे आज के दिन उसका पति नजुड थाविय इसी नदी म हमेशा के लिए सो गया था। उसने पति का जी जान स प्यार किया था। पत्नी को अकेली छोडकर जिस दिन वह चल बसा उस दिन की रुलाई की थाह कौन जान सका है? उसी नदी म डूब जाने की प्रबल इच्छा जागी थी। श्रोत्रियजी ने शायद उसके मनाभावा का पहचान लिया था। यही कारण है कि उसे अपने पास बठाकर बालो पर हाथ फेरते हुए सान्त्वना दी थी—'तुम्ह कम से कम इस बच्चे के लिए जीना होगा बेटी!' आज मेरे बिना भी बच्चा जी सकता है। उसी समय मैं सती हो जाती या नदी मे कूद पडती तो ये समस्याएँ ही नही उठती। पाँच वष पश्चात मेरा जीवन विपत्ति म फसा है और मुझे अपनी ही सतान से अलग होना पड रहा है। लोगो की दृष्टि मे भी मैं पतिता हूँ। अब भी क्या बिगडा है? नदी म विलीन हो जाना ही उचित है।

मरने के लिए उसका मन आकुल था लेकिन कोई अदश्य शक्ति उसे एसा करने स रोक रही थी। वह सोच रही थी मेरे जीने का कोई उद्देश्य ही नही तो कौन-सी शक्ति मुझे रोक रही है? इसी विचार स वह दो बार उठकर पानी के पास पहुँची। पुन दो सीढी ऊपर जा बठी। वर्षा ऋतु मे निम्न प्रदेश म नदी अपने पूण आवग मे भयावनी आवाज के साथ बह रही थी।

अचानक कात्यायनी पर प्रकाश पडा। उसन मुडकर देखा। ऊपर से किसी न टाच की रोशनी फेंकी थी। वह उठ खडी हुई। टाच लिये व्यक्ति न नीच उतरत हुए पूछा— यहाँ क्या बठी है? मैंने कहाँ-कहाँ नहा ढूढा तुझे! आगतुक राज था। ध्वनि पहचानी तो वह सिर झुकाकर खडी हो गयी। पास जाकर राज ने कात्यायनी का हाथ पकडा तो सिर चकराने लगा। उसने राज के सीने पर सिर टेक उसकी भुजाओ म अपने आपको छोड दिया। वह भी उसी सीढी पर बठ गया। उसके कपडे भी भीग गये थ। उसकी गोद म सिर रखकर वह लेट गयी। पाँच मिनट बाद चक्कर थम। राज के गल से लिपटकर सिसक सिसककर वह बोली—'मुझ ढूढन आप क्या आय! मैं तो पापिन हूँ।

उसके मुख को अपने सीन से चिपकाकर राज ने कहा—'ऐसा न कह। अगर तुझे कुछ हुआ तो मैं कसे जी सकूगा? छह बज मैं स्टेशन आया

था। वहाँ पता लगा कि गाडी पटरी पर से उतर गयी है। मैं जानता था कि यहाँ से कोई बस भी नही चलती है। अत घर जाकर साइकिल पर निकल पडा। स्टेशन पर ढूँढा। तू वहाँ नही थी। श्रोत्रियजी का पता पूछते हुए उनके घर के दरवाजे तक गया। फिर लगा कि तू वहाँ नही होगी। एक होटल के पास साइकिल रखकर ढूँढ़ते-ढूँढ़ते यहाँ आ पहुँचा। उठ, साइकिल से घर चलेंगे।"

'ऐसी वर्षा म मुझे ढूढने मे कितने थक गये होगे!'—कहकर राज के सीने म अपना मुह छिपा लिया, मानो उसी म एकाकार होना चाहती हो। उसकी आखो से अब भी आँसू बह रहे थे। उन्हें अपने अधरो से पोछते हुए राज ने कहा— उठ, साढे नौ बज चुके हैं। घर पहुँचते-पहुँचते रात आधी हो जायेगी।

१६

रत्न स विवाह हुए आठ वष हो गये थे। अब तक डा० राव के ग्रथ का दूसरा खण्ड भी प्रकाशित हो गया था और तीसरे खण्ड की टाइप की हुई प्रति लदन भेज दी गयी थी। उन्हें विद्वत जगत म काफी यश मिल रहा है। अखिल भारत ऐतिहासिक परिषद ने उन्ह अध्यक्ष बनाकर उनका सम्मान किया था। इग्लड क एक दो विश्वविद्यालयो ने भी उन्हें प्राध्यापक के रूप म निमत्रित किया था। बाहर स मिल रहे सम्मान को देखकर मसूर विश्वविद्यालय ने उन्ह प्रोफेसर के पद पर नियुक्त किया था। व अब प्रोफेसरो के लिए निर्मित बँगले मे रहने लगथ। इसके बावजूद उनके दनिक जीवन म किसी तरह का परिवतन नहीं आया था। सुबह नौ बजे पुस्तकालय जाते तो रात क आठ बजे तक वहा रहते। टाइप का काम रहता तो रत्ने घर पर ही रहती, अन्यथा वह भी साथ जाती। रात को लौटकर रसोइया जो कुछ परोसता, खाकर एक घण्टे के लिए घूमने निकल पडते। तब भी व शोध-सबधी बातचीत करते। उस दिन अध्ययन

चौथे खण्ड का काम चल रहा था। उसमें दसवीं शताब्दी से लेकर मुगलकाल तक के भारतीय सांस्कृतिक जीवन एवं संघर्ष को चित्रित करना था। अपने शोध-कार्य के लिए दोनों ने राजस्थान जाकर राजमहलों में उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री का अध्ययन किया था। पूना में पेशवा-संबंधी सामग्री का अवलोकन किया था। डा० राव अब भी लेखनी उठाने में हिचकिचा रहे थे। नवीन परिवेश में विजयनगर को देखना और काफी सामग्री जुटाना आवश्यक था। भारतीय संस्कृति के इस महान संघर्षपूर्ण काल का प्रस्तुत करना उन्हें भी कठिन लगा था।

फरवरी के अंत तक डा० राव का स्वास्थ्य काफी गिर चुका था। गत बारह वर्ष से वे अपने ग्रंथ के लिए निरंतर परिश्रम करते रहे हैं एक दिन भी विश्राम नहीं लिया। उत्साह अपरिमित था लेकिन उत्साह के आघात को सहन की शक्ति शरीर में नहीं थी। सैंतालीस वर्ष की आयु में वे साठ के दिखाई देते थे। रात के भोजन के पश्चात टहलने निकलते तो पांच मिनट में थकावट महसूस करते। मोटी पोथी हाथ में लेकर आरामकुर्सी पर पीठ टेककर बैठे-बैठे पढ़ने लगते तो पढ़ते पढ़ते हाथ थक जाते। कभी कभी रत्ने को नोट लिखाते समय बोलने में भी थकावट प्रतीत होती। फिर भी सप्ताह में पांच घंटे बी० ए० और एम० ए० के विद्यार्थियों को पढ़ाना पड़ता था। खाने-पीने में भी उनकी रुचि नहीं रही।

रत्ने ने डाक्टर को बुलवाया। डाक्टर डा० राव को अस्पताल ले गया। जांच करने के पश्चात कहा— कोई बीमारी नहीं है। काम के बोझ के कारण ऐसा हुआ है। शरीर की तरह दिमाग को भी आराम की जरूरत है। मैं टानिक लिख देता हूं। दो महीने के लिए जलवायु बदलने बाहर जाइए। कोई हिल स्टेशन अच्छा रहेगा। रोज सुबह शाम इतना टहलिए कि पसीना आने लगे। समाचार पत्र भी न पढ़ें तो अच्छा है। मस्तिष्क को पूर्ण विश्रांति चाहिए। ऐसा न करेंगे तो हालत और बिगड़ जायगी। रत्ने ने डाक्टर की सलाह का अनुमोदन किया। काफी काम शेष रह जाने के कारण डा० राव इस राय को मानने के लिए तैयार नहीं थे। रत्ने की जिद पर उन्हें मानना पड़ा। डाक्टर की सलाह के अनुसार दोनों नंदी पहाड़ी के लिए रवाना हुए। वह मार्च का तीसरा सप्ताह था।

कानेज की छुट्टी पडने वाली थी । इस वप डॉ० राव परीक्षक नही थे । रसोइय रागप्पा को साथ चलने को कहा, लकिन उसकी अनिच्छा थी । पत्र द्वारा कन्नड भवन म एक विशाल कमरे का आरक्षण कर लिया था । आजकल राज मसूर म नही, परिवार के साथ बेंगलूर म था । जाते समय डॉ० राव रास्त म भाई के घर जाना चाहते थे, लेकिन रत्ने ने उसका विरोध किया । सीधे बेंगलूर म टक्सी कर नदी पहाडी पहुँचे ।

पहाडी की हवा डा० राव को ही नही रत्न को भी अनुकूल हुई । दोना रात म जल्दी सो जाते । सुबह पाच बजे उठत । हाथ मुह धोकर काफी पीते और टहलने निकल पडत । कभी-कभी पहाडी के सात-आठ चक्कर लगा लत । कभी वीरभद्र स्वामी देवालय होने हुए नदीग्राम की ओर कुछ दूर तक उतरने लगते । रास्त मे किसी मडप के पास विश्राम कर धीरे धीरे ऊपर चढत । चढत समय डा० राव थक जात । रत्ने उन्ह हाथ का सहारा दती । आठ बजे तक घर लौटते । स्नान करते । तब तक होटल से दूध-नाश्ता आ जाता । शाम को मोटर के रास्ते के एक मील तक नीचे उतर जात । किसी दोपहर को उद्यान म पडा की छाया म बठ जात । पहाडी पर आने वाले देशी विदेशी पयटका को और कुछ उन-जसे ही जलवायु परिवतन के लिए आये लोगा को देख कर समय बिताते । कभी-कभी दोपहर म डा० राव सो जाते तो रत्ने अकेली बँगले के बाहर पेडा की छाया म जा बठती । अब तक भी उसका मन सदा काम म लगा रहता था । उनके व्यस्त जीवन म पहली बार उसे व्यक्तिगत जीवन के सबध म सोचने का समय मिला था । पहाडी की चाटी पर बठकर नीचे देखन पर बहुत दूर-दूर तक फला प्रदेश दिखाई दता था । बीच-बीच म चाँदी की चादर-से बाँध, तालाब ऊँची-नीची पहाडियो की कतार दिखाई पडती थी । उसम रत्न को दिखाई पडता था भविष्य को समाय, नीरस एव स्वप्न । उस एव स्वप्न में वह कोई सौन्दय न देख सकी । मानव जीवन को दबाकर चल रही नीरवना आकाश से पथ्वी तक अपना गौरव जमाये रहती थी । ग्रीष्म की तपन आँखो को थका देती थी ।

एक दिन या हो बठी थी कि माता पिता की याद आ गई । माता की बडी इच्छा थी कि बेटी की शादी कर द । बेटी के बच्चा को खिलान

की बडी इच्छा थी उस। यह इच्छा पिता म भी कम न थी। अब तो दानों हा नहीं रह। पति डा० राव क अलावा उसका कोई नही रहा। सिहल मे रहा वाले भाइ और रत्न क बीच ता अब पत्र व्यवहार भी नहीं हाता। सिहल छाडकर उसका जीवन एम न्या म प्रारम्भ हुआ। उसका जीवन पति क साथ सदा विद्वत्ता खाज और बौद्धिक स्तर पर चलता रहा। अब इस ऊँचाइ स नीच उतरकर चलना कठिन था। डा० राव कइ बार उसस मजाक करत दिल खालकर बडी आत्मीयता स बात करत। वह भी उसी साचे म ढल गयी थी वसा ही चाहती भी थी। लकिन उस एक एस व्यक्ति की चाह थी जिसका सबध कवल अत करण स हा— और जिस सबध का काइ पहल न हा।

उसमे यह आकाक्षा अकुरित हा चुकी थी कि इस दाम्पत्य के फल स्वरूप वह एक बच्च की माँ बन जाय। यह आकाक्षा आज की नही काफी दिनो स थी। बच्चे की कल्पना करक वह कइ बार उसी विचार म खो जाती। लेकिन निरन्तर कार्यों म व्यस्त रहने के कारण कल्पना जगत म विचरण करन का मौका ही नहा मिला था। इस विचार स कि यह असभव कल्पना है वह गदन झटककर अपने काय म डूब जाता। उसके दाम्पत्य जीवन के दस वप इसी तरह बीत गय। यह बात नही कि उनम शारीरिक सबध नही था फिर भी उन दाना ने ऐसी सतकता बरती थी कि रत्न गभवती न हो जाय।

अब मानसिक विश्राम के इन दिना म रत्न के मन म मा बनने की आशा अदम्य रूप लेन लगी। राज शाम का घर लौटत ही उसे प्रतीत होता मानो बच्चा रा रहा है उस उठाकर स्तनपान करा रही है नीद मे भी बच्च का सीन स लगाय सोई है। वह मा कहकर पुकार रहा है! उसकी कल्पना अनक तरह स बच्चे के रूप सौन्य का चित्रित कर लेती। फिर यह विचार भी उठता कि अगर मै मा बनू ता क्या ग्रथ-निमाण म बाधा नहा पडगी? बच्चे की दखभाल के लिए एक आया रख लेंगे म टाइप करती रहूगी और आया बच्चे का लिय मेर पास बठी रहेगी बीच मे कागज बदलने म जा समय लगेगा तब बच्चे की ओर मुडकर उसकी मुस्कराहट का दखकर पुन काय म लग जाऊँगी दाप-हर म रागप्पा को ब्रेड काफी लान की जरूरत नही रहेगी! मैं स्वय घर

जाकर बच्चे को उठाकर, चूमकर डॉक्टर साहब के लिए ब्रेड-कॉफी लेकर लौटूंगी। रात को टहलने जाते समय उसे एक ओर कन्धे से लगा लूंगी, वहाँ बैठकर बात करने लग गये तो उसे गोद में सुला लूंगी। वह मेरा बच्चा किसकी तरह हो? उन्हीं की तरह गुनी हो, उन्हीं का-सा शान्त स्वभाव मिले, उन्हीं की तरह महान विद्वान् हो। हम दोनों भारत का सांस्कृतिक इतिहास लिख रहे हैं तो वह विश्व संस्कृति का इतिहास लिखे और संसार के इतिहासकारों में अद्वितीय बन जाये।

उसे अपनी उम्र की याद हो आती। वह सैंतीस वर्ष की थी। कम उम्र में ही विवाह हो जाता तो अब तक बीस वर्ष की बेटी या बेटे की माँ बन चुकती। बेटी होती तो उसका विवाह हो जाता और वह भी माँ बन जाती। बेटा होता तो किसी उच्च परीक्षा की तैयारी करता। अब भी समय है। माँ बनना ही चाहिए। उसे एक पुरानी बात याद हो आई—सुना है बड़ी उम्र में गर्भिणी होने पर पहले प्रसव में माँ को बड़ा कष्ट होता है और कभी-कभी माँ को जान से हाथ धोना पड़ता है। अब मैं सैंतीस वर्ष की हूँ। माँ बनने की उम्र की दूनी आयु। गर्भिणी बनकर प्रसव के समय मर जाऊँ तो? यह चित्र उसकी आँखों में छा गया—असह्य वेदना से वह छटपटा रही है पास ही नर्स बैठी सान्त्वना दे रही है। अन्तिम मौत से संघर्ष के अनुभव के पश्चात् प्रसव के लक्षण दिखाई देते हैं। मुट्ठी बन्द किये, आँखें मूँदे असह्य संकट के अनुभव के साथ बच्चा बाहर आता है। श्वास और नाड़ी की गति घटने लगती है। हृदय की धड़कनें रुक जाती हैं। वह मर जाती है। लेकिन बच्चा? कल्पना में ही उसने प्रार्थना की— भगवान, मैं मर जाऊँ तो कोई बात नहीं बच्चे को बचा दो। वह मेरा बच्चा है मेरे मातृत्व की निशानी है। 'बच्चा बच गया तो उसका पालन-पोषण कौन करेगा? इस प्रश्न के उठते ही उसकी कल्पना पंखहीन पक्षी की भांति धरती पर गिर पड़ती है। मौत और मातृत्व इन दोनों में से उसने दूसरे को पसन्द किया। मातृत्व विहीन जीवन मौत से भी कष्टदायक है। इस इच्छा की पूर्ति के सम्मुख समर्पण करना पड़ेगा। कहने में शर्म आती थी। वे तो मेरी इच्छा को तिरस्कृत नहीं करेंगे। मैं भी तो स्त्री हूँ। स्त्रीत्व की इस मूल प्रवृत्ति को वे अनसुनी नहीं करेंगे।

एक दिन रात का सात समय उसने पति म पूछा— ऐसी कौन-सी वस्तु है जिसे अपनी मत्यु के बाद छोड जाने स मनुष्य को तप्ति मिलती है ?

डा० राव किसी विचार की लहर म थे। उन्होंने पूछा— मन म यह प्रश्न कसे उठा ?

कारण जो भी हो उत्तर दीजिए।

अपने ऐतिहासिक ज्ञान का स्मरण करते हुए उन्होने कहा— भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की भिन्न भिन्न आकाक्षाएँ होती हैं। कोई विशाल साम्राज्य कायम करके मरना चाहता है तो कोई विशाल मन्दिर का निर्माण कराकर। ससार म भगवान बुद्ध-जसे नवीन सत्य का प्रचार करने वाले भी विरले मिल जाते है और मैं, मरी सन्तान तक ही सीमित रहनेवालो की सख्या भी बडी है।

इन बहुसख्यको को क्या आप तुच्छ समझते हैं ?

नहीं मैं उन्हे तुच्छ नही समझता। जानती हो क्यों ?'

रत्ने ने कोई उत्तर नहीं दिया लेटे-लेटे पति का हाथ अपने हाथ म लेते हुए पूछा— कहिए आपके दाम्पत्य की सतान कौन सी है ? हम दोनो के मरने के बाद कौन सी वस्तु बची रहेगी ?

ऐसा क्या पूछ रही हो ? —पत्नी के सकेत को न जान डा० राव ने कहा—'विश्व के इतिहास को विस्तत रूप मे जानने की इच्छा रखनेवाला कोई भी हमारे ग्रथो को निलक्ष्य नही कर सकता। समस्त भावी इतिहासकार हमारे ग्रथो को छोडकर आगे नहा बढ सकते। ये ग्रथ अब तक समस्त विद्वानो द्वारा मान्य हो चुके है। इससे बढकर इस जगत् के लिए क्या हम और कुछ छोड जाने की जरूरत है ?

रत्ने के ओठ न खुले। अब तक प्रकाशित खण्डो से प्राप्त यश विद्वानो से प्राप्त प्रशसापत्रो म वह परिचित थी। इस बात का उसे पूर्ण विश्वास था कि उनके मरने के कई दशको शताब्दियो तक भी उनके ग्रथ उन्हें अमर रखेंगे। उसे इस बात का भी गर्व हुआ कि एक समग्र सस्कृति को मानव की कल्पना म सन्निहित विषयो को प्रस्तुत करने वाले महान् ग्रथो से बढकर कौन सा सतान होगा। लेकिन लगभग एक सप्ताह से उसम अदम्य रूप से जाग्रत मातत्व की आकाक्षा के सम्मुख यह साधना फीकी प्रतीत हुई। लेकिन पति को कसे बताये ? कुछ सोचकर उसने

पूछा—' नींद आ गई ?"

'नहीं !'

पास में बेड स्विच रखकर पूछा— कहिए मैं क्या कहना चाहती हूँ ?"

'मैं क्या जानूं ?"

अपने मुख को पति के मुख के ऊपर ले जाकर रत्ने ने कहा—' मेरे चहरे को गौर से देखिए। कुछ मालूम पडा ?

डा० राव ने गौर से पत्नी का चेहरा देखा। लेकिन उनके पल्ले कुछ न पडा।

'अब कहिए तो ?

तुम मजाक कर रही हो ! मैं कुछ नहीं समझ सका।'

आप इतिहास की गति के रहस्य का प्रस्तुत कर सकते हैं महान् संस्कृति के अन्त सत्व का पता लगाकर अन्यों को समझा सकते हैं लेकिन पत्नी के मन की एक भावना का अंदाज नहीं लगा सकते ?" उसने स्विच दबाकर बत्ती बुझा दी। डा० राव भ्रमित हो गये। बोले— कहो, बात क्या है '

'कोई भी स्त्री इस मुंह खोलकर नहीं कह सकती।

डा० राव की समझ में कुछ नहीं आया। रत्ने ने इससे पहले कभी ऐसी पहेली नहीं बुझाई थी। उन्हें इस बारे में सोचने की कभी आवश्यकता नहीं पड़ी थी। रत्ने की आवाज में निहित श्रद्धा से उन्होंने इतना महसूस किया कि वह किसी प्रिय वस्तु के बारे में कहना चाहती है। अत मुख को अपने दोनों हाथ से पकडकर स्नेहपूर्वक कहा—' कहो न !"

उनके सीने पर अपना सिर रखकर, दो मिनट सोचकर अंत में कहा — एक बात है !'

कहो !

हम भी एक बच्चा हो तो ?"

डाक्टर राव समझ गये। अपना बायाँ हाथ उसकी पीठ पर फेरते हुए उसी बारे में सोचने लगे। रत्न ने पूछा— चुप क्यों हैं ?'

नहीं ! प्रेमपूर्वक उन्होंने कहा—'इतने दिनों तक अपनी इस इच्छा को व्यक्त क्यों नहीं किया ?

अब तक अपने काय म इतने लीन रहे कि मन की किसी भी इच्छा को व्यक्त करन का समय ही नहीं मिला। विश्राम की घडियां म ही तो निजी आकाक्षाएँ प्रकट होती हैं।

'तुम्हारी और काई आकाक्षा नहा है।

कदापि नहीं!

डा० राव न रत्न का प्यार स आलिंगन किया। वह उनकी भुजा पर मुख रखकर लेट गयी। उसका मन फूला न समाया पति मान ना गया था! उनक दाम्पत्य जीवन म इस तरह की आशा आकाक्षा पहली बार प्रकट की गयी थी। उस यह जानन का मौका ही नहा मिला था कि उसकी आशा आकाक्षाओ क प्रति पति की आसक्ति अनुमति है या नहा! उसका मन कल्पना क भविष्य की ओर उडान भरन लगा— उन दाना क बीच एक बच्चा सोया हस रहा है। डा० राव भी अपना चश्मा उतारकर उसके मुख क पास चुटकी बजाकर हँस रहे है। सुबह से पुस्तकालय म जो थकावट होगी वह भी बच्चे की हँसी म गायब हो जाती।

बच्चे की बात सुनकर डा० राव को पृथ्वी की याद हो आयी। बचपन म वह भी सुदर था। कभी कभी जब व आरामकुर्सी पर बैठकर पढ़ते वह अटपटी चाल स आता और उनक परो को खीचता। अपनी पढ़ाई म बाधा पहुचने के कारण व कभी असन्तुष्ट भी हो जात थ लेकिन बच्चे का सुन्दर मुखडा देखत ही क्षण भर मे क्रोध रफू चक्कर हो जाता। पुस्तक का बगल म रखकर बच्चे को उठा लेते। उसके साथ बिताने के लिए उनके पास अधिक समय नहीं था। व अपनी ग्रथ रचना म मग्न लीन रहते थ। वह पिता की अपेक्षा चाचा को अधिक चाहता था। अब चौदह वष का होगा। हाँ चौदह वष का है। आठ वष स उसे देखा ना नहीं। अब देखगा तो वह पहचान भी नहीं पायेगा। पहचान लेगा तो पास आयगा क्या? उन्ह नागलक्ष्मी की याद आ गयी। दूसरे घर म आन क बाद भी एक दो बार वहाँ गय थ। उन्होने बात करनी चाही लेकिन नागलक्ष्मी रुष्ट थी। फिर तो वहा जाने का अवकाश ही नहीं मिला। राज सबके साथ बेंगलूर रवाना होन के पूव केवल अपनी पत्नी के साथ पुस्तकालय मे आया था। डा० राव न दो दिन के लिए घर आने का आमत्रण दिया था। लेकिन राज के पास समय न था। सामान लारी स भेज दिया था।

रात की गाडी से जाना आवश्यक था। वे दोनों राव के साथ दस मिनट रहे। नागलक्ष्मी के बारे में न डॉ० राव ने पूछा और न रत्न ने कुछ बताया। वह अब कैसी होगी? एक बार जाकर अवश्य देख आना चाहिए। अब क्रोध उतर गया होगा। मैं बात करूँगा, तो वह भी मानेगी। बेटे को भी देखूंगा, डॉ० राव सोचने लगे।

'क्या सोच रहे हैं?' डा० राव की भुजा पर सिर रखकर लेटी हुई रत्न ने पूछा।

तुम क्या सोच रही हो?

'वही, बच्चे का स्वप्न।'

डॉ० राव प्यार से उसमें लिपट गये। अब उनका ध्यान रत्न की ओर गया। विवाह के इतने वर्षों में भी उसने अपनी कोई इच्छा व्यक्त नहीं की थी। विवाह के पूर्व ही उन दोनों ने परस्पर अपने उद्देश्य को स्पष्ट कह सुनाया था। जब साथ साथ रहने लगे तो इस बात की सतर्कता बरती थी कि रत्न गर्भवती न हो जाय। विवाहित जीवन के आठ वर्षों में उसने डॉ० राव के साथ ग्रंथ के लिए रात दिन परिश्रम किया था। पिता की मृत्यु के पश्चात् उसका कोई आत्मीय कहलाने वाला नहीं था। वह भी अपना तन-मन ग्रंथ निर्माण में लगा चुकी है। मातृत्व की जो भावना अब तक दबी पड़ी थी, अब अदम्य रूप में प्रकट हुई थी। यह स्वाभाविक ही था। डॉ० राव की भी इच्छा हुई कि दोनों के मेल से एक संतान हो। वे चाहते थे कि उनके मिलन के सबूत के रूप में अमर बन जानेवाले ग्रंथों के साथ ही साथ एक सजीव सबूत भी हो जो उन्हें माता पिता कहकर पुकारे। रत्न का मुख अपने सीने से लगाकर उन्होंने कहा— रत्न!

हाँ!"

तुम कितनी अच्छी हो!

वह कुछ न बोली। वह शब्दातीत अवर्णनीय आनंद में लीन थी।

दूसरे दिन दोनों कुछ देर से उठे। उनमें उल्लास भरा हुआ था। सुबह की काफी पीकर टहलते हुए गवि वीरभद्र स्वामी देवालय की ओर से वे नीचे उतरने लगे। अपूर्व आत्मीय बातें करते हुए हाथ पकड़े वे नीचे उतरे थे। प्रात की सूर्य किरणें अच्छी लग रही थीं। पहाड़ी आधी उतर चुकने के

बाद रत्न ने कहा— नीचे दो तीन गाव दिखाई दे रहे हैं इतने दिन हो गए लेकिन उन्हें कभी न्या ही नहा। चलिए आज दखकर ही लौटेंगे।'

वे दाना उतरकर तराई पर आ गये। सुल्तान पठ को दखन के पश्चात् नन्दीग्राम गये। इतने म दोना को भूख लगने लगी थी। वहाँ वे एक होटल मे गये। दो दो इडली खाकर काफी पी। तत्पश्चात भोगनन्दीश्वर मदिर देखकर पुन तराई पर आये। ग्यारह बज चुके थे। धीरे धीरे सीढियाँ चढने लगे। बायी ओर धूप पड रही थी। सौ गज चढते चढते डा० राव थक गये और बठकर थाडा विश्राम किया। फिर चलने लगे तो रत्ने ने उनका दाहिना हाथ थाम लिया। पहाड चढते समय कृपया हाथ थाम लें"— हँसकर कहते हुए डा० राव पुन चलने लगे। लेकिन आधी पहाडी चढते चढ्ते थक गये। पुन विश्राम किया और फिर चढने लगे। लेकिन सौ सीढियाँ चढते ही उन्हें चक्कर आने लगा। म गिर रहा हूँ सहारा दो —कहते हुए व बठ ही गये। बठते ही मीढी पर सिर रखकर शरीर शिथिल कर दिया। रत्ने भयभीत हो उठी उनके पास बठ गई। उनका सिर अपनी गाद मे रखकर आँचल से मुख गदन का पसीना पाछने लगी। कमीज के बटन खाले। चेहरे पर पड रही धूप को आचल से रोकने लगी। डा० राव बेहोश नहीं हुए थे। लेकिन छाती की धडकन बढकर असामान्य हो गयी थी। पाच मिनट बाद आँखें खोलकर उन्होंने कहा— घबराओ नहीं, केवल थोडी घबराहट हो गयी है।

धूप चढ रही थी। रत्ने न उन्हें वहा से उठाकर पास ही एक पेड की छाया मे बठाया। पीने के लिए वहाँ एक बूद पानी भी नहीं मिल रहा था। डा० राव ने दस मिनट रुककर चलेंगे' कहा तो भी वह नहीं मानी। आप यहीं बठे रहिए मैं नीचे जाकर गाँव स डाली ढानेवालो को ल आती हूँ। उनके मना करने पर भी चली गई। उस होटल म पहुची जहाँ नाश्ता किया था और अपनी टूटी फूटी कन्नड म बताया। अंग्रेजी जाननेवाले एक अध्यापक वहाँ काफी पी रहे थे। उनकी मदद से काम सरल हो गया। पन्द्रह मिनट म दो हृष्ट पुष्ट आदमी डाली लेकर पहुँच गये।

डा० राव और रत्ने अपने कमरे म पहुच ता साढे बारह बज गये थे। स्नान, भाजन के पश्चात डा० राव आराम करने लेट गये। रोज की तरह उन्हें आज नींद नहीं आई। थकावट के कारण बिस्तर पर पडे करवटें

चिन्तित रहे। थोड़ा सिर दर्द भी हो रहा था। शाम होते होते हल्का बुखार भी लगने लगा। घबराई हुई रत्ना उनका शरीर और माथा स्पर्श कर रही थी कि डॉ० राव ने कहा — घबराओ मत ! यह पहाड़ी सर्दी का असर है। मैं सैंतालीस वर्ष का हूँ।

वह सावन वाली रात थी। चपरासी को आवाज दी। डॉक्टर को बुलवाया। डॉक्टर आये और दवाइयाँ देकर चले गये। रात भर थोड़ा बुखार रहा। सुबह होने वाली थी तो आँख लग गयी। रत्ना भी देर तक जागती रही। उन्हें नींद आने के पश्चात वह भी बिस्तर पर सिर रखकर सो गयी। दूसरे दिन भी डॉ० राव के सिर में दर्द था। थकावट के कारण शरीर टूट सा रहा था। लेकिन बुखार नहीं था।

उस दिन डाक्टर की डाक में उन्हें एक पत्र मिला। मसूर में पुनर्निर्दिष्ट उस पत्र का रंग ही बता रहा था कि वह लंदन से आया है। रत्ना ने खोलकर पढ़ा। प्रकाशक का पत्र था। लिखा था— युद्ध को समाप्त हुए दो वर्ष बीतने पर भी हमारे लिए पत्र-व्यवहार पुनः प्रारम्भ करना संभव नहीं हुआ। इस कागज वांछित परिमाण में नहीं मिल रहा था। अब परिस्थिति सुधर गई है। कम्पनी का काम पूर्ववत चल रहा है। भगवान की कृपा से युद्धकाल में हमारे तहखाने को किसी तरह की हानि नहीं पहुँची। पन्द्रह दिनों में आपके तृतीय खण्ड का मुद्रण कार्य आरम्भ हो जायगा। नियमित रूप से प्रूफ आपके पास भेज देंगे। विश्वास है कि चतुर्थ खण्ड के कार्य में काफी प्रगति हुई होगी ! नमस्कार !"

खुश-खबरी थी। दोनों ने हँसते हँसाते भोजन किया। डॉ० राव को एक गोली देकर और पढ़ने के लिए कहकर रत्ना बँगले के बाहर पेड़ की छाँह में बैठ गयी। नीरवता से भरा वातावरण व्याप्त था। तालाब, छोटी-छोटी पहाड़ियों की कतार दूर से दृष्टिगोचर हो रही थी। मध्याह्न की कड़ी धूप में सारे आकाश में भी नीरवता थी। रत्ना का मन थोड़े समय के लिए अंतर्मुखी हो उठा। अपनी भावी योजना के बारे में सोचने लगी— तीन सप्ताह में लन्दन से प्रूफ आने लगेंगे। उन्हें जाँचने में सारा समय निकल जायगा। फिर पूरी विषय-सूची बनानी है। साथ ही चतुर्थ खण्ड के लिए तैयारी। एक साल में उसके लिए सामग्री संग्रह कर, लिखना प्रारम्भ करना चाहिए। शायद यही कि उनकी योजना थी। अब पाँच

खण्डो म समाप्त नहो हागा। यूरोपीय काले हाथ म लेन म पहले ही पाच खण्ड हो जायेंगे। इन सबसे मुक्ति पाने म कम-से-कम आठ वष लग जायेंगे।

रत्न पति के स्वास्थ्य के बारे म सोचने लगी। कल जब चक्कर खाकर बीच रास्त म लट गय थ ता वह बहुत घबरा गई थी। निरन्तर बौद्धिक काय म लग रहन वाला की शारीरिक स्थिति के बारे म वह जानती थी। उसकी शक्ति भी पहल से घट गई है। बचपन स हा हृष्ट पुष्ट शरीर के कारण वह उस भार का ढाने म समथ थी। लकिन उसके पति की शारीरिक शक्ति क्षीण हा रही है। क्या ज्ञानवानी परिश्रमपूण जिम्मेदारी निभाने की शक्ति उनके शरीर म है?

अचानक उसे कल की बात मा बनन की आकाक्षा स्मरण हो आयी। — ऐसी परिस्थिति म म गभवती हुई तो ग्रथ जिस गति स काय कर रहा है चल नहीं सकता। प्रसव के पश्चात पूण विश्राति चाहिए—चाहकर भी कोई काय कर नहीं सकगी। बच्चे के एक वष का होने तक उसका विशेष ख्याल रखना चाहिए। आत्मीयता से पालन पोषण करने वाली नौकरानी नहीं मिली ता मुश्किल हो जायगा। अगर नौकरानी मिल भी गई लकिन वह बच्चे की देखभाल नहीं कर सकी तो हम कसे चुप रह सकते ह? उसके अत करण की गहराई स एक आवाज निकली अगर तू मा बनी ता तेरा सहयोग न मिलने से इस ग्रथ के पूण होने म पहले ही व मर जायेंगे। इस आवाज की सकारण पुष्टि करने म वह असमथ थी। पति की मत्यु के विचार से उसका हृदय काप उठा। उसके चेहरे पर दु ख की छाया फल गया। माथा ठनका ताना भौंह तन गइ। अपनी इच्छा शक्ति का उसने स्मरण किया। जिस इच्छा शक्ति स वह अपनी मातभूमि माता पिता एव जाया का त्यागकर आया थी और भविष्य म आनवाली समस्त निन्दा-स्तुति की परवाह किये बिना उनके साथ रही थी उसी शक्ति न उसे अब भी रास्ता दिखाया। उसने निश्चय किया कि जिस उद्देश्य से मैंने उनसे शादी की है उसे पूण करने म पहले उन्हें मौत स बचाए रखना है। फिर भी उनकी शारीरिक स्थिति न उसे अधीर कर दिया था। उनके शरीर के मास पिंड भर नहीं थ। छोटे बच्चा का सा हल्का शरीर शिथिल पड़ता जा रही उनकी काया, और दिन प्रति दिन क्षीण होने वाली उनकी

दृष्टि ज्योति आंखों के सामने उभर आयी। हाल ही में उन्होंने पुनः चश्मा बदला था। उसने निश्चय किया कि वह माँ नहीं बनेगी। प्रेम की जो भी शक्ति होगी उसे इस ग्रंथ की रचना में लगा देना है। लेकिन निश्चय के लक्षण चेहरे पर दिखाई देते-देते आंखों में अश्रुबिंदु छा गये। वह उसी दुःख का अनुभव कर रही थी जो एक मां को अपनी कोख में जन्म बच्चे की हत्या स्वयं करते समय हो सकता है। घुटनों के बीच मुंह छिपा सिसक सिसककर रो उठी। गत दो दिनों से अपने व्यक्तित्व को एक नये सुन्दर परिवेश में देख रही थी। उसमें उसके शरीर के अंग-अंग विराम के नवीन रूप में परिपक्व हो, नई कांति पा रहे थे। शिष्टतापूर्ण बाहिर जीवन के नीरस पथ के साथ-साथ, एक जीवन नदी के बहने की कल्पना को आधार दो दिनों में ही साकार रूप धारण कर वास्तविक सत्य की अपेक्षा अधिक गहराई तक पहुँच गया था। अब उसे मिटाकर पुनः पुराने जीवन विधान को स्वीकार करने के लिए संकल्प शक्ति तो तैयार हुई लेकिन उससे उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई उसके अंतःकरण को झकझोर रहा है।

१७

आठ वर्ष की दीर्घ अवधि ने कात्यायनी के जीवन में काफी परिवर्तन कर दिया। पति से उसे पूरा पूरा प्रेम और विश्वास मिला। नागलक्ष्मी के साथ कभी मनमुटाव नहीं हुआ। इसके बावजूद वह पहले-सी नहीं है। नंजनगूडु से लौटने के पश्चात मन को व्यस्त रखने का प्रयत्न करने लगी। राज ने पुनः आनर्स के बाद एम० ए० करने की सलाह दी। वह एम० ए० करना चाहती थी लेकिन उसी कालेज में नहीं। अपने परिचित सह-पाठियों के साथ पढ़ना एवं अध्यापकों के समक्ष जाना उचित नहीं लगा। उनके सम्मुख जाने में उसे संकोच हो रहा था। फिर भी पढ़ने की लालसा बनी रही। अंत में दोनों ने मिलकर निर्णय किया कि राज उसे घर में ही

पायगा और फिर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से प्राइवेट परीक्षा दे देगी। पढ़ने लिखने में होशियार थी, अतः उसे ज्यादा कठिनाई नहीं हुई। दो वर्ष में एम० ए० की उपाधि भी प्राप्त कर ली।

दो वर्ष बाद राजा के साथ बनारस जा रही थी। उस समय वह चार माह की गर्भवती थी। पढ़ाई के कारण इस ओर उसका अधिक ध्यान नहीं गया। घर के बाहरी काम नौकरानी करती थी और रसोई का काम नागलक्ष्मी। कात्यायनी सदा अध्ययन में लगी रहती। अंतिम पर्चा देकर पति के साथ बनारस से बेंगलूर लौटने लगी तो मार्ग में बच्चे के बारे में सोचने लगी। राजा भी बच्चे के लिए उत्सुक था। वैसे ही बच्चे उसे बहुत भाते हैं। पृथ्वी तो अब आठ साल का होकर स्कूल जा रहा है। उससे खेलने में बच्चा का सा आनन्द नहीं मिलता। इसके अलावा उसे इस बात का भी आनन्द था कि उसका अपना बच्चा होने वाला है। वे घर पहुँचे। पत्नी का पेट चूमा और बच्चे के प्रति स्नेह व्यक्त करता हुआ पत्नी का मुख देखने लगा। पति का भाव समझ वह उससे लिपट गई मानो बच्चे से लिपट रही हो। अब कात्यायनी डाक्टर की सलाह के अनुसार और नागलक्ष्मी को आराम देने के ख्याल से घर का काम करने लगी। रोज शाम को दोनों लगभग दो मील का चक्कर काटते। राजा पत्नी के लिए पौष्टिक आहार और फल लाता।

गर्भ में पनपते हुए बच्चे से कात्यायनी को चीनी की याद आने लगी। अब वह सात वर्ष का है। दूसरी कक्षा में पढ़ रहा होगा। दादा पास बिठाकर सिखाते होंगे। अब तक संस्कृत का अध्ययन हो चुका होगा। कई श्लोक भजन कण्ठस्थ हो चुके होंगे। उसे एक बार देखना चाहिए। लेकिन कैसे? दीर्घ निःश्वास लेते हुए कल्पना को दूसरी ओर मोड़ा। मन भावी संतान की ओर गया। मन में कुतूहल जागा कि लड़का होगा या लड़की। उसका मन कहता कि लड़का तो है ही लड़की हो तो अच्छा रहेगा। लेकिन उसकी प्रज्ञा जागकर कहती प्रथम लड़का तो उस घर के सुपुर्द कर दिया है इस घर और मेरे लिए एक बालक चाहिए।

एक दिन यही बात छिड़ी तो उसने पति से पूछा—'आप लड़का चाहते हैं या लड़की?

मैं जो चाहूँ वह देना तेरे हाथ में थोड़े ही है?'

कात्यायनी के गर्भ को जब छह महीने हो गये। वस ही वह सुदर है। पल रहे जीव की चेतना न उसके सौन्य पर नयी काति बिखेर दी है। राज पत्नी के सामने बैठ गया। उसे वह दिन याद आया जब हुणसूर माग के झरने के पास बैठा था। स्वप्न म सुन्दर मुखाकृति एव रूपवती युवती थी। चारो ओर चैतन्यपूर्ण हरियाली ही हरियाली थी। पड सुशोभित थे। कल-कल करता झरना बह रहा था। एसी पष्ठभूमि म उसने उस युवती को अपलक देखा था। उसका स्वस्थ शरीर काति स चमक रहा था। चलन पर चरण एस लाल-लाल हो जाते हैं मानो लहू फूट रहा हो। हाथो की अँगुलियाँ इतनी सुन्दर कि कोई मँजा हुआ चित्रकार ही चित्रित कर सकता है। आभूषणो से कोमल शरीर दब न जाय, अत निराभरण। पीठ पर मखिल सुन्दर काली केश राशि। मुखमुद्रा गभीर। सुकोमल अगो म प्रस्फुटित रमणी रूप। अब भी राज उस एकटक देख रहा है। वसी ही काति, वसा ही पूर्ण यौवन। रूप बिखेरते हुए वही अग और वे ही सुदर चरण। इन सबम एक अपूर्व चमक थी। उसम व नये लक्षण दिखाई दे रहे थे जो पत्नी स लेकर सुदर वक्ष म दृष्टिगोचर होते हैं।

इस तरह अपलक क्या देख रहे हैं?

राज ने उसके मुख को अपने हाथो म थामकर कहा—प्रकृति का नया रूप पागल बनाये दे रहा है।

'पुरुष के सामीप्य का परिणाम है प्रकृति के स्वानुभव के आनन्द का फल है'—कहकर वह हँस पडी। जबकि उसे स्मरण था कि जो प्रकृति चिरनूतन चिरचेतन है उस पर धर्म की पाबन्दी लगाना अधर्म है, किन्तु उसने यह नहीं कहा। उसकी दृष्टि अपने शरीर की ओर मुड गई। वह अपने सौन्य म इतनी खो गयी कि सम्मुख बैठे पति को भी भूल गई।

कात्यायनी स्वस्थ थी। छठा महीना चल रहा था। एक दिन दोपहर

म राज कालेज गया हुआ था। ग्रीष्म की छुट्टी से पहले कालेज अभी खुला था। उधर साग की वर्षा की बूँदें गिर रही थी। उस समय म कात्यायनी का मन अव्यक्त आनन्द आतुरता का अनुभव कर रहा था। पूरे वेग से बच्ची चलने लगी तो उसने विचार कर अपनी भावनाओं का निग्रह इस बार राज से कर्म आकर बताया और अपना मन निश्चिन्तता के वातावरण में बाँध लिया। नौकरों को भी साथ लाया। अचानक उसके पेट में दर्द उठा। आधे पेट में दर्द असहनीय हो उठा। वह घबरा गई। मातृत्व पहले माता के जन्म के समय भी ऐसा ही हुआ था। इधर नागलक्ष्मी रामनाम लिखने में व्यस्त था। उसे बताया तो वह भयभीत हो गई। उसने कात्यायनी के पेट पर हाथ रखकर देखा। कुछ जान न सकी। पड़ोसिन को बुलाया। उसने तुरन्त अस्पताल पहुँचाने की सलाह दी। राज को खबर भेजी। वह घर की ओर दौड़ा। तुरन्त टैक्सी में नागलक्ष्मी को भी साथ ले चतुर्वासा अस्पताल पहुँचे। जाँच करने के पश्चात बड़ा डाक्टर ने आकर राज से कहा— घबराइए नहीं, गर्भपात होने के लक्षण हैं। इसमें जो भी बन पड़ेगा हम करेंगे। राज बाहर बैठ गया और नागलक्ष्मी अन्दर कात्यायनी के पास थी।

गर्भवती की पीड़ा को देखकर नागलक्ष्मी भी दुखी हो उठी थी। शरीर फैलाये धूप में पड़े मेंढक की तरह छटपटाती कात्यायनी की भुजा को नागलक्ष्मी बायें हाथ से पकड़कर दाहिने हाथ से उसकी पीठ सहलाने लगी। कभी-कभी कमर के पिछले भाग को जोर से रगड़ती। पीरी के प्रसव में इतना कष्ट नहीं हुआ था। थोड़ी देर में रक्तस्राव होने लगा। दो नर्सें उसे लेबर वार्ड में ले गयीं। नागलक्ष्मी बाहर रही। एक घण्टे में गर्भपात होकर सारा खेल समाप्त हो गया। बेहोश कात्यायनी को लेडी डाक्टर ने दो इन्जेक्शन दिये। वह होश में आई। स्ट्रेचर पर लिटाकर लाये और बिस्तर पर सुला दिया। बाहर आकर नागलक्ष्मी ने राज को सारी बात बताई। डाक्टर की अनुमति ले राज अंदर गया। कात्यायनी का शरीर अर्द्ध चेतनावस्था में बिस्तर पर पड़ा था। मुख-कान्ति गायब हो गई थी। रक्तस्राव होने से मुख पीला पड़ गया था। अँगुलियाँ शिथिल थीं। उन्हें आनन्द का फल नहीं मिला। फलों से लदे वृक्ष को रोग लगने पर सारे फल गिर जाते हैं केवल डालियाँ ही डालियाँ दीखती हैं ऐसी ही हालत

थी आन कात्यायनी की। राज को सान्त्वना देते हुए नागलक्ष्मी ने कहा—'डाक्टर का कहना है कि जान को कोई खतरा नहीं है। इसी में संतोष कर लेना चाहिए। श्रीरामचन्द्रजी ने जान बचाई है। तुम घर जाकर थर्मापलास्क दो गिलास शक्कर चम्मच, एक टावल ले आओ और मेरे लिए एक चादर और दुपट्टा। इसे घर भेजकर तब मैं यहीं सोऊँगी। तीन-चार दिन यहीं रहूँगी। अपने और पृथ्वी के लिए खाना होटल से मँगा लेना।'

चार दिन में कात्यायनी धीमी आवाज में बोलने लगी। लेकिन डॉक्टर ने कहा कि पूर्ण स्वस्थ होने में अब भी पन्द्रह दिन लग जायेंगे। उस दिन से नागलक्ष्मी सुबह घर जाती, और रसोई बनाकर व खाना खाकर ग्यारह बजे तक वापस आ जाती।

इस दुर्घटना के आठ दिन बाद, राज ने इसकी खबर डा० राव को दी। 'इतने दिनों तक क्यों नहीं बताया?' नाराज-से होकर उन्होंने पूछा और तुरन्त गाड़ी से अस्पताल की ओर निकल पड़े। राज गाड़ी के पीछे-पीछे साइकिल से आ रहा था। रोगी की खाट के पास दस मिनट खड़े रहे। फिर स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ कर सान्त्वना देने लगे, 'जीवन में ऐसा होता ही है दुखी मत होओ। मन पर इसका प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए' कहकर बाहर आये। रत्ने लगभग एक घण्टे तक कात्यायनी के पास ही स्टूल पर बैठी बातें करती रही। अस्पताल के बाहर एक पेड़ के नीचे बैठकर डा० राव भाई को सान्त्वना देते रहे। रत्ने बाहर आई। गाड़ी में बैठने-बैठते डा० राव ने राज से कहा—'हमारे साथ चलो। वहाँ से घर चले जाना।' वे सरस्वतीपुर स्थित अपने घर पहुँचे। दो मिनिट में भीतर से बाहर आकर राज के हाथ में एक चेक रखते हुए कहा—'बहुत दुबली हो गई है। अच्छी तरह देखभाल करना।''

राज ने चेक देखा। एक हजार रुपये का था। पूछा— इतने रुपये क्या?

'प्रसूति की अपेक्षा इसमें अधिक सतर्कता की आवश्यकता होती है। काफी टॉनिक आदि लेना चाहिए। प्रकाशकों से मुझे रुपये मिलते रहते हैं। मोचन की जरूरत नहीं' कहकर डॉ० राव ने विदा किया।

कात्यायनी का पुन गर्भ ठहर गया। इस बार भी तीसरे माह गर्भपात हो गया। इस दूसरे आघात से दम्पति के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। किन्तु एक साल में कात्यायनी का स्वास्थ्य सुधर गया। उसका शारीरिक सौष्ठव पहले जैसा न था। लेकिन आकार सौम्य आदि पूर्ववत थे लेकिन शारीरिक शक्ति घट गई थी। इस बीच राज को असिस्टेंट प्रोग्रामर बना कर बंगलूर ट्रांसफर कर दिया। पदोन्नति से खुशी हुई। साथ ही इस बात का दुःख भी हुआ कि मसूर के नाटक संघ को छोड़कर जाना पड़ रहा है, क्योंकि यह उसी के द्वारा संस्थापित था। कात्यायनी नये स्थान पर जाने के लिए उत्सुक थी। निरासक्त भाव से नागलक्ष्मी ने परिवर्तन को स्वीकार कर लिया। उसकी दृष्टि में दोनों स्थानों में कोई अंतर नहीं था। जहाँ भी जायें यथाशक्ति घरेलू काम करना और शेष समय में राम-नाम लिखने के अलावा उसे और कोई काम था ही नहीं। लगभग दो वर्ष से वह रामनाम लिख रही है और इससे उसके मन को एक तरह की सान्त्वना मिल रही है। पति के प्रति जो क्रोध था वह अब उतर चुका है। अब अगर वे आकर बात करना चाहे तो वह भी इसके लिए तैयार है। घर में अब भी उसके प्रति राज की श्रद्धा व विश्वास कायम है। कात्यायनी भी उसे ही घर की मालकिन समझकर चलती है। उसके बेटे पृथ्वी को राज और कात्यायनी दोनों प्यार करते हैं और उसके अध्ययन की ओर ध्यान देते हैं। अब कुछ समय से नागलक्ष्मी के मन में एक नया विचार उठा है। उसने कई बार सोचा कि कुछ भी हो यह मेरा घर नहीं है। जहाँ भी वे रहेंगे वही मेरा घर है—भले ही वे रखैल के साथ रहें। जो खाना यहाँ पकाती हूँ वही वहाँ उन दोनों के लिए पकाया करूँगी। लेकिन किसी से जिक्र नहीं किया। बेंगलूर जाने के दिन निकट आ गये और वह सोचती रह गई कि वे देखने के लिए अवश्य आयेंगे। चारों रात की रेल से मसूर से रवाना हुए। बेंगलूर आने के पश्चात् भी रामनाम चलता रहा। गत चार वर्ष में वह बीस लाख नाम लिख चुकी है। पचास नोटबुकें भर गई हैं। राज अब भी नोटबुक निब स्याही पउन्टर लाकर देता है। हर नोटबुक के अंतिम पन्ने पर लिखती—

सर्वकल्याणदातारं सर्वापदघनमारलम।
अपारकरुणामूर्ति, आंजनेय नमाम्यहं ॥

आपन्नामपहर्तारं, दातारं सर्वसम्पदां ।
लोकाभिरामं श्रीरामं, भूयो भूयो नमाम्यहं ॥

फिर हल्दी कुंकुम से पूजा कर, हल्दी लगे धागे से उसे बांधकर भगवान के फोटो के पास उसी जगह रखती जाती कि अन्य कोई छू न सके। "पचास पुस्तकें समाप्त हो गई हैं तो कुल कितने नाम हुए ?" वह कात्यायनी से पूछती ।

"बीस लाख !"

'एक करोड़ लिखने में अब और कितने दिन लगेंगे ?'

'चार वर्ष में बीस लाख लिखे गये। इसी तरह लिखती रही तो सोलह वर्ष में एक करोड़ हो जायेंगे।"

'कुछ भी हो एक करोड़ राम-नाम लिखकर ही मुझे मरना चाहिए। हे भगवान ! श्रीराम ! मुझे सोलह वर्ष की आयु और दो' कहकर उसने उस दिन भगवान से प्रार्थना की ।

एक दिन कात्यायनी ने पूछा—'इसी तरह बेकार लिखती रहीं तो क्या मिलेगा ?'

"श्रीराम अगले जन्म में तो अच्छा करेंगे !"

कात्यायनी रामकथा के बारे में सोचने लगी। उसको राम की वीरता, त्याग आदि गुण रुचते थे किन्तु अंत में उन्होंने लोकापवाद के डर से अपनी प्रिय पत्नी को त्यागने का जो कार्य किया, वह नहीं भाया। उसने नागलक्ष्मी से कहा—'आप कुछ भी कहें, सीता जैसी पत्नी का लोकापवाद के डर से वन भेजकर राम ने महान् कार्य नहीं किया।

'छि छि, ऐसा नहीं कहते। जाने दो। श्री रामचन्द्र के कार्य को गलत कहने वाले हम कौन होते हैं ? वे आखिर भगवान् हैं। वे क्या, यह सब नहीं जानते ?

दिन भर नागलक्ष्मी को पति की याद आती रही। सीतादेवी की तरह वह भी परित्यक्ता है लेकिन उसका पति एक और महिला से विवाह कर दूर हो गया है। श्रीराम ने ऐसा नहीं किया था। इससे राम के प्रति नागलक्ष्मी की भक्ति और बढ़ गई।

पृथ्वी अब बारह वर्ष का लड़का है। वह मल्लेश्वरं स्थित हाईस्कूल में जा रहा है। पढ़ाई में होशियार था। कई बार यह सोचकर नागलक्ष्मी अपने-

कात्यायनी को पुन गर्भ ठहर गया। इस बार भी तीसरे माह गर्भपात हो गया। इस दूसरे आघात स दम्पति के मन पर गहरा प्रभाव पडा। किन्तु एक साल म कात्यायनी का स्वास्थ्य सुधर गया। उसका शारीरिक सौष्ठव पहल जसा न था। लेकिन आकार सौन्य आदि पूववत थ लेकिन शारीरिक शक्ति घट गई थी। इस बीच राज का असिस्टेंट प्रोफसर बना कर बेंगलूर ट्रासफर कर दिया। पदोन्नति स खुशी हुई। साथ ही इस बात का दुख भी हुआ कि मसूर क नाटक सघ को छोडकर जाना पड रहा है क्योंकि यह उसी क द्वारा सस्थापित था। कात्यायनी नये स्थान पर जाने के लिए उत्सुक थी। निरासक्त भाव स नागलक्ष्मी न परिवतन को स्वीकार कर लिया। उसकी दृष्टि म दोनो स्थानो म कोई अतर नहीं था। जहाँ भी जायें यथाशक्ति घरेलू काय करना और शेष समय म रामनाम लिखन के अलावा उसे और कोई काम था ही नहीं। लगभग दो वष से वह रामनाम लिख रही है और इससे उसके मन को एक तरह की सात्वना मिल रही है। पति के प्रति जो क्रोध था, वह अब उतर चुका है। अब अगर व आकर बात करना चाह तो वह भी इसक लिए तयार है। घर म अब भी उसके प्रति राज की श्रद्धा व विश्वास कायम है। कात्यायनी भी उसे ही घर की मालकिन समझकर चलती है। उसके बेटे पृथ्वी का राज और कात्यायनी दोनो प्यार करते हैं और उसके अध्ययन की ओर ध्यान देते हैं। अब कुछ समय से नागलक्ष्मी क मन म एक नया विचार उठा है। उसने कई बार सोचा कि कुछ भी हो यह मेरा घर नहीं है। जहाँ भी व रहेंगे वही मेरा घर है—भले ही व रखल के साथ रह। जो खाना यहाँ पकाती हूँ वही वहाँ उन दोनो के लिए पकाया करूँगी। लेकिन किसी स जिक्र नहीं किया। बेंगलूर जान क दिन निकट आ गये और वह सोचती रह गई कि व देखन क लिए अवश्य आयेंगे। चारो, रात को रेल स मसूर से रवाना हुए। बेंगलूर आन के पश्चात् भी 'रामनाम चलता रहा। गत चार वष म वह बीस लाख नाम लिख चुकी है। पचास नोटबुकें भर गई हैं। राज अब भी नोटबुक निब स्याही पउडर लाकर देता है। हर नोटबुक के अतिम पन्ने पर लिखती—

सवकल्याणदातार सर्वपद्घनमारुतम।
अपारकरुणामूर्ति आजनेय नमाम्यह॥

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदा ।

लोकाभिराम श्रीराम, भूयो भूयो नमाम्यहं ॥

फिर हल्दी कुंकुम से पूजा कर हल्दी लगे धागे से उसे बाँधकर भगवान के फोटो के पास ऐसी जगह रखनी जानी कि अन्य कोई छू न सके।
पचास पुस्तकें समाप्त हो गई हैं तो कुल कितने नाम हुए ?" वह कात्यायनी से पूछती ।

'बीस लाख !'

'एक करोड लिखने में अब और कितने दिन लगेंगे ?"

'चार वर्ष में बीस लाख लिखे गये। इसी तरह लिखती रही तो सोलह वर्ष में एक करोड हो जायेंगे।'

कुछ भी हो, एक करोड राम-नाम लिखकर ही मुझे मरना चाहिए। हे भगवान ! श्रीराम ! मुझे सोलह वर्ष की आयु और दो' कहकर उसने उस दिन भगवान् से प्रार्थना की ।

एक दिन कात्यायनी ने पूछा— इसी तरह बेकार लिखती रही तो क्या मिलेगा ?'

'श्रीराम अगले जन्म मे तो अच्छा करेंगे !'

कात्यायनी रामकथा के बारे में सोचने लगी। उसको राम की वीरता, त्याग आदि गुण रुचते थे, किन्तु अंत में उन्होंने लोकापवाद के डर से अपनी प्रिय पत्नी को त्यागने का जो कार्य किया वह नहीं भाया। उसने नागलक्ष्मी से कहा—"आप कुछ भी कहें सीता जैसी पत्नी को लोकापवाद के डर से वन भेजकर राम ने महान कार्य नहीं किया।

'छि छि ऐसा नहीं कहते। जाने दो। श्री रामचन्द्र के कार्य को गलत कहने वाले हम कौन होते हैं? वे आखिर भगवान हैं। वे क्या यह सब नहीं जानते ?'

दिन भर नागलक्ष्मी को पति की याद आती रही। सीतादेवी की तरह वह भी परित्यक्ता है लेकिन उसका पति एक और महिला से विवाह कर दूर हो गया है। श्रीराम ने ऐसा नहीं किया था। इससे राम के प्रति नागलक्ष्मी की भक्ति और बढ़ गई।

पथ्वी अब बारह वर्ष का लडका है। वह मल्लेश्वर स्थित हाईस्कूल में जा रहा है। पढ़ाई में होशियार था। कई बार यह सोचकर नागलक्ष्मी अपने-

आप पर चिढ़ जाती कि 'कम-से-कम बेटे को देखने की इच्छा तो उनमें होनी चाहिए !'

राज के बेंगलूर आने के पश्चात् उसी कालेज में एक अंग्रेजी अध्यापक का स्थान खाली हुआ। बेकार घर में बैठने के बजाय तुम नौकरी करोगी ? राज ने कात्यायनी से पूछा। पहले वह झिझकी। लेकिन उसी कालेज में पति के असिस्टेंट प्रोफेसर होने के कारण उसने स्वीकार कर लिया। राज ने प्रयत्न शुरू किया। बड़े भाई को पत्र लिखा कि हो सके तो कात्यायनी को उस स्थान पर नियुक्त कराने का प्रयास करें। अब डा० राव प्रोफेसर बन गये थे। विश्वविद्यालय के उच्च अधिकारी उनकी बातों को महत्त्व देने लगे थे। कात्यायनी की नियुक्ति हो गई। नया जीवन पाकर उसने अतीत की कई घटनाओं को भुला देने का प्रयत्न किया। वह रोज पति के साथ कालेज जाती। शाम को उनके साथ लौटती। बेंगलूर में भी राज ने एक नाटक संस्था प्रारम्भ की। यहाँ भी संस्था प्रसिद्ध हुई और कालेज में राज प्रसिद्ध हो गया। घर के कामकाज की सारी जिम्मेदारी नागलक्ष्मी पर पड़ने लगी। एक दिन कात्यायनी ने कहा — दीदी, अब हम दोनों कमाते हैं आपको बहुत काम करना पड़ता है। एक रसोइया रख लें। लेकिन नागलक्ष्मी नहीं मानी। तुम्हारी शादी से पहले क्या मैं अकेली नहीं पकाती थी ? यह कौन सा कठिन काम है ? रसोइये का बनाया खाना मैं न खा सकूँगी उसने कहा।

कात्यायनी को कालेज में पढ़ाते चार वर्ष बीत गये। लेक्चरर बनने की तो उसे आदत-सी हो गई। कालेज में समय आसानी से गुजर जाता था। घर में रहते समय दूसरे दिन पढ़ाने के लिए तैयारी करना नागलक्ष्मी की थोड़ी मदद करना पद्मी के अध्ययन के प्रति ध्यान देना आदि में समय कट जाता था। शाम को पति के साथ तरकारी फल फूल खरीदने बाजार हो आती।

लेकिन धीरे धीरे उसे जीवन नीरस लगने लगा। न जाने क्यों वह अपने को अकेली महसूस करती। बार बार उसे चीनी की याद आती और उसे देखने की इच्छा होती। उसमें यह जानने का कुतूहल होता कि क्या उसे मेरी याद आती होगी ? क्या कभी माँ को देखने की इच्छा व्यक्त की होगी ? वह सोचती अब वह तेरह वर्ष का है। काफी ऊँचा हो गया

होगा ! आठवें साल मे ही यज्ञोपवीत सस्कार कर दिया गया था । अब तक वेदोपनिषद् का अधिकाश भाग उसे कठस्थ हो गया होगा ! सस्कृत का अध्ययन भी ठीक तरह से चलता होगा ! मैं भी पढती तो अब तक गीता उपनिषदो को कठस्थ कर सकती थी । लेकिन उस ओर आकर्षण नहीं था। चीनी की बुद्धि परिपक्व होने के पूर्व ही उसके दादा ने उसे पढाया है। शायद वह हाइस्कूल म जाने लगा होगा ! रोज कम से-कम एक बार उस चीनी की याद आती। अपने अकेलेपन का पुत्र के कल्पित चित्र के साथ लीन हो कुछ समय के लिए अपने-आपको भुला बठती।

पुन उसमे मा बनने के चिह्न दिखाई पड़ने लगे। राज खुश हो उठा। विवाहित जीवन के दो साल बाद वह पिता बनने वाला था, किन्तु आशा निराशा में बदल गई थी। दूसरी बार भी असफलता। अब पत्नी पुन माँ बनने वाली है। आनन्द विभोर हो पत्नी का हाथ पकड़कर बोला—'चलो लेडी डॉक्टर के पास चल। इस बार हर सप्ताह जाँच करानी चाहिए और काफी सतर्कता बरतनी चाहिए।'

लेडी डॉक्टर ने वात्यायनी की जाँच की कल्शियम लेने की सलाह दी। कुछ गोलियो और टानिक के नाम लिख दिये। अधिक से-अधिक दूध फल लेने की सलाह दी। साथ ही महीने म एक बार रक्त परीक्षा और मूत्र-परीक्षा तथा सप्ताह म एक बार जाच के लिए आने को कहा। वात्यायनी इन सलाहो के अनुसार चलने लगी। चार माह का गर्भ हो गया था। शारीरिक निर्बलता एव आलस्य छोड दें तो वह स्वस्थ थी। अगले दो महीनो म उसका शरीर और चमक उठा। लाल लाल आमो से लद आम्र वृक्ष की तरह लक्षण थे। आश्विन की लहलहाती फसल कार्तिक म जिस तरह फलो से लदकर भारी हो जाता है उसी तरह वात्यायनी भारी कदमो से चलती थी। चलती तो तलवो से रक्त फूट पडने का अदेशा होता ! जीव विकास का चैतन्य उभर आया था। राज ने एक बार गौर से देखा तो याद आया कि पहली बार भी वह ऐसी ही थी। उस आईने के सामने खडा करके पूछा—'देखा ?

वात्यायनी ने अपने-आपको देखा। उमडे आनन्द म एक भय था। वह अपने उस विकसित हो रहे रूप को निरासक्त भाव से स्वय देख न सकी। अत पति से पूछा—'मुझे देखने पर आपको कैसा लगता है ?'

लगता है पुरुष के सामीप्य के फलस्वरूप प्रकृति अपनी सीमा के निकट पहुँच रही है।'

'छि ऐसा मत कहिए' पति के मुह पर हाथ रखकर उसने कहा—"पिछली बार जो कुछ भी हुआ, उसके पश्चात् इस प्रकृति-पुरुष की कल्पना भी मुझे डरा देती है। ऐसा कहते समय उसकी आवाज काँप रही थी आँखो म कातरता दिखाई पडती थी।

इस बार बच्चा कसा रहेगा—इस प्रश्न का उत्तर अधिक कुतूहल नहा था। दोना यही प्राथना करते कि सकुशल प्रसव हो और बच्चा-जच्चा घर लौटें। कात्यायनी न मेटरनिटी लीव क लिए अर्जी दी थी। एक दिन नागलक्ष्मी न कहा— लोगो की दष्टि एक-सी नहीं होती। आज स बाहर जाते समय पुरानी साडी ही पहनना। अच्छी साडी पहनोगी तो नजर लग जायेगी। कात्यायनी न एसा ही किया। इसम राज का भी विश्वास था।

अभी छह महीने हुए थे। एक दिन राज कक्षा म पढा रहा था कि कालेज क चपरासी ने उसे एक चिटठी दी। वह कात्यायनी की थी। स्टाफ रूम म बठी हूँ। पेट म बडा दद है। भय लग रहा है। तुरत आइए।' राज वसे ही कक्षा छोडकर आया। पत्नी का चेहरा देखकर वह भयभीत हो उठा। उसने एक विद्यार्थी को बुलाया। उसकी कार म कात्यायनी को बठा-कर सीधा वाणी विलास अस्पताल पहुचा। पहुँचने स पहले ही कात्या-यनी ददनाक पीडा का अनुभव कर रही थी। लगता था थोडा-थोडा रक्त-स्राव भी हो रहा है। डाक्टर के जाँच करन क पूर्व ही राज और कात्यायनी समझ गये थे कि इस बार भी गभपात होगा। वह वाड म भरती कर ली गयी। राज वही रहा। कार वाला विद्यार्थी घर जाकर नागलक्ष्मी को बुला लाया। नागलक्ष्मी के आने के पहले ही कात्यायनी को लेबर-वाड म ले गये थ। भाभी को देखते ही राज की आँखें भर आया। पहले स ही वह भावुक है। बच्चे उसे प्रिय हैं। दो बार उसकी आशा धूल म मिल चुकी है। तीसरी बार भी वही होने जा रहा है। राज ने स्वय म पूछा—हे भगवान यह किस कम का फल है?

दो घंटे पश्चात् कात्यायनी को स्ट्रेचर पर उठाकर लाये और पलग पर लिटा दिया। नर्स ने कल सुबह तक किसी को भी उसके पास जाने की

मनाही कर दी। एक दिन बाद कात्यायनी को पूर्ण होश आया। सारी वातो की कल्पना करने म उसे पूरा आधा घटा लगा। इस घटना से उसकी आँखें भर आयी। अशक्त होते हुए भी, वह सिसक सिसककर रो पडी। पास ही बैठी हुई नागलक्ष्मी ने दोनो हाथो स उसका सिर थाम लिया। उसके रोने की आवाज सुनकर नर्स पास आकर कहने लगी—'ऐसे रोओगी तो स्थिति और गभीर हो जायगी। कात्यायनी को चेतावनी देकर नागलक्ष्मी की ओर मुखातिब होकर फिर बोली—'आप पास रहेंगी तो व सारी बातें याद कर करके रोती रहेंगी। आप बाहर जाइए। नागलक्ष्मी को विवश हो बाहर जाना पडा।

उस दिन शाम को राज अस्पताल की बडी लेडी डाक्टर से मिला। डाक्टर ने स्वय उसे पहचानकर कहा—"नमस्कार ! मेरी बेटी आप दोनो की छात्रा है।

क्या नाम है उसका ?

मिस सुधा राव। गत वर्ष आपने ही उससे ओफिलिया का पाट कराया था। आपकी पत्नी उसे बहुत प्रिय हैं। मुझे बडा खेद है कि उनके साथ एसा हुआ।'

रोगी के बारे म बताते हुए व बोली—"यह तीसरी बार ऐसा हो रहा है। उन्हे एक महीना अस्पताल मे ही रहने दीजिए। उसके बाद कम से-कम छह महीने घर म रखना होगा। उन्हें लम्बी छुट्टी लेनी पडेगी। हम सर्टिफिकेट दे देंगे।"

जान को तो कोई खतरा नहीं है न ? राज ने भय मिश्रित आवाज मे पूछा।

इस बार आप तुरन्त ले आये इसलिए प्राण बच गये। भविष्य मे पुन गर्भ ठहरा, तो ऐसी ही स्थिति की सभावना अधिक है। यही दुहराया गया तो अगली बार बचने की सभावना रुपये मे एक आना भी नहीं होगा। राज हताश हुआ। लेडी डाक्टर कहती गई— एक साल तक पत्नि से सम्पर्क नहीं रखना चाहिए। और इस बात का भी ध्यान रहे कि कभी गर्भवती न होना ही उचित होगा। आपका शल्य चिकित्सा करा देना सर्वोत्तम रहेगा। आपके कुल कितने बच्चे है ?'

'एक भी नहीं।

खिन हाकर डाक्टर ने कहा—'अव आप लोगो को ही निश्चय करना होगा । हम नही कह सकते कि क्या करना चाहिए। हमन अपनी सूझ के अनुसार सलाह दी है ।

भारी मन स राज घर लौटा। वह जानता था कि विश्वविद्यालय कात्यायनी को छह महीन की छुट्टी नही दगा। फिर भी अस्पताल से प्रमाणपत्र लकर पत्नी की आर से स्वय अर्जी लिखकर मैसूर क लिए निकल पडा। नागलक्ष्मी ने इतना ही कहा — काम पूरा करक लाटना। एक दिन दर हो तो भी चिता मत करना। मैं अस्पताल म हूँ। पटामी पच्ची के साथ सर्वेश। मसूर म उतरते ही वह सीधा पुस्तकालय गया। डा० राव निखन म लीन थ। वातें जानकर उह भी दुख हुआ। वाल — पहल उपकुलपति स मिलकर अर्जी द दा । तत्पश्चात म उनसे मिलूगा। राज ने वसा ही किया। रत्न राज को घर ल गई। थाडी दर बाद स्वय उपकुलपति स मिलकर डॉ० राव भी सीधे घर पहुँचकर बोल— छुट्टी देन क लिए राजी हो गय है लकिन उस अवधि का वतन नही मिलगा। यह भी कहा कि सर्विस बीच म खडित नहा मानी जायेगी। भाजन क बाद राज का तुम शटल स ही लौटा तुम्हारा वहा रहना आवश्यक है कहकर हजार रपय का एक चक उसक हाथ म रख दिया। फिर य रुपय किसलिए ?' कहकर राज न लौटाना चाहा तो व समझाने लग कात्यायनी का छह महीन का वतन नही मिलगा। इस वार सतक हाकर इलाज कराना होगा। इसे अपने पास रख लो। मरे पास पस हैं। बीच म आवश्यकता पडे ता अवश्य लिख दना। चिता मत करा। राज चला गया।

अस्पताल से घर आय एक महीना हा जान पर भी कात्यायनी बिस्तर म पडी-पडी दिन गिन रही थी। उस रोज दवा टानिक फला का रस देना पडता था। एक नडी डॉक्टर तीन दिन म एक बार घर आकर उस दख जाती थी। अब वह पहल की कात्यायनी नहीं थी। चेहरा अपना लावण्य खा चुका था रस निचुडे आम के समान वन गया था। उसकी सुदर अँगुलिया अब सूखी लकडी-सी दीखती थी। अँगूठी अँगुली म झिमकी पडती थी। आखा का प्रकाश मद हुआ जा रहा था। चहरे पर निराशा

ताडव कर रही थी। सिर के बाल झडकर मुट्ठी भर रह गये थे। किसी ने कभी सोचा भी नही था कि सुघड सुदर शरीर इस तरह बिस्तर म शव-सा पडा रहेगा। राज किसी कार्यक्रम म भाग नही लेता—नाटक म भी नही। कालेज से लौटकर पत्नी के पास ही बैठ जाता। राज घर म नही होता तो नागलक्ष्मी कात्यायनी के पास बैठ जाती। कभी कोई बात छेड देती। आजकल हर शनिवार को नागलक्ष्मी श्रीराम की पूजा करके कन्नड रामायण की कथा पढ़ती। किसी शनिवार को कात्यायनी की इच्छानुसार उसकी खाट के पास ही एक पाटे पर बैठकर रामकथा पढ़ती। कात्यायनी उसे ध्यान से सुनती। कुछ देर वह भी भक्ति प्रवाह म बह जाती थी।

अकेली लेटी होती या रात म नींद न आती तो कात्यायनी का मन गहरे विचार म डूब जाता। तीनो बार ऐसा होने के कारण उसका मन विवेचन करने लगता। इस बार उन्होने मानव प्रयत्न के लिए संभव समस्त सतर्कता बरती थी। तब लेडी डाक्टर हर सप्ताह जाँच करती थी। चीनी के प्रसव के समय इस तरह की कोई वैद्यकीय सुविधा नहीं थी। पाचव महीने म भागीरतम्मा न कोई एक काढा पिला दिया था। घर म खाना मिलता था और खाने सा दूध घी देता थी। टॉनिक की बात ही नहीं। फिर भी चीनी का प्रसव सुचारु रूप स हुआ था। ये तीन एस क्या हुए? अस्पताल म लेडी डाक्टर न राज स जो कुछ कहा था वह उसने दो दिन पहले ही पत्नी को बताया था। भविष्य म मैं कभी गर्भवती हुई ऐसा होने की संभावना ही अधिक है तो मेरे प्राण नहीं बचेंगे। इन सब का मतलब क्या है? कारण क्या है? अपने मन का मथन रह कारणों के सामजस्य म परखने के पश्चात उसका मन पाप-पुण्य की समीक्षा करने लगता। चीनी को पाने के लिए जब वह नजनगूडु गई थी तब श्रोत्रियजी की कही हुई बात अब भी उसे स्पष्ट याद है—एक वंश के बीज को आगे बढ़ाने के लिए ही एक क्षेत्र का और एक वंश के लाग दान करते हैं। उस वंश के बीज को अपने म अकुरित कर वश बनाने के पश्चात् वह क्षेत्र अपनी सार्थकता को प्राप्त करता है। श्रोत्रिय वंश के बीज को अपनी गोद म अकुरित कर उस वंश-वृक्ष के और एक शाख को अकुरित कर दिया था। क्या मेरे स्त्रीत्व की सार्थकता यही

पूर्णत समाप्त हो गई है ? क्या एक और नये वश की माँ बनने की शक्ति मुझ मे नही है ?

लेकिन नये वश की माँ बनने के उद्देश्य से उसने राज से शादी नही की थी। राज ने भी उसे अपने वश की माँ बनाना नही चाहा था। वे दोनो परस्पर उत्कट प्यार करते थे। प्रेम इतना प्रबल था कि एक के बिना दूसरे का जीना असभव सा हो गया था। कात्यायनी पागल-सी हो जाती थी। राज तो आधा दीवाना हो चुका था। प्रकृति-पुरुष की तरह जीवन की पुकार सुनकर ही परस्पर एक हुए थे। लेकिन अपने जीवन का भविष्य चाहना उसके लिए सहज था। राज मे पिता बनने की तीव्र इच्छा थी। वह भी माँ बनने के लिए लालायित थी। और बनने वाली भी थी। लेकिन तीनो बार आघात ! इसका कारण क्या है ? क्या यह उम्र नये वश की माँ बनने की शक्ति को खो चुकी है ? वह 'वश की माँ' की कल्पना को नही मानती थी। 'नये बच्चे की माँ' की दृष्टि से सोच रही थी। लेकिन श्रोत्रियजी का वाक्य 'वश की पृष्ठभूमि को छोडकर मातृत्व पितृत्व कुछ भी नही' उसे स्मरण हो आता। तुरत उनकी और एक बात स्मरण हो आती जो शूल-सी चुभती थी—'विकास पथ मे एक बार प्राप्त स्तर का ही पुन अनुभव करना पाप है। कन्या ने पत्नी बनकर अपने प्रथम पति के साथ आनदानुभव किया था। बाद मे वह माँ भी बनी। तत्पश्चात पुन कन्या की तरह प्यार करके प्यार चाहकर और किसी की पत्नी बनी। एक बार जो माँ बनती है क्या वह सदा के लिए माँ बन जाती है ? क्या वह पत्नी नही है ? इसका उसे कोई उत्तर नही मिलता। हे भगवन ! वास्तविक पाप ने हम बाँध रखा है या पाप की कल्पना ने ? —वह दु ख से नि श्वास छोडती।

एक दिन उसने नागलक्ष्मी से पूछा— दीदी पाप माने क्या है ? बतायेंगी ?

मैं क्या जानू ! तू पढी लिखी है तू ही बता।

मैं नहा जानती इसीलिए तो आपसे पूछती हूँ। जो कुछ भी आप जानती हैं बताइए।'

अपनी पूर्ण श्रद्धा और विश्वास से इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए कुछ सोचे बिना ही नागलक्ष्मी ने कहा—' किसी का दिल दुखाना पाप

है। जो अपना नहीं है उसकी अपेक्षा करना पाप है। है न ?"

"तो इन बातों के अतिरिक्त और कोई पाप नहीं है ?"

'यह सब मैं क्या जानूँ ?' कहकर नागलक्ष्मी चुप हो गयी।

कात्यायनी सोचती थी—'मैंने अब तक किसका दिल दुखाया है ?' उस वृद्ध श्रोत्रियजी और भागीरतम्मा की याद आ जाती। उन्होंने इस आयु में छोड़ जाने वाली बहू का स्मरण कर आह भरी होगी ? लेकिन श्रोत्रियजी ने ही तो उससे कहा था—'अपने या भीतर रो रही उस बुढ़िया के लिए बच्चे को छोड़ जाने की भीख मैं नहीं माँगता। तिल भर भी यह इच्छा नहीं है कि हमारे बुढ़ापे में वह हमारा सहारा बने।" बच्चे के प्रति इतनी निरासक्ति दिखानेवाले मुझसे क्या चाहेंगे ? फिर भी उनकी सेवा करना मेरा कर्त्तव्य था ? नागलक्ष्मी का दूसरा उत्तर भी उसे चुभ रहा था कि जो अपना नहीं है, उसकी अपेक्षा करना पाप है। 'क्या मैं पुनः संतान नहीं प्राप्त कर सकती ? हे भगवान ! समझ में न आनेवाली किस गाँठ में तूने मेरा जीवन बाँध रखा है ? किस सार्थकता के लिए इन सबका अस्तित्व है ?' मन ही मन वह अपने-आपसे पूछती।

दो महीने में वह घर में चलने फिरने लगी। दिन में वह नहीं सोती। शाम को घर से एक फर्लांग तक टहल आती। पृथ्वी इस साल हाईस्कूल की अंतिम परीक्षा देने वाला है। बैठे-बैठे ऊब जाती तो उसे पढ़ाने लग जाती। इसी तरह और एक महीना बीत गया। उसकी तंदुरुस्ती देह स्थिति में थोड़ा सुधार हुआ। एक महीने के बाद उसे कालेज जाना पड़ेगा। उसका शरीर पुनः पहले-सा रूप ले रहा था। टहलते समय उस कमजोरी में भी शरीर का सौम्य निखर उठता था। स्वास्थ्य-कांति शायद हो चुकने पर भी उसकी सुकुमार त्वचा का रंग उसे एक विशिष्ट शोभा दे रहा था। पहले चलते समय चरणों में जो रक्त प्रस्फुटित-सा प्रतीत होता था वह स्थिति अब नहीं थी। फिर भी कोमल चरणों में *आज भी एक* नया आकर्षण था।

एक दिन एकांत में राजू ने पूछा—"आजकल तू मोटी होती जा रही है न ?" पूछते समय उसकी आवाज में छिपे भाव को समझकर कात्यायनी ने गले में हाथ डालकर कहा—"आप ऊब गये होंगे !"

"ऐसी बात नहीं है।

आये थे। उसने अस्तित्व की मूल उद्देश्य शक्ति नष्ट होते समय, और किसी तरह की बौद्धिक सान्त्वना उसकी मानसिक वेदना को दूर करने में समर्थ नहीं हुई।

राज के अस्पताल से लौटने के पश्चात वे दोनों परस्पर लिपटकर मूकवत बैठे रहे। कात्यायनी की आंखों से अश्रुधारा बहने लगी। उसे सान्त्वना देने की शक्ति राज में नहीं थी। वह चिन्ता में ऐसा डूबा कि आंसू बहाने की शक्ति भी जाती रही।

१८

गत आठ वर्षों के जीवन में श्रोत्रियजी का मन पहले की अपेक्षा अधिक निवृत्त होता जा रहा था। सत्तर वर्ष की इस उम्र में उन्हें सांसारिक जीवन के प्रति कोई आस्था नहीं रही। पुत्र का विवाह करते ही सारी जिम्मेदारी उसे सौंपने लगे थे। तभी से उनमें निवृत्त भाव काम कर रहा था। पुत्र की मृत्यु के पश्चात फिर सांसारिक जीवन की जिम्मेदारी संभालने लगे। दो वर्ष बाद बहू को घर के कार्यों से परिचय कराया था और सोच रहे थे कि कुछ वर्ष बाद बड़े-बड़े व्यवहारों को भी वही देखा करेगी। उनकी यह योजना असफल हो गयी। उन्हें पुनः समस्त जिम्मेदारियाँ ढोनी पड़ी। वे जानते थे कि जब तक पोता बड़ा नहीं होता, उसका विवाह नहीं होता, उसमें जिम्मेदारियाँ ढोने की क्षमता नहीं आ जाती तब तक वे निवृत्त नहीं हो सकेंगे। लेकिन उनका मन मानो हर वस्तु से अछूता सा रहता था। हर वस्तु के प्रति एक तरह की विरक्ति निर्मम भाव जाग रहा था। कुछ समय से कभी-कभी संन्यासी बनने की भावना भी मन में जागने लगी थी। इतने वर्ष गृहस्थ जीवन बिताकर, गृहस्थ धर्म पूर्ण हो जाने पर घर एवं अपने लोगों के प्रति जो ममत्व है उसे त्यागकर भगवान के ध्यान में ही जीवन बिताने की इच्छा पनपने लगी थी। अब कुछ दिनों से वे संन्यासी जीवन संबंधी धर्मशास्त्रों को

अधिकाधिक पढने लगे। म यासोपनिषद् वैखानस सूत्र, धर्मसिंधु जीव "मुक्ति विवेक" आदि ग्रथो म वताये परिव्राजक-जीवन के ध्येय-उद्देश्य, जीवन नम, धम-सूक्ष्मता का मनन करते रहते हैं।

व जानते थ कि इस परिस्थिति म घर त्यागकर स यास स्वीकार करना अधम है। वे इस बात से अपरिचित नही थे कि अपने परिवार के आश्रितो को एक स्तर पर लाकर एव उनकी अनुमति लेकर तथा पत्नी के जीवित रहने पर उसकी भी अनुमति पाकर ही स यास स्वीकार करने का अधिकार है। घराने की जिम्मेदारी लेने वाला पोता केवल तरह वप का है। उसका विवाह होने जिम्मेदारी सँभालने योग्य बनने म कम-से-कम आठ साल लगेंगे। साठ वप की पत्नी भी इस परिस्थिति म उन्हें अनुमति द देगी—यह सोचना भी निरथक होगा। इसलिए व चुप रहते। श्रोत्रिय जी स यास के लिए व्याकुल नहीं थे। उनकी धारणा थी कि अ य इच्छाओ की तरह म यास की इच्छा भी अगर पागल-जैसा बनाकर चित्त का सतुलन खो दे तो वह भी बुरा है। स यास एक तरह स निर्विकार निलिप्त मन-स्थिति है। उम प्राप्त करने की आकांक्षा में ही अगर मन म विकार जाग्रत हुआ, तो स यास जीवन के लिए वह भी एक तरह की अयोग्यता है—ऐसा समझकर, व अपनी इच्छा का नियत्रण म रखने का प्रय न करते।

जिस वप वह घर छोडकर गयी थी उसी साल श्रोत्रियजी न पौत्र को सरकारी प्राथमिक स्कूल म भरती करवा दिया था। उसी वप उसका मुडन-सस्कार हुआ। भागीरतम्मा पोते का मुडन-काय बडी धूमधाम से करना चाहती थी, लेकिन बहू के व्यवहार स उनका उल्लास, उत्साह घट गया था। शास्त्र विधान छोडना उचित न समझ एक दिन उस काय को पूण किया था। आठवें वप म उसका यज्ञोपवीत सस्कार किया गया। भागीरतम्मा न यह काय उत्साहपूवक सम्पन्न किया। पत्नी की इच्छा मे श्रोत्रियजी बाधक नही बने। लेकिन उन्हें इस धूमधाम म तिल भर भी आसक्ति नहा थी। व यही चाहत थ कि बालक को गायत्री जप, त्रिकाल सन्ध्या और वेदाध्ययन पर क्रमश अधिकार प्राप्त हो जाय। उन्होंने ही शुभ मुहूत म पौत्र को अपनी गोद म बठाया और उसके सिर पर मुकुट रखकर कानों म गायत्री मन्त्रोपदेश दिया था। भागीरतम्मा न ही सवप्रथम चाँदी की थाली म भिक्षान्न दिया था। माथ पर गोपीचदन लगाकर, कटि

म मौंजी' बाधकर पीतवण की धोती पहनकर चीनी ने दादा के वश-गान मूत्र कहकर श्रीनिवास श्रोत्रिय कहकर अपने अभिधान के साथ अग्नि सस्कार का मत्र 'प्रवर सुनाया— 'काश्यपगोत्रोत्पन्न काश्यपा-वत्सार नद्रवप्रवर त्रयान्वित आश्वलायन सूत्र समन्वित ऋक् शाखाध्यायी श्री श्रीनिवास श्रोत्रियोऽह अभिवादये । फिर भिक्षा देने वाली स्त्रिया को नमस्कार किया। उस समय श्रोत्रियजी ने मन ही मन वश के प्रति गव का अनुभव किया। अपने गोत्र सूत्र शाखा और श्रोत्रिय-वश एव पूवजा के नाम स्मरण करने के फलस्वरूप दादा का नाम पोते के लिए रखने की पद्धति को याद करके उनका मन गव स भर जाता था।

अगले दिन से उससे सध्या हवन कराना प्रारम्भ कराया। वह सस्कृत मत्रा का शुद्ध उच्चारण करता। रोज शाम को उसे थोडा थोडा वदमत्रा को कठस्थ कराने के अतिरिक्त उनको अथ भी समझाते थे। इस आयु म भी श्रोत्रियजी का एक भी दात नही गिरा था। वेदमत्र अब भी उनके मुख स स्पष्ट स्वच्छ और अथपूण होकर निकलते थे। चीनी होशियार लडका है। शाला म भी अच्छा पढता था।

भागीरतम्मा की तन्दुरुस्ती अब अच्छी नहा रहती। देह शक्ति घट गयी थी। बहू के चले जान पर एक तरह से उन्हे अपना मानसिक आधार ही खोया सा लगा। अब नीचे के आगन मे ही व सो जाती। बगल म चीनी, और चीनी क पास लक्ष्मी सोती। उनके सिर की दिशा मे खाट पर श्रोत्रियजी सोते। भागीरतम्मा बहू का याद करती। इस आयु म घर मे रहकर उस घर की सारी जिम्मेदारी निभानी चाहिए थी। अग्रेजी सीख रहे बेटे चीनी को पढाना चाहिए था। घर के हिसाब किताब पर निगाह रखनी चाहिए थी। उनका मन कभी कभी खिन्न हो जाता। सोचती कि इन सारी जिम्मेदारियो को हम सबको छोडकर जाने वाली को भगवान कभी सद्गति देगा ? पास लेटी लक्ष्मी से व यही कहती। तब फिर वही लट श्रोत्रियजी पूछने 'क्या बच्चे को नीद आ गई ?

हूँ क्या ?

जो कुछ हुआ सो हुआ। तुम्हे कितनी बार कहा कि उस बारे म कभी कुछ मत बोलो ! भगवान द्वारा दी जाने वाली सदगति दुगति के बारे म हम क्या सोचें ? तुम लोग बार-बार इसी तरह बात करती रहोगी

तो जानती हो लडके के मन मे माता के प्रति कैसी भावना पनपेगी ? इससे कोई लाभ नही । उस बात को नही छेडना चाहिए ।"

भागीरतम्मा चुप हो जाती । लक्ष्मी को श्रीनप्पा की बात बहुत अच्छी लगती । भागीरतम्मा की बात यद्यपि उचित लगती फिर भी कभी-कभी मन असह्य याकुलता का अनुभव करता था । लक्ष्मी अकेली होती तो उसी बात का पुन छेड देती । लक्ष्मी उनकी मनोदशा, व्याकुलता को समझती थी । उनकी बात का खडन न कर, लेकिन अपनी ओर से कुछ न कहकर, वह चुपचाप 'हूँ' करती रहती । इस विषय को लेकर आधा घटा तक बात कर पाता ता उनके मन को तप्ति सी मिलती । तत्पश्चात पाँच छह दिन वह विषय ही नही निकलता ।

यत्नापदीन के पाँच वर्षो मे चीनी न माध्यमिक शाला की शिक्षा पूण कर ली था । वह होशियार विद्यार्थियो म माना जाता था । रोज ग्यारह बजे शाला जाने से पहले वह स्वर्ण नदी से पीने के लिए दो घडे पानी ला देता । दादी का तन्दुरुस्ती अच्छी नहा थी । लेकिन आयु की तुलना म दादा अब भी काफी शक्तिवान थे । सत्तर वष की आयु थी, फिर भी पढ़न क लिए उन्हे चश्म की जरूरत नही पडती थी । बेधडक अब भी खूब चलते फिरत थ । दात एक भी नहा गिरा था ।

चीनी तेरह वष का हात हुए भी दादी के पास सोता था । अपनी शाला और दादा के साथ सस्कृत अध्ययन के अतिरिक्त उसका सारा समय दादी के साथ बीत जाता । उसका स्नेह निकटता उन्ही तक सीमित था । दादी गाँव भर की कुतूहलपूण सारी कहानिया पोते को सुनाती । वह पूछता —'श्रीपादराव के घर की वासती अब भी जब कभी आती है तो मेरे लिए बिस्कुट क्या लेकर आती है दादी ? वास्तविकता को जानते हुए भी व कहती— पहल स ही हम लोगा के प्रति एक तरह का स्नेह है। क्या यह सच है दादी कि चक्रपाणिराव के पूजाघर म चाँदी के रुपय गडे हैं ? सच दादी ?' कहते है परशुराम मदिर के पास जमीन म सात बड-बडे बरतन म सोने क सिक्के है और सात फनवाला नाग उनसे लिपटकर उनकी रक्षा कर रहा है ? है न दादी ? गत सोमवार को मैं हेग्गिण क पापय्य के घर गया था न ? वहाँ मुझे खाने के लिए

लड्डू जितना माखन और गुड़ दिया। क्या उस घर के लोग रोज उतना माखन खाते हैं? आदि प्रश्न करता और दासी उचित उत्तर देकर उसकी उत्सुकता शांत करने के साथ साथ अपनी ओर से भी कौतुक भरी घटना सुनाती। अपने पिता की मृत्यु की बात चीनी जानता था। क्योंकि वह हर साल उनका श्राद्ध करता था। दादा भी अपने माता पिता का श्राद्ध करते थे। चीनी केवल पिता का श्राद्ध करता था। मां कहां है? एक दिन उसने दादी से पूछा भी। उन्होंने उत्तर में कहा था— वह अपने पिता के घर गई है बेटा। किसलिए? चीनी का दूसरा प्रश्न था। कौन जाने? खैर उस बारे में मत पूछो बेटा। आवाज में नाराजगी थी। यद्यपि उसे ठीक तरह याद है कि जब वह बहुत छोटा था तब घर में एक महिला थी जिसे वह मां कहकर पुकारा करता था तथापि उसने उसके प्रति अधिक कुतूहल नहीं दिखाया था। लेकिन एक दिन शाला में अन्य विद्यार्थियों के साथ झगड़ा हुआ तो एक ने तेरी मां किसी और आदमी के साथ भाग गयी है कहकर गाली दी थी। घर लौटते ही चीनी ने दासी से पूछा था— अग्रहार का नाकी है न उसने कहा कि मेरी मां किसी और आदमी के साथ भाग गयी है। क्या यह सच है दासी? कुपित होकर उन्होंने कहा— किसी ने कह दिया तो तू भी वही पूछता है? ऐसे नहीं कहना चाहिए।" उस दिन से उसने इस बारे में किसी से नहीं पूछा और सोचा दासी ने डांटा है तो उस संबंध में सोचना भी अनुचित है।

चीनी की माध्यमिक शाला की परीक्षा हो चुकी थी। अध्यापक ने ही कहा था कि वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होगा। छुट्टियों के बाद वह हाईस्कूल में जायगा। हाईस्कूल का विद्यार्थी बनने की कल्पना से ही वह झूम उठता था—इस बात की खुशी और गर्व भी था। उसी समय दादी बीमार पड़ीं। इन दिनों वे महीने दो महीने में एक बार बीमार पड़ जाती थीं। फिर एक दो दिनों में ठीक भी हो जातीं। उस समय दादा ही खाना पकाते। इस बार भागीरतम्मा पड़ीं तो दो दिन घर का काढ़ा पिलाने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। तीसरे दिन वैद्य को बुलाने गये तो पता लगा कि वे गांव से बाहर गये हुए हैं और एक महीने के बाद ही लौटेंगे। दादी को बुखार चढ़ रहा था। पूरे शरीर में दर्द हो रहा था। तीसरे दिन भी श्रोत्रियजी ने घर की ही दवा पिलाई। वे पूरे होश में

थी। पहले श्रोत्रियजी सन्निपात समझते रहे। लेकिन अब बुखार के रूप को नहीं पहचान पा रहे थे। चौथे दिन भागीरतम्मा दिये जाने वाले दूध को भी उलटी करने लगा। 'बचता है नहीं, सरकारी डॉक्टर को बुला लाता हूँ' कहकर श्रोत्रियजी निकल ही रहे थे कि भागीरतम्मा 'इतनी उम्र हो गई अब अन्य जाति के व्यक्ति द्वारा छुए पानी को मैं नहीं पिऊँगी' कहकर हठ करने लगी। पूरे दिन उन्होंने पति को घर से बाहर नहीं जाने दिया।

लेकिन उस रात वह बेहोश हो गई। श्रोत्रियजी घबरा गये। लक्ष्मी दौड़कर सरकारी डाक्टर को बुला लाई। 'आपने बड़ी देर कर दी'— कहकर डाक्टर ने एक इंजेक्शन दिया और दवा लाने के लिए किसी को साथ भेजने के लिए कहा। चीनी डाक्टर के साथ जाकर दवा ले आया। लेकिन भागीरतम्मा ने मुँह इस तरह बंद कर लिया था कि दवा पिलाना असंभव-सा हो गया। बेहोशी में भी अस्पताल की दवा का विरोध करते देखकर श्रोत्रियजी ही चुप हो गये थे। सात दिन और बीत गये। एक रात तो घर के तीनों सदस्य जागते रहे। "तू सो जा बेटे"—श्रोत्रियजी और लक्ष्मी के समझाने पर भी चीनी नहीं माना। उसका चेहरा उतर गया था। लक्ष्मी के मुख पर चिंता छाई हुई थी। श्रोत्रियजी मानो अपने जीवन की भावी स्थिति के लिए मानसिक तैयारी कर रहे थे। लगभग पचास वर्षों के पारिवारिक जीवन का स्मरण उनके मानस-पटल पर उभर आया था। विवाह के पश्चात् कई साल तक संतान के लिए तड़पना, बाद में संतान होना, फिर स्वेच्छापूर्वक निभाया गया ब्रह्मचर्य जीवन, बहू के चले जाने के बाद पत्नी द्वारा आत्मीयता से पोते का पालन पोषण, आदि एक-एक कर उनके स्मृति-पटल में घूमने लगे। पत्नी के स्वभाव के संबंध में उनका मन सोच रहा था। भागीरतम्मा अच्छे स्वभाव वाली है। उसने कभी किसी का बुरा नहीं चाहा। जहाँ तक हो सका, दूसरों की मदद करती थी। लेकिन क्रोध पर पूर्ण विजय नहीं पा सकी थी। श्रोत्रियजी जानते थे कि सबका समान स्वभाव संभव नहीं है। अंतिम दिन बीमार पड़ने तक भी भागीरतम्मा ने श्रद्धा भाव से पति सेवा की थी। पति के धार्मिक जीवन में हर तरह का सहयोग दिया था। श्रोत्रियजी सोचते—'गृहस्थ जीवन में यही तो पत्नी का कर्त्तव्य है।'

लगभग मध्य रात्रि का भागीरतम्मा बेहोशी म अस्पष्ट कुछ बोल रही थी— भविष्य म बालक का क्या होगा ' 'अब वह होनी तो ', चीनी की शादी अगर हुई होती ! मध्य रात्रि म पूण बेहोश दादी को इस तरह बडबडात देख चीनी डर रहा था। लेकिन व बातें पूरी तरह उसकी समझ म नही आ रही थी। लक्ष्मी न एक बार श्रोत्रियजी का चेहरा देखा। उन्होन भी मूक बठी लक्ष्मी का मुख दखा। व दोना समझ गय कि रोगी की अत प्रेरणा कह रही है कि वह देह छोड रही है।

दूसरे दिन भी डाक्टर न आकर इजेक्शन दिया। तब रोगी की साँस विलक्षण ढग से चल रही थी। अब कसी है? श्रोत्रियजी का कातरता-भरा प्रश्न था। मैं अपनी ओर से भरसक कोशिश कर रहा हूँ डाक्टर ने आश्वासन दिया।

डाक्टर का प्रयत्न सफल नही हुआ। दूसरे दिन सुबह लगभग पाँच बज भागीरतम्मा के प्राण पखेरु उड गय। मरन स पहले ही साँस की गति से श्रोत्रियजी न स्थिति भाप ली थी। पास-पडोसिया को इत्तला नही दी थी। रात चीनी सोया था। श्रोत्रियजी उठ, अदर से गगाजल लाकर आधा चम्मच जबदस्ती पिलाया। गगाजल प्रविष्ट हुआ। आध घण्टे बाद साँस रुक गई। शरीर यत्र पूणत रुक गया था। श्रोत्रियजी न नाक के पास से अपनी अँगुली हटाइ तो लक्ष्मी जोर जोर स रोने लगी। लगभग पतालीस वष से उस भागीरतम्मा आश्रय अन देती आयी थी। सहेली की भाति सुख-दुख कह सुनाती थी। एक बार उसी न चाहा कि लक्ष्मी श्रोत्रियजी स सबध जोडे। श्रोत्रियजी न लक्ष्मी के नाम दो बीघा जमीन लिख दी तो भागीरतम्मा ने सहप अपनी स्वीकृति दे दी थी। अब वह अपनी इहलीला समाप्त कर चुकी है। श्रोत्रियजी के परिवार म लक्ष्मी जिस जिम्मदारी को निभा रही है अब पहले की अपेक्षा बढ गई है। लक्ष्मी सिसक सिसककर रो रही थी। यह देखकर श्रोत्रियजी न कहा— यह क्या कर रही है लक्ष्मी? इतने दिन तूने भगवान का चरणामत लिया गो-पूजा की है। तू यह भूल गई कि मनुष्य को एक-न एक दिन जाना ही पडता है।" लेकिन वाक्य पूरा होन स पहले ही उनका गला भर आया। रुलाई भरी ध्वनि म ही व बोले— 'दुख किसी को नहा छोडता। फिर भी सहना ही पडेगा।' व कह ही रहे थे कि पास सोया चीनी अचानक जाग उठा। दादा का

चेहरा देखते ही वह सारी बात समझ गया। 'दादी' जोर से चिल्ला उठा और पास ही आँखें मूँदे, चिर निद्रा में सोयी दादी की छाती पर सिर रख कर रोने लगा। दादी नहीं बोली। लक्ष्मी ने उसे अंक में भर लिया।

पास-पड़ोस के लोगों को श्रोत्रियजी ने घटना बतायी तो उन लोगों ने कहा— आप बड़े हैं, आप जो कुछ कर रहे हैं उसे अनुचित कहने का साहस हम नहीं कर सकते। लेकिन क्या हम सब मर गये थे? हम खबर क्या नहीं दी? कल रात ही हमें बुलाना चाहिए था। देखते-देखते पड़ोसियों से सारा आँगन भर गया। दस मिनिट में घर के बाहर अग्नि जल रही थी। कुछ लकड़ी जुटाने गये तो कुछ अर्थी तैयार कर रहे थे। सारे गाँव में समाचार फैल गया। भागीरतम्मा के अंतिम दर्शन के लिए स्त्रियाँ-बच्चे आते गये। लेकिन शव को सुबह आठ बजे ही ले गये। दादी के मुँह में चावल डाल रहा था कि चीनी को चक्कर आ गया और वह गिर पड़ा। यह दृश्य देखकर उपस्थित स्त्री-पुरुषों के आँसू झरने लगे। लक्ष्मी ने चीनी को आकर उठा लिया।

सातवें दिन काफी दान धर्म के साथ भागीरतम्मा की उत्तरक्रिया समाप्त की।

श्रोत्रियजी के घर के कामकाज में अब परिवर्तन हो गया। यद्यपि वे नियमित समय से उठते, किन्तु वृद्ध श्रोत्रियजी पहले के समान अधिक समय भगवत-पूजा नहीं करते। छह बजे पूजा समाप्त कर रसोईघर में प्रविष्ट होते। मुँह अँधेरे ही चीनी उठता और उसके स्नान, संध्या पूर्ण होने तक उसे पीने को गरम दूध देते। जब से हाइस्कूल जाने लगा है वह सुबह काफी समय अध्ययन करता है। साढ़े नौ बजे तक उसके लिए रसोई तैयार होती है। उसके स्कूल जाने के बाद लक्ष्मी को परोसकर श्रोत्रियजी भी भोजन कर लेते। बरतन धोना लक्ष्मी का काम था। गाय बछड़ा की देखभाल एवं अन्य कार्यों के लिए एक नौकर रख लिया गया। शाम को नियमित रूप से चीनी का वेदाभ्यास चलता। नानी के कहने पर भी चीनी रविवार को खेलने नहीं जाता—वह दादा के कार्यों में हाथ बँटाता।

कभी-कभी चीनी को दादी की याद आ जाती। कुछ दिन तक तो इसी भ्रम में कि दादी रसोईघर में है, स्कूल से आकर सीधा वहाँ चला जाता था। वहाँ किसी को न पाकर निराश लौटता। कभी-कभी रसोईघर

म ही वठकर दो मिनिट रो लेता और मन को सात्वना देने का प्रयास करता। एक रात का स्वप्न म दादी कहकर रोने लगा। उस दिन स चीनी का विस्तर अपने पास न लगवाकर लक्ष्मी के पास ही विछान क लिए श्रोत्रियजी न कहा। धीरे धीरे चीनी लक्ष्मी के बहुत निकट आ गया। फिर भी दादी की याद उस रोज सताती रही। उसके मुख पर पहले जो मुस्कराहट थी वह कभी नही लौटी। चेहरे पर एक तरह का मुरझाहट-भरा गाभीर्य दिखाई पडा। रात को उसके सो जाने के बाद श्रोत्रियजी लक्ष्मी से बात करते। वाता का विषय सामान्यत भागीरतम्मा को लेकर होता। फिर बात चीनी और उसके भविष्य की ओर मुडती। लेकिन लगता था कि उन्ह त्यागकर गयी बहू के बारे मे कुछ न बोलने की मानो दोनो ने कसम खा ली हो। चीनी चौदह वष का है। चार-पाँच वष म उसकी शादी कर देंगे। तब सब ठीक हो जायगा' —लक्ष्मी कहती।

इस जमाने म इतनी जल्दी विवाह करना क्या उचित है? श्रोत्रियजी न प्रश्न किया। क्या नही? जब तुम्हारी शादी हुई थी तो तुम कितने वष के थे? जमाना अवश्य बदल गया है चीनी तो हमारी बात मानता है लक्ष्मी समझाने लगी। यही ठीक है कहकर श्रोत्रियजी ने स्वीकृति दे दी।

१९

कात्यायनी इस बात का काफी प्रयत्न करती रही कि उसका मन क्षुब्ध न हो नियन्त्रण म रहे। एक मिनट भी वह अकारण अकेली न रहती। रोज शाम को पति के साथ घूमने जाती। व पहले की अपेक्षा अब अधिक सिनेमा देखा लगे। घर के कार्यों म भी उसने अधिक रुचि लेनी शुरू की। नागलक्ष्मी स पूछ-पूछकर खाने की चीजें बनाती। हर शनिवार को नागलक्ष्मी की रामपूजा म भाग लेती। भूलने का हर प्रयत्न करने पर भी जन्म लेने स पूर्व ही जाते रहे तीन बच्चो का स्मरण हो आता। जब वह

सोचती कि भविष्य में माँ बनने की संभावना बिलकुल मिट गई है तो उसका चित्त और भी दुःखी हो उठता। जब कभी ऐसा होता उसे चीनी की याद आती। इस वर्ष वह किस कक्षा में पढ़ रहा होगा? अब काफ़ी ज्ञान प्राप्त कर लिया होगा! क्या वह माँ के बारे में सोचता होगा? माँ के संबंध में उसके प्रश्न करने पर अगर कहते कि 'तेरी माँ कुलटा थी, किसी के साथ भाग गई' तो आश्चर्य नहीं। अगर अचानक मैं सामने पड़ जाऊँ तो क्या वह मुझे पहचान लेगा? जब अंतिम बार उसने मुझे देखा था तब पाँच वर्ष का था। जब नाना-नानी ने लाड़-प्यार का अभाव नहीं तब मुझे क्या पहचानने लगा? अचानक मुझे पहचान भी ले तो किस तरह व्यवहार करेगा? अगर माँ होने के नाते मुझसे प्रेम, श्रद्धा भाव से व्यवहार करने लगा तो? उसे लगा कोई त्रिशूल से बेध रहा हो। इसे भूलने का वह असफल प्रयास करती रही।

इन दिनों वह भी पृथ्वी को अधिकाधिक प्यार करने लगी है। पृथ्वी अब कालेज के प्रथम वर्ष में कला विषय लेकर पढ़ रहा है। पति के साथ घूमने जाती तो कात्यायनी उसके लिए कपड़े खरीद लाती। खेलने के लिए बैट-बाल' ले आती। इस बात का ध्यान रखती कि वह रोज अच्छे कपड़े पहनकर कालेज जाय। उसे पढ़ाती। पृथ्वी काकी के प्रति स्नेह रखता, किंतु उसमें प्रति एक तरह का संकोच भय मिश्रित श्रद्धा भाव भी था। कभी कभी कात्यायनी ही उसे तेल मलकर स्नान कराती। पृथ्वी संकोच-वश शरीर को सिकोड़कर स्नानगृह में बैठ जाता था। पीठ मलते समय फुट भर दूर खिसकता देख, कात्यायनी उसे पास खींचकर मलती।

आत्मार्पण के पश्चात राज का समस्त स्नेह पृथ्वी पर केंद्रित हो गया। घर खर्च के लिए पैसे जिस बक्स में रखे जाते थे उसकी चाबी भी उसे सौंप दी थी। उसके साथ ही खाने उठता। पहले पृथ्वी करता था अब बैठ कर सर्वाधिक करता। पति की भावना को कात्यायनी समझती थी। इससे उसे कोई चिंता नहीं होती थी, इसके विपरीत वह भी उसी भाव में अपने आपको घुला देना चाहती थी। उसे इस बात का दुःख था कि पति की प्रकृति-सहज इच्छा पूर्ण न हो सकी।

यद्यपि अब पहले की अपेक्षा वह कालेज अधिक जाती राज अधिक टहलता फिर भी कात्यायनी का शरीर पहले-जैसा न था। शरीर के रग

म भी परिवतन आ चुका था। उसका लाल गोर वण, अब दूध-सा सफेद पड गया था। न सौन्य रहा, न उल्लास ही। राज क विवश करन पर ही वह डाक्टर द्वारा बताय टानिक नियमित रूप से लती थी। डाक्टर हमशा सलाह देता था कि एक-दो महीने क लिए हवा-पानी बदल सकें तो उचित रहेगा। इस बार ग्रीष्म की छुटियो म कही जान का निश्चय किया था। नदी पहाडी जान का विचार आया। यह सोचकर कि दो महीने वहाँ रहन म ऊब जायेंग विचार त्याग दिया। कम्मणगुडी भी इसी विचार से छोड दिया। राज का एक विद्यार्थी उटकमड म था। वह कह गया था कि आप लोग आयें तो दो महीने के लिए कमरे की व्यवस्था कर दूंगा। घर पहुँचते ही उसने पत्र भी लिखा था कि किराया देने की आवश्यकता नहीं पडेगी एक सबधी एक साल के लिए विदेश गय हुए हैं। चाबी मेरे पास है। रसोई आदि के लिए बरतनो की भी आवश्यकता नहीं है। दूध दही की व्यवस्था भी हो जायगी। आने की तारीख लिखें। रेलवे स्टेशन पर आप लोगो को लेने आऊँगा।'

तुम लोग हो आओ। मैं यहा रहूँगी नागलक्ष्मी ने कहा। व नही माने। राज ने विवश करते हुए कहा— दो महीने तक तुम अकेली क्या रहोगी? पथ्वी को भी ले चलेंगे। दो चार स्थान देखने पर बालक थोडा खुल जायगा। तुम भी चलो। नीलगिरि देख आयेंगे। नागलक्ष्मी और कात्यायनी ने दो महीने के लिए भोजन के आवश्यक मसाले सामान आदि तयार किया। रवाना होने का दिन बताकर राज ने अपने विद्यार्थी को पत्र लिखा। सब के कपडे एक ट्रक म रखकर दो बिस्तर बाँधे। रात की गाडी स निकलने से पहले घर की रखवाली की जिम्मेदारी पडोसी को सौंपी। उसी शाम को कालेज का चपरासी आया। राज घर पर नही था। कात्यायनी के हाथ में तार का एक लिफाफा देते हुए कहा— कल आया था। राजाराव के बदले केवल राज लिखा है। किसी की समझ म नहीं आया। अब अकाउण्टेंट ने कहा कि राजाराव घर पर होंगे दे आओ।' लिफाफा खुला था। कात्यायनी ने पढा। पता स्पष्ट नही था। उसमे लिखा था— आपके भाई और भाभी की स्थिति गभीर है—देखभाल करने वाला कोई नही—तुरत चले आये—रागप्पा। चपरासी चला गया। कात्यायनी डा० राव और रत्ने की बीमारी के बारे म सोच ही रही थी कि राज

लोग। वह जानता था कि रामप्पा डा० राव का रसोइया है।

'नीलगिरि के बदले सब मसूर चलें'—राज ने सलाह दी। कात्यायनी मान गई। नागलक्ष्मी ने कहा—'तुम लोग हो आओ।'

'लिखा है मीना की स्थिति गंभीर है। वह भी कल का तार है। न जाने अब तक क्या हुआ होगा? ऐसी परिस्थिति में ऐसा कहना तुम्हें शोभा नहीं देता भाभी! उनके मरने के पश्चात चाहने पर भी तुम्हें उनकी सेवा करने का अवसर थोड़े ही मिलेगा?' राज ने समझाया। नागलक्ष्मी का हृदय पिघला। आँसू पोंछते हुए कहने लगी—"चलो, मैं भी चलती हूँ।"

"रात की गाड़ी सुबह पहुँचेगी। थोड़ा अधिक खर्च तो होगा, लेकिन कोई बात नहीं टैक्सी मँगाइए। रात के नौ बजे तक पहुँच जायेंगे" कात्यायनी ने सलाह दी। राज को भी बात जँच गई।

उटकमंड के लिए बाँधे गए ट्रंक बिस्तर टैक्सी में रखे, सब लोग मसूर के लिए रवाना हुए। टैक्सी तेज गति से दौड़ रही थी और पिछली सीट पर बैठी नागलक्ष्मी का मन एक विचित्र भाव भँवर में गोते खा रहा था। उसके पति का दूसरा विवाह एक विदुषी युवती से हुए दस वर्ष हो गए हैं। उस विवाह के पश्चात भी डा० राव का उससे मिलने के लिए आना, उनका बात करने का प्रयत्न करना, उसका बात न कर मुँह फेर लेना, अंत में उनका रूठ जाना—यह सब नागलक्ष्मी के मस्तिष्क में घूमने लगा। पहले तो वह सोच रही थी कि उसकी कोई गलती न होते हुए भी उन्होंने दूसरा विवाह क्यों कर लिया। डॉ० राव ग्रंथ प्रकाशित होते ही उनकी प्रति राज को भेज देते थे। मोटे पुट्ठे की काली जिल्द पर स्वर्णाक्षरों में पुस्तक और लेखक का नाम लिखे तीन खण्डों को राज ने एक साथ रखा था। घर पर आए मित्रों को दिखाते हुए वह गर्व से कहता था कि ये हैं मेरे बड़े भैया! यह सुनकर नागलक्ष्मी अपने पति के प्रति अभिमान महसूस करती थी। इन ग्रंथों के निर्माण में नयी पत्नी से भैया को मिले सहयोग के बारे में राज समय मिलने पर, भाभी को बताता। नागलक्ष्मी अनसुनी कर देती थी—कोई महत्त्व नहीं देती थी। 'श्रीराम नाम' लिखने में ही वह समस्त झंझटों से मुक्ति पाने का पुण्य देखती थी। वह यह भी सोचती कुछ दिनों के बाद वे बुलाने आयेंगे, तो जाकर उन्हीं के

साथ रहूँगी। लेकिन व एक बार देखने के लिए भी नहीं आए। राज बार-बार मसूर जाता था। उनकी नयी पत्नी उसका आदर-सत्कार करती है। व बीमार क्या पड़ ? मैं होती तो अच्छी तरह से देखभाल करती। सप्ताह म एक दिन तेल मलकर स्नान कराती। इतना ही काफी था। अब हमारे पहुँचने से पहले कुछ अनिष्ट हो गया तो ? नागलक्ष्मी का हृदय काँप रहा था। मन ही मन प्रार्थना कर रही थी हे श्रीराम ! जानकी-रमण ! कहीं ऐसा न हो। तुम उनकी रक्षा करना।

पृथ्वी ने अपने पिता को देखा था। उसे अच्छी तरह याद है कि उनके बाल पक हुए हैं और आँखों पर चश्मा लगाते हैं। उसने सुना था कि ग्रंथ लिखने के लिए उन्होंने दूसरा विवाह किया है। नयी पत्नी उनकी छात्रा थी। उन्होंने माँ को क्या छोड़ा ? वह कालेज के प्राध्यापकों को याद कर उनकी तुलना अपने पिता से करता था। पिताजी बड़ विद्वान् हैं। काका को अपने मित्रों से यह कहते उसने सुना था कि पूरे विश्वविद्यालय म उन-जैसा और कोई विद्वान नहीं है। इतने बड़े विद्वान ने दूसरी शादी क्या की ? इतना होते हुए भी काका के मन म उनके प्रति बड़ा आदर और श्रद्धा है। वे अच्छे और सज्जन होंगे ! बीमारी के गंभीर रूप धारण करने से पहले हमें सूचना क्यों नहीं दी ? अब हमारे पहुँचने से पहले ही कुछ हो गया तो ? यह विचार उसके लिए भी असह्य था। वह भ्रमित-सा मूकवत टार्च के प्रकाश म अंधकार को चीरती दौड़ रही टैक्सी की गति देख रहा था।

रात क सवा नौ बजे टैक्सी प्रोफेसर के बँगले पर पहुँची। ताला लगा हुआ था। राज टैक्सी से उतरा पास के बँगले म पूछताछ करना ही चाहता था कि रंगप्पा आ गया। राज को पहचानकर उसने कहा—आइए सर ! मैं अभी अस्पताल से आ रहा हूँ। व दोनों अस्पताल म हैं। दोनों बेहोश है। मैं डर गया हूँ।

द्वार खोला। उनका सामान अंदर रखा। घर म प्रवेश करते समय नागलक्ष्मी का मन अचानक एक नये भाव से घिर गया। पहले कभी इस बँगले को नहीं देखा था। वह भीतर गयी तो अपरिचित मेज कुर्सियाँ है। कमरे के सब द्वार खुले पड़े हैं। जहाँ देखा वहाँ ग्रंथ ही ग्रंथ—फर्श पर, अलमारी म बेंचों पर, हर जगह पुस्तकें ही-पुस्तकें। घर भरा पड़ा है।

कहीं हस्तलिखित ग्रथा का ढेर लगा है। एक कोने म मेज पर टाइपराइटर है और एक मेज पर उनके ग्रथ रखे हैं। दीवारो पर एक भी चित्र नही है। द्वार पर रागाजी का चिह्न नहीं। द्वार पर कभी आम की वदनवार बाधी होगी ऐसा नहा लगता।

राज के प्रश्ना का उत्तर देते हुए रागप्पा कह रहा था— स्पशल वाड म हैं। व महिला स्पेशल वाड म हैं। अभी चलें ता हम अदर जाने देंग। डॉक्टर घर आया करते थ। घर की स्थिति दखकर कल सुबह डाक्टर न ही अस्पताल म भर्ती करन को कहा था। मैंने पडोस क प्रोफेसर का खबर दी। उन्हान अस्पताल का फान किया। अपनी कार म दोना को अस्पताल पहुँचाया। दिन भर मैं वहा रहा। प्रोफेसर भी अभी-अभी लौट हैं।'

टक्सी अभी गयी नहा थी। उसी स व सब रागप्पा के साथ अस्पताल गय। राज न अपन साथ दो चादरें और दो दुपटट ले लिए। अस्पताल पहुँचे ता रात्रि की जाँच करन क बाद सब डॉक्टर जा चुके थ। विशेष वार्डो म कवल नर्स थी। उसने कहा कि डॉक्टर की अनुमति के बिना किसी का अन्दर नहा रहने दिया जा सकता। राज डॉक्टर से मिला। अपना परिचय दिया। 'दानो बेहोश हैं। आप लोगा को चुपचाप मा जाना पडगा। चलिए।' डॉक्टर उन्ह वाड म ल गया। पुरुषा के एक विशेष वाड म डा० राव एक पलग पर लिटाय गय थे। सफेद बिस्तर के उपर लट हुए रागी का लाल शाल ओढा था। पास ही दवा आदि रखने के लिए एक स्टड। उसम लटका था कस हिस्ट्री पेपर। पलग के नीचे एक कान म पेशाब के लिए बरतन। कमरे म अकेले। द्वार पर नस के बठन क लिए एक कुर्सी थी। डा० राव की दाढी बढ़ी हुई थी। चश्मा उतार दिया था। पलकें मुदी हुई थी। सफेद ज्योतिहीन चेहरा, दखन वाला का भयभीत कर देता था। इस बेहाशी म भी साँस नियमित चल रही था। नागलक्ष्मी और पृथ्वी का वहा छाड राज और कात्यायनी के साथ डाक्टर विशेष महिला वाड म गय।

पति की स्थिति देखकर नागलक्ष्मी को बडा आघात लगा। राज क वहाँ स चल जान क बाद उमड पड़े दुख का दबा न सकी। जार-जार स रान लगी। सात्वना दत हुए नस न कहा— मत राओ बहन ! धीरज

रखो। बड़े डाक्टर ने इंजेक्शन दिया है कल तक होश आ जायगा।' नागलक्ष्मी के अपने-आपको सँभाल लेने के बाद नर्स ने पूछा— आपसे इनका क्या सबंध है बहन ?'

'मेरे पति हैं।

महिला वार्ड म जो महिला हैं व पत्नी नहीं हैं क्या ?

हाँ !

आप शायद इनके छोटे भाई के साथ रहती हैं। अभी जो आये थे वे आपके देवर हैं न ? कहाँ बेंगलूर म रहते हैं ? इन दोनों को यहाँ जिन प्रोफेसर ने दाखिल कराया था व शाम को आये थे। डाक्टर से कह रहे थे कि छोटा भाई बेंगलूर में रहता है उसे तार दिया है। न जाने अब तक क्यों नहीं आये ?

नर्स नागलक्ष्मी से धीरे-धीरे बोलती जा रही थी। पृथ्वी चुपचाप खड़ा था।

राज और कात्यायनी के पहुँचने के कुछ ही समय पहले रत्ने को होश आया था। लेकिन किसी को पहचानने में वह असमर्थ थी। डाक्टर ने पहले ही बता दिया था कि रोगी से बात न करें। रत्ने की हालत चिन्ताजनक है। अब मधुरस के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। बुखार के कारण उसकी आँखों की कांति घट गई है। डाक्टर ने बताया — शहर भर में फ्लू फैला हुआ है। ये दोनों उसके शिकार हैं। सुनते हैं उनके पारिवारिक डाक्टर ने ठीक कर दिया था। इस रोग के लिए काफी आराम की आवश्यकता पड़ती है। डाक्टर की सलाह न मानी। दोनों पढ़ाई लिखाई में लग गए। तीन दिन के बाद अचानक पुनः बुखार चढ़ गया। सुबह उनके डाक्टर के आने तक दोनों अर्ध-बेहोश हो गए थे। वे प्रोफेसर इन्हें यहाँ न लाते तो न जाने क्या होता ! अब डर नहीं है। आपके भाई का भी होश आ जाय तो धीरज बँधेगा।

एक दुपट्टा और एक चादर कात्यायनी को दी और उसे वहाँ मौन को कहकर राज पुरुष वार्ड में आया। एक दुपट्टा और एक चादर नागलक्ष्मी को देकर यहीं सोने को कहा। रात के भोजन का समय बीत चुका था। रागप्पा ने घर से खाना बना लाने के लिए पूछा था। कुछ नहीं चाहिए—कहकर राज पृथ्वी को लेकर रागप्पा के साथ घर की

आगे चल पड़ा।

दूसरे दिन सुबह डॉ० राव होश में आये। लेकिन पहचानने और बात करने योग्य होने में और तीन दिन लगे। डाक्टर ने उनमें अधिक न बोलने की चेतावनी दी थी। नागलक्ष्मी और कात्यायनी स्नान और दोपहर के भोजन के लिए घर आती थीं। उनका रात का खाना रोगणा अस्पताल में ले जाता था। पत्नी अस्पताल और घर के चक्कर काटता। रोज दोनों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में लगा रहा।

होश आने के एक दिन बाद डॉ० राव लोगों को पहचानने लगे लेकिन बोलने की शक्ति नहीं थी। लेटे-लेटे ही देखा नागलक्ष्मी फर्श पर बैठी दिखाई दी। उन्हें तुरंत विश्वास न हुआ। फिर भी अंदाज लगाना कठिन नहीं हुआ कि बेहोशी की अवधि में यह सब हुआ होगा। नागलक्ष्मी भी जान गई थी कि पति उसे देख रहे हैं। कमरे में और कोई न था। नर्स भी आवश्यकता पड़ने पर बुलाने को कहकर, पास के कमरे की दूसरी नर्स से बात करने चली जाती थी। नागलक्ष्मी को नहीं सूझा कि क्या करे। सोचा उठकर उनके पास जाऊँ लेकिन सिर झुकाए वहाँ बैठी रही। कुछ बोलने के लिए डा० राव के ओठ हिले लेकिन कमजोरी के कारण बोल न सके। लज्जा, क्रोध, करुणा, प्रेम और सूक्ष्म प्रतिकार से मिश्रित संकीर्ण भाव नागलक्ष्मी के मन में उठ रहे थे। एक भाव उसे एक ओर खींचता तो दूसरा उतनी ही शक्ति से उसे दूसरी ओर खींचता। इसी खींचतान के बीच वह निष्क्रिय-सी बनी रही। आधा घंटा निरंतर सिर झुकाए रहने के पश्चात् इन भावों का त्याग, उसकी आंतरिक शक्ति ने सिर ऊपर उठाया। लेकिन अब तक डॉ० राव आँखें मूँदकर सो चुके थे।

नागलक्ष्मी उठकर पति के पास खड़ी हो गयी। अपना हाथ धीरे से उनकी भुजा पर रखा और झुककर पाँच मिनिट तक उनके चेहरे को अपलक निहारती रही। उन्हें नींद आ गई थी। बीच में एक बार लगा कि उनकी श्वास की गति में सूक्ष्म परिवर्तन से वे जाग जायेंगे। तुरंत हाथ हटाया और पहले जहाँ बैठी थी वहीं सिर झुकाये बैठ गयी। उस पूरे दिन और दूसरे दिन वह तिरछी नजर से उनके चेहरे को देखती रही

हो उठते।

एक दिन नागलक्ष्मी का हाथ पकडकर भावपूर्ण आवाज म डॉ० राव ने कहा— इस बार तुम आ गइ न।

न आती तो और क्या करती? आपस मेरा झगडा थोडे ही है? हमारी किस्मत कि ऐसे अनथ हुए। फिर भी हमारा सबध थोडे ही झूठा हो सकता है।' कहते-कहते उसकी आवाज भारी हो उठी।

पाँच मिनट चुप रहने के बाद पुन पूछा— राज की पत्नी भी अच्छी लडकी है। वे पथ्वी और तुम्हारी अच्छी तरह से देखभाल करते हैं न?"

हूँ'

उस दिन इतनी ही बात हुई। दो दिन के बाद पथ्वी कमर म आया था। उसके माता पिता बात करन म लग हुए थे। भीतर आया और सिर झुकाकर खडा हो गया। 'यहाँ आओ बेटे डा० राव ने बुलाया। पास आया तो उसका हाथ पकडकर पूछा—' अब किस कक्षा म हो?

जूनियर इटर कर चुका हूँ।

' अब बडा हो गया है। मुझे अच्छी तरह स पहचानता है न?"

'हूँ।

पाँच मिनट रहकर वह वहाँ से चला गया।

और एक दिन नागलक्ष्मी का हाथ पकडकर उन्होने कहा—' नागु मुझस विवाह करके तुम्हे जीवन भर कष्ट झेलना पडा।'

बिलकुल नही।

' मैं समझ सकता हूँ।

"तो फिर आपने मुझे क्या त्याग दिया? डा० राव के पास कोई उत्तर न था। नागलक्ष्मी बोलती गई— मझे वहाँ किसी तरह का कष्ट व कमी नहा है। राज मुझे पहले स अधिक स्नेह विश्वास, सहानुभूति से देखता है। कात्यायनी भी छोटी बहन की तरह व्यवहार करती है। फिर भी आपके साथ रहने म जो सुख है वह कहा! वह आनन्द कहाँ जो आपकी सेवा करन म मिलता है!

डा० राव चुपचाप लेटे थ। नागलक्ष्मी की बात जारी रही—"आपने उसस विवाह कर लिया। वह भी एक योग है। मैं नही चाहती कि वह आपके साथ न रहे। लेकिन म आपकी तन्दुरुस्ती की ओर जितना

ध्यान देना चाहती हूँ वह और किसे आता है? आपकी आँखें पहले की अपेक्षा अधिक माटी हो गई है। शरीर म बूद भर रक्त नही मिलेगा मुट्ठी भर मास नहा मिलगा। छाती की हड्डियाँ निकल आई हैं। रागप्पा भले ही श्रद्धा भाव म खाना पकाए उसे खाना पकाना नही आता। पद्रह दिन स हम भी वह खाना खा रहे हैं न। पट भर भोजन करेंगे तो आपकी तदुरुस्ती सुधर जायेगी। म होती तो एक बार तल मलकर स्नान कराती।"

डा० राव का व दिन याद आन लगे जब व नागलक्ष्मी के साथ रहत थे और वह उनके स्वास्थ्य के प्रति सदा सजग रहती थी। जबदस्ती पकड कर हर सप्ताह तल मलती फिर स्नान कराती। रात के भोजन के पश्चात् व आरामकुर्सी पर बठत तो फश पर बठकर उनके दोना परो के तलवो म अडी का तल मलती थी। हर रोज नई-नई साग-सब्जी पापड बनाती आग्रह करके पट भर खिलाती। तब उनकी सेहत इतनी खराब नही थी।

म अब भी एक बात कहना चाहती हूँ। सुनेंगे?

कहो।

अब भी मैं आपक साथ रहना चाहती हूँ। उसे भी रखिए। आप दोना के सम्बध बनाये रखने मे मुझे काई एतराज नही होगा। राज स सुना है कि वह भी आपकी आवश्यक सहायता करती है। रागप्पा चाहे तो बाहर का काम करता रहेगा। म आप दाना का खाना तयार करूँगी। सप्ताह म एक बार आपको नहलाऊँगी। आपको स्वीकार है? कहते-कहत आसू छलक आय। उसे लग रहा था कि वह अपन व्यक्तित्व की एक नई स्थिति का स्वय प्रस्ताव रख रही है। अपने म अब तक बचे अमूल्य अभिमान की बलि देकर यह प्रस्ताव उसकी अतरात्मा को विचलित कर रहा था।

नागलक्ष्मी की बाता स डा० राव का मन पसीज उठा। पत्नी को इतने दिना तक भुलाने के लिए अपने आपको कोसने लगे। बचपन के व दिन याद आन लगे जब व अनाथ हो मामा के घर रहत थ। नागलक्ष्मी के साथ जो केवल तेरह वष की थी मसूर आकर कितन विश्वास स घर बसाया था। हँस हँसकर घर का कामकाज करती थी। घर खच ही नही, बल्कि मेरे अल्प वेतन म स ग्रथ खरीदने के लिए पसे भी बचा लेती थी।

पति का कितने जतन से, बच्चे की तरह देखा करती थी। गत दस वर्षों में कभी कभी लगता था कि जीवन में कोई अमूल्य वस्तु गँवा बैठा हूँ। अब वही वस्तु खोजती हुई स्वयं उनके पास आई है। भावविभोर होकर उन्होंने कहा— अवश्य ऐसा ही करो। मेरी भूलें भुला दो। तुम और पृथ्वी दोनों यहीं रहो।

पति के हाथों को विभोर भाव से दबाकर वह बोली—'पृथ्वी को वहाँ रहने दो। उसे ले आयेंगे तो राज और कात्यायनी का दिल टूट जायगा। इस बारे में बाद में बताऊँगी।'

दूसरे दिन रत्न को होश आया। कात्यायनी सामने एक कुर्सी पर बैठी थी। रत्न तुरन्त पहचान न सकी। उसने एक अजीब भाव से कात्यायनी को देखा। कात्यायनी ने पूछा—"क्या आप मुझे पहचानती है?' उसने धीरे से कहा— याद तो है कि कहीं देखा है!"

"मैं कात्यायनी हूँ।

हूँ!" पहचानकर रत्न के चेहरे पर मुस्कराहट दौड़ी। "अब समझ गयी। पाँच वर्ष पहले आपको बेंगलूर जाते हुए देखा था। कब आइं?'

उतने में उसे थकावट महसूस हुई और आँख मूदे सो गयी। एक घण्टे के बाद आँख खुली तो पूछा—'वे कहाँ है? कैसे हैं?'

'बेंगलूर से हम सब आये है। आपके देवर और दीदी भी। दीदी उनके पास हैं।

अच्छा!' रत्न ने पुनः आँखें मूद ली।

तीसरे दिन वह अच्छी तरह बोलने योग्य हो गयी। सुबह नौ बजे कात्यायनी को स्नान के लिए घर भेजने के निमित्त राज वहाँ आया। रत्न बोली— आप लोग आ गये। ऐसे समय में आप लोगों के अलावा हमें और किसका सहारा है? आपको पता कैसे लगा?'

'रागप्पा ने तार भेजा था।

उस दिन राज कात्यायनी के बारह बजे लौटने तक रत्न के पास ही बैठा बातें करता रहा। रत्न बोली—'इस बार लगता है आप दुबले हो गये हैं! कात्यायनी का दुबला होना समझ में आता है। शायद मानसिक चिंता ने आपके स्वास्थ्य पर काफी प्रभाव डाला है!

वसी कोई बात नही है '—वह ऐसे प्रश्नो से बचना चाहता था।

शेपहर का कात्यायनी आयी तो राज घर गया। उसके जाने के पश्चात रत्न ने दो घण्टे की नींद ली। कात्यायनी ने आधा गिलास ग्लूकोज युक्त मौसबी का रस लिया। पीकर वह बोली तकिया को जरा-सा ऊँचा कर देगी ? कुछ देर सो लू। कात्यायनी ने रत्ने का सिर अपने हाथ म थोडा उठाया और एक छोटा तकिया उसकी भुजा के नीचे रख लिया। वह करवट बदलकर आराम महसूस करने लगी। रत्ने बोली आप बहुत सेवा कर रही है। समझ म नही आता कि इस सौजन्य के लिए क्या कहूँ ?'

मैं किसी पराये की सेवा तो कर नही रही ! सौजन्य की बात ही कहाँ है ? जेठ की पत्नी बडी बहन होती है—उनकी सेवा करना तो मेरा कर्तव्य है।

यह सुन रत्ने हर्षित हो उठी। इस बात से तृप्ति भी हुई कि इस देश म भी उसे सम्बन्धी की तरह आत्मीयता से देखने वाले हैं। इस तृप्ति का अनुभव कर दो मिनट पश्चात रत्न बोली— जब आपके साथ दुर्घटना घटी तो राज छुट्टी मजूर कराने के लिए इनके पास आये थे। उस समय मुझे वहाँ जाकर आपकी सेवा करनी चाहिए थी। लेकिन उस समय चौथे खण्ड के टाईपिंग काय म बहुत व्यस्त थी। प्रकाशकों ने खण्ड के प्रकाशन की तारीख घोषित कर दी थी। इसके अलावा सोचा कि मेरा वहाँ जाना उचित भी नही होगा। कात्यायनी चुपचाप बैठी थी। रत्न कहती गई—' राज ने सारी बातें बता दी हैं। ऐसा नहा होना चाहिए था। वे कह रहे थे प्रारंभ से ही हर तरह की सतर्कता बरती थी। ऐसी कई एक घटनाएँ घटती हैं जिन पर हमारा वस नही चलता। आप इसे अधिक मन म न ल। आप इतनी दुबली हो गई है कि एकाएक पहचानना कठिन हो गया है।

पृथ्वी कमरे म प्रविष्ट हुआ। उसके हाथ म मौसबी से भरा एक थैला और दो इजेक्शन टयूब थे। कात्यायनी को देते हुए उसने कहा— 'चाची, डाक्टर के बताये इजेक्शन मिल गये हैं। गोलियाँ कही नहा मिली। एक दूकानदार ने बताया कि कल तक आ जायेंगी। डाक्टर के आने पर बता देना।

इतना कह वह जा ही रहा था कि रत्ने ने उसे बाय, कम हियर ,

बुलाया। वह वहीं खडा हो गया। 'यही है आप सब लोगा का बेटा पथ्वी ?' वसे पथ्वी यहां कई बार आया, लेकिन अपनी दूसरी माँ को जाग्रतावस्था म नहीं देखा था। निद्रावस्था म कई बार देखा था। अपना नाम करव वह वहा म निकल जाता था। अब वही बुला रही है। पथ्वी को सकोच हुआ। खडा दीवार की आर देखता रहा। 'कम नियर मी', रत्न न कहा। वह नहीं हिला। कात्यायनी कुर्सी स उठकर उसके पास जाकर कन्नड म बोली— पास जा, सकोच क्या कर रहा है ? कुछ हद तक रत्न यह समझ गयी लकिन वह कन्नड म बात नहीं कर पाती थी। पृथ्वी उसक पलग क पास जाकर दीवारा को निहारता खडा हो गया। रत्ने न उस गार स देखा। मुख-मुद्रा माँ की और शारीरिक गठन, आँखें व नाक पिता की-सी। लडका स्वस्थ और हृष्ट पुष्ट था। कामती शट, ऊनी पट पहन था। इतन कीमती कपडे शायद राज भी नहा पहनता था। पैरा म लाल रग क जूत चमक रहे थे। बायें हाथ म घडी थी। रत्न न अदाज लगा लिया कि लडके का पालन-पोषण उचित ढग स हो रहा है। अग्रेजी म उसने पूछा— तुम्हारा नाम क्या है ?

पथ्वी।

"पथ्वी ! बहुत सुदर नाम है। यह शब्द भारत के इतिहास म जब कभी आता है मुझ भाता है। पूण नाम क्या है—पथ्वीराज, पृथ्वीकुमार या पथ्वीपति ?

'पथ्वीराज।

'अच्छा है ! बता सकत हो यह नाम किसने रखा ?

'मरे चाचा न।

कात्यायनी बीच म ही बाल उठी— कहत हैं इनके चाचा ने इसलिए यह नाम चुना था कि रगमच के एक प्रसिद्ध अभिनता का यह नाम है। और पिता न इसलिए स्वाकार किया कि यह भारत के इतिहास म अमर एक वीर का नाम ह।

दाना का प्रिय नाम है'—कहकर हाथ पकडा और रत्न न पलग पर बठा लिया। पथ्वी को बठने म सकोच हो रहा था। 'किस कक्षा म हो ?'

'अब इटरमीडिएट का प्रथम वष पूरा कर लिया है।'

आगे क्या बोले यह न समझकर रत्न भी चुप हो गई। लेकिन वह अपने बायें हाथ को पथ्वी के दाहिन हाथ की हथेली पर रखकर लेटी थी। मन न जान किस भाव-लहरी म लीन था। नन्दी पहाडी उस याद आई। पास ही कुर्सी पर बठी कात्यायनी मा हथली पर उसका हाथ लिए पलग पर बठा पथ्वी उसे समझ न सके। वह चुपचाप ऐस सो गयी मानो किसी भाव लोक म विचरण कर रही हो। पथ्वी कुछ दर वस ही बठा रहा। सकोचवश वहा के वातावरण म उसका दम घुटने सा लगा। धीरे स उठकर अपना हाथ हटाया। अनभिन सी वह लेटी रही। धीरे धीर पग बढाय आर कमर स निकल गया। आध घटे तक रत्न यो ही लेटी रही।

दो दिन बाद रत्न ने कात्यायनी स पूछा — जब आप बीमार पडी थी न तब राज आये थे। अपन मया स कह रह थ कि पुन गभवती होन से आपके जीवन को खतरा है। क्या यह सच है ?

हाँ।

कुछ क्षण मौन। रत्न शायद समझ गई थी कि कात्यायनी दुबली क्या हो गई है। उस अपनी स्थिति भी याद हो आई। वह मा बन सकती थी लेकिन एक महान ध्यय साधना क निमित्त त्याग करना पडा। दूसरी ओर कात्यायनी चाहकर भी दहिक असामथ्य के कारण माँ नही बन सकती। वह यह भी समझ गई कि जब राज पहले जसा हृष्ट पुष्ट क्या नही है। उसन कहा— मा बनन की अदम्य इच्छा हर स्त्री की सहजमूल प्रवत्ति है। जब उसम सफलता नही मिलती तो विचारा को किसी और काय म प्रवत्त कर तप्ति प्राप्त की जा सकती है। आप दोनो ग्रथ रचना म मन लगाइए।

ग्रथ रचना सब नही कर सकत। आप लोगो म जो अध्ययन की प्रवत्ति है वह हम दोनो म स किसी म नही है। हमारा मनोधम ही भिन्न है। परिणामस्वरूप जीवन क्रम भी भिन्न है और वह अनिवाय भी है।

इतने दिन बीतन पर भी किसी न नागलक्ष्मी के बारे म बात नही की। रत्न स्वय इस बार म बोलना नहा चाहती थी। यह सोचकर कि उसके मन को ठेस पहुचगी—कात्यायनी कुछ न बोली। जस जसे रत्न मे बोलने की शक्ति आती गई वस वस वह नय ग्रथ की योजना ग्रथ का मूल ध्येय, लेखन मे प्रगति आदि विषयो के बारे म सुनाती गई। केवल

एक बार अपने माता पिता, भाई के बारे में बात की थी। कात्यायनी के दूसरे विवाहित जीवन की पूर्ण अवस्था के बारे में भूलकर भी उसने कभी प्रश्न नहीं किया। कात्यायनी का एक बेटा है रत्ने जानती है, लेकिन कभी बात नहीं उठाई। परस्पर अन्तःकरण को चुभने वाली बातों से वे दोनों बचती रहीं।

डॉ० राव और रत्ने को अस्पताल से छुट्टी मिल चुकी थी। डा० राव अब भी अशक्त थे। रत्न काफी तन्दुरुस्त हो चुकी थी। उनके अस्पताल में रहते हुए चतुर्थ खण्ड की प्रतियाँ आ गई थीं। वे एक प्रति लेकर आराम-कुर्सी पर पीठ टिकाये बैठ गये और एक एक पृष्ठ पलटने लगे। ग्रंथ देखने में न उनका ध्यान था और न कोई निश्चित उद्देश्य ही। कुछ किये बिना चुपचाप बैठने की आदत नहीं थी, इसलिए वे पृष्ठ पलट रहे थे। अपने ग्रंथ का तृतीय खण्ड स्वर्गीय मैसूर महाराजा की स्मृति में अर्पित किया था। यह चतुर्थ खण्ड नंजनगूडु के श्रीनिवास श्रोत्रिय को अर्पित था। पंचम खण्ड की रूपरेखा उनके मन में स्पष्ट रूप में थी। लेकिन उसके लिए अभी काफी सामग्री एकत्र करना आवश्यक था।

बेंगलूर से आये सभी लोग यहां थे। रसोइया रागप्पा अब बाहर के काम करता। नागलक्ष्मी की बनायी रसोई सबको भाती थी। कई वर्ष के बाद डा० राव को पुनः सुस्वादु भोजन मिलने लगा था। सब एक साथ भोजन करने बैठा करते थे। रत्न भी उनके साथ बैठती। नागलक्ष्मी सबको परोसती। अब तक नागलक्ष्मी और रत्न में परस्पर बातें नहीं हुईं। नागलक्ष्मी रसोईघर से बाहर ही नहीं निकलती और रत्न कभी रसोईघर में नहीं जाती। वह सदा सामने वाले विशाल अध्ययन-कक्ष में रहती। राज और कात्यायनी वहाँ जाकर कुछ देर बातें करते। बाकी समय अपने टाइप किये नोट, टिप्पणी देखने में बिता देती। कभी-कभी डा० राव भी कमरे में आकर बैठ जाते, और दोनों पंचम खण्ड से संबंधित विषयों की चर्चा करने लगते। अस्पताल से घर लौटने के पश्चात् डा० राव और नागलक्ष्मी एकांत में बात नहीं करते थे। वे रसोईघर में आते तो बात करने को नागलक्ष्मी तैयार थी। लेकिन जैसे जैसे उनकी सेहत सुधरती गई, वैसे वैसे उनका ध्यान अगले खण्ड की ओर प्रवृत्त होने लगा। पृथ्वी मैसूर के

सभी दर्शनीय स्थल—वृदावन नदी पहाडी, ललित महल श्रीरंगपट्टण आदि देखने को उत्सुक था। इसीलिए उसके काका ने उसकी जिद भर दी थी।

राज ने सोचा शायद इस बार नागलक्ष्मी और रत्न का परस्पर परिचय हो जाने के कारण डा० राव नागलक्ष्मी को यहा छोड जाने के लिए कहेगे तो भाभी से दूर रहना मुश्किल लगेगा। नागलक्ष्मी की उपस्थिति से उसे एक तरह का मनोबल मिलता था। जब से उसने होश सँभाला है बीच के विदेश निवास के दो वर्ष छोडकर भाभी से कभी अलग नही रहा। राज को इस बात की शका थी कि अगर भैया ने भाभी से मसूर में ही रहने का प्रस्ताव किया तो वह उसे स्वीकार कर लेगी। फिर भी वह चाहता था कि नागलक्ष्मी अपने पति के साथ रहे। पत्नी को छोडकर रहना राज के लिए असम्भव था। एक दिन उसने अपने ये विचार कात्यायनी को बताये तो वह बोली— मेरी दृष्टि में उनका इस तरह कहना और कहने पर दोनो का स्वीकार कर लेना कठिन है।

अस्पताल में रहते समय नागलक्ष्मी ने जो कुछ कहा था डाक्टर को याद था। उन्हे घर लौटे एक महीना हो गया था। राज ने कहा कि तीन-चार दिन में वे सब बेंगलूर लौटना चाहते है। एक शाम डा० राव रत्न के साथ टहलने निकले। इस तरह बाहर निकले करीब दो महीने हो गये थे। राज और कात्यायनी के बारे में बातचीत करते हुए दोनो कालेज के पीछे के मैदान में आ गये। छुट्टी होने के कारण वहा कोई न था। वे एक पेड के नीचे बैठ गये। डा० राव ने कहा— एक मुख्य विषय पर बात करनी है।

वह क्या ? —भय मिश्रित उत्सुकता से रत्ने ने पूछा।

इस बार नागलक्ष्मी को यहा रख लें।

रत्न कुछ न बोली। गभीर हो सिर झुकाये बैठी रही। उसके चेहरे और मन के भावो को परखने की कोशिश करते हुए डा० राव ने कहा— इस बार बीमारी में उसने मेरी काफी सेवा की। वह कही भी रहे तुम्हारे प्रति किसी तरह दुराव नही रखेगी। रागप्पा के बदले वही हम दोनो की रसोई बनाया करेगी। अपनी देखभाल की जिम्मेदारी भी उसी पर डाल-

कर निश्चिततापूर्वक शोध कार्य की ओर हम अधिक ध्यान दे सकेंगे। और फिर सदा के लिए उसे दूर रखना मेरी ओर से एक प्रकार का नैतिक अपराध भी होता है। इस पर सोच लो।'

रत्न विचारों में डूब गयी। नागलक्ष्मी के प्रति उसमें तिरस्कार भाव या द्वेष जलन नहीं—सहानुभूति ही थी। नागलक्ष्मी अपने पति से जिस दाम्पत्य की अपेक्षा करती थी, रत्न उससे एक भिन्न सम्बन्ध चाहती थी। वह अपेक्षा इतनी मिली कि रत्न संतुष्ट हो गई थी। एक निर्दोष पत्नी के प्रति जो दृश्य सँभालने के पहले से पति के साथ रहती आई है, पति से दूर रहते देखकर उसे सहानुभूति ही थी। अगर डॉ० राव नागलक्ष्मी को किसी तरह की सहायता देना चाहते हैं तो उसे कोई एतराज नहीं। लेकिन एक ही घर में एक पति के साथ दो पत्नियों का रहना उसे असह्य लगा। यह कल्पना भी उसके मन में एक तरह की घृणा पैदा कर देती थी। अपनी पढ़ाई के सिलसिले में उसने द्विपत्नीत्व, त्रिपत्नीत्व, बहुपत्नीत्व के बारे में पर्याप्त पढ़ा था। अनेक कारणों से राजे-महाराजे एवं सामान्य जन भी एक से अधिक पत्नियों को अपनाते थे। वह सोच रही थी कि भले ही वे स्त्रियाँ कितनी भी शांत गुण वाली हों, मानव प्रवृत्ति से मुक्त नहीं थी। वे द्वेष जलन साथ ही अतृप्त आशाओं आदि के कारण अनेक विकारों से कराहती रही होंगी। यूरोप के पारिवारिक जीवन का भी अवलोकन किया था रत्न ने। पति या पत्नी अयोग्य साबित होते ही वैवाहिक बंधन से तलाक लेकर योग्य व्यक्ति से विवाह कर लेते थे। अगर डॉ० राव इंग्लैंड में जन्म लेते, तो मुझसे विवाह करने से पहले उन्हें अपनी पहली पत्नी को तलाक देना पड़ता। यह वहाँ का कानून ही नहीं, अपितु जन सामान्य का सामाजिक संस्कार भी है। डॉ० राव ने जब रत्न से विवाह किया तब इस देश में द्विपत्नीत्व के विरुद्ध कानून नहीं बना था।

चुप क्यों हो? बोलो?' डॉ० राव ने पूछा।

रत्न, जो अब तक चुप थी धीरे से बोली—'उनकी ओर ध्यान न दें, ऐसा मैंने कभी नहीं कहा। अब भी एक अलग घर में उनके साथ रह सकते हैं या मुझे अलग मकान दिलाकर इस घर में आप लोग रहिए। जिस उद्देश्य के लिए हम दोनों का विवाह हुआ है, उस साधना को निरंतर चलाते रहना चाहिए। आप अलग रहें तो भी मैं सह लूँगी।

सह-जीवन क विना क्या सिफ साहित्य निमाण म तुम लगी रह सकती हो ?

रह सकती हूँ उसने तुरत कह तो दिया लेकिन आवाज कॉप रही थी। अरा कपित हाथों स उसने उनका दाहिना हाथ पकड लिया। उसकी आँखें डबडबा आइ।

तुम्ह यह हठ क्या है ?

हठ नहीं। शुरू से पले मनोभाव का प्रभाव है। द्विपत्नीत्व को मैं स्वीकार नहा करती। फिर भी हम एक विशिष्ट उद्देश्य के लिए मिले थ। उस उद्देश्य क पूण होन म ही मरी तृप्ति है। वह मर जावन का सौभाग्य ह। इतन दिनो क अपन सहजीवन म अध्ययन जीवन के अतिरिक्त भावना-जीवन म भी हम एक रह हैं। इतना होते हुए भी मैं उनके जीवन म बाधक नहीं बनना चाहती। आप दो घर बसाइए। वहाँ भी रहिए और यहाँ भी। म मना नहा करूँगी।

रत्न क स्वभाव से डा० राव परिचित थे। उसकी इच्छा शक्ति प्रबल थी। व जानत थ कि उसके निणय को बदलना असभव है। चलो, उठो —कहकर व उठ खडे हुए। घर लौटन तक अँधेरा हो गया। मदान म पर्याप्त प्रकाश नहा था। रत्न उनका हाथ पकडे चल रही थी। रास्ते म उसने पूछा— क्या निणय किया है आपन ?

सोच रहा हूँ।

रात भर डा० राव इसी बारे म सोचते रहे। दो परिवारो की व्यवस्था उन्ह पसन्द न थी। नागलक्ष्मी के लिए अलग घर बनान पर भी अपन अध्ययन काय क लिए उन्हें रात के समय रत्न के साथ ही रहना पडेगा। उनका सारा दिन पुस्तकालय म बीतता था। केवल दो बार नागलक्ष्मी क घर जाना और वहाँ उसका एकाकी जीवन बिताना उन्ह उचित न लगा। यह कसी परिस्थिति है व अपन आप सोचत रह। रत्ने के मनोभाव स व असन्तुष्ट थ लकिन उसक सस्कार और विद्या क प्रभाव स पूणत परिचित थ। किस द्वन्द्व म मेरा जीवन उलझ गया है ? इसी असताप की एक दीघ नि श्वास निकल पडी।

मद के साथ राज के बेंगलूर रवाना होन म केवल तीन दिन शेप थे। नागलक्ष्मी बडी आशा किए बठी थी कि आज या कल पति उसके

बारे में निर्णय करेंगे। वह यह सोच रही थी कि इतने दिन राज, कात्यायनी और पृथ्वी के साथ बिताये अब उनके बिना कैसे रह सकती है? ये दोनों तो पढ़ाई में व्यस्त रहेंगे। यहाँ भी 'श्रीरामनाम' लिखकर और उनकी सेवा में समय बिताया करूँगी—उसने अपने मन को समझाया। रवाना होने का दिन आया। लेकिन इस बारे में कोई बात ही नहीं हुई। वह स्वयं पति के पास जाकर पूछना चाहती थी लेकिन उसके अभिमान ने रोक लिया। आखिर उसने राज को अन्दर बुलाकर पूछा—

"तुम्हारे भैया ने कुछ कहा?"

'किस बारे में?'

"कुछ नहीं" कहकर नागलक्ष्मी चुप रह गई। राज के पुनः पूछने पर भी वह न बोली। रवाना होने से पहली रात को वह सो न सकी। बार बार आँसू निकल पड़ते थे। मन को समझाने की कोशिश करती रही कि गत ग्यारह वर्ष से इसी तरह जीवित रही तो अब क्या रोऊँ? परन्तु भरसक प्रयत्न करने पर भी दुःख असह्य हो उठा। रात भर न सोने के कारण सुबह जल्दी उठी। नाश्ता तैयार किया। कात्यायनी से सबको देने के लिए कहा। सुबह की गाड़ी से उन्हें जाना है। टैक्सी घर के सामने खड़ी है। राज ने सामान रखवाया। राज कात्यायनी और पृथ्वी टैक्सी के पास गये। पृथ्वी लौटकर माँ को पुकारने लगा। नागलक्ष्मी अंदर से भारी कदमों बाहर आई। डा० राव बँगले के बगीचे के फाटक के पास खड़े थे। उसने पति के चरण स्पर्श किये और बिना कुछ कहे ही टैक्सी में बैठ गई। डा० राव और रत्ने रेलवे स्टेशन तक छोड़ने नहीं जाते। टैक्सी चलने लगी तो डा० राव मुँह फेरकर आँसू पोंछ रहे थे। घर आँखों से ओझल होने तक नागलक्ष्मी सिसकती रही। पास बैठी कात्यायनी उसका हाथ पकड़कर कहने लगी—"दीदी, धीरज धरिए। हम जिस कार्य के लिए यहाँ आये थे वह सफल हुआ।"

"उन्होंने जो बात कही थी, उसे वे भूल ही गये" कात्यायनी की भुजा पर अपना मुख टेककर वह बोली।

'कौन-सी बात?' पीछे की सीट से राज ने प्रश्न किया।

मैंने कल पूछा नहीं था? रेल में सब कहूँगी—कहकर नागलक्ष्मी अपने मन को धीरज दिलाने लगी।

मजले पर तीनो बठे। डा० राव ने यत्न से चारो खण्ड श्रोत्रियजी के सामने रखकर कहा— यह है आपके आशीर्वाद का फल। एक खण्ड और शेष है। श्रोत्रियजी खण्डो को देखने लगे। उसका नाम, ग्रथकार का नाम प्रकाशन आदि पढने समझने लायक अग्रेजी उन्ह आती थी। हर खण्ड के प्रथम पष्ठ पर डा० राव ने कन्नड म लिखा था—

पूज्य श्रीनिवासजी श्रोत्रिय को

श्रद्धापूवक

—सदाशिवराव

चौथे खण्ड का दूसरा पन्ना उलटा तो श्रोत्रियजी को आश्चय हुआ। अग्रेजी म लिखे गये तीन चार शब्द समझ म नही आये फिर भी बडे अक्षरो म छपे यह खण्ड नजनगूडु के श्रीनिवासजी श्रोत्रिय को श्रद्धा-पूवक अर्पित है वाक्य को समझ गये। उसप ने की ओर अँगुली से इशारा करते हुए कहा— आपको यह नही करना चाहिए था।'

ऐसी बात नही। आपने इस ग्रथ रचना के लिए आर्थिक सहायता दी थी। आपके दान से मैंने लाभ उठाया है। इसके अतिरिक्त आपके आशीवाद से मेरी सकल्प शक्ति को प्रेरणा मिली काय का आगे बढाया है। इस खण्ड को आपके अलावा और किसको समर्पित करता!

इस किसी को भी क्या सर्मापित करना चाहिए? उन्होंने शात स्वर म कहा— ऐसे ग्रथो को लिखने के लिए भगवान से आपको प्रेरणा मिली। उपयुक्त साधन उपलब्ध करा देने के लिए उसी भगवान ने कुछ लोगो को प्रेरित किया। यह मेरा सौभाग्य है कि उन लोगो म मैं भी एक निकला। मैंने सुना है कि बडे महाराज ने अपने जीवन-काल म इसमे मदद दी थी। आपकी इस ज्ञान-पूजा म एक एक फूल देना हमारा भी कत्तव्य है न? अपने कत्तव्य की दष्टि से जो काय करते हैं, उसके लिए धन्यवाद समपण की क्या आवश्यकता?

डा० राव कुछ नही बोले। चुपचाप बठे रहे। श्रोत्रियजी दस मिनट तक खण्ड के पन्ने उलटते रहे। चित्रो को देखते रहे। कात्यायनी की ओर मुड कर पूछा—'हमारी बातचीत आपकी समझ म आती है न?

डा० राव समझ गये कि रत्न के बारे म श्रोत्रियजी जानते हैं। उन्होने कहा— पूणत नही। बातो के ढग से भाव ग्रहण कर लेती है। घर

के नौकरों से आवश्यक आठ दस वाक्य बोल लेती है।' पाँच मिनट तक कुशल समाचार होने के पश्चात श्रोत्रियजी "थोड़ा आराम कीजिए, अभी आता हूँ" कहकर नीचे उतरे। वह उनकी पूजा का समय समझकर डा० राव अपने बीच हुआ वार्तालाप रत्न को अंग्रेजी में सुनाने लगे। तत्पश्चात् श्रोत्रियजी के ग्रंथालय में जो मुद्रित एवं हस्तलिखित ग्रंथ थे, उन्हें वे दोनों देखने लगे।

रात के लगभग आठ बजे श्रोत्रियजी ऊपर आये और भोजन के लिए बुलाया। जहाँ बैठकर डा० राव ने इससे पहले भी भोजन किया था उसी स्थान पर केले के तीन पत्ते बिछा दिये गये थे। श्रोत्रियजी के "तुम भी खा लो बेटा" कहने पर चीनी भी खाने बैठ गया। "और आप?" डा० राव ने पूछा। "मैं परोसूँगा" श्रोत्रियजी ने कहा। डॉ० राव को पता न था। 'और वे ?' सोचे बिना ही फिर प्रश्न किया। 'वह बाद में बताऊँगा।' इस उत्तर से डा० राव सारी बात समझ गये। लगभग पन्द्रह वर्ष पहले एक दिन भोजन करते समय प्रश्न किया था, नंजुंड श्रोत्रिय कहाँ है? उत्तर में उन्होंने ऐसा ही कहा था। भोजन करते समय ऐसी अशुभ बात न कहने के विचार से ही ऐसा किया था। अब भी वैसा ही व्यवहार। लेकिन सत्तर पार कर चुके श्रोत्रियजी का इस तरह रसोई बनाकर भोजन कराते देखकर डॉ० राव को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कुछ नहीं बोले। अपनी पत्नी के रहते समय जिस तरह अतिथियों को आग्रहपूर्वक भोजन कराते थे, उसी तरह आज भी वार्तालाप करते हुए भोजन कराया। भोजन गर्म और स्वादिष्ट था।

भोजन के एक घण्टे पश्चात श्रोत्रियजी दीवानखाने में आये। इतने में चीनी ने ताम्बूल की थाली अतिथियों के सामने रखी। श्रोत्रियजी के आने पर डॉ० राव ने कहा—"आप पान खायेंगे?" उत्तर में श्रोत्रियजी बोले—"नहीं, उसे भी छोड़े बहुत दिन हो गये। इसके अतिरिक्त मैं अब पूर्ण गृहस्थ भी नहीं हूँ।"

"कितने दिन हुए? क्या हुआ था?"

'दो साल हुए। और क्या होगा? बुढ़ापा था। साठ साल की उम्र थी। इस युग में शतमानं भवति तो केवल मंत्र में रह गया है'—कहकर श्रोत्रियजी हँस पड़े।

डॉ० राव का बडा दुख हुआ। और कोई पत्नी का या बैठता तो शायद सात्वना की बात कहत। लकिन यह सोचकर कि सामने बठ हुए इम वद्ध को सात्वना देने की क्षमता आयु ज्ञान या मन की परिपक्वता किसी भी दृष्टि से किसम है व चुप रहे। फिर भी उन्होंने पूछा—'आप अन्यथा न समझें तो एक बात कहना चाहता हूँ।

कहिए इसम क्या है।

हम तीन चार दिन यहाँ रहन वाले हैं। आप हम पकाकर खिलायें, यह मुझस देखा नहीं जाता। वास्तव म चाहिए यह कि हम यह काम करें। लकिन इसका (रत्न का) जन्म धम भिन्न है। कल स यह हम दोना के लिए एक कमरे म अलग पकाया करेगी। एक सिगडी दो बरतन थोडा सा चावल एक कमरे म रखवा दीजिए। बस!

आप दाना के लिए मैं अलग थोडे ही बनाता हूँ ? हम तीना क लिए जिस बरतन म पकता है उसी म थोडा सा चावल अधिक डाल देता हू। जिसम दाल बनाता हूँ उसी म थोडी अधिक दाल और पानी डाल देता हूँ। बस रसोई की होड खूप समाप्त! उमस इस बूढे को कष्ट कम हो सकता है ? आप न हिचकिचायें।

इधर उधर की बातें होने के बाद विद्वत्तापूर्ण चर्चा शुरु हो गई। उस रात बारह बजे तक व सब चर्चा करते रहे। तत्पश्चात श्रोत्रियजी उन्ह मजल पर लिवा ले गये। वहाँ उन दाना क लिए बिस्तर बिछा दिया गया था। 'अब सो जाइए कल बात करेंग —कहकर व नीच उतर आय।

डा० राव पत्नी के साथ वहाँ चार दिन रहे। रत्ने क मन म श्रोत्रियजी क प्रति आदर भाव जाग उठा था। बुढापे का महत्ता उसने देखी थी। स्वय उसके पिता न अपन बुढाप म आयु की परिपक्वता का अनुभव किया था। इग्लड म भी कई प्राध्यापक एस थ। लकिन उसन अनुभव किया कि श्रोत्रियजी का व्यक्तित्व असाधारण है। उसन भारतीय पुराण साहित्य आदि विषयो से सबधित अनेक ग्रथा का अध्ययन किया था। भीष्म वशिष्ठ धमराज राम आदि पात्रो की स्पष्ट कल्पना उसे थी। वह ठीक-ठीक यह बताने म समय थी कि किसी विचित्र परिस्थिति म व पात्र किस

तरह व्यवहार करेंगे। अब श्रोत्रियजी को देखकर उसे वे पात्र याद आ गये। वह जानती थी कि उनकी बहू मेरे देवर से विवाह करके इस परिवार से बाहर गयी है। श्रोत्रियजी भी जानते हैं कि डा० राव के कारण ही कात्यायनी का राज से परिचय हुआ। लेकिन उन्हें राज के बड़े भाई के प्रति तनिक भी क्रोध नहीं है। सत्तर पार करने पर भी उनके चेहरे की चमक कांति कायम है। हर आचार विचार में सज्जनता, संस्कृति झलकती है। वे रोज रात के तीन बजे उठकर स्नान करने नदी पर जाते हैं और भगवान की पूजा में लग जाते हैं। उससे निवृत्त होकर सात बजे मेहमानों को कॉफी देते हैं। कॉफी केवल मेहमानों के लिए ही बनती है—घर वाले तो पीते ही नहीं। दस बजे भोजन। भोजन के पश्चात् दोपहर के तीन बजे तक उनके साथ वार्ता। आधा घण्टे बाद पुनः कॉफी और उपाहार। लेकिन तीन बजे वे स्वयं कुछ नहीं लेते। शाम के साढ़े छह बजे तक विचार विनिमय। फिर रात को भोजन बनाने के लिए नीचे उतरते। भोजन के पश्चात् बारह बजे तक चर्चा में लीन। क्षण भर के लिए भी उनके चेहरे पर विषाद या आलस्य का चिह्न नहीं दीखता।

चर्चा करते समय उनके मुख से संस्कृत श्लोक धारा प्रवाह निःसृत होते। कुछ शब्दों पर जोर देकर उच्चारण करते और कुछ शब्दों की संधि तोड़कर। कहने के ढंग से ही रत्ने श्लोकों का अर्थ समझ जाती। यह गंभीर चर्चा डॉ० राव के साथ वे कन्नड़ में ही करते, लेकिन बीच-बीच में आने वाले संस्कृत श्लोकों और उनकी शैली में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों से वह उनके वार्तालाप को लगभग पूरा समझ जाती। जहाँ कहीं भी शंका उठती श्रोत्रियजी कमरे में रखे ग्रंथों को पढ़कर सुनाते। धर्म शास्त्र, पुराण, तत्त्वशास्त्र, साहित्य आदि ग्रंथों से उनका कमरा भरा पड़ा था। कई बार तो अनायास देर तक संस्कृत में ही बोलते रहते। उनका ज्ञान देखकर रत्ने को आश्चर्य हुआ। चर्चा समाप्त होने के पश्चात् श्रोत्रियजी रसोईघर में जाते तब डॉ० राव चर्चा का सारांश रत्ने को अंग्रेजी में सुनाते। वह उसे शीघ्रलिपि में लिख लेती। तीसरे खण्ड में आये धर्मशास्त्र-संबंधी विषय के बारे में जर्मन विद्वान ने जो प्रश्न उठाये थे उसकी जो टीका की थी उसे डॉ० राव ने कन्नड़ में समझाया तो श्रोत्रियजी ने स्पष्ट किया और अपने ग्रंथ भंडार के ग्रंथों से उसका मूल को पढ़ सुनाया।

सारी बातें डॉ० राव ने विस्तारपूवक नोट कर ली। उन्होंने निश्चय किया कि उनके ग्रथ को लेकर जो टीका की गयी उसके उत्तर म एक ग्रथ प्रकाशित कर लेना चाहिए।

जिस दिन से डा० राव वहा आये थ उसी दिन से उनक मन म एक विचार कौंध रहा था। उन्हे लग रहा था कि बुढापे के कारण ही श्रोत्रियजी की पत्नी का स्वगवास हुआ। अगर वह होतीं तो इस उम्र मे उन्हे इतना कष्ट न होता वसे श्रोत्रियजी किसी भी काय को कष्ट नही समझत। यह उनके मन की दढता का द्योतक था। लेकिन इस उम्र म वह इसी परिवार म रहती तो उ ह तसल्ली होती आराम मिलता। उनके पोते का आधार बनती। डा० राव ने चीनी को गौर स दखा। लगभग प द्रह वष का बालक अपने दादा की तरह ही ऊचा पूरा विशाल चेहरा काति पूण आँखें। लकिन उसी उम्र म असहज गाभीय आ चुका है। श्रोत्रियजी को अपन पोत के साथ हँस हँसकर बोलत हुए डा० राव न देखा था। लेकिन घर की परिस्थिति एव दादा के जीवन न उसम गाभीय ला दिया है। उसकी माँ घर म होती तो न जाने क्या परिस्थिति होती !

डा० राव सोच रहे थे—राज को इस घर का परिचय न था। कात्यायनी का हमारे घर आना और राज के साथ सबध जुडना मेरे परिचय के कारण ही हुआ। और उसका अत ऐसा हुआ। मुझे इसके प्रारभ और विकास का पता ही न लगा। मैं अपनी साधना म लगा रहा। इसके अतिरिक्त मेरा जीवन पथ ही बदल गया अपन घर से ही निकल पडा। उनके विवाह के समय भी मैं नगर म नही था। नगर म होता तो उन्हे एक बार समझाता। कुछ भी हो इस बार म मुझे श्रोत्रियजी स क्षमा माँग लेनी चाहिए।

मसूर लौटन के पहल दिन रात के भोजन के पश्चात रत्न को ऊपर मजले पर ही रहने की सूचना दकर डा० राव उतरकर श्रोत्रियजी के पास आकर बोले— चर्चा के लिए आज कोइ विषय नही है। अगर आप थके न हो तो हम नदी तक टहल आयें।

'कोई थकावट नही' कहकर शाल ओढकर निकल पडे। रत्न को साथ न पाकर श्रोत्रियजी न पूछा— आपकी पत्नी नही चलेंगी ?

नही, वह कोई ग्रथ पढने म लीन है —डा० राव न उत्तर दिया।

मंदिर के सामने से होते हुए दोनों मणिकर्णिका घाट की सीढ़ियों पर पहुँचे।

ज्येष्ठ-आषाढ़ महीना की बाढ़ के पश्चात् नदी शांत बह रही थी। शुक्ल पक्ष की अष्टमी या नवमी का दिन रहा होगा। आधा चाँद चमक रहा था। इस चाँदनी में नदी के दोनों किनारे गंभीर हो पानी की गति का अवलोकन कर रहे थे। डॉ० राव श्रोत्रियजी के साथ पानी के निकट वाली एक सीढ़ी पर बैठ गये। कुछ देर तक दोनों पानी को देखते रहे। डॉ० राव ने बोलने के लिए मुँह खोला। लेकिन समझ नहीं पाये कि बात प्रारंभ कैसे की जाय। श्रोत्रियजी पूछ उठे—"कहिए, क्या बात है?"

"आपकी दृष्टि में विषय शायद महत्त्व नहीं रखता होगा। किसी एक पुराने विषय के बारे में बात करने की इच्छा हुई है।"

"कहिए।"

"मेरे छोटे भाई का विवाह, उसके बाद की घटनाएँ—मैं कुछ नहीं जानता था। जानता तो शायद कुछ करता। इस समय बहू को आपके साथ रहना चाहिए था। वैसे तो स्वभाव से मेरा भाई अच्छा है। इस परिवार के बारे में वह नहीं जानता था। उनकी ओर से मैं आपसे क्षमा-याचना करता हूँ।"

"यह क्या कह रहे हैं? क्षमा याचना किसलिए? किससे क्या हानि हुई है?"

"आपकी दृष्टि में हर बात, हर वस्तु अच्छी है। लेकिन इस समय आपकी बहू आपके साथ होती तो अच्छा होता।"

"सब हमारी इच्छा सुविधा के अनुसार हो तो इस दुनिया कौन कहेगा?" श्रोत्रियजी ने शांत स्वर में कहा—"अब भी मेरी पत्नी जीवित रहती तो अच्छा होता। पुत्र जिंदा रहता तो और भी अच्छा होता। मेरे माता पिता जीवित होते तो कितना अच्छा होता। लेकिन लोग उतने ही दिन हमारे साथ रहते हैं जितने दिन रहना लिखा है। उसके समाप्त होते ही वे दूर हो जाते हैं। इस बात को सत्य स्वीकार कर लेना चाहिए—दुखी नहीं होना चाहिए।"

"अपनी बहू के प्रति आपके मन में कभी घृणा तिरस्कार नहीं

जागा ?'

'क्या जागे ? एक बार मद मुस्कराकर पुन शात स्वर मे बोले—'मेरे पुत्र का मुझसे जो सवध था उसक नदी म डूब जान पर समाप्त हो गया। उसी तरह बीमारी क बहाने पत्नी भी दूर चली गयी। उनके प्रति मैं घणा, तिरस्कार क्या दिखाऊँ ? उन दोनो का मरकर मुझसे दूर होना और बहू का जीत जी दूर हाना—इन दोना म मरी दृष्टि म, कोई अन्तर नहा। मरे साथ का जा सवध था वह समाप्त हा गया। वह चली गयी—इसमे उसका क्या दोप ?'

'सतान की दष्टि से कम-से-कम डा० राव कहने जा रह थे।

आपका कहना सच है। हमारा बच्चे की दष्टि से सोचने पर कभी कभी चिंतित होना स्वाभाविक है। आप क्या सोच रहे हैं कि अपने गभ की सतान को छोड जाते समय उसे दु ख नही हुआ था ? उसे भी अपार दु ख हुआ था। लेकिन उस दु ख से भी बडी एक प्रकृति महज शक्ति ने उसे अपनी आर खीचा। प्रकृति का ही तो माया कहते हैं। प्रकृति-सहज गुण धर्मों से ही हम ससार म जी रहे हैं। यहा रहकर प्रकृति गुणा से युक्त रहना, सामान्य काय है ! वह अगर इनसे प्रभावित हुई तो आश्चय की बात नही। इसके लिए हम उसके प्रति क्या घणा दिखायें ?'

इस तत्वज्ञान की दष्टि से डा० राव अनभिज्ञ नही थे लेकिन अपने जीवन सग्राम म भी इसी दष्टि से विचार करने वाले इस वद्ध के प्रति उनक मन म और भी श्रद्धा बढी। आप अपनी बहू के बारे म कभी नही सोचत ? डा० राव ने पूछा।

जीवन म जिन्ह खो दिया है उन्हें स्मरण करने से क्या लाभ ? मत पुत्र एव पत्नी के सवध म सदा सोचते रहने पर मनोबल का ह्रास हाता है। बचा हुआ काय क्या कम है ? पौत्र का पालन-पोषण करना और पढाना चाहिए। मैं बहत्तर वप का हुआ। पौत्र को एक स्तर तक पहुचा कर सासारिक जीवन स मुक्ति पाने का प्रयत्न करना चाहिए। कभी-कभी अन्यमनस्क हो जाने पर मन स्मरण-गति मे अवश्य बह जाता है। जहा तक हो सके म बीते दिनो को याद नही करता।'

इतना कहकर वे चुप हो गये। डा० राव का मन न जाने क्या अपने जीवन की विगत घटनाओं को लेकर सोचने लगा—'श्रोत्रियजी ने अपने

जीवन में कभी द्वंद्वपूर्ण कार्य नहीं किया। इसीलिए उनकी दृष्टि सदा भविष्य के लक्ष्य की ओर रहना संभव है। लेकिन मेरे जीवन में बचा हुआ एक द्वंद्व मुझे बार-बार उसका स्मरण दिलाकर उसमें लीन करके विदीर्ण कर देता है। इससे छुटकारा कैसे मिलेगा ?'

इस विश्वास से कि अपनी समस्या से छुटकारा पाने का उपाय श्रोत्रियजी से मिलेगा, डॉ० राव ने बात प्रारंभ की—'मेरा दूसरा विवाह, परिस्थिति, कारण आदि आप जानते हैं ?

'जानता हूँ।'

'इसके बिना मैं अपने कार्य को पूर्ण न कर पाता। ग्रंथ पूर्ण करने के लिए उसका मेरे साथ रहना अनिवार्य था। लेकिन पहली पत्नी निरपराध है। क्या आप सोचते हैं कि ऐसी परिस्थिति में मेरा वैसा कदम उठाना अनुचित था ?'

'आपके कार्य को मैं कैसे अनुचित ठहरा सकता हूँ ?

मैं जानता हूँ कि दूसरा के बारे में निर्णय देना आपकी प्रवृत्ति नहीं है। मैंने इस दृष्टि से नहीं पूछा। मेरी स्थिति में आप होते तो क्या करते ?'

'आपकी स्थिति में मैं होता तो क्या करता यह कहना असंगत बात होगी। कभी एक दिन आपने ही अपनी कथा में कहा था—मेरे पुत्र ने घर आकर मुझे बताया था—एक भिक्षु सम्राट से कहता है कि मैं तुम जैसा चक्रवर्ती होता तो रक्तपात नहीं कराता। और सम्राट ने उत्तर दिया कि अगर मैं भिक्षु होता तो युद्ध की बात ही मेरे दिमाग में न आती।' वे एक मिनट चुप रहे। फिर कुछ सोचकर उन्होंने कहा—'आप कहते हैं कि ग्रंथ निर्माण के लिए यह विवाह किया। ग्रंथ बुद्धिशक्ति की साधना है। बुद्धि-तत्त्व भी प्रकृति का एक पहलू है। बुद्धि साधना में उत्प्रेरक उस साधना के लिए ही किया हुआ विवाह भी प्रकृति का एक आकर्षण है। कुछ लोग केवल शारीरिक आकर्षण के कारण दूसरा विवाह कर लेते हैं। यद्यपि उनकी अपेक्षा यह अधिक आकर्षण है किन्तु मूलतः भिन्न नहीं है। वास्तविक आत्मसिद्धि बुद्धि से श्रेष्ठ है। इसमें किसी की मदद की आवश्यकता नहीं। बस आत्मा की पुकार रहनी चाहिए।

डॉ० राव ने बीच में ही प्रश्न किया—"मानव-जीवन किस साधना

के लिए तपस्या करता है उसमें बाधक बनने वाले विवाह का महत्त्व ही क्या है ? उस जीवनोद्देश्य की सिद्धि के लिए किये गये विवाह को प्रकृति प्रेरित कैसे कहा जा सकता है।"

आपकी बात एक दृष्टि से ठीक है। परिवर्तनशील सामाजिक दायरे में विवाह का ध्येय ही बदलता जा रहा है। उसे उचित या अनुचित कहना अप्रकृत है। जाने अनजाने किये गये हमारे विवाह को उससे संबंधित अन्य एक व्यक्ति की कोई गलती न होने पर उसे गौण कैसे मान सकते हैं ?" अपने वैवाहिक जीवन को स्मरण कर श्रोत्रियजी आगे बोले— कई बार मुझे भी वैसा प्रतीत होता था। मैं सदा संस्कृत ग्रंथों का अध्ययन करता था। अपने में ही वेदांत तत्व मीमांसा का मनन चिंतन करता रहता था। मेरी पत्नी संस्कृत की अ-आ इ ई भी नहीं जानती थी। कन्नड़ में चार पंक्तियों का पत्र लिखना भी उसे नहीं आता था। फिर भी श्रद्धा-भक्ति से पति-सेवा करती थी। वंश-वृद्धि के लिए एक बेटे को जन्म दिया। देव-पूजा के लिए वांछित पुष्प चंदन तैयार कर देती थी। बुद्धि-शक्ति के स्तर पर उसमें और मुझ में आकाश पाताल का अंतर था। लेकिन वह अवश्य योग्य धर्मपत्नी बनी रही।

डा० राव चुपचाप बैठे थे। उस प्रदेश में पूर्ण नीरवता छाई हुई थी। श्रोत्रियजी को लगा कि उनकी बात से शायद डा० राव को दुःख पहुँचा है। फिर भी श्रोत्रियजी ने कहा— जिस तरह यह कहना असंगत है कि अगर आपकी स्थिति में मैं होता तो वैसा ही करता उसी तरह यह कहना भी असंगत है कि वैसा नहीं करता। यह सब अपनी अपनी जीवन-दृष्टि पर निर्भर है। किसी अनिश्चित मार्ग पर चलने से जीवन में अनिवार्यतः द्वन्द्व उत्पन्न होता है। आपने जो साधना की है वह साधारण नहीं है। उसे पूर्ण करना शेष है। आपके द्वितीय विवाह की आवश्यकता को मैं पूर्णतः समझ सकता हूँ। लेकिन प्रथम पत्नी को दूर क्यों रखा ?

द्विपत्नी रिवाज के प्रति द्वितीय पत्नी में तिरस्कार भावना है। एक ही घर में एक पति की दो पत्नियों का रहना उसे पसन्द नहीं।

'यह भी आधुनिकता का एक पहलू है। वह पूरी तरह गलत नहीं है। किसी ध्येय को पूर्ण करने के लिए ही एक पत्नी के रहते हुए भी

उसने आपके साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया था। उसी ध्येय को प्रधानता देकर उस द्विपत्नी-पद्धति के प्रति अपना जो तिरस्कार है, वह उसे घटा सकती थी। व्यक्ति या समाज के जीवन में हर पद्धति का अपना एक विशेष उपयोग रहता है। लेकिन विशेष संदर्भों में उस पद्धति को प्रधानता नहीं देनी चाहिए। जीवन के मूल ध्येय को समझ लेने के पश्चात अन्य ध्येयों को उसके अनुरूप बना लेना कठिन प्रतीत नहीं होता।

डॉ० राव का मन विचार में डूबा हुआ था। वे कुछ न बोले। कुछ समय दोनों मौन बैठे रहे। श्रोत्रियजी ने अब कहा— 'सोने का समय हो गया है अब चलें?' तो डा० राव उठ खड़े हुए। लगभग ग्यारह बजे लौटे तो दीवानखाने में बैठी रत्न चीनी से बात कर रही थी। उनके आते ही चीनी अंदर चला गया। रत्न ने डा० राव से कहा—'लड़का बड़ा बुद्धिमान है।'

दूसरे दिन सुबह की रेल से लौटने से पहले डा० राव श्रोत्रियजी के चरण छूने गये। श्रोत्रियजी ने संकोचवश चरणों को पीछे खींचकर कहा— आपको ऐसा नहीं करना चाहिए। यह सब भगवान के लिए है। रत्न ने झुककर नमस्कार कहा। "बार-बार आते रहिए। मैं वृद्ध हूँ वहाँ आ जा नहीं सकता' कहते हुए हाथ जोड़ नमस्कार कर अतिथियों को विदा किया।

डॉ० राव को रत्न के साथ नंजनगूडु से मसूर घर पहुँचने तक सवा दस बज गये थे। आँगन में कुर्सी पर बैठकर राज बूट पहन रहा था। उसे देखकर डा० राव ने पूछा— 'यह क्या? कब आये?'

'तीन दिन हुए। कात्यायनी भी आई है। हम दोनों का यहीं तबादला हो गया है।'

'कब से?' पूछते हुए डॉक्टर राव कुर्सी पर बैठ गये। रत्न कुली द्वारा लाये गये होलडाल और थैलों को भीतर लिवा ले गयी।

'परसों सोमवार को तबादले की सूचना में बताया गया कि चार दिनों में हम यहाँ पहुँच जाना चाहिए। अपने आने की सूचना आपको पत्र द्वारा दी थी। हमारे आने के बाद उस पत्र को घर में पाया। उससे पहले

ही आप जा चुके थ । पता लगा कि नजनगूडु गये हैं ।

हाँ ।

व सब कुशल हैं ?' प्रश्न करत समय राज का मुख म्लान था लेकिन डा० राव न नहीं दखा ।

श्रोत्रियजी की पत्नी का स्वर्गवास हुए दो वष हो गय ।

इतन म बातें करती हुई रत्न और कात्यायनी वहाँ आइ। कात्यायनी कालेज जाने के लिए तयार हो गयी थी। हाथ म दो पुस्तकें और एक नोटबुक थी। डा० राव का श्रद्धापूवक नमस्कार करन क पश्चात राज के साथ वह कालज चल दी। साढे दस बजे उन दोनो को 'पीरियड' लना था।

नागलक्ष्मी और पथ्वी दोनो बेंगलूर म थे। मसूर म घर मिलन क बाद व आयग। मसूर आन म नागलक्ष्मी को कोई उत्साह नहीं था। कात्यायनी को भी यहाँ आना पसन्द न था लेकिन तबादल क विरुद्ध कुछ किया नहीं जा सकता था।

दोनो साथ म काम करते हो तो भी दोनो का एक साथ एक ही जगह तबादला करना चाहिए एसा कोई नियम नहीं था। डाक्टर साहब का भाई होने के कारण ही ऐसी व्यवस्था की होगी ! इस बार राज महाराजा कालज म आया था। कात्यायनी को पास के ही एक फस्ट ग्रेड कालज म भेजा था।

यह जानकर कि रत्ने और डा० राव नजनगूडु गय हुए हैं रत्ने स वहाँ के बारे में पूछने का कात्यायनी को कुतूहल था। राज भी वहाँ के बार में जानन का कुतूहल रखता है—इधर कुछ समय से। लकिन कात्यायनी में केवल कुतूहल न था, अपन पहल वाल घर एव अपन गर्भ से जनमे पुत्र के बारे में जानन की उत्कट इच्छा थी। अपने तामरे गभस्राव के पश्चात उसका मन चीनी को देखने क लिए छटपटा रहा था। मन-ही-मन वह कल्पना करती कि अब बडा होकर वह कसा दीखता होगा ! वह मा का याद करता होगा क्या ? दादा-दादी के साथ कसे रहता है आदि कुतूहल अनेक रूपा म प्रस्तुत होत। अपने सास ससुर के बारे म भी जानन की इच्छा थी उसम। कई बार वह सोचती—वे अब काफी वद्ध हुए होंगे ! मैं वहीं होती तो उन्ह सुविधा रहती। मैं घर बार की जिम्मेदारी

सँभालती तो ससुर निश्चित हो, अपने सध्या, देवार्चना मे समय बिता सकते थे।

उस दिन दोपहर के तीन बजे वह कालेज से लौटी। राज कहीं मकान ढूढ़ने गया था। रत्ने स कह गया था कि लौटने म रात होगी। डा० राव पुस्तकालय गये हुए थे। रत्न यह सोचकर घर म ही रही कि कात्यायनी को बुरा लगेगा। वह नजनगूड़ु मे डा० राव द्वारा लिखाये गय विचारा को टाइप करती रही। कात्यायनी के घर लौटकर, नाश्ते के पश्चात दोना ने परस्पर कुशल-समाचार पूछा। तत्पश्चात कात्यायनी ने पूछा— 'नजनगूड़ गय थे न ? कहिए वहाँ सब कसे हैं ?"

अच्छे हैं।'

'क्वल उतने से काम नही चलेगा। आप भी जानती हैं कि वहाँ की बातें जानने के लिए मैं क्या आतुर हूँ। आप कन्नड तो नही जानता। लेकिन आप जो कुछ भी जानती हैं सविस्तार बताने की कृपा करें।'

मुझ लगा कि व बड़ ही अच्छे हैं। उस वृद्ध ने तो मेरे मन पर काफी प्रभाव डाला है।

दूसरे लोग कसे हैं ? मेरा बेटा सास, लक्ष्मी ?'

'सास को गुजरे दो साल हो गये।

यह अनपेक्षित बात सुनकर कात्यायनी को अत्यधिक दुःख ही नही हुआ, बल्कि उसे लगा कि उसकी उपस्थिति म उपस्थित रहकर मन को सान्त्वना देते रहने वाला एक स्तम्भ ही टूट गया है। 'अब फिर उस घर का क्या हाल है ? लड़के की देखभाल कौन करता है ?'

'सब वृद्ध ही देख लेते हैं। सुबह तीन बजे उठकर स्नान करने जाते हैं। छह बजे पूजा समाप्त होती है। लड़का इस बार एस० एस० एल० सी० की परीक्षा देने वाला है। सुबह उठकर स्नान, सन्ध्या से निवत्त हो अध्ययन करता है। दस बजे दादा रसोई बनाकर परोसते है। शाम को पौत्र के स्कूल स लौटने पर वेदपाठ करते हैं। रात्रि की रसोई का काम भी वृद्ध ही करते हैं।

वह कसा है ? माँ की याद करता है ? क्या दादी के स्वर्गवास से काफी असर पड़ा है ?

कल रात को डॉ० साहब वृद्ध के साथ बाहर गय थे। तब मैं लड़के

के साथ दो घण्टे से भी अधिक समय तक बातें करती रही थी। मेरी अंग्रेजी को पूर्णत समझ लेने पर भी अंग्रेजी मे आसानी से उत्तर नही दे पाता था। लेकिन सस्कृत म सुगमता से वात्तालाप कर सकता है। मैं अंग्रेजी म ही बोलती रही। वह सस्कृत म उत्तर देता गया। अभी-अभी वेदपाठ पूर्ण हुआ है। भगवद्गीता कण्ठस्थ है। रामायण महाभारत स्वय पढकर समझने की क्षमता रखता है। लगता है बडा बुद्धिशाली लडका है—बिल्कुल दादा का प्रतिरूप। उन जैसा ही ऊँचा शरीर, विशाल छाती और भुजाएँ, चौडा चेहरा कातियुक्त आखें। दोनो कानो म चमकती बालिया।

क्या उसे माँ की याद आती है इस बारे म आपने कुछ पूछा?' —अपनी समस्त आसक्ति को बटोरकर उसने प्रश्न किया। रत्न तुरत उत्तर न दे सकी। वह सकपकाकर सोचती रही। पुन कात्यायनी ने कहा—'आप नि सकोच उत्तर दें। मेरी कसम है, आप जो कुछ जानना ह सच-सच बता दीजिए।'

मैंने ही पूछा कि तुम्हारी मा कहा है कभी उसे देखने की याद है? उसके चहरे से पता चला कि यह प्रश्न उसे जँचा नही। मैं समझती हूँ कि वह मा के बारे म जानता है। मैं यह नही जानती कि उसे इस बात का पता है या नही कि मैं उसकी मा की रिश्तेदार हूँ। बात बदलकर मैंने उसकी दादी के बारे म प्रश्न पूछे। लगता है दादी से बडा लगाव था। उसकी बात म यद्यपि सयम था—ऐसा उसकी आवाज और मुखमुद्रा से म समझती हूँ—दादी के बारे मे विस्तारपूर्वक बताया। उनकी मृत्यु का कारण, बीमारी की अवधि उत्तरक्रिया का स्थान आदि। दादा के प्रति उसमे अपार स्नेह-श्रद्धा है।

उम्र के योग्य उत्साह दिखाता है या सदा विचारमग्न रहता है!

मुझे लगता है कि दादी के रहते समय उसमे उत्साह था। अब उनके घर में लक्ष्मी है न उससे बडा लगाव है। रात को उसके पास ही अपना बिस्तर बिछाता है। लक्ष्मी भी उसे बहुत प्यार करती है। उसके चेहरे पर उम्र से अधिक गाभीर्य दिखाई देता है। यह मैं स्पष्टतया नही बता सकती कि वह गाभीर्य अपने अध्ययन में उपलब्ध प्रगति का परिचायक है या घर की परिस्थिति का परिणाम।"

श्रोत्रियजी के संबंध में बताते हुए रत्ने बोली—"वैसे मनुष्य की मुझे कल्पना ही थी। रामायण महाभारत-जैसे महाग्रंथों में मैंने पढ़ा था। उस कल्पना के अनुरूप एक सजीव मूर्ति को इस युग में यहाँ से पंद्रह मील दूर के गाँव में देखने का मौका मिला। उनका ज्ञान अगाध है। मानसिक संतुलन विचित्र है। चेहरे पर स्थितप्रज्ञ का भाव द्रष्टव्य है। वह परिपक्वता केवल उम्र की नहीं। अंतःकरण से जागा विश्वास उनकी आँखों में चमकता है। फिर भी मुझे लगता है कि उस कोमल व्यक्तित्व के एक कोने में अव्यक्त कठोर भाव भी है। मुझे प्रतीत होता है कि संकल्प शक्ति और कर्तव्य ज्ञान उनके जीवन के मार्गदर्शक हैं।'

रत्न की बात समाप्त होने पर भी कात्यायनी मौन बैठी रही। उसके चेहरे पर गहरा विचार दृष्टिगोचर हो रहा था। एक अस्पष्ट वेदना भी उसमें मिली थी। उस सहज भाव से परिचित रत्न ने कहा—"मैंने जो कुछ अनुभव किया वही बताया। इसके अलावा मुझे ठीक तरह कन्नड नहीं आती। हो सकता है कि समझने में मेरी भूल हुई हो। इस बात को लेकर आप अधिक चिंता न करें। जीवन में यह सब होना ही रहता है।

कात्यायनी चुपचाप बैठी रही। रात के भोजन के लिए रागप्पा क्या बना रहा है, यह देखने के लिए रत्न भीतर गयी। कात्यायनी के मन में चीनी और श्रोत्रियजी के चेहरे घूम रहे थे। उनके चेहरे के स्मरण के आधार पर उसका मन चीनी के चेहरे की कल्पना कर रहा था। रत्न के बताये विवरण से वह कल्पना चित्र और भी स्पष्ट होने लगा। दादी के प्रति *उसका गहरा* प्यार है। उसने उनके मरण का विवरण सुनाया लेकिन माँ के बारे में पूछा तो उसे अच्छा नहीं लगा। मेरे बारे में जानता ही नहीं? रत्न कहती है 'मैं समझती हूँ उसे मालूम है।'—अगर यह सच है तो मेरे बारे में उसकी कैसी तुच्छ भावना होगी! उसने सोचा, घर वालों ने बालक को बता दिया होगा कि 'तेरी माँ कुलटा थी, किसी के साथ भाग गयी है।' उसे पूर्ण विश्वास था कि श्रोत्रियजी ऐसी बात कभी नहीं कहेंगे। मरने से पहले सास ने कैसा कहा होगा। वे क्रोधी स्वभाव की थीं। उन्होंने कहा हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं। लड़का सूक्ष्म बुद्धि रखता है। किसी ने न बताया हो तो भी स्वयं समझता है। उसके मन में मेरे प्रति घृणा जागना

स्वाभाविक भी है।

हे भगवान ! मेरे यहाँ चले आने से पहले ही मैं मर जाती तो बेटे के मन में घृणा जागने का प्रसंग ही क्या आता ? जितनी श्रद्धा से अपने पिता और दादी की याद करता है उतनी ही या शायद उससे भी अधिक श्रद्धा से मुझे भी स्मरण करता ! अपने ही बेटे से तिरस्कृत माँ के जीवन से बढ़कर क्षुद्र इस दुनिया में कोई नहीं हो सकता। ये सब विचार मेरे मन में पहले क्यों नहीं आये ?—यही सारी बातें सोच रही थी। इस द्वितीय विवाह के पश्चात उसे भी साथ ले आती तो ऐसी नौबत ही नहीं आती। वह मुझे प्यार करता ! मेरे प्रति श्रद्धा दिखाता ! इन्हें भी आदर देता। उसे वहां छोड़ा यही मेरी बड़ी गलती है। ससुरजी ने ही कहा था न कि उसे ले जाना ही तेरा निर्णय है तो मैं कभी नहीं रोकूंगा चुपचाप ले जा ! मजले पर गई लेकिन मैं बच्चे को छोड़कर लौट पड़ी ! किस शक्ति ने वैसा करने के लिए मुझे प्रेरित किया था ? किस भावना के वश होकर मैंने ऐसा किया था ? उस समय मेरी अंतरात्मा ने मुझे एक नये पथ पर चलाया। वही अंतरात्मा एक और भँवर में फँस गयी है। हे भगवान !' इस द्वंद्व का मूल क्या है ?—वह इसी तरह सोचती रही लेकिन कोई उत्तर न मिला।

२१

पंद्रह-बीस दिनों में राज को मकान मिल गया। राज और कात्यायनी वहां रहने चले गये। एक सप्ताह बाद राज बेंगलूर गया घर का सारा सामान लारी से रवाना कर दिया और पृथ्वी तथा नागलक्ष्मी को अपने साथ लेता आया। लक्ष्मीपुर का यह नया मकान बड़ा था और उसके चारों ओर बगीचा भी था।

उनके नये घर में जाने के पश्चात डा० राव और रत्ने कुछ ऊब से गये। सुबह स्नान के बाद भोजन करते समय उनके साथ राज और

कात्यायनी भी बैठते थे। रात के भोजन के पश्चात कुछ समय तक सब बातचीत करते। गंगम्मा को निर्देश दे-देकर कात्यायनी नये-नये खाद्य पदार्थ बनवाती। अब डा० राव का घर पुनः पहले की भाँति हो गया। उनका अध्ययन, नोट तैयार करना, पुस्तकालय जाना आदि कार्य पूर्ववत् चलते रहे। पाँचवें खण्ड के लिए सामग्री का संग्रह किया जा रहा था। आजकल डा० राव का मन ग्रंथ निर्माण के बीच अपने जीवन की विभक्त परिस्थिति के बारे में सोचता रहता था।

उन्हें श्रोत्रियजी की बात बार बार याद आती। बुद्धि प्रकृति का एक स्वरूप मात्र है। बुद्धि की साधना में उलझना इस साधना के लिए किया गया दूसरा विवाह भी एक तरह से प्रकृति की ओर आकर्षण है। कुछ लोग केवल शारीरिक आकर्षण के कारण दूसरा विवाह कर लेते हैं। उसकी अपेक्षा यह विवाह अधिक आकर्षक होते हुए भी मूलतः भिन्न नहीं हैं। वे उस प्रसंग के बारे में सोचने लगे, जिसमें उन्होंने रत्ने से विवाह किया था। रत्न के बिना उनके ग्रंथ इतने शीघ्र पूर्ण न हो पाते। उसकी तरह सहयोग देने वाला यदि और कोई सहयोगी मिलता तो? लेकिन वैसा कोई नहीं मिला था। इस तादात्म्य भाव से कि यह भी मेरा ही कार्य है, अपना जीवन उसी को अर्पित करने वाला और कौन था? फिर भी डॉ० राव को याद आ रहा था और अब भी उनका अनुभव था कि अपनी साधना के बारे में रत्न प्रशंसा करती तो उनका मन आनन्द से भर जाता है। संसार के विद्वानों से प्राप्त पत्र भी उनमें स्फूर्ति भरते थे। रत्न कहती कि यह हमारा ग्रंथ है तो डॉ० राव का हृदय हर्षोल्लास से नाच उठता था। रात के भोजन के पश्चात् टहलते टहलते विषय चर्चा करते जाते तो स्फूर्तिवश रत्न उनका हाथ अपने हाथों में थाम लेती। घर लौटने पर डॉ० राव की कही बातों को नोट करने में लगी रहती तो कई बार उनका मन कहता—मेरे जीवन में यही वास्तविक पत्नी है। मन-ही मन प्रश्न करते स्त्री के बदले यदि कोई पुरुष मेरी सहायता करने के लिए आगे आता तो क्या मैं ऐसी भावनाओं का अनुभव करता? क्या रत्न के सहयोग के साथ-साथ इन भावनाओं में भी मैं बद्ध नहीं हुआ हूँ?

दूसरी ओर उनका मन श्रोत्रियजी के वैवाहिक जीवन के बारे में भी सोचता। वे सदा संस्कृत ग्रंथों का अध्ययन करते हैं। वेदांत, तर्क, मीमांसा,

धमशास्त्र आदि विषयो का गहरा चिन्तन मनन किया है। उनकी पत्नी नागु जितना भी नही पढी थी। फिर भी उन्हे मेरे समान द्वितीय पत्नी की आवश्यकता प्रतीत नहा हुई क्योकि मेरे समान उन्हें ग्रथ रचना म हाथ डालना नही था। श्रीनिवासजी मेरे स्थान पर होते तो ? तुलना यद्यपि असगत है फिर भी केवल वे ही इस काय को निभाते ! वेतन देकर एक टाइपिस्ट नियुक्त कर लेते ! अन्य काम वे स्वय करते। जिस पथ पर मैं चला उस पर वे कभी न चलते !

डा० राव का मन नागलक्ष्मी को बार-बार याद करता था। वह अब मसूर म ही उनके बँगले से आधे मील की दूरी पर रहती है। उनके साथ रहने श्रद्धा भाव से सेवा करने के लिए वह कितना आतुर है ! अब तक उसके प्रति किये गये उनके अन्याय की ओर ध्यान न देकर उसने स्वय साथ रहने का प्रस्ताव किया था। वह पति तथा अपनी सौत के लिए स्वादिष्ट भोजन तैयार करती थी उसने हमारे स्वास्थ्य की देख भाल करने की बात कही थी। उसमे निहित गृहणीत्व डा० राव को याद आ रहा था। पति को अच्छी तरह खिलाये बिना वह नही मानती थी। उनके मना करने पर भी हर सप्ताह तेल मलती और स्नान कराती थी। कम पढी लिखी थी, किन्तु शक्तिपूर्ण व्यक्तित्व था। परिवार के सभी उसकी बात मानते थे। उसने कभी किसी पर अपना अधिकार जताने की चेष्टा नहा की। उससे प्रभावित होकर हरएक ने उसकी श्रेष्ठता स्वीकार की। केवल स्नेह विश्वास सेवा से उसने यह शक्ति पाई है। हर व्यक्ति के साथ व्यवहार करते समय सदा उसका मानत्व काम करता था। इसी म उसके व्यक्तित्व म शक्ति भरी है।

क्या इसी तरह अत तक उसे दूर रखना पडेगा ? डा० राव का मन पत्नी के लिए सदा दुखी रहता। जब वे बीमार पडे थे तब उससे यही रहने के लिए कहा था। वह इस प्रस्ताव से खिल उठी थी। जब तक अस्पताल म रहा उससे आत्मीयता से बोलता रहा। पति की सेवा म हर क्षण अपने अत करण को निछावर करती रही। घर आने के पश्चात उनका मन फिर विद्या जगत की ओर मुड गया। उससे साथ वे अधिक नही बोलते थे। शायद रत्ने की उपस्थिति एव उससे सबधित सुप्त प्रज्ञा उसका एक कारण था—ऐसा वे अब भी सोच रहे है। तीनो के साथ

रहने के लिए रत्न तैयार नहीं थी। राज के बेंगलूर रवाना होने से पहले, नागु ने डॉ० राव के चरण छुए तो उन्होंने उसे निहारा था। अभाव उभर उठने पर पलक रहा था। निराशा से उसकी आँखें भरी थी, चेहरा मुरझा गया था। फिर भी चरण छूकर वह चली गई। वह उनके लिए भी हृदय विदारक घटना थी।

डॉ० राव का मन बार बार सोचता—इस द्वंद्व से मुक्ति पाने का उपाय क्या है? इन दो शक्तियों में से मैं किसे त्यागूँ किसे अपनाऊँ? अध्ययन और ग्रंथ निर्माण मेरे जीवन की माँग है। उसी तरह नागु की याद मेरे अंतःकरण को जलाने वाली अग्नि है। इस माँग से वह अग्नि और भी अधिक प्रज्वलित हो जाती है। मैं इससे कैसे बच सकता हूँ? ग्रंथ निर्माण रत्न—सबका छोड़कर क्या नागु के पास चला जाऊँ? रत्न के लिए, जैसा कि वह कहता है, एक अलग घर बसाऊँ या इस बँगले में रहने का छोड़ मैं नागु के साथ रहूँ? लेकिन ग्रंथ पूर्ण करने के लिए मेरा रत्न के साथ रहना आवश्यक है। ग्रंथ निर्माण ही छोड़ दिया जाय तो?— ये विचार आते ही डॉ० राव को शास्त्रियजी की एक बात याद आती— 'अनिश्चित मार्ग पर चलने से जीवन में अनिवार्यतः द्वंद्व उत्पन्न होता है। लेकिन जिस मार्ग पर वह चुने हैं उससे लौटने का प्रयत्न करने से द्वंद्व दूना हो उठता है।' डॉ० राव का मन यह कहा था, शास्त्रियजी की बात सच है। वे जानते थे कि ग्रंथ रचना त्यागने या उसकी गति धीमी कर देने से मुझे शांति नहीं मिल सकेगी। अपनी घटती शक्ति का अनुभव होने पर उनका मन ग्रंथ को शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण करने के लिए छटपटाता था। उनके अंतःकरण से आवाज उठ रही थी कि मैं अधिक दिन जीवित नहीं रह सकूँगा। वे मरने से पहले पाँचवें खण्ड को किसी तरह पूर्ण करने का संकल्प कर चुके थे।

हर रोज उनकी मानसिक व्यथा बढ़ती जाती थी। शारीरिक शक्ति घटने लगी थी।

डॉ० राव को कोई बीमारी नहीं थी। लेकिन शारीरिक शक्ति और अध्ययन-क्षमता का ह्रास होता जा रहा था। खान-पान के प्रति भी रुचि घटती गई। दोपहर का भोजन पच नहीं पाता था, अतः शाम को सिर्फ

पाव भर दूध लेने लगे। पढ़ने बैठते तो कई बार विषय समझ में न आता। नागलक्ष्मी की याद आती तो मन मूक हो जाता। कभी-कभी रत्न नागलक्ष्मी—दोनों उनके मानस-पटल पर अवतरित हो उनके चित्त को विचलित कर देती।

उनके गिरे हुए स्वास्थ्य की ओर रत्ने का ध्यान गया। उन्हें डाक्टर के पास ले गई। डाक्टर ने जाँच कर कहा— कोई रोग नहीं है। लगता है हृदय क्रिया में अन्तर आ गया है। लेकिन इससे कोई खतरा नहीं है। कई स्वस्थ लोगों का ऐसा होता है। हवा-पानी बदल दीजिए। आराम कीजिए। मैं टानिक और गोलियाँ लिख देता हूँ, उन्हें लेते रहें।

हवा बदलने के लिए डॉ० राव तैयार नहीं हुए। उन्होंने कहा— जल्द-से जल्द ग्रंथ पूर्ण कर लेना चाहिए हवा परिवर्तन या विश्रांति में समय नहीं बिताना चाहिए। उनकी अन्तरात्मा कह रही थी कि वे थोड़े ही दिनों के मेहमान हैं। पंचम खण्ड शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण करने का उनका संकल्प दृढ़ होता जा रहा था लेकिन शारीरिक शक्ति जवाब दे रही थी। उनकी यह स्थिति देखकर रत्ने भयभीत थी। डाक्टर के आदेशानुसार क्यों नहीं चलते ? यह कैसा अजीब हठ है ? —वह बड़बड़ाई। उनके कारण उसने भी दो दिन दोपहर का भोजन त्याग दिया। उनका सदा निराशापूर्ण चेहरा देखकर वह उनकी सुप्त चिंता का कारण खोजने लगी। एक दिन रात के भोजन के बाद दोनों टहलने निकले। टहलते-टहलते उसी स्थान पर पहुँच गये जहाँ उन्होंने रत्ने से नागलक्ष्मी को साथ रखने का प्रस्ताव किया था। वे वहाँ अनजाने ही पहुँच गये थे। बैठते ही रत्ने को वह दिन स्मरण हो आया जब डॉ० राव ने नागलक्ष्मी के बारे में बात छेड़ी थी। उसने सोचा शायद यही विचार उन्हें सता रहा है। इस स्थान के स्मरण से डा० राव का मन नागलक्ष्मी के बारे में सोचने लगा। रत्ने ने पूछा— अवश्य ही कोई विचार आपको सता रहा है। आप मुझे क्यों नहीं बताते ?

कैसा विचार ? कुछ नहीं है।

'मैं जानती हूँ कहिए '

सिर उठाकर डा० राव ने रत्ने का चेहरा देखा। दूर से पड़ रहे मंद मंद प्रकाश में भी उसके चेहरे पर गम्भीरता दिखाई दी। उन्होंने कहा—

"तुम जानती हो तो मुझसे क्यों पूछ रही हो? समस्या तुम्हें मालूम है। निवारण भी तुम पर निर्भर है। मेरे हाथ में कुछ नहीं है।

रत्ने चुप रही। मन मूक रहा। कोई भी विचार प्रतिक्रिया उत्पन्न नहीं कर रहा था। डा० राव बोले— मेरी बीमारी में उसने काफी सेवा की। उस सेवा के पीछे केवल कर्तव्य-दृष्टि काम नहीं कर रही थी, बल्कि वह अपने समस्त सत्संस्कारयुक्त श्रद्धा भाव से एक हिंदू पत्नी द्वारा की जानेवाली पूजा थी। उसे निर्लिप्त करके पछता रहा हूँ। उसने कहा था, 'जो हुआ, सो हुआ। अब भी सेवा करने का मौका दीजिए।' वह हम दोनों के लिए रसोई बनाने को तैयार थी। पत्नी होने के नाते वह एक सीढ़ी और ऊपर चढ़ गई है। मेरी धारणा है कि वह हम दोनों के लिए माँ के स्तर तक पहुँच गई है। मैंने जब तुमसे उसे अपने पास रखने के लिए पूछा तो तुम नहीं मानी।"

इतना कहकर डा० राव चुप हो गये। रत्ने कुछ नहीं बोली—मौन खड़ी रही। उनके बीच जो गौरवता छायी थी उसे भंग करते हुए डा० राव ने कहा— नंजनगूडु से लौटने के पहले दिन रात्रि के भोजन के पश्चात् मैं श्रोत्रियजी के साथ बाहर गया था न? नदी किनारे बैठ, हम लोगों ने यही बात की थी। अपने मन का दुखड़ा उन्हें सुनाया था। उन्होंने कहा था कि द्विपत्नी पद्धति के प्रति जो तिरस्कार है, वह आधुनिकता का एक पहलू है और पूर्णतः गलत रहा है। किन्तु प्रथम पत्नी के रहते वह विवाह के लिए तैयार हुई तो किसी महान् ध्येय से ही ऐसा किया है। उसी ध्येय-साधना को संपूर्ण प्रमुखता देकर वह द्विपत्नी-पद्धति के प्रति अपने मन की तिरस्कार भावना कम कर सकती है। समाज के जीवन में व्यक्ति की हर पद्धति का एक विशिष्ट उपयोग रहता है, लेकिन अनिवार्य संदर्भों में उसी पद्धति को महत्त्व नहीं देना चाहिए। जीवन का मूल ध्येय स्पष्ट हो जाने पर अन्य बातों को उसके अनुरूप ढाल लेना कठिन नहीं होता।"

डा० राव ने पुनः पूछा— अब कहो जीवन का मूल ध्येय पूर्णतः स्पष्ट हुआ या नहीं?

रत्ने कुछ नहीं बोली। दोनों पुनः मौन बैठ रहे। आधे घण्टे के बाद उठते हुए डॉ० राव ने कहा— 'चलो, चलेंगे।" अंधकार था। रत्ने उनका

हाथ थामे चलने लगी। रात को नित्य की भाँति डॉ० राव अध्ययन-कक्ष में पहुँचे। रत्न को टाइप करना था इसलिए वह एक कमरे में टाइप-राइटर के सामने बैठ गई। लेकिन उसका मन काम में नहीं लग रहा था। आधा पृष्ठ टाइप करने में उसने आठ गलतियाँ कीं। की बोर्ड से उँगलियाँ हटाकर वह चुपचाप बैठ गई। पति की बातें बार-बार याद आने लगीं। वह अपने-आपसे पूछ रही थी—मेरे जीवन का मूल ध्येय स्पष्ट हुआ या नहीं? अब दिन प्रतिदिन क्षीण होती जा रही पति की काया की ओर उसका ध्यान गया। उसने भी यह महसूस किया कि पाँचवें खण्ड का कार्य अपेक्षाकृत धीरे हो रहा है। नागलक्ष्मी के गुण-स्वभाव के बारे में उसका मन सोचने लगा। उसकी नजर में नागलक्ष्मी बुरी नहीं है। एक महीने से अधिक जब वह यहाँ रही तभी उसके जीवन क्रम को बारीकी से परखा था। उसके चेहरे पर विषाद छाया रहा। धर्मपत्नी होते हुए भी वह सदा नौकरानी की तरह रसोईघर में काम करती रही। इसमें मेरा क्या दोष? मेरी धारणा है कि वह हम दोनों की माँ के स्तर पर पहुँच गई है —उसे डा० राव की बात स्मरण हो आई। रत्न को लगा कि स्त्री जीवन के विकास में नागलक्ष्मी सचमुच मुझसे अगली सीढ़ी पार कर गई है। साथ ही उसे पृथ्वी की भी याद आ गई।

रत्न के मन में वैचारिक संघर्ष चल रहा था। विचारों से सम्बन्धित भावों की गति उससे भी तीव्र थी। नई मंजिल के पास पहुँचते हुए और अव्यक्त मनोव्यथा के साथ एक सप्ताह बाद उसने अपने पति से कहा—आप जाकर उन्हें भी ले आइए। तीनों साथ रहेंगे।

इस प्रस्ताव पर डा० राव को तुरन्त विश्वास न हुआ। उन्होंने गौर से रत्न का चेहरा देखा। उसकी आँखों से झलक रहे शांत-गम्भीर भाव को देखकर उन्हें विश्वास हो गया।

एक बार जाग्रत आशा असफल होने पर नागलक्ष्मी का मन प्रक्षुब्ध हो उठा था। यदि अस्पताल में ही डा० राव उसे नकारात्मक उत्तर देते, तो उसकी आशा रूपी लता अंकुरित ही न होती। अस्पताल में वे आत्मीयता से बोलते रहे। उससे पहले नागलक्ष्मी के मन में एक स्वाभिमान था। पति की सेवा उनकी देखभाल के लिए तड़प रहे मन की शांति के लिए

उसने उनके साथ रहने का प्रस्ताव किया था। अपने विवाह के बारह वर्ष बाद सौत के साथ रहना उसे भी पसन्द नहीं था, लेकिन पति-सेवा के निमित्त वह वैसा करने के लिए तैयार थी। अस्पताल से लौटने के पश्चात् पति ने उस बात का जिक्र भी नहीं किया, जिससे उसकी निराशा दूनी हो गई। उसे पूर्ण विश्वास था कि बेंगलूर रवाना होने से पूर्व वे इस बारे में अवश्य बात करेंगे। सोचा था, कम-से-कम राज से कहेंगे 'नागु को यहीं छोड़ जाओ'। ऐसा नहीं हुआ तो अश्रुपूरित नयनों से बँगले से निकल आना पड़ा।

बेंगलूर लौटने के कुछ दिन बाद तक उसे जीवन व्यर्थ प्रतीत होने लगा था। उसे यह चिन्ता सता रही थी कि क्या यह जीवन इतना तुच्छ है? कुछ दिनों तक अपने खानपान में भी कोई नियम नहीं रखा। मैसूर में घटी इस घटना से राज और कात्यायनी को भी बुरा लगा। राज ने महसूस किया कि रत्न की चालाकी के कारण भाई ऐसा कर रहे हैं। लेकिन वह कुछ करने में असमर्थ था। अब भाभी के प्रति पहले की अपेक्षा अधिक ध्यान देने लगा। जेठानी की मनःस्थिति को जानकर कात्यायनी का मन द्रवित हो उठा। खाने-पीने के प्रति उसकी उदासीनता देख कात्यायनी ने एक दिन कहा—"दीदी 'रामनाम' लेखन की कापियाँ कितनी समाप्त कर दीं?"

'मैंने गिनी नहीं।'

मैसूर से लौटने के पश्चात् आपने शायद कुछ नहीं लिखा है?'

'भगवान का नाम लिखने से क्या होना है? छोड़ दिया" उसमें निराशा आ गई थी।

'अपने अपने पूर्वार्जित कर्म के लिए भगवान् से क्या नाराज होती हैं दीदी? आपको यह बताने की क्या आवश्यकता है? न जाने किस जन्म के धर्म कर्म का फल इस जन्म में भोग रहे हैं। इस जन्म में भगवन्नाम की ओर दुर्लक्ष्य करके अगले जन्म में कर्म भला होगा? आप 'रामनाम' लिखकर भक्तिपूर्वक पूजा करें तो आपके देवर के लिए भी अच्छा रहेगा। आप भविष्य में गृह-कार्य में कम और लिखने में अधिक समय व्यतीत कीजिए। पत्नी के कालेज से लौट आने पर स्याही तैयार कर दूँगी। कापियाँ कितनी बची हैं?"

नागलक्ष्मी को इतने दिन भगवान् का नाम न लिखना उचित न लगा। अपनी इस गलती के लिए श्रीराम से क्षमा प्रार्थना की। दूसरे दिन से ही रामनाम लिखना प्रारंभ कर दिया। सुबह का भोजन तैयार करती। दोपहर को नाश्ता बनाती। आप श्रीरामनाम लिखिए, कहकर रात का रसोई कात्यायनी बनाती। कुछ दिनों में ही नागलक्ष्मी का मन नियंत्रित हो गया। उसका मन उसे समझा रहा था भले ही कोई मुझे छोड़ दे राम कभी नहीं छोड़ेगा। उसने प्रार्थना की मैं चालीस पार कर चुकी हूँ। अब मुझे क्या होना है? राजू कात्यायनी और पृथ्वी सुखी रहें और मैसूर में 'वे' भी स्वस्थ रहें। मैसूर की घटना को भुला देने का प्रयत्न करती। अपने पति के प्रति अनजाने ही उसके मन में एक कठोर भाव पल रहा था।

राजू कात्यायनी का मैसूर तबादला होने पर नागलक्ष्मी वहाँ जाने के लिए उत्सुक नहीं थी। कात्यायनी में भी उत्साह न था। राजू के लिए दोनों जगहों में कोई फर्क न था। पृथ्वी को बेंगलूर भाता था। लेकिन कोई उपाय न था। सब मैसूर आ गये। पृथ्वी मैसूर में कालेज जाने लगा। मैसूर आने के चार दिन बाद ही नागलक्ष्मी का मन विचलित हो उठा। अस्पताल और बँगला उसके संतुलन को विचलित कर देते। लेकिन मन स्थिति संतुलित कर वह लेखन कार्य में लग गई। अब तक पैंतालीस लाख से भी अधिक रामनाम लिख चुकी थी। एक सौ दस नोटबुकें भर गई थीं। जल्दी-से जल्दी मरने से पहले एक करोड़ नाम लिखने के दृढ़ संकल्प से वह उसमें अधिक समय देने लगी। शनिवार की पूजा पहले की अपेक्षा अधिक व्यवस्थापूर्वक चलने लगी।

एक दिन दोपहर का एक बजे का समय था। घर के बरामदे में बैठ कर लिखने में वह लीन थी। घर में और कोई न था। सब कालेज गये हुए थे। लगा कि किसी ने फाटक खोला है। उसने गर्दन उठाकर देखा। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। डा० राव चले आ रहे थे। अप्रत्याशित यह बात समझने से पहले ही वे घर में प्रविष्ट हो चुके थे। नागलक्ष्मी की समझ में कुछ नहीं आया। तुरंत लिखना रोक दिया। सारी चीजें वहीं छोड़कर भीतर चली गई। डा० राव प्रांगण में आकर एक कुर्सी पर बैठ गये। नागलक्ष्मी का मन पूर्व घटनाओं को स्मरण कर

दुखी था। लगभग दस मिनिट बैठने के बाद डा० राव ने आवाज दी—"नागु!" वह नहीं बोली। पुनः आवाज दी। भीतर से उत्तर न पाकर उन्होंने पुनः पूछा—"क्या मेरी आवाज सुनाई नहीं देती? तुम्हें ले जाने के लिए आया हूँ।"

अब भी वह नहीं बोली। डा० राव ने यही पुनः दुहराया। वह भीतर से बोली—"मैं यहाँ अपनी इस हालत में सुखी हूँ। मुझे ले जाने की जरूरत नहीं।"

"नागु, तुम ऐसी नाराजगी में कह रही हो। तुम्हारे बैंगलूर चले जाने के बाद मैं मैं बड़ा दुखी हूँ—पछता रहा हूँ। अब रत्न भी मान गई है।"

"किसी के मानने से मुझे वहाँ नहीं जाना है। मैं कहीं भी नहीं जाना चाहती।" उसकी ध्वनि में कंपन अनजाने ही बढ़ गया था।

"ऐसा मत कहो, नागु। सोच समझकर बोलो। मैं आ गया हूँ...।" बीच में ही उनकी बात काटकर बोली—"कोई भी आये। मैं सोच समझ कर ही बोल रही हूँ।"

डा० राव पाँच मिनट बैठे रहे। नागलक्ष्मी बाहर नहीं आई। अंत में खड़े होकर उन्होंने कहा—"अच्छा नागु, मैं जाता हूँ। तुम सोचो। राज से भी कहता हूँ। चाहो तो रत्न को ही भेज दूँ।"

"राज सब जानता है। राज ही क्यों, किसी के भी कहने पर नहीं जाऊँगी। उससे कहने पर आपकी बात की कीमत कम होगी। मुझे बुलाने के लिए आपकी पत्नी को आने की आवश्यकता नहीं। किसी के भी घर की चाकरी करूँगी तो दो जून का खाना मिल जायेगा। मेरी भी कोई इज्जत है। आप लौट जाइए।"

वे एक मिनिट खड़े रहे, फिर धीरे धीरे बाहर आ गये। कम्पाउण्ड का फाटक बंद करने की आवाज जब नागलक्ष्मी के कानों में पड़ी तो वह सिसक सिसककर रो पड़ी।

आध घण्टे बाद कात्यायनी आई। उसने पूछा—"दीदी, लगता है आप रो रही थीं?" नागलक्ष्मी ने इस बारे में कुछ नहीं बताया। 'रोने से क्या लाभ', धीरज बँधाकर, कात्यायनी चुप हो गई।

डॉ० राव सीधे पुस्तकालय गये। रत्न ने पूछा—"क्या कहा उन्होंने?"

'स्पष्ट कह दिया कि नही आऊँगी। इस उत्तर की मैंने कभी अपेक्षा नही की थी।"

'मैं जाऊँ क्या ?

'नही कोई लाभ नहा !

लगभग एक सप्ताह तक डा० राव का मन भयानक तूफान-सा उद्वलित रहा। अब तक वे यही समझ रहे थे कि नागलक्ष्मी पर अपने पतित्व का अधिकार है लेकिन अब वह भाव छिन्न भिन्न हो चुका है। किसी अमूल्य वस्तु को खोने-सा उन्हे प्रतीत होने लगा। उनके मन का यह भाव घेरता जा रहा था कि विवाह से पहले वे जिस तरह अनाथालय के विद्यार्थी थे उसी तरह आज भी अनाथ है। ऐसी असहायता व्याकुलता का अनुभव इसके पहले कभी नही किया था। उनका मन कह रहा था उनके जीवन मे अब तक किये कार्य प्राप्त यश एव मान असफल हो गये हैं।

डा० राव ने अधिक दिनो तक इन भावो को मन पर हावी नही होने दिया। पाँचवा खण्ड उन्हे याद आ रहा था। उनका अतःकरण बार-बार पुकार उठता कि वे अब अधिक दिन जीने वाले नहीं हैं। खण्ड पूर्ण करने के सकल्प को याद कर साहसपूर्वक एक दिन रत्ने से बोले— 'अब मुझे पहले की अपेक्षा अधिक तीव्रता से कार्य करके इस खण्ड को पूर्ण करना है। अब तुम्हारी जिम्मेदारी पहले से अधिक है।

रत्न कार्य मे जुट गई।

२२

जो शक्ति जीवन के दो भाग करके निरतर द्वद्वो मे उलझाती जा रही थी कात्यायनी उसके प्रति चिन्तित थी। वह केवल निरपेक्ष तात्विक विचारो का द्वद्व नही था वह तो उसके हृदय, भावना एव मन स्थिति को चीर उसके जीवन को ही छिन्न भिन्न किये डाल रहा था। नजनगूडु छोडने का निर्णय जो उस समय उचित लग रहा था, वही अब उसे कभी-कभी अनुचित,

गलत लगने लगा। लेकिन उसके लिए राज के त्याग के बारे में सोचती तो तसल्ली मिलती कि किसी अयोग्य व्यक्ति को समर्पित होकर नहीं भागी हूँ! नंजनगूडु के श्रोत्रियजी के परिवार के बारे में जिस दिन रेल में सुना था उसी दिन से मन अशांत हो उठा है—एक भयानक तूफान उठा है। एक ओर अपने पुत्र चीनी की याद कर उसे देखने के लिए तिलमिलाहट होना, दूसरी ओर श्रोत्रियजी का चित्र आँखों के सामने आ जाता। पत्नी को खोकर भी, इस ढलती उम्र में पोते के लिए कैसा कर्त्तव्यनिष्ठ जीवन बिता रहे हैं! रेल की बात उसे याद आ रही थी—संकल्प शक्ति और कर्त्तव्य ज्ञान उनके जीवन के पथ प्रदर्शक हैं। वह जानती थी कि उनकी संकल्प शक्ति अगाध है। जीवन के प्रति उनका विश्वास ही इतना गहरा था। हम अपने आपको अनन्य भाव से धर्म को सौंप दें, तो वह धर्म ही हमारा हाथ पकड़कर चलाता है—इस विश्वास से उन्होंने जीवन बिताया है। यह अनन्य भाव उनमें कर्त्तव्य ज्ञान के रूप में प्रकट होता है। उनके जीवन में दो प्रवृत्तियों, दो दृष्टियों, दो ध्येयों को कोई स्थान नहीं है। अपनी जीवन-दृष्टि के प्राप्य कर्त्तव्यों में लीन हो, चंचल प्रवृत्तियों को प्रबल प्रयत्नों से वश में कर, वे जीवन शक्ति की रक्षा कर लेते हैं। यही उनकी मन शांति का रहस्य है।—इसी तरह वह सोच रही थी।

अपने जीवन में ऐसी स्थिति आई थी तब उसने माना था—प्रकृति चिर चेतन, चिर-नूतन है, उसे धर्म में बाँधना अधर्म है। प्रकृति की क्षुद्र मूल शक्ति ने उसकी बुद्धि फेर दी थी। वह नहीं जानती थी कि बुद्धि भी प्रकृति का ही अंश है। अब वह सोचने लगी है कि धर्म बुद्धि से श्रेष्ठ है, अपनी प्रवृत्तियाँ उस पर निछावर कर देनी चाहिए। 'एक वंश की अभिवृद्धि के लिए दूसरे वंश के क्षेत्र को दान कर, उस वंश के बीज को अपने में धारण कर वृक्ष रूप ग्रहण करने के पश्चात् वह क्षेत्र अपने सार्थक्य को पाता है।' श्रोत्रियजी की यह बात उसे याद आ रही थी। नये वंश को अर्पित होकर श्रोत्रियजी के परिवार के प्रति जो कर्त्तव्य उसे करना चाहिए था, उसने वह नहीं किया—यह भाव उसे तड़पा रहा था। वह सोच रही थी मरते समय सास और इस बुढ़ापे में ससुर की सेवा करके बेटे का पालन-पोषण करती तो मेरे जीवन में यह द्वंद्व न उठता।

गर्मी की छुट्टियों के पश्चात् कालेज खुला। विद्यार्थियों का प्रवेश

किसी के बोलने की आवाज सुनाई दी। सोचा कोई न कोई बाहर आयेगा तो द्वार खोलेगा और मुझे देखेगा। भय से वह स्तंभित हो गयी और अनजान ही लौट पड़ी। कदम रास्ते पर पड रहे थे। वर्षा में छाता खोलना भी भूल गयी थी। वह वापस लौट रही थी। स्टेशन पहुँचने पर ही उसे होश आया।

प्लेटफार्म पर एक मालगाडी खडी थी। सामने से आ रहे एक कुली से पूछा— मसूर की गाडी कितने बजे आयेगी ? उत्तर मिला—'इस मालगाडी में एक पसेंजर-कैरिज लगा है बैठ जाइये।

टिकट लिया मालगाडी के पीछे लगी उस बोगी में बैठ गयी। कुछ ग्रामीणों के अलावा अधिक यात्री नहीं थे। गाडी वहाँ से चली। नदी के पुल को पार करने तक कात्यायनी का शरीर काँपता रहा।

दूसरे दिन भी वर्षा हो रही थी। पिछले दिन कात्यायनी को रात भर नींद न आने के कारण आज वह खोयी खोयी सी रही। उसे साढ़े दस बजे जूनियर इंटरमीडिएट कक्षा में पहला पाठ लेना था। कक्षा में उसके प्रविष्ट होते ही विद्यार्थी खडे हो गये। उन्हें भी कालेज की पढाई का यह प्रथम अनुभव था। कुर्सी पर बैठकर कात्यायनी उपस्थिति लेने लगी। लगभग एक सौ बीस विद्यार्थियों के नाम पुकारकर अन्यों के नाम की ओर न देख उपस्थिति का चिह्न लगा दिया। कक्षा की खिडकी से चामुंडी पहाडी दीख रही थी। कल की तरह ही आज भी उसकी चोटी बादलों से आवृत है। फिर भी वह गंभीरता लिए अटल खडी थी। उसमें पले हरे वृक्ष, बादलों के कुहरे से काले प्रतीत हो रहे थे। रंग पहाडी का गंभीर रूप प्रदान कर रहा था। उपस्थिति रजिस्टर मेज पर रख पहाडी को देखती रही। पढ़ाने की ओर उसका ध्यान ही नहीं गया। पाँच मिनट चुपचाप बैठे रहने के बाद विद्यार्थी अब धीरे धीरे फुसफुसाने लगे। दो मिनट बाद उनकी आवाज तेज होने लगी। उसने अपनी दृष्टि पहाडी से हटा खडे होकर कहा—'सटेन साइलेंस प्लीज।

विद्यार्थी चुप हो गये। इस वर्ष जो काव्य पढ़ाना था वह पढ़ाना प्रारंभ करने ही वाली थी कि द्वार से एक विद्यार्थी ने पूछा— मे आई कम इन ?'

"कम इन" कहकर द्वार की ओर घूमकर देखा। उनका चेहरा गंभीर था। आँखें उसी लडके पर अटकी रही। विशाल चेहरा, बडी-बडी आँखें, लबी नाक ऊँचा शरीर, सँवरे बाल, भाल पर अमत का टीका। कमीज पट के अदर और पैरो म जूते थे। हाथ म भीगा छाता। उसके ढग स पता लगता था कि वह उन कपडो को पहनने का अभ्यस्त नहीं है। श्रोत्रियजी-सा ही गठा शरीर, ऊँचाई और मुखमुद्रा। मेरे पहले पति भी लगभग ऐसे ही थे—कात्यायनी न सोचा।

लडका दीवार के पास स चलकर पीछे वाली एक खाली बेंच पर बठ गया। कात्यायनी की आँखें उस ही देख रही थी। इतने म विद्यार्थियों ने पुन फुसफुसाना शुरू किया। पुस्तक खोलकर उसने पढाना प्रारभ किया। वह दो वाक्य भी बोल न पाई थी कि उसी लडके क पास क विद्यार्थी ने उसस कुछ कहा। उसन खडे होकर कहा—"मडम, मेरी उपस्थिति ?"

कात्यायनी का ध्यान पुन उसकी ओर गया। उसे देखते हुए मेज पर रखा उपस्थिति रजिस्टर उठाकर पूछा—"यूअर नेम प्लीज ?"

"एन० श्रीनिवास श्रोत्रिय।"

कात्यायनी का हाथ धीरे धीरे काँपने लगा। चेहरे पर पसीना छूटने लगा। माथे पर पसीने की छोटी छोटी बूंदें दीखने लगी। खडे होने में असमर्थ होकर वह बठ गयी। मत्र नामा के सामने उसने उपस्थिति लगा दी। अपने अनियत्रित स्वर को नियत्रित कर उसने पुन पढाना शुरू किया। लेकिन क्या कहना चाहिए भूल गयी। कुछ सूझ नहीं रहा था, दिमाग शून्य हो गया था। अब शब्द बोलने की अपेक्षा न पढाना ही उचित समझ, विद्यार्थियो से चुपचाप बाहर जाने क लिए कहा और प्रथम बेंच के विद्यार्थियो क बाहर जाने स पहले वह स्वय द्वार क पास आकर खडी हो गयी। उस कमरे म एक ही द्वार था। एक-एक कर विद्यार्थी बाहर जा रहे थ। वह इस विश्वास से वहाँ खडी थी कि अतिम बेंच पर बठा 'श्रीनी' मेरे पास आयगा—मुझस बोलगा, मैं उसे पहचानती हूँ। वह जानता ही है कि मैं कौन हूँ। इस विश्वास का कोई कारण नहीं था। मन न कारण जानने का प्रयत्न भी नहीं किया। आधे से भी अधिक विद्यार्थी बाहर जा चुके थ। वह पीछे स आ रहा था। पास के विद्यार्थी से वह कुछ बोला। अब क्या वह आ ही गया। मुझ से अवश्य बात करेगा।

किसी के बोलने की आवाज सुनाई दी। सोचा, कोई न कोई बाहर आयेगा तो द्वार खोलेगा और मुझे देखेगा। भय से वह स्तंभित हो गयी और अनजाने ही लौट पड़ी। कदम रास्ते पर पड़ रहे थे। वर्षा में छाता खोलना भी भूल गयी थी। वह वापस लौट रही थी। स्टेशन पहुँचने पर ही उसे होश आया।

प्लेटफार्म पर एक मालगाड़ी खड़ी थी। सामने से जा रहे एक कुली से पूछा— मसूर की गाड़ी कितने बजे आयेगी? उत्तर मिला— इस मालगाड़ी में एक पसैंजर-कैरिज लगा है, बैठ जाइये।'

टिकट लिया मालगाड़ी के पीछे लगी उस बोगी में बैठ गया। कुछ ग्रामीणों के अलावा अधिक यात्री नहीं थे। गाड़ी वहाँ से चली। नदी के पुल को पार करने तक कात्यायनी का शरीर काँपता रहा।

दूसरे दिन भी वर्षा हो रही थी। पिछले दिन कात्यायनी को रात भर नींद न आने के कारण आज वह खोयी-खोयी-सी रही। उसे साढ़े दस बजे जूनियर इंटरमीडिएट कक्षा में पहला पाठ लेना था। कक्षा में उसके प्रविष्ट होते ही विद्यार्थी खड़े हो गये। उन्हें भी कालेज की पढ़ाई का यह प्रथम अनुभव था। कुर्सी पर बैठकर कात्यायनी उपस्थिति लेने लगी। लगभग एक सौ बीस विद्यार्थियों के नाम पुकारकर उनकी ओर देखे बिना नाम की ओर न देख उपस्थिति का चिह्न लगा दिया। कक्षा की खिड़की से चामुंडी पहाड़ी दीख रही थी। कल की तरह ही आज भी उसकी चोटी बादलों से आवृत है। फिर भी वह गंभीरता लिए अटल खड़ी थी। उसमें पले हरे वृक्ष बादलों के कुहरे में काले प्रतीत हो रहे थे। रंग पहाड़ी को गंभीर रूप प्रदान कर रहा था। उपस्थिति रजिस्टर मेज पर रख पहाड़ी को देखती रही। पढ़ाने की ओर उसका ध्यान ही नहीं गया। पाँच मिनट चुपचाप बैठे रहने के बाद विद्यार्थी अब धीरे-धीरे फुसफुसाने लगे। दो मिनट बाद उनकी आवाज तेज होने लगी। उसने अपनी दृष्टि पहाड़ी से हटा खड़े होकर कहा— मेंटेन साइलेंस प्लीज।

विद्यार्थी चुप हो गये। इस बार जो काव्य पढ़ाना था, वह पढ़ाना प्रारंभ करने ही वाली थी कि द्वार से एक विद्यार्थी ने पूछा— मे आई कम इन?

'कम इन" कहकर द्वार की ओर घूमकर देखा। उसका चेहरा गंभीर था। आँखें उसी लडके पर अटकी रहीं। विशाल चेहरा, बडी-बडी आँखें लंबी नाक, ऊँचा शरीर, सँवरे बाल भाल पर अक्षत का टीका। कमीज पैंट के अंदर और पैरों में जूते थे। हाथ में भीगा छाता। उसके ढंग से पता लगता था कि वह उन कपडों को पहनने का अभ्यस्त नहीं है। श्रोत्रियजी-सा ही गठा शरीर, ऊँचाई और मुखमुद्रा। मेरे पहले पति भी लगभग ऐसे ही थे—कात्यायनी ने सोचा।

लडका दीवार के पास से चलकर पीछे वाली एक खाली बेंच पर बैठ गया। कात्यायनी की आँखें उसे ही देख रही थीं। इतने में विद्यार्थियों ने पुनः फुसफुसाना शुरू किया। पुस्तक खोलकर उसने पढाना प्रारंभ किया। वह दो वाक्य भी बोल न पाई थी कि उसी लडके के पास के विद्यार्थी ने उससे कुछ कहा। उसने खडे होकर कहा— 'मैडम मेरी उपस्थिति ?'

कात्यायनी का ध्यान पुनः उसकी ओर गया। उसे देखते हुए मेज पर रखा उपस्थिति रजिस्टर उठाकर पूछा— 'यूअर नेम प्लीज ?"

"एन० श्रीनिवास श्रोत्रिय।

कात्यायनी का हाथ धीरे-धीरे काँपने लगा। चेहरे पर पसीना छूटने लगा। माथे पर पसीने की छोटी छोटी बूंदें दीखने लगीं। खडे होने में असमर्थ होकर वह बैठ गयी। सब नामों के सामने उसने उपस्थिति लगा दी। अपने अनियंत्रित स्वर को नियंत्रित कर उसने पुनः पढाना शुरू किया। लेकिन क्या कहना चाहिए भूल गयी। कुछ सूझ नहीं रहा था, दिमाग शून्य हो गया था। अंट शंट बोलने की अपेक्षा न पढाना ही उचित समझ, विद्यार्थियों से चुपचाप बाहर जाने के लिए कहा और प्रथम बेंच के विद्यार्थियों के बाहर जाने से पहले वह स्वयं द्वार के पास आकर खडी हो गयी। उस कमरे में एक ही द्वार था। एक एक कर विद्यार्थी बाहर जा रहे थे। वह इस विश्वास से वहाँ खडी थी कि अंतिम बेंच पर बैठा वो भी मेरे पास आयेगा—मुझसे बोलेगा, मैं उसे पहचानती हूँ। वह जानता ही है कि मैं कौन हूँ। इस विश्वास का कोई कारण नहीं था। मन ने कारण जानने का प्रयत्न भी नहीं किया। आधे से भी अधिक विद्यार्थी बाहर जा चुके थे। वह पीछे से आ रहा था। पास के विद्यार्थी से वह कुछ बोला। अब क्या वह आ ही गया! मुझ से अवश्य बात करेगा!

वही चेहरा ! बचपन म भी उसकी मुखमुद्रा एसा ही थी ! वह पास आ ही गया। लेकिन अध्यापिका को वहा खडे पाकर सिर मुकाकर बायें हाथ की पुस्तका को हाईस्कूल क विद्यार्थियो की,तरह छाती स सटाकर दरवाजे स बाहर निकल गया। उसन कात्यायनी से बात नही की। कात्यायनी को बडी निराशा और असह्य वदना हुई।

धीर धीरे चलकर वह प्राध्यापका के कमरे म बठ गयी। एक कागज नेकर लिखा दापहर का पाठ मैं नही ले सकूगी। उस चपरासी को दकर नोटिस बाड पर लगाने का आदेश दिया और घर चल दी। इस बात का उसे असह्य दु ख हो रहा था कि चीनी न अपनी माँ का नही पहचाना। लेकिन शाम तक वह अपने मन का समझान म समथ हो गयी। मैं जान गयी कि वह कौन है। लकिन वह कस जान सकता है कि मैं कौन हूँ? यद्यपि रत्न न कहा था कि वह माँ क बारे म जानता है फिर भी उसे क्या मालूम कि मैं ही उसकी मा हूँ? आज कालेज का प्रथम दिन और पहली पढाई थी। मरा नाम उसे शायद ही मालूम हो ! नाम जानने पर अपन-आप मुझे पहचानेगा—आदि सोचकर मन को सान्त्वना दी और रात बितायी। दूसर दिन उसे वह कक्षा नही लनी थी। उसवे अगले दिन फिर साढे दस बजे कक्षा लेनी थी।

अगले दिन उपस्थिति रजिस्टर लिय कक्षा म प्रवेश करने से पहले ही सब विद्यार्थी आ चुक थे। कुर्सी के समीप जाते ही उसने अतिम बेंच की ओर नजर दौडाई। चीनी आ चुका था। उसी बेंच पर बठा था। उसने भी कात्यायनी की ओर दखा। क्या वह मुझे पहचानता है? उसमे यह आशा जागी कि आज पढाई पूरी हाने के पश्चात वह आकर मुझ स बोलेगा। उपस्थिति लेते समय बिना भूले चीनी का नाम पुकारा। उसके खडे होकर प्रजे ट मडम कहत समय उसका मुख देखन लगी। पुस्तक खोली, पढाई शुरू की। बीच बीच म चीनी का ध्यान से देखती जाती। लेकिन उसका ध्यान पुस्तक की आर ही था। पन से नय श दो के अथ लिख रहा था। कात्यायनी किसी तरह पढा रही थी। विद्यार्थी भी नि शब्द हो सुन रहे थे। घटी बजी। कात्यायनी पुस्तक बद कर, उत्सुकतापूर्वक कक्षा के द्वार के बाहर आकर खडी हो गयी। एक और पीरियड होने के कारण कोई विद्यार्थी बाहर नही निकला। चीनी भी नही निकला। इस आशा

से पाँच मिनट तक वहाँ प्रतीक्षा करती रही कि चीनी उससे मिलने आयेगा। पढ़ाने के लिए दूसरे अध्यापक को दूर से आते देख, वह वहाँ से चल दी।

शंका हुई कि क्या वह उसे पहचानता है? उन्हें पढ़ाने वाले अध्यापक-अध्यापिकाओं के नाम विद्यार्थी पहले ही दिन जान लेते हैं। वह मेरा नाम जानता होगा! अपनी माँ का नाम और अब वह क्या कर रहा है इस विषय में क्या वह कुछ भी नहीं जानता?—कात्यायनी के मन में अनेक प्रश्न उठ रहे थे। यदि केवल दादा के साथ ही रहता तो इस बारे में शायद कुछ न भी जानता लेकिन मरने से पहले दादी ने पूरी कहानी कह डाली होगी। लक्ष्मी ने भी इस बारे में कुछ तो अवश्य कहा होगा—उसने तर्क किया। यह प्रश्न भी उठा कि क्या वह मुझे, मेरी पहचान को अस्वीकार कर रहा है? तब उसे लगा मानो कोई त्रिशूल से उसकी कोख वेध रहा हो। मन यह सान्त्वना देकर कि उसने इतने दिन बिताये, अब विषय को पूर्ण जाने बिना दुःख करना उचित नहीं। उस दिन उस दोपहर के तीन बजे वहीं कक्षा लेनी थी। कक्षा में जाकर उसने पढ़ाना शुरू किया। घंटी के बाद बाहर आकर खड़ी हो गयी। रोज की तरह सब विद्यार्थियों के निकलने के बाद वह आ रहा था। यह जानते हुए भी कि अध्यापिका वहाँ खड़ी है वह बिना देखे जाने लगा! कात्यायनी ने उसे आवाज दी—'श्रीनिवास!"

वह रुक गया। अन्य विद्यार्थी आगे बढ़ गये। उसका साथी दस गज दूर जाकर खड़ा हो गया था। कात्यायनी ने उसे देखकर कहा—तुम जाओ यह बाद में आयेगा। वह चीनी की ओर देखता हुआ चला गया।

श्रीनिवास श्रोत्रिय सिर झुकाये खड़ा था। यह देखकर कात्यायनी ने पूछा—'कहाँ के रहने वाले हो?'

नंजनगूडु मैडम!"

'तुम्हें रोज आना-जाना पड़ता है न?'

'जी हाँ!"

'रेल से?'

'जी हाँ!'

वही चेहरा ! बचपन म भी उसकी मुखमुद्रा ऐसी ही थी ! वह पास आ ही गया। लेकिन अध्यापिका को वहाँ खडे पाकर सिर झुकाकर बायें हाथ की पुस्तका को हाईस्कूल क विद्यार्थियो की तरह छाती स सटाकर दरवाजे से बाहर निकल गया। उसने कात्यायनी से बात नही की। कात्यायनी को बडी निराशा और असह्य वदना हुई।

धीरे धीरे चलकर वह प्राध्यापको क कमर म बठ गयी। एक कागज लेकर लिखा दोपहर का पाठ मैं नही ल सकूगी। उस चपरासी को देकर नोटिस बाड पर लगान का आदेश दिया और घर चल दी। इस बात का उसे असह्य दु ख हो रहा था कि चीनी ने अपनी मा को नही पहचाना। लेकिन शाम तक वह अपने मन को समझान म समर्थ हो गयी। मैं जान गयी कि वह कौन है। लेकिन वह कस जान सकता है कि मैं कौन हूँ ? यद्यपि रत्ने न कहा था कि वह मा के बारे म जानता है फिर भी उसे क्या मालूम कि मैं ही उसकी माँ हूँ ? आज कालेज का प्रथम दिन और पहली पढाई थी। मेरा नाम उसे शायद ही मालूम हो ! नाम जानने पर अपने-आप मुझे पहचानेगा—आदि सोचकर मन को सान्त्वना दी और रात बितायी। दूसरे दिन उसे वह कक्षा नही लनी थी। उसके अगले दिन फिर साढे दस बजे कक्षा लेनी थी।

अगले दिन उपस्थिति रजिस्टर लिये कक्षा मे प्रवेश करने से पहले ही सब विद्यार्थी आ चुके थे। कुर्सी के समीप जाते ही उसने अतिम बेंच की ओर नजर दौडाई। चीनी आ चुका था। उसी बेच पर बठा था। उसने भी कात्यायनी की ओर देखा। क्या वह मुझे पहचानता है ? उसमे यह आशा जागी कि आज पढाई पूरी होन के पश्चात वह आकर मुझ स बोलेगा। उपस्थिति लेत समय बिना भूले चीनी का नाम पुकारा। उसके खडे हो-कर प्रजेन्ट मडम कहते समय उसका मुख दखने लगी। पुस्तक खोली पढाई शुरू की। बीच बीच मे चीनी का ध्यान से देखती जाती। लेकिन उसका ध्यान पुस्तक की ओर ही था। पन से नये शब्दो के अथ लिख रहा था। कात्यायनी किसी तरह पढा रही थी। विद्यार्थी भी नि शब्द हो सुन रहे थे। घटी बजी। कात्यायनी पुस्तक बद कर उत्सुकतापूवक कक्षा के द्वार के बाहर आकर खडी हो गयी। एक और पीरियड होने के कारण कोई विद्यार्थी बाहर नही निकला। चीनी भी नही निकला। इस आशा

से पांच मिनट तक वहीं प्रतीक्षा करती रही कि चीनी उससे मिलने आयेगा। पढ़ाने के लिए दूसरे अध्यापक को दूर से आते देख, वह वहाँ से चल दी।

शंका हुई कि क्या वह उसे पहचानता है ? उन्हें पढ़ाने वाले अध्यापक-अध्यापिकाओं के नाम विद्यार्थी पहले ही दिन जान लेते हैं। वह मेरा नाम जानता होगा ! अपनी माँ का नाम और अब वह क्या कर रही है इस विषय में क्या वह कुछ भी नहीं जानता ?—कात्यायनी के मन में अनेक प्रश्न उठ रहे थे। यदि केवल दादा के साथ ही रहता तो इस बारे में शायद कुछ न भी जानता लेकिन मरने से पहले दादी ने पूरी कहानी कह डाली होगी। लक्ष्मी ने भी इस बारे में कुछ तो अवश्य कहा होगा—उसने तर्क किया। यह प्रश्न भी उठा कि क्या वह मुझे मेरी पहचान को अस्वीकार कर रहा है ? तब उसे लगा मानो कोई त्रिशूल से उसकी कोख बेध रहा हो। मन यह सांत्वना देकर कि उसने इतने दिन छिपाये, अब विषय को पूर्ण जाने बिना दुःख करना उचित नहीं। उस दिन उसे दोपहर के तीन बजे वहीं कक्षा लेनी थी। कक्षा में जाकर उसने पढ़ाना शुरू किया। घंटी के बाद बाहर आकर खड़ी हो गयी। रोज की तरह सब विद्यार्थियों के निकलने के बाद वह आ रहा था। यह जानते हुए भी कि अध्यापिका वहाँ खड़ी है वह बिना देखे जाने लगा ! कात्यायनी ने उसे आवाज दी—"श्रीनिवास !"

वह रुक गया। अन्य विद्यार्थी आगे बढ़ गये। उसका साथी दस गज दूर जाकर खड़ा हो गया था। कात्यायनी ने उसे देखकर कहा—'तुम जाओ, वह बाद में आयेगा।" वह चीनी की ओर देखता हुआ चला गया।

श्रीनिवास श्रोत्रिय सिर झुकाये खड़ा था। यह देखकर कात्यायनी ने पूछा— कहाँ के रहने वाले हो ?"

नंजनगूडु मैडम !'

तुम्हें रोज आना-जाना पड़ता है न ?'

' जी हाँ '

ट्रेन से ?

' जी हाँ !'

वह सिर झुकाये बोल रहा था। उसके पास सरककर कात्यायनी ने कहा— 'चलो, आज हमारे घर चलो।'

उसने कोई उत्तर नही दिया। पुन चलने के लिए कहा तो वह बोला— ट्रेन का समय हो रहा है मैडम।

ट्रेन साढे पाँच बजे की है न ? अभी तो चार बजे हैं।

लडका क्षण भर निरुत्तर खडे रहने के बाद कहा मैडम, मुझे देर हो रही है कहकर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना सयत कदम बढाते हुए चला गया। कात्यायनी को विश्वास हो गया कि वह मेरे बारे मे जानता है। यह सोचकर कि अध्यापिका के घर बुलाने पर उसे ठुकराना और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही या चल जाना उद्दडता का द्योतक है उसे क्रोध आ गया। लेकिन अध्यापिका की दृष्टि से उसके व्यवहार को देखकर कुछ निर्णय न कर सकी। उसके मन में यह भी शका उठी कि लडके के व्यवहार का निर्णय लेने के बदले वही मेरे पूर्व व्यवहार को याद कर अपने उस व्यवहार से उस प्रकारातर से मेरे सम्मुख प्रकट करना तो नही चाहता ? उसका चित्त व्यग्र हो उठा। उसे महसूस हुआ कि उसके नीच अस्तित्व को स्वय उसकी आत्मा धिक्कार रही है। उपस्थिति रजिस्टर और पाठ्य पुस्तकें लिये वह धीरे धीरे नीचे उतरी। स्टाफ-रूम मे गयी। उपस्थिति रजिस्टर मेज पर रखा और छाता लेकर बारिश मे ही घर चल पडी।

दिन भर कात्यायनी का मन व्यथित रहा। उसका अन्त करण कह रहा था कि चीनी यह अवश्य जानता है कि मैं उसकी माँ हूँ। अगर मेरे बुलाने पर चीनी पास आकर मुझ से पूछता कि मैंने ऐसा क्या किया तो मैं क्या उत्तर देती ? निर्लज्ज होकर उस सन्दर्भ का विवरण देकर शायद समझाती कि मुझे ऐसा क्या करना पडा ? उससे शायद क्षमा माँग लेती ? सम्मुख खडे होकर गालियाँ देता धिक्कारता तो चुपचाप सह लेती। लेकिन उससे सम्बन्ध और परिचय को मानो अपने लिए अपमानजनक समझ मुझसे दूर भागता प्रतीत होता है। वह सोच रही थी—क्या यह प्रतिकार की भावना है या पूर्व-र्याजित मन से दी जा रही सजा है ? शाम को राज के घर आने पर भी उसके मन मे यही विचार चल रहे थे। सन्ध्या को सिरदर्द होने लगा। रात को भोजन करते समय राज ने यह

महसूस किया। पप्पी दूकान से सिरदर्द की गोलियाँ लाया। आज राज की आँख जल्दी लग गयी। कात्यायनी करवटें बदलती रही। उसे लगा मानो चीनी उसे धिक्कार रहा है घूर घूरकर देख रहा है। आधी रात को उसकी आँख लगी। उसने एक स्वप्न देखा—"नहीं मैडम, मुझे देर हो रही है" कहकर और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना उसके चले जाने का चित्र कात्यायनी की आँखों के सामने बार-बार आ रहा है। वह जाग उठी। सारा शरीर पसीना-पसीना हो गया। शरीर भारी-सा प्रतीत होने लगा। इन विचारों से बचने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। उसी पलंग पर सोये राज की ओर करवट लेकर उसका आलिंगन किया। उसे लगा कि एक तरह का संरक्षण मिला। कसकर आलिंगन कर उसे अपने पास खींच लिया। राज जाग उठा। उसके ललाट पर हाथ रखा। 'अरे तुम्हें तो बुखार है पसीने से सारा शरीर तर हो गया है'—वह उठ बैठा। कात्यायनी को रोना आ गया। पति की गोद में सिर रखकर वह सिसक पड़ी। राज कुछ समझ न पाया। बार बार पूछने पर भी कात्यायनी ने कारण नहीं बताया।

कात्यायनी एक सप्ताह बुखार से छटपटाती रही। बीमारी से मुक्त होकर कालेज जाने लगी। कुर्सी पर बैठे-बैठे ही धीमी आवाज में पढ़ाती। श्रीनिवास श्रोत्रिय कालेज आता था। उसी बेंच पर बैठता था। उसने अपने मन को काबू में रखने का पूरा प्रयास किया, किन्तु असमर्थ रही। वह बार-बार उसे देखती। चीनी तो सिर झुकाये पुस्तक की ओर नजर रखता। बीच-बीच में नये शब्दों के अर्थ लिख लेता। 'वह मुझे नहीं पहचानता' यही सोचकर कात्यायनी अपने मन को समझाती रही। उसने निश्चय किया कि एक दिन पुनः चीनी को बुलाकर अपना परिचय दूँ।

एक दिन साढ़े दस बजे चीनी का पीरियड था। स्टाफ रूम में दस पचीस पर कात्यायनी ने चपरासी को बुलाकर कहा—'जूनियर इंटर साइंस डी सेक्शन में एन० श्रीनिवास श्रोत्रिय नाम का एक विद्यार्थी है उससे कहो कि मैंने बुलाया है। साथ ही विद्यार्थियों से कहो कि मैं आज कक्षा नहीं लूँगी।'

पाँच मिनट में चपरासी लौट आया। उसके पीछे श्रीनिवास

था। उसकी बाइ कलाई म घडी और हाथ म किताबें तथा दाहिने हाथ म छाता था। उसक आन पर कात्यायनी खडे होकर बोली—"आज गाडी क लिए दर नही होगी चला हमार घर बेटा ! मेरे निमत्रण को तुम्ह ठुकराना नही चाहिए।'

कोई जवाब न्यि बिना लडका मज की ओर देखता रहा। उस बोलने का मौका न दकर कात्यायनी उसका हाथ पकडकर बाली— चलो घर चलें। उसन अनुसरण किया। उस न्नि वर्षा नहा हो रही थी। कात्यायनी आग-आगे चल रही थी और पीछे पीछ चीनी। कालेज कपस से निकलकर रामस्वामी चौक स आगे बढे तो उसकी ओर दखकर बोली— साथ-माथ चलो। सकोच स मरे पीछे-पाछे क्या चलत हो ! और खु चीनी क साथ चलन लगी। उस न्नि जूता क बदल चप्पलें पहन रखी थीं। जूत के काटन स घाव न्खिाई दे रहा था। रास्त म उस सूझा नही कि क्या बोलना चाहिए। चीनी तो कर्तव्यनिष्ठ विद्यार्थी सा साथ चल रहा था।

घर म नागलक्ष्मी अकेली थी और रसोईघर म रामनाम लिखने म मग्न थी। राज और पृथ्वी कालज गय हुए थ। नागलक्ष्मी न कभी-कभी राज या कात्यायनी के विद्यार्थिया को घर आत देखा था इसलिए बिना सिर उठाय वह रामनाम लिखने म लगी रही। भीतर स एक प्लेट म दही भात एव गिलास पानी और एक गिलास दूध लकर कात्यायनी आई। उन्ह मज पर रख, चीना को पास बुलाया। चप्पला को बाहर दरवाजे के पास छोडकर वह कमरे म कात्यायनी की बतायी कुर्सी पर बठ गया। उसका मुख सकोच व सभ्रातिवश लाल हो उठा था। परिस्थितिवश अनभिज्ञ भाव से दृष्टि झुकाय रहन पर भी लगता था कि वह कुछ सोच रहा है।

'यह ला खाओ कहकर कमरे का द्वार बद कर कात्यायनी उसके सामन वाली कुर्सी पर बठ गयी।

नही मडम मेरा भाजन हो चुका है।

यह भाजन नही है। थाडा सा खा लो। गुरु की दी हुई चीज को अस्वाकार नही करना चाहिए।

प्लेट को स्पश किय बिना वह बोला— यह मेरे लिए अधिक है।

जितना खा सकते हो, उतना ही खाओ।'

उसने प्लेट उठाई और चम्मच एक तरफ रख हाथ से खाने लगा।

कात्यायनी ने पूछा— 'घर नंजनगूडु में बताया था न?'

'जी हाँ।'

'तुम्हारे पिताजी का नाम क्या है?'

'नंजुड श्रोत्रिय।'

"माता पिता हैं?

'जी नहीं।

'दोनों नहीं हैं?

'नहीं।' वह सिर झुकाए ही उत्तर दे रहा था। वास्तव में दही-भात उसे नहीं चाहिए था। यह समझ कात्यायनी बोली—'ज्यादा हो तो प्लेट छोड़ दो और उसी में हाथ धो लो।' प्लेट नीचे जमीन पर रख, पानी का लोटा उठाया और खिड़की से सावधानी से बाहर हाथ बढ़ाकर धोया। आकर फिर कुर्सी पर बैठ गया। कात्यायनी पूछने लगी—'तुम्हारी देखभाल कौन करता है?'

'मेरे दादा।'

'क्या नाम है उनका?'

'श्रीनिवास श्रोत्रिय।'

'तुम्हारी देखभाल में तुम्हारे अकेले दादा को कष्ट होता होगा।" चीनी ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। पुनः बात करने का कोई उपाय न सूझा। पाँच मिनट तक कुछ सोचने के बाद कात्यायनी ने कहा—'हमारे एक संबंधी नंजनगूडु से अच्छे परिचित हैं। उन्होंने बताया था कि तुम छोटे बच्चे थे तभी तुम्हारे पिता नदी में डूबकर स्वर्गवासी हो गये और तुम्हारी माँ जिन्दा हैं।'

चीनी कुछ न बोला। नजर नीचे जमीन में गड़ाये रहा। 'है न?" कात्यायनी ने पूछा। "मैं नहीं जानता' उसका उत्तर था। फिर पाँच मिनट तक दोनों मौन बैठे रहे। पुनः पूछा—'तुम्हें अपनी माँ को देखने का स्मरण है?

'नहीं।

"मैंने सुना है कि वह जीवित है। तुम्हारे घर में उसके बारे में कोई

कुछ नहीं कहता ?

'नहीं।"

फिर मौन। तुम्हें माँ को देखने की इच्छा नहीं होती ?

वह कुछ न बोला। निश्चल पाषाण मूर्ति की भाँति सिर झुकाये देखता रहा। उसने फिर पूछा— अपनी माँ को देखने की इच्छा नहीं होती ? बेटे उत्तर दो।

फिर भी वह न बोला। कात्यायनी ने फिर वही प्रश्न दुहराया तो उसने धीरे से कपित स्वर में कहा— नहीं।

कात्यायनी के हृदय पर मानो पहाड़ टूट पड़ा। इस उत्तर से उसकी सारी आशाएँ चकनाचूर हो गयी। क्षण भर भ्रमित रही। सिर चकराने लगा। आँखें मूँद कुर्सी से पीठ टिका ली। पाँच मिनट निर्जीव-सी बैठी रही। चीनी को देखा। वह जमीन की ओर ही ताक रहा था। आँख नाक मुख ऊँचा शरीर—सबमें अपने दादा से साम्य रखता है। नीचे का कुछ मोटा सा अधर निश्चल दृष्टि दादा की संकल्प शक्ति का स्मरण दिला रही थी। कात्यायनी की इतनी बातों का नकारात्मक उत्तर देकर वह यह संकेत कर चुका है कि उसे इस बारे में रुचि नहीं है। कात्यायनी का अन्तःकरण तो कह रहा था कि चीनी उसे पहचानता है। फिर भी उसने एक प्रश्न और पूछा— तुम्हारी माँ यहीं है। वह मेरी अच्छी सहेली है। तुम्हें देखने के लिए छटपटा रहा है। बुलाऊँ उसे ?

वह नहीं बोला। उत्तर दो बेटे —उसने पुन कहा। अब भी वह मौन रहा।

तुम बोलते क्यों नहीं ? ठहरो, मैं उन्हें बुला लाती हूँ।

नहीं, मैडम !

कात्यायनी को पुन एक बार मूर्च्छा सी आ गयी। आँखों को आधा मूँदकर उसने कुर्सी की टेक ली। मुझे देर हो रही है मैडम' कहकर चीनी खड़ा हो गया। कात्यायनी ने धीरे से आँखें खोलकर देखा। द्वार खोलकर सिर झुकाये वह चला गया। कात्यायनी उसे देखती ही रह गयी। उस अर्ध मूर्च्छावस्था में उसका हाथ पकड़कर रोकने की शक्ति उसमें नहीं थी। ठहरो मत जाओ —कहने की शक्ति जबान में नहीं थी। द्वार के बाहर चप्पल पहनकर चलने की आवाज आई। कात्यायनी ने खिड़की

की ओर देखा। मार्ग मे भी वह सिर झुकाए ऐसे चला जा रहा था मानो निर भीतर से शरीर की अपेक्षा अधिक भारी हो। कपिला के प्रवाह से भी तीव्र रुलाई उमड आई। मन ही मन उसने कहा—चीनी, तू मेरा बच्चा है मेरे गर्भ से जन्मा है। मुझे इस तरह मत मार। और कुर्सी छोड़कर जमीन पर लेट गयी। जोर जोर की रुलाई की आवाज वहाँ नागलक्ष्मी न सुन ले उसने आँचल मुँह मे भर लिया। लेकिन ऐसे महा-ज्वार के सम्मुख यह छोटा बाँध कहाँ टिक सकता था?

जमीन पर लेटी-लेटी वह सोच रही थी—कैसा क्रूर तिरस्कार! अपनी माँ के ही सम्मुख बैठकर किसी को भी पिघला देने वाली बात उसी से सुन रहा था किन्तु फिर भी निर्ममता से निरासक्त भाव से हर प्रश्न का नकारात्मक उत्तर देता था। कोई और होता तो इतनी बात करते करते कम-से कम एक बार आँसू बहा देता। 'माँ कहकर पास आ जाता। वह तो पाषाण मूर्तिवत बैठा रहा। अन्त में मुझे दूर हो रही है कहकर ऐसे चला गया मानो कुछ जानता ही नहीं। यह क्या उसके स्वभाव में निहित कठोर हृदय है या अपने दादा से इस उम्र मे ही सीखी चित्त की सम स्थिति है? उसे श्रोत्रियजी की याद आई। दूसरों के हृदय फट जानेवाली परिस्थिति मे भी वे शांत रहते थे। चीनी के चेहरे पर वह शांति नहीं थी। किन्तु हृदयविदारक विषय को सहने की संकल्प शक्ति एवं कठोरता उसमें थी।

शाम के पाँच बजे राज घर लौटा। कात्यायनी अब भी जमीन पर लेटी सो रही थी। उसका चेहरा देखकर राज ने पूछा—"अरे! लेट क्यों गई? लगता है बहुत रोई हो?"

कुछ भी नहीं वह उठ बैठी।

'मुझसे नहीं कहोगी? बात क्या है?'

"कुछ नहीं पहले की घटना है।'

राज को वे दिन याद आये जब तीन बार गर्भपात के कारण पत्नी बीमार हो गयी थी। इससे उसे दुःख हुआ। 'उसे याद करके क्या मिलने वाला है?' पति ने सान्त्वना दी। उस रात कात्यायनी को बुखार आ गया था। उसके पास बैठकर राज ने देखभाल की थी। इंजेक्शन दिलाया था। नागलक्ष्मी धीरज बँधा रही थी। तीसरे दिन उसका बुखार उतर

गया। चौथे दिन तांगे में बैठकर कालेज तो गयी लेकिन पढ़ा न गया। और दो-तीन दिन के बाद नियमित रूप से पढ़ाई प्रारम्भ की। चीनी की कक्षा में जाते समय उसे महान् पराजय का अनुभव होता था। चीनी की ओर न देखने का निश्चय कर वह कक्षा में गयी थी। उसकी इच्छा को तिरोहित कर मन का वेग बढ़ रहा था। निर्बाध रूप से आँखें अन्तिम बेंच की ओर चली गयीं। वह वहाँ नहीं था। उसने सारी कक्षा में नजर घुमायी। चीनी का पता न था। उपस्थिति लेते समय जान-बूझकर उसका नाम पुकारा। लेकिन कोई उत्तर नहीं मिला। वह घबरा गयी। दिल जोर से धड़कने लगा। दो सप्ताह इसी तरह बीत गये। वह कक्षा में नहीं आ रहा था। एक दिन कालेज के कार्यालय में पूछताछ की। रजिस्टर देखकर संबंधित क्लर्क ने बताया कि एन० श्रीनिवास श्रोत्रिय ने ट्रांसफर सर्टिफिकेट ले लिया है। चार दिन हो गये। उसने इस सत्र की फीस भर दी है।

कात्यायनी समझ गयी कि यह मेरे प्रति उसका तिरस्कार है। उसने सोचा—यहाँ से वह किस कालेज में गया होगा? पता लगाना कठिन नहीं है। लेकिन उस लोहे को छूने से क्या फायदा जो मुड़ता नहीं! यह सोच कर उसने अपने मनोभाव को स्पष्ट तो कर लिया उसे ढूँढ़ने का विचार तो त्याग दिया लेकिन उसके ऐसे बरताव को सहने की शक्ति कात्यायनी में नहीं थी।

चीनी अपनी माँ के बारे में न जानता हो ऐसी बात नहीं थी। जब वह माध्यमिक शाला में पढ़ रहा था तभी उसके कुछ सहपाठी उसे चिढ़ाते थे। उन सहपाठियों ने घर में अपने माता पिता के मुह से सुना था। दादी के जीवनकाल में चीनी ने उनसे एक प्रश्न किया था तब मुस्कराकर बताया था— इस बारे में नहीं जानना चाहिए बेटे! तेरे दादाजी को यह नहीं भाता। हर व्यक्ति का पाप-पुण्य अपने अपने साथ रहता है। लोगों द्वारा यह बात भी दादी के कानों में पड़ी थी कि कात्यायनी बेंगलूर के कालेज में अध्यापिका है। यह बात चीनी भी जान गया था। वह माँ के नये पति का नाम भी जानता था। दादी की मृत्यु के पश्चात इस बात की कभी चर्चा नहीं हुई। दादा इस विषय में कभी कुछ नहीं बोले। यह

जानकर कि दादा को यह नही रुचता उसने नही पूछा। लक्ष्मी भी श्रोत्रिय जी की राय के कारण मौन रहती थी। इस विषय मे तीनो म कभी बात नही हुई मानो उसस उनका कोई सबध न हो। पौत्र की धार्मिक शिक्षा दादा के मार्ग-दर्शन म चल रही थी। व वेद उपनिषद् पढाते, उनका अथ बताते। व धर्म-कर्म, कर्तव्य, मानव जीवन का उद्देश्य आदि विषयो पर भी भाषण देते। सारे विषय उसकी समझ में पूरी तरह नहा आते थ, तो भी दादा के जीवन के प्रति उसमें भययुक्त भक्ति निहित थी। इस उम्र में भी उनकी कर्तव्यनिष्ठा, पास-पडोसी से उन्हें प्राप्त पूज्य भाव मिश्रित गौरव, स्वय भोजन बनाने की कुशलता आदि विषयो स बालक काफी प्रभावित हुआ था। सप्ताह में एक बार तेल मलकर लक्ष्मी उसे स्नान कराती थी। स्नान के पश्चात् उसके ललाट पर काला टीका लगाकर कहती—"मुन्ने, पहले यज्ञेश्वर को नमस्कार करो फिर दादा के पैर छूओ। यदि वह पूछता 'तुम्हें ?' तो वह कहती—'श्रीनिवास को नमस्कार करना ही मानो समस्त देवताओ को नमस्कार करना है। मुझे कभी नमस्कार न करना।" वह दादा के व्यक्तित्व स पूर्णत प्रभावित हो चुका था।

जिस दिन कालेज में पढाई शुरू होन वाली थी, उससे पहले दिन ही मसूर आया था। इस बात का पता लगने पर कि उस दिन छुट्टी है वह साथियो के साथ नजनगूडु लौट गया था। उसका हाईस्कूल का सहपाठी वकील वेंकटराव का पुत्र चक्रपाणि अब भी उसका सहपाठी था। व दोनों एक ही डिविजन में थ। दूसरे दिन चक्रपाणि सुबह की रेल से कालेज आया था और चीनी के दस बजे की गाडी स आने के कारण पीछे की बेंच पर उसने जगह रखी थी। कात्यायनी के पीरियड के समय पहुँचने पर चीनी सीधा चक्रपाणि के पास जाकर बठ गया था। उसके पश्चात मैडम को कक्षा देखकर उस विस्मय हुआ था। महिला-अध्यापक के अध्यापन का ढग जानने के कुतूहल में कुछ दर अध्यापिका को देखता रहा। फिर पढाई की ओर ध्यान देने लगा था। पीरियड के पश्चात् विद्यार्थियों को प्रयोगशाला में जाना था। व वहाँ गये लेकिन उस दिन वहाँ किसी ने पीरियड नही लिया। विद्यार्थियो के बाहर आने के पश्चात् चक्रपाणि ने चीनी स पूछा—' अंग्रेजी की मैडम का नाम जानते हो ?

नही तो ? क्या नाम है ?"

'मिसेस कात्यायनी राजाराव।

अर्थात उनका विवाह हो गया है ?

'हाँ बहुत हैं इनके पति महाराज कालेज में असिस्टेंट प्रोफेसर हैं।"

चीनी तुरंत जान गया था कि क्या बात है। फिर भी उसने चक्रपाणि से पूछा— ये पहले से यही पढाती हैं ?

'नहीं सुनते हैं कि पहले बैंगलूर मैंट्रल कालेज में पति पत्नी पढाते थे। पिछले साल यहाँ तबादला हुआ है। इनके पति राजाराव नाटक बहुत सुन्दर पढाते हैं। मैं आज सुबह अपनी मामा के घर गया था। मेरी मामी की बेटी महाराज कालेज में बी० ए० में पढ़ रही है उसी ने सब बताया है।'

सब का क्या मतलब है ?

'उनका विधवा विवाह है कहकर तुरंत जसे जीभ काटकर चक्रपाणि ने बात बदल दी। चीनी का मुख पहले से ही खिन्न हो चुका था। चक्रपाणि का अध्यापिका का पूर्ण परिचय था। उसने अपने मित्र का दिल दुखाने के लिए यह बात नहीं कही थी। मित्र से संबंधित एक मुख्य बात कहने की आतुरता में बात शुरू की थी।

चीनी अपनी माँ जो अब उसकी अध्यापिका भी थी के प्रति अनजाने ही एक दो दिनों में आकर्षित हो चुका था। कक्षा में पढाई के समय उनकी आँख बचाकर उन्हें देखने का प्रयत्न करता। पहली बार के अनपेक्षित बुलावे से वह भ्रमित हो गया था। तुरंत बहाना बनाकर छुटकारा पा लिया था। महाराजा कालेज जो पास ही था जाकर उसके पति को देखने का कुतूहल हुआ। एक दिन वहाँ पहुँचकर एक विद्यार्थी से पूछा— अंग्रेजी के प्रोफेसर राजाराव क्या आज क्लास ले रहे हैं ?

सीनियर बी० ए० हाल में अब उनका पीरियड है।

हाल कहाँ है ?

मैं वहीं जा रहा हूँ।

चीनी भी उसके साथ हो गया। वह हाल में जा बैठा। राजाराव ने प्रवेश किया। चीनी उन्हें देख रहा था। राजाराव बर्नार्ड शा कृत सैंट जान नाटक पढा रहा था। चीनी उसे पूर्ण समय नहीं पाया था लेकिन अध्यापक की अभिनयपूर्वक बोलने की कला और अंग्रेजी का सुललित उच्चारण

प्रवाह उसे सक्पय लग। नयी अध्यापिका को अपनी माँ समझकर उसका मन निर्विकार न था। लेकिन राजाराव के प्रति किसी तरह का विकट भाव नहीं जागा। इसके विपरीत, अनजान में ही, एक तरह का तिरस्कार भाव जाग रहा था। बीच में ही उसे अपने पिता का स्मरण हुआ। उसने कभी पिता को नहीं देखा था। घर में उनका कोई फोटो भी नहीं था। चीनी का मन बेचैन होने लगा था। क्लास चल रही थी। उठकर तुरन्त बाहर आने की इच्छा हुई लेकिन पीरियड पूरा होने तक इस भय से बैठा रहा कि न जाने वे क्या कहेंगे!

चीनी का मन अनजाने ही विचित्र भावनाओं में उलझ गया था। अपनी माँ से मिलकर बात करने की इच्छा एवं आतुरता मन में जाग रही थी। उसका मन प्रश्न कर रहा था—वे नये पति के साथ क्या गई? उसे दादी ने बताया था कि वे इसी राजाराव की छात्रा थीं। राजाराव नाटक भी प्रस्तुत करते थे। उसे सारी बातें याद आई। वह सोचने लगा—उत्तम ढंग से नाटक प्रस्तुत करने वाले राजाराव और इनमें परस्पर प्रेम जागा होगा! उन्होंने इनके साथ... मेरी माँ ने ऐसा क्यों किया? एक बार उसने सोचा जाकर पूछा जाय कि उन्होंने ऐसा क्या किया? अगर उन्होंने पूछा कि यह पूछनेवाले तुम कौन होते हो?'—इस विचार से अपने कुतूहल को दबा लिया। अगर वे घर त्यागकर दूसरी शादी न कर लेतीं तो इस उम्र में दादाजी की मदद कर सकती थीं। फिर भी उनकी चिन्ता किये बिना ही वे निकल गयीं! लेकिन मुझ बालक को कैसे छोड़ गया—आदि प्रश्न उसे सता रहे थे। उसे खाना नहीं रुचा। नींद नहीं आई। इसी तरह दो तीन दिन बीत गये। एक बार सोचा कि इस बार में दादाजी से ही क्यों न पूछा जाय? लेकिन वे इस बार में कुछ सुनना नहीं चाहेंगे! इससे अतिरिक्त उन्हें भी दुःख पहुँचेगा। उस विचार को भी त्याग दिया। निश्चय किया कि जिस तरह दादाजी समस्याओं को निगलकर शान्त चित्त रहते हैं उसी तरह मुझे भी रहना चाहिए। हर रोज सन्ध्या करते समय वह १०८ गायत्री मंत्र अधिक जपने लगा।

दादा द्वारा बार-बार कही हुई वह बात कि मनुष्य अपने-अपने कर्म धर्म के अनुसार चलता है—दूसरों के व्यवहार के बारे में हमें नहीं सोचना चाहिए—उसे याद आई। अपनी माँ के चालचलन के बारे में सोचना छोड़

दने का प्रयत्न किया। चौनी म अदभुत सकल्प शक्ति थी। हर विषय में वह वह दादा का पोता था। दादा के यवहारा को निभाने में वह सफल भी हुआ। वह सोच रहा था— भविष्य में एक न एक दिन मुझ बुलाकर वह कहगी कि मैं ही तरी मा हूँ तब मैं क्या करूगा ? हा मैं आपका बटा हूँ कहकर उसे स्वीकार कर लू ? —यह विचार भी आता था। बमा करन पर हम दाना का सबध बढता है। हा सकता है कि उनक प्रति मरे मन में विश्वास बढ जाय। मैं उन्ही के साथ रहना चाहूँ तब दादाजी की स्थिति क्या होगी ? मा की तरह मैं भी उन्हें त्याग दू ? य विचार उस तिरस्कार स जलाने लगे। दाना जगह मैं बेटा बनकर रहूँ ? चौनी शास्त्रा का काफी ज्ञान पा चका था। अपन वश उस वश स सबधित धम-कम आदि की उसे पूरी प्रतीति थी। रोज सध्या कर मत्र पढ कर नमस्कार करते समय उनका अथ मन में मुहर सी लगा जाता था। अपन वश क महत्व के गौरव की रक्षा करना ही नहीं अपितु ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि उसकी वद्धि होकर वह अधिक प्रकाशवान हो। उसे दादा की य बातें याद आ रही थी। वह पुराणा में पढ चुका था कि किस तरह चद्रवशी सूयवशी राजाओ न अपनी वश की प्रतिष्ठा की रक्षा की ? काश्यप गोत्र म जन्म लेकर श्रोत्रिय वश का बेटा मैं अन्य कुटुम्ब के लोगा के साथ बेटे क रूप में कस यवहार करूँ ? बुजुर्गों के साथ चाहे व कोई भी हा पुत्र भाव से व्यवहार करन की प्रवत्ति उसके सस्कार में घुल-मिल गयी थी। लेकिन उसका मन सोच रहा था— अपन वश को त्यागकर और दूसरे वश की मा के साथ सबध जोडकर उनके घर आना जाना कसी विडम्बना है—विपर्यास है ?

वह सोच रहा था— यदि किसी दिन मुझ बुलाकर वे अपना परिचय दें ता क्या करना चाहिए ? माँ को ववश उत्तर देकर वह उसका जी दुखाना नहीं चाहता था। यह उसके दादा का उपदेश था। उसन निणय कर लिया था कि इस नय सबध स दूर रहना चाहिए—माना उसक बार मे वह कुछ जानता ही नही। इसी निणय क अनुसार उसने कात्यायनी स यवहार किया लेकिन उस घर से बाहर निकलन क पश्चात वह रो पडा था। एक पेड के पास खडे होकर सिसक सिसककर रोया था। रूमाल म आसू पोछते हुए सीधा कालेज के पिछवाडे स्थित खेल क मदान मे पेड के

नीचे जा बैठा था।

वह रोज कालेज जाता था। वे पुनः मुझे बुलायें तो ? मेरे सामने रोने लगा तो ? उनके सामने मुझे रोना आया तो ? —वह प्रश्न कर रहा था। कालेज के सूचना-बोर्ड से पता लगा कि वे चार दिन की छुट्टी पर हैं। वे चार दिन बाद कालेज आयेंगी। तब क्या किया जाय ? वह भी पुनः उन्हें देखना चाहता था। कभी-कभी उसका मन आतुर होकर सोचना कि वह कहना चाहिए कि मैं ही आपका बेटा हूँ— मेरा नाम चीनी है। लेकिन तुरन्त दादा की बात याद आयी— किसी भी वस्तु के संसर्ग से उसके प्रति व्यामोह बढ़ता है। व्यामोह बढ़ने के बाद उससे छुटकारा पाना सरल नहीं है। अतः बुरी वस्तुओं के संसर्ग से सदा दूर ही रहना चाहिए।' सोचा उन्हें देखना नहीं चाहिए। इस कालेज को ही छोड़ देना चाहिए। तत्पश्चात् चार छः दिन में मन नियंत्रण में आ जायेगा।

एक दिन रात को उसने दादा से कहा— मैं जिस सरकारी कालेज में पढ़ रहा हूँ वहाँ पढ़ाई ठीक नहीं होती। मैसूर में कुछ लोगों का विचार है कि शारदा विलास कालेज में प्रवेश पाना ठीक है। क्या ट्रांसफर सर्टिफिकेट लेकर मैं उस कालेज में चला जाऊँ ?' पहले तो श्रोत्रियजी ने उसके सुझाव को स्वीकार नहीं किया, फिर पूछा—'नये कालेज में प्रवेश मिल जायेगा ?'

दूसरे दिन चीनी शारदा विलास कालेज गया। पूछताछ कर लौटा और दादा से कहा— सीट है सर्टिफिकेट ले आने के लिए कहा है। अब कालेज में इस सत्र की पूरी फीस लिये बिना वे सर्टिफिकेट नहीं देते। नये कालेज में फिर से फीस भरनी पड़ेगी। साठ रुपये चाहिए। मैं नये कालेज में ही जाना चाहता हूँ।'

दादा ने मुस्कराकर कहा—'पैसे संदूक में हैं ले लो। यह बताओ कि अर्जी में क्या लिखूँ ? अच्छी पढ़ाई वाला कालेज होना चाहिए।'

चीनी तीन दिन में नये कालेज का विद्यार्थी बन गया। फिर भी कई दिनों तक उसका मन अनियन्त्रित ही रहा।

निराशा में आकर कात्यायनी का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन बिगड़ता जा रहा था। न बुखार है न सिरदर्द ही। बिस्तर पर भी नहीं पड़ी रहती।

शरीर दिन प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा था। उसका शरीर, जो पहले पुष्ट था, अंदर ही अंदर कीड़े खाये पत्ते की तरह हो रहा था। राज ने उसे डॉक्टर को दिखाया। डाक्टर ने टानिक लिखकर दिया और फल और अण्डे लेने की सलाह दी—आप मरीजा को बस ही लौटाना डाक्टरों की प्रवृत्ति के विरुद्ध होता है। न चाहने पर भी राज के दिवाव बरन पर वह रोज अण्डे खा रही थी। फल घर में आते। पहले की अपेक्षा अधिक दूध लेने लगी। लेकिन उसका शारीरिक स्वास्थ्य तो विपरीत दिशा में ही प्रगति कर रहा था। अब वह पति से भी अधिक नहीं बोलती। भोजन के पश्चात घर लौटकर कमरे में अकेली बैठ जाती। मन शून्य रहता। सामने की दीवार या खिड़की के उस पार के वृक्षों को एकटक देखती रहती। यह सोचकर निःश्वास छोड़ती कि अपनी आयु में निकला चौक से निरर्थक बन कितना ही हरा भरा हो तो भी उससे क्या लाभ?—कभी सोचती नजनगूडु चली जाऊँ। तब उसका शरीर शिथिल हो जाता काँप उठता। अधिक विचलित हो उठती। स्वप्न में बड़बड़ाने लगती। कभी-कभी स्वप्न में स्पष्ट विचार भी निकल जाते थे। पास ही राज सोता था। वह पूछ उठता—इस तरह स्वप्न में क्या बड़बड़ा रही हो? तो चुपचाप सो जाती। एक दिन स्वप्न में अंग्रेजी में पूछ रही थी— धर्म कर्म का निर्णय करने वाला मूल तत्त्व कौन सा है? राज को नींद नहीं आ रही थी। उसने भी अंग्रेजी में ही उत्तर दिया समस्त जीवों का सुख ही धर्म का मूल तत्त्व है।

स्वप्न में ही वह बोली— सुख मात्र को धर्म नहीं कहा जा सकता। वह किस प्रकार का सुख है? इंद्रिय सुख है? मानसिक सुख है? धार्मिक जीवन की तृप्ति से मिलने वाला सुख है? इनके विश्लेषण के बिना कहा जाने वाला सुख तत्त्व धर्म का मूल नहीं हो सकता।

राज फिर बोलना चाहता था लेकिन कात्यायनी का बड़बड़ाना बंद हो गया था। दूसरे दिन उठी तो राज के मुख से यह बात सुनकर उसे विश्वास नहीं हुआ। इस तरह कई दिन बीत गये। राज ने मनोवैज्ञानिक के पास चलने की बात कही तो वह मेरे मन को किसी और का ज्ञान की आवश्यकता नहीं अपने आपको पहचानो, वह सर्वोत्तम सूत्र है'—कहकर राज को चुप करा दिया।

एक दिन आधी रात को अचानक राज की नींद खुल गयी। देखा

स्त्री बगल मे कात्यायनी नहीं थी। वह उठ बैठा। कमरे का द्वार खुला था। वह बाहर आया। बाहर का दरवाजा भी खुला था। सड़क पर देखा तो एक फर्लांग की दूरी पर चामुंडीपुर की ओर धीरे धीरे कदम बढ़ाती हुई स्त्री की आकृति दिखाई पड़ी। पहचानकर राज उस ओर दौड़ा। उसके पास पहुँचकर पूछा— 'कहाँ जा रही हो?' कात्यायनी की आँखें खुली थी। लेकिन मुखमुद्रा सुषुप्त थी। लगता था सामने खड़े व्यक्ति को वह पहचान नहीं सकी। स्वप्न मे बोलने वाले की तरह वह बोली— 'चामुंडी पहाड़ी पर।'

'क्यों जा रही हो?'

'क्यों? ऊँचाई पर पहुँचे बिना जीवन ही क्या है? सारे स्वप्न मे तो मैं उतरती ही रही। अब जागी हूँ। चढ़ने जा रही हूँ।'

'मेरे साथ आओ। सुबह चलना जायेंगे।'

'आप कितने विवेकी हैं?' कहकर उसकी भुजा थपथपायी। राज उसका हाथ पकड़े घर आ आया। बाहर का दरवाजा बद कर उस शयन कक्ष में ले गया। पलग पर लिटाकर कमरे के दरवाजे को अच्छी तरह से बद कर लिया। क्षण भर में उसकी आँख मुंद गयी। पाच मिनट तक भ्रमित सा बैठे रहने के पश्चात कात्यायनी को हिलाकर पूछा— 'नींद आ गई?'

'नहीं सदा जगी रहती हूँ।' लेकिन उसकी साँस की गति और मुख से स्पष्ट लगता था कि नींद आ गयी है।

'जानती हो अब किससे बात कर रही हो?' राज का प्रश्न था।

'हाँ।'

'मैं कौन हूँ?'

'पुरुष।'

'तुम कौन हो?'

'प्रकृति।'

राज की छाती काँप उठी। उसके ललाट पर पसीना आ गया। वह समझ रहा था कि पत्नी की सुप्त प्रज्ञा में बात सी शक्तियाँ उठ रही हैं। इस बात को और स्पष्ट समझने के उद्देश्य से उसने पूछा— 'प्रकृति चिर-नूतन है न?'

प्रकृति न चिर नूतन है और न चिर चेतन ही। धर्म पथ को ठुकराना जीवन नहीं है।

लगभग दस मिनट विचारमग्न रहने के बाद राज ने पूछा— प्रकृति तुम्हें मुझसे क्या लाभ है ?

कात्यायनी नहीं बोली। इतने में उसे गहरी नींद आ चुकी थी। वह राज के झकझोरने पर भी नहीं जागी। राज को रात भर नींद नहीं आई। बिस्तर से उठा और खिड़की के पास आरामकुर्सी पर बैठकर सोचने लगा। वह उस स्थिति की बात सोच रहा था जब मनुष्य बंधन मुक्त होकर जीते थे। धर्म से आचार परंपराओं से मानव के स्वतंत्र पूर्ण सुखमय जीवन में आनेवाली बाधाओं के बारे में सोच रहा था। उसी दृष्टि से उसने अपने एक आदर्श समाज की कल्पना की थी—अपनी दृष्टि में उसका चित्र खींचा था। राज स्वभावतः सज्जन है। उसने कभी किसी के प्रति बुरा नहीं सोचा। यथाशक्ति दूसरों की मदद करने में उसका विश्वास था। उसकी जीवन दृष्टि कुछ भिन्न थी। उसी दृष्टि से कात्यायनी को उकसाकर उससे विवाह कर लिया था। अब यह जीवन किस ओर जा रहा है ?—इस निराशापूर्ण प्रश्न का उत्तर खोजने में ही सारी रात बीत गयी। सुबह पाँच बजे कात्यायनी जागी तो राज के पास आकर पूछा— ये आँखें लाल क्यों है ? रात सोये नहीं क्या ? यहाँ क्यों बैठे हैं ?

तुम्हें कुछ भी याद नहीं ?

वह कुछ समझ न सकी— आप क्या कह रहे है ? कौन सी बात ?

उसे पास बैठाकर आदि से अंत तक सारी बात कह सुनायी। कात्यायनी की आँखों में आँसू भर आये। यहाँ आइए कहकर पति का हाथ पकड़ पलंग के पास गयी। तत्पश्चात उसे अपनी गोद में लिटाकर बोली— मेरे कारण आपको कितना दुःख होता है ? मैं कुछ नहीं जानती। अब आप मेरी गोद में सो जाइए। मैं थपकियाँ देती हूँ।

जलती हुई आँखों को उसने मूंद लिया। पति की पीठ पर थपकी देते समय कात्यायनी की आँखें भर आईं और अश्रुकण उसके गाल पर ढुलक पड़े।

तुम क्यों रो रही हो ? —आँखें मूंदे मूंदे ही उसने पूछा।

'अनजान म आपका जी दुखाया। प्रायश्चित्त के रूप म रो रही हूँ।
आप मत बोलिए सो जाइए —कहकर पति को अपने सीने मे लगा
लिया।

दिन प्रतिदिन कात्यायनी के बिगडते स्वास्थ्य म राज विह्वल था। वह
समझ नही पा रहा था कि पत्नी का इतना किस तरह कर। उसकी
मन स्थिति ज्यो ज्यो अधिक प्रक्षुब्ध होती जाती थी त्यो-त्यो वह पति
से अधिकाधिक प्रेम की अपेक्षा करती थी। राज उसस न बोलकर किसी
काम म लगा रहता तो सोचती कि शायद मेरे प्रति उनका प्यार कम
होता जा रहा है। वह किसी कारणवश रूठ जाता तो भयभीत
होती कि कही वे भी मुझे छोड न दें। एक दिन पलग पर बैठे पति के
चरणो का स्पर्श कर उसने पूछा—'आप अगर मुझे इस तरह दूर रखेंगे
तो मेरा क्या होगा? क्या मेरे प्रति आपकी सहानुभूति भी नही है?'
मैंने ऐसा क्या किया है? व्यर्थ ही तुम भयभीत हो रही हो।"
फिर उसने पत्नी को सान्त्वना दी— तुम्हारे प्रति मुझे कोई शिकायत
नही है। मैं हरदम प्रयत्न करता हूँ कि तुम्हारा स्वास्थ्य सुधर जाय।
लेकिन वह गिरता जा रहा है। क्या कम-से-कम मेरे लिए धीरज धारण
नही कर सकती?

उसके लिए मैं कितना प्रयत्न कर रही हूँ, यह आप समझ नही
सकते। मेरे कारण आपको कितना दुख होता है? आप बहुत ही अच्छे
हैं। मैं आपको अपेक्षित सुख न दे सकी कहकर आलिंगन करते-करते
उसके आँसू बह चले।

पत्नी के मनोराग को वह जानता था। उसके गर्भ से जन्म लेने वाले
बच्चो म से एक भी बच जाता तो उसके मन को शान्ति मिलती। राज
जानता था कि कात्यायनी समझती है कि उन तीन बच्चो की मौत उसके
पाप-कर्मफल के कारण ही हुई है। एक दिन उसने स्वप्न म भी बडबडाया
था कि एक वश के बीज को धारण करने के बाद दूसरे वश का धारण
करना पाप है। उस पाप के फलस्वरूप ही तीनो बच्चे जन्म लेने के पहले
ही स्वर्ग सिधार गये। राज पूर्णत समझ गया कि पाप-पुण्य के मथन
में वह जर्जरित होती जा रही है। जैसे-जैसे वह पत्नी की

समझता गया वसे-वसे उसे अधिक प्यार करने लगा। जहा तक हो सकता उसके साथ समय बिताना था।

राज एक दिन रात के आठ बजे भाई के बँगले पर गया। डा० राव की शारीरिक स्थिति भी बिगड गयी थी। वे बरामदे में एक आरामकुर्सी पर बैठे थे। रत्न भीतर थी। किसी ग्रथ का अवलोकन कर रही थी। दोनो की कुशल क्षेम पूछने के पश्चात राज ने कात्यायनी की मन स्थिति का जिक्र किया। उसे भी नजनगूडु के शास्त्रियजी के बारे में जानने का कुतूहल था। यह सोचकर उसने कात्यायनी से इस सबध में नही पूछा था कि प्रश्न से उसकी मन स्थिति और बिगड सकती थी। अत राज ने पहली बार भाई से पूछा। डा० राव ने सारी बातें बताया— एक वर्ष पहले हम दोनो वहा गये थे उस समय हमने भी महसूस किया था कि इस परिस्थिति में वह उनके पास रहती तो उचित होता।

राज गभीरता मे डूब गया। कुछ समय बाद उसने पूछा— अब भी कात्यायनी जाकर उनसे क्षमा मागे तो उन्हे तमन्नी मिलने के साथ साथ इसका मन भी नियत्रित हो जायेगा क्या ?

इस सबध मे मैने उनसे बात की थी। वे इन सबको मानो भूल ही गये है। ऐसे लोगो के बारे मे वे सोचते ही नही जिनसे उनका सबध टूट गया है। किसी भी बात मे उनकी आसक्ति नही है—अनासक्ति ही मानो उनका जीवन है। अगर उनसे मिलकर क्षमा मागने से उसे मानसिक शाति मिलती है तो वैसा करने दो। वह भी उचित ही है।

इस विषय मे राज ने कात्यायनी के साथ बात छेडी तो वह भयभीत हो उठी। उसकी अपनी भीतरी शक्ति ने उसे कँपा दिया। कातर होकर उसने पूछा— इस सबध मे आपने अपने भैया से क्या बात की ? मैं कदापि वहा नही जा सकती। उनके सम्मुख हताश होकर गिरने की अपेक्षा यही मरना उचित समझती हू।

राज निरुपाय हो गया। नागु की तरह तुम भी रामपूजा क्यो नही करती ? कम से कम प्रारभ तो करो। मन को शाति मिलेगी उसने कहा।

उसकी भी कोशिश मे हूँ। मुझ जसी मे श्रीराम प्रसन्न नही हो सकते। मैं विश्वास खो चुकी हूँ।

राज की विह्वलता दिन प्रतिदिन बढ़ती रही। कुछ दिन बाद वह भी अंतर्मुखी हो गया। कालेज में नाटक के बहाने राज सुबह साइकिल द्वारा किसी भी मार्ग से नगर के बाहर चला जाता और वन के बीच बैठ जाता। पहले की भाँति साइकिल चलाने की शक्ति अब उसमें नहीं थी। दिसम्बर शुरू हो चुका था। जाड़े की छुट्टियाँ प्रारम्भ हो गयी थीं। एक दिन वह एकाएक हुणसूर के रास्ते पर निकल पड़ा। उस उस रास्ते की जब बाद जानकारी नहीं थी। लगभग सात-आठ मील जाने के बाद वह झरना दिखाई पड़ा जहाँ वह पहले कात्यायनी के साथ आया था। साइकिल से उतर वह झरने के किनारे किनारे चलने लगा। उस हरियाले प्रदेश में आया जहाँ वे दोनों बैठा करते थे। राज को आश्चर्य हुआ कि गाँव के लोग वहाँ के पेड़ पौधों को काट चुके हैं। उसी प्रदेश में बहुत, चलायमान झरने पर एक बाँध बना दिया गया है। उसका पानी खेतों की ओर मोड़ दिया गया है। प्रकृति ने अपनी आजादी खोकर मानव-योजनाओं के सम्मुख सिर झुका लिया है। उस बाँध पर चढ़कर राज ने देखा। सप्रवीण पानी निश्चल आईने के समान दिखाई दे रहा था। पानी की ओर झुककर उसने अपने चेहरे को देखा। वह घबरा गया। वह बुद्ध सा दिखाई दे रहा था। चेहरा सूख गया था। सिर के पके हुए सफेद बाल पानी में भी दिखाई पड़े। ललाट पर झुर्रियाँ पड़ रही थीं। उसे याद आया, 'मैं इकतालीस वर्ष का हो गया।

२३

पाँचवें खण्ड के काम में रत्न और डा० राव दोनों निरंतर लग रहे। इस खण्ड में भारत में अंग्रेजों के आगमन से लेकर आज तक इस देश में प्रचलित सांस्कृतिक परिवर्तनों का विवरण देना था। इसके उपयुक्त सामग्री काफी थी। विश्व के इस भाग पर आंग्ल साम्राज्य की स्थापना और इस देश के सांस्कृतिक जीवन में व्याप्त असंतोष का ...

था। खण्ड के अतिम दो अध्यायो मे 'क्या भारत की प्राचीन सस्कृति अब भी जीवित रहकर आगे विकसित हो सकती है?' इस प्रश्न की चर्चा करके ग्रथ समाप्त करने की योजना थी। रत्ने यथाशक्ति इस बात पर ध्यान दे रही थी कि डा० राव को अधिक परिश्रम न करना पड़े। विषय निरूपण की मूल दृष्टि एव अपने दृष्टिकोण का विवरण डा० राव दे रहे थे। इस दृष्टिकोण की पुष्टि एव खडन करने वाले अन्य ग्रथो को रत्ने स्वय ढूढकर पढती और उनके महत्त्वपूर्ण अध्यायो पृष्ठो की ओर डा० राव का ध्यान दिलाती। उनके स्वास्थ्य के प्रति सतर्क रहती और हर रोज रात को टहलने ले जाती। रात को जल्दी सो जाने का आग्रह करती, ताकि व देर तक न पढें।

एक दिन रात के लगभग ग्यारह बजे का समय था। डा० राव अपने कमरे मे कुर्सी पर बैठे मेज पर रखे हुए कागजो की टिप्पणियो पर निशान लगा रहे थे। उनके पीछे रखी हुई आरामकुर्सी पर रत्ने कोई पुस्तक पढ रही थी। उसके हाथ मे एक पेंसिल थी। टिप्पणी लिखते हुए डा० राव की आँखो के सामने अचानक अधेरा छा गया। पलको को दो तीन बार झपकाया लेकिन हाथ की लेखनी भी दिखाई नही पडी। धीरे से बायें हाथ से अपने चश्मे को नाक से हटाकर मेज पर रखते रखते अर्द्ध मूर्च्छावस्था मे अधेरा छा गया। हिलने डुलने की शक्ति न रही। लेकिन अपनी स्थिति बतलाने का होश था। अत क्षीण स्वर मे रत्ने को पुकारा। रत्ने ने गर्दन उठाकर देखा। डा० राव को बायी ओर अचानक असह्य दर्द होने लगा। उन्हे सास लेना भी कठिन प्रतीत हो रहा था—मानो किसी ने उसे रोक रखा हो। आखें मूदकर दर्द सहने के लिए ओठ काट कर उन्होने अपने बायें हाथ को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया लेकिन व्यर्थ। वे अपने दाहिने हाथ को ऊपर उठाकर छाती पर रख ही रहे थे कि रत्ने दौडी आई और उनके सिर को अपने सीने से टिका लिया। एक मिनट तक डा० राव के मुख पर यम यातना खेलती रही। यह यातना धीरे धीरे घटने लगी। उन्होने रत्ने की बाहु पर अपना सिर रख दिया।

रत्ने भयभीत हो गयी। यह समझने में उसे दो मिनट लग गये कि यह दिल का दौरा है। इस कठिन परिस्थिति में भी अधीर न हो उसने उनकी नाक के पास हाथ रखकर देखा। सांस धीरे धीरे चल रही थी।

तुरंत रागण्या का दो बार आवाज दी। भीतर कमरे में रागण्या सोया था। आढे हुए रपडे वे साथ वह दौडा। बगल वाल प्राफेसर का बुला लाआ। रत्न अप इन्ह मत्यु घेर रही है उसन अपनी टूटी कन्ठ में वहा। रागप्पा दौडा गया। दो मिनट में प्राफेसर आ पहुँचे। डॉ० राव का चेहरा ध्यान स देखकर उन्होंने रत्ने स कहा— अब अटैक बीत गया है। जान को कोई खतरा नहीं। आप इन्हें एस ही लेटे रहन दीजिए।' रागप्पा की ओर मुडकर कहने लगे— 'तुरंत इस कुर्सी के पास एक पलग पर बिस्तर बिछा दो। और ध्यान रखना कि पलग लाते समय तनिक भी आवाज न हो। ठहरो, मैं भी आता हूँ। स्वय जाकर, डॉ० राव के शयन-कक्ष से एक पलग रागप्पा की मन्द स लाय और उनकी कुर्सी के पास ही लगा दिया। तकिया रखन के पश्चात रत्ने की सहायता से उन्ह धीरे से उठाया, और बिस्तर पर छाती के पास तकिया रखकर बैठाया। अब रत्ने स बोले— मैंने ऐसा केस देखा है। यहाँ अधिक प्रकाश नहीं रहना चाहिए। इस कमरे की बत्ती बुझाकर आप यहा रहिए। मैं तुरंत अपनी कार ले जाकर हार्ट स्पेशलिस्ट डॉक्टर आनन्दराव को बुला लाता हूँ।

प्राफेसर वहाँ से चले गये। दो मिनट में उनकी कार के जाने की आवाज आई। रत्ने ने कमरे की बत्ती बुझा दी। रागप्पा वही खडा था। रत्न खाट के पास आकर खडी हो गयी। वह अचानक भयभीत हो उठी थी। वह जानती थी कि डॉ० राव का स्वास्थ्य बिगडता जा रहा है। वह यह भी जानती थी कि डा० राव अपनी पहली पत्नी के बारे म काफी व्यथित हैं। इस चिन्ता को दूर करने के लिए वह स्वय जाकर नागलक्ष्मी को ले आने के लिए तयार हुई। वह प्रयास व्यर्थ समझ डा० राव ने ही उसे ऐसा करने से रोका था। यद्यपि उनकी गिरती तंदुरुस्ती को देख रही थी तो भी उसने इस बात की स्वप्न म भी कल्पना नहीं की थी कि अचानक इस नाजुक स्थिति को पहुँच जायगी। बगल वाले कमरे से पडने वाले मंद प्रकाश से डॉ० राव का शरीर अस्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा था। रत्ने ने अपनी अगुलियाँ उनकी नाक के पास ले जाकर देखा। साँस धीरे धीरे चल रही थी। 'अब 'अटैक' बीत चुका है जान को कोई खतरा नहीं है। प्रोफेसर की यह बात याद आने पर उसने

एक तरह का शून्य उसे घेरे हुए था। मन को अनिष्ट का अस्पष्ट-सा चित्र दूर से दिखाई दे रहा था। उसे स्मरण हो आया कि विद्या, कला, संशोधन आदि में अपने समस्त जीवन को अर्पित करने वालों का अन्तकाल सामान्यतः ऐसी तरह का होता है।

इतने में बाहर से कार की आवाज सुनाई दी। वह कमरे से बाहर निकल ही रही थी कि प्रोफेसर डाक्टर के साथ भीतर आ गये। बिस्तर पर बैठकर टार्च के प्रकाश में उनकी जांच की लेकिन इस बात का ध्यान रखा कि उनके चेहरे पर प्रकाश न पड़े। जांच के पश्चात बाहर आकर डाक्टर ने कहा— अभी दो टिकिया देता हूँ। उन्हें पीसकर दीजिए। कल आकर पूर्ण जांच करूंगा। एक सप्ताह के पश्चात अस्पताल ले जाकर एक्स रे लेकर देखेंगे। इस बीच वे मांगें तो दूध फलों का रस दीजिए। खतरा नहीं है। चिन्ता न करें। कल सुबह मैं आने में देर हो जाय तो कमरे की खिड़की में परदा लगा दीजिए। अधिक हवा नहीं लगनी चाहिए।

टिकिया देकर डाक्टर चलने लगे तो रत्न भी बाहर आई। प्रोफेसर ने उससे पूछा— इन्हें घर छोड़ने जाते समय क्या आपके देवर राजाराव को साथ लेता आऊँ?'

'हां! इनकी पत्नी को भी साथ लेते आइए।

एक मिनिट सोचकर प्रोफेसर ने कहा— मुझे लगता है उनका आना उचित न होगा। यहां इनका भावोद्रेक नहीं होना चाहिए। और डाक्टर की ओर मुड़कर पूछा— मैंने कहा न इनकी प्रथम पत्नी और इस देवी के बीच गलतफहमी है। उन्हें बुलाना क्या उचित होगा?'

हर्गिज न बुलायें"—डाक्टर ने कहा।

डाक्टर के जाने के बाद टिकिया पीस कर रत्न ने डा० राव को दी। डा० राव को पूरा होश था। रत्न के यह पूछने पर कि दूध पियेंगे या फलों का रस उन्होंने नकारात्मक सिर हिला दिया। उनके पलंग के पास की कुर्सी पर रत्न बैठ गयी। डाक्टर के आश्वासन से उसे थोड़ी सी तसल्ली मिली थी किन्तु उसके मन में व्याप्त शून्य न घटा। मन कह रहा था भले ही अब हालत सुधर जाये लेकिन पूर्ववत व अध्ययन-कार्य नहीं कर सकेंगे। वह जानती थी कि जिस व्यक्ति को एक बार हृदरोग होता है, वह दुबारा

हो जाय तो उसका वचना दुस्साध्य है। शून्य मन भविष्य के बारे मे सोच न सका। बाहर रागप्पा दीवार से पीठ टिकाये वठा था। वह दिङमूढ हो चुका था।

इतने मे पडोसी प्रोफेसर की पत्नी उनकी दो पुत्रियाँ, ज्येष्ठ पुत्र सब वहा आ गय। दो दिन की मुलाकात के अतिरिक्त रत्न का इनसे अधिक परिचय न था। रत्ने सदा काय मे व्यस्त रहती थी, अत व अधिक नहा बोलत थे। जोर से न बोलकर द्वार पर मौन खडे रह। रागप्पा न भीतर आकर रत्न का उनके आने की सूचना दी। रत्ने बाहर आई। प्रोफेसर की पत्नी अग्रेजी अच्छी तरह जानती थी। वह एम० ए० थी। उनकी दाना लडकियाँ कालेज म पढ रही थी। बेटा अतिम वर्षकीय परीक्षा की तयारी कर रहा था। कसे हैं? प्रोफेसर की पत्नी न पूछा।

डाक्टर न कहा है कि 'अटक' बीत गया है और प्राणा क लिए खतरा नहीं है। आपके पति का भी यही ख्याल है।

'कोई चिता न करें। एक बार हार्ट अटक हान क पश्चात पूववत् काय करत हुए बहुत साल तक जीनेवाला की कमी नहीं है। उनके लिए अपन जीवन विधान का डाक्टर की सलाह के अनुसार स्वीकार करना अनिवाय हा जाता है। इन्ह अधिक काय करन के कारण ही ऐसा हुआ हागा।' प्राफेसर का पुत्र यह कह ही रहा था कि बगल के सामन कार रुकी। प्राफेसर क साथ कार से उतरत हुए राज का चेहरा उद्विग्न दिखाइ दे रहा था। पास आते ही उसने रत्ने से पूछा— 'कस ह? 'गोली दी है" रत्न न कहा। अपनी चप्पलें वहीं छोड प्रोफेसर भीतर आय। राज तो नंगे पर ही आया था। उसन उनका अनुसरण किया। इतने म डा० राव का नीद-सी आ गयी थी। बाहर आकर प्राफेसर ने कहा— 'थाडी नीद आ रही है। आप लोग उन्ह न उठायें। किसी तरह की आवाज भी न होने पाय।' और अपनी पत्नी की ओर देखकर कहा— 'फल के रस की आवश्यकता पड सकती है। घर म फल हो तो ले आओ। रत्ने ने कहा— घर में फल हैं। लेकिन उन्होने कहा— हमारे पास भी जो हो, ले आन दीजिए। मौसमी का रस दीजिए। रात का भोजन कर चुके हैं। उन्ह कुछ भी खाने के लिए विवश न करें। हमारे पास ग्लूकोज है। दो चम्मच वह भी डाल दीजिए।'

अभी दस वर्ष जी सकते हैं। इस सलाह का उल्लंघन करने पर क्या होगा यह मैं नहीं कह सकता।'

डाक्टर की चेतावनी ने रत्ने को कैसा किया। उसने नियम बना लिया कि डा० राव एक पंक्ति भी न पढ़ें। पाँचवें खण्ड की रूपरेखा उसे ज्ञात था। उस खण्ड के लिए अन्य सामग्री संग्रह करने में लगी रही। उसने निश्चय कर लिया कि स्वयं समग्र कार्य करके अंतिम प्रति तैयार करना एक बार उन्हें पढ़ सुनाकर उनके विमर्श के आधार पर उसे सुधारना उनके न लिखा के बदले उनके निर्देशन में स्वयं लिखना चाहिए। उसकी इस स्नेहपूर्ण आज्ञा को डॉ० राव ने स्वीकार कर लिया। रत्ने को अब अपने भविष्य की चिंता हो रही थी। स्वप्न में माता पिता की मृत्यु को कई साल बीत गये थे। भाई के साथ भी पत्र-व्यवहार होता था यह भी कम था। इसका कारण उनके बीच ममत्व की कमी नहीं अपितु अपने पति के ग्रंथ निर्माण में व्यस्तता था। अन्य लेखन कार्य नियमित रूप से चालू रखना रत्ने के लिए मुश्किल था। उसने जीवन में कभी यह नहीं सोचा था कि पति के मरने पर अपनी स्थिति क्या होगी? जीविकोपार्जन के लिए पति पर निर्भर रहना उसकी दृष्टि में मूर्खता थी। अब भी डॉ० राव के न रहने पर वह खान और कपड़े-लत्ते के लिए चिंतित नहीं है। लेकिन उनके पश्चात् इस जीवन में क्या रहा? क्या? किसे अपना समझकर जिये? उसकी आँखों के सामने अर्थहीन एवं क्रूर भविष्य दीख पड़ने लगा। अपने पति को किसी तरह बचा लेने के लिए कमर कसकर, सतर्कता से उनके स्वास्थ्य की ओर ध्यान देने लगी।

डा० राव कुछ दिन डॉक्टर की सलाह के अनुसार ही चलते रहे। लेकिन कुछ दिनों में वे ऊब से गये। शरीर को एक ही जगह स्थिर रखना उनके वश की बात थी लेकिन अपने मन को निष्क्रिय स्थिति में रखना, उनके लिए असाध्य था। श्रोत्रियजी की वही बात याद आ रही थी—'बुद्धि प्रकृति का ही एक स्वरूप है।' डॉ० राव सोच रहे थे—अगर क्रियाशीलता प्रकृति का मूल गुण है तो फिर बुद्धि निष्क्रिय कैसे रह सकती है? वृत्तिरहित स्थिति को बुद्धि प्राप्त कर ले तो मनुष्य को मुक्ति मिल जायगी।' उनका मन कई बार मुक्ति के बारे में सोचता रहता। भारतीय दर्शन के अनुसार मुक्ति क्या है इस समस्या से भी परिचित थे।

इस प्रश्न पर अब वे व्यक्तिगत आस्था से सोच रहे थे। मुक्ति को बौद्धिक क्रिया में कुछ भी प्राप्त नहीं करना है। जब वह स्वयं आत्मा का मूल गुण अर्थात ज्ञान है फिर बुद्धि की कसरत से उसे क्या मतलब ? इस अर्थ में मुक्ति मिलेगी ? उसके लिए की जाने वाली साधना, अष्टांगयोग आदि उनके मन में आने लगे। यह सोचकर वे चुप रह जाते कि—मेरा मार्ग ही भिन्न है। इस आयु में इस स्थिति में वह लक्ष्य मेरे लिए कठिन अवश्य है। कभी-कभी दर्पण में अपना मुख देखकर वे सोचते—मैं निरपन वर्ष का हो गया। सिर के बाल गिर गये हैं लगभग गंजा हो गया हूँ। केवल दस-बीस बाल रह गये हैं। जिस मार्ग पर अब तक चलता रहा हूँ उसी पर आगे बढ़ूँ तो कम-से-कम यह कार्य तो पूर्ण होगा। संकल्प पूर्ण होने से पहले ही त्याग दूँ और दूसरे आरम्भ को अपना लूँ तो दोनों में से एक भी उपलब्ध न होगा। मेरे इस जीवन में एक ही उद्देश्य शेष रहा है और वह है ग्रंथ पूर्ण करना।

रत्ने द्वारा संगृहीत सामग्री को उसकी सलाह पर ध्यान न देकर डॉ० राव देख रहे थे। पहली बार हृदरोग का शिकार बनने से पूर्व खण्ड के लिए संगृहीत समस्त सामग्री का उन्होंने मनन किया था। उनके मन में यह शंका उठी थी कि 'क्या इस खण्ड को मेरे बदले रत्ने पूर्ण कर सकती है ?' रत्ने की बुद्धिशक्ति एवं विषय पर उसके अधिकार के बारे में उन्हें कोई शंका नहीं थी। लेकिन उन्हें यह याद आ रहा था कि ग्रंथ उसके लेखक की अंतःशक्ति का मूर्त रूप है। उन्होंने मन में ही निर्णय कर लिया कि जिस हाथ ने प्रथम चार खण्ड का लिखा उसी से पाँचवाँ खण्ड भी लिखना चाहिए। रत्ने कितने ही प्रयत्न से क्यों न लिखे, वह इस खण्ड में प्रथम चार खण्डों की अंतःशक्ति की अभिव्यक्ति नहीं कर सकती। अतः मुझे ही लिखना चाहिए। उस महीने में जब हृदय की जाँच के लिए वे डॉक्टर के पास गये, इस विषय का उल्लेख किया। अब तक इस विशेषज्ञ डाक्टर को आज रोगी की विद्वत्ता का परिचय हो चुका था और उसे अपने रोगी के प्रति गर्व भी था। डॉ० राव के विचार सुनकर उन्होंने कहा—आराम ! आपके मन को मैं पहचानता हूँ। इस तरह के रोग में कब क्या होगा कोई भी विशेषज्ञ नहीं बता सकता। ... यदि आप कोई कार्य न करें तो दस वर्ष और जी सकते हैं ... लगभग

छह सौ से भी अधिक पृष्ठों का होगा न ?

'हां।

लिखने के मूड में आने के पश्चात आप इस नियम का पालन शायद नहीं कर सकेंगे कि दिन में इतने ही पृष्ठ लिखें !

कठिन है। सामान्यत किसी लेख का प्रारम्भ करने के पश्चात् एक सप्ताह में वह विषय मुझे अपने वश में कर लेता है। उसके बाद मैं स्वतन्त्र नहीं रहता। वह अपने ही ओघ एवं गति में लेखनी को बहा ले जाता है। उसके समाप्त होने तक मेरा तनिक भी नहीं थकता। लेकिन बौद्धिक क्रिया के बहाव का साथ देने में असमर्थ होकर कई बार शरीर थक जाता है। फिर भी लेखन कार्य समाप्त होने तक मुझे किसी तरह की शारीरिक थकावट मालूम ही नहीं होती।

प्रशंसा की दृष्टि से डाक्टर ने सिर हिलाकर पूछा— मुझे क्या करने को कहते हैं ?

लेखन कार्य प्रारम्भ किये बिना मैं जी नहीं सकता। बौद्धिक निष्क्रियतापूर्ण इस अस्तित्व का कोई मूल्य ही नहीं है। संसार का विद्वानगण यह सुनना नहीं चाहेगा कि सदाशिवराव नामक एक ग्रन्थ-कर्ता हृदय रोगी बनकर मौत से डरकर कई वर्ष जीता रहा। विद्वानगण बड़े चाव से प्रतीक्षा करता हुआ पूछ रहा है चार खण्ड लिखने वाले का पाँचवां खण्ड भी आया कि नहीं ? उसे लिखे बिना मेरे जीवन का रत्ती भर भी मूल्य नहीं। उसे पूर्ण करके मरूँ तो मेरे जीवन का लक्ष्य भी पूर्ण हो जाता है। मैं लेखन कार्य प्रारम्भ करूंगा। लगभग चार महीने में प्रथम प्रति तैयार हो जाये तो बस ! तत्पश्चात मैं मर जाऊँ तो भी मेरी पत्नी उसका परिष्कार कर सकती है। एक बार प्रारम्भ करने के पश्चात पूर्ण होने तक क्या आप मुझे जीवित रख सकेंगे ?

इन बातों को बोलने वाली उनकी जिह्वा ही नहीं उनका सारा व्यक्तित्व अपनी समस्त आशा आकांक्षाओं से प्रस्फुटित हो रहा था। डाक्टर गंभीरतापूर्वक सोच रहे थे। उनके ओठों पर एक बार एक मंद मुस्कान दौड़ गई। उसे डा० राव ने नहीं देखा। वैद्यकीय शोध में निरंतर जीवन खपाने वाले वैज्ञानिकों के जीवन से डाक्टर का परिचय था। उन्होंने सोचा— ज्ञान-वृद्धि की साधना में इस तरह कोई भी न मरे तो मानव की

सभ्यता जाने कितने निम्न स्तर पर होती !" डाक्टर के मन में एक विचार उठा— 'अगर हृदय रोग विशेषज्ञ से प्राप्त विश्वास से इनका लाभ होता है तो उस महान ग्रंथ के निर्माण में मैं क्या बाधक बनूँ ?" उन्होंने डॉ० राव का हाथ पकड़कर कहा— 'आप कोई चिंता न करें। मैं अपने सारे अनुभव का उपयोग करके आपकी देखभाल करूँगा। यह भी विश्वास दिलाता हूँ कि बीच में आपको कुछ नहीं होगा।

डॉ० राव का मन खुशी से नाच उठा। डाक्टर को धन्यवाद देने के लिए शब्द नहीं मिले। डाक्टर ने ही अपनी कार में डॉ० राव को बँगले तक पहुँचाया। उस रात डॉ० राव ने अपने निश्चय और डाक्टर द्वारा दिलाये गये विश्वास के बारे में रत्न को कह सुनाया तो वह स्तब्ध रह गयी। दो मिनट में उसकी आँखों में आँसू भर आये। आँसू देखकर डॉ० राव ने कहा— 'तुम भी सामान्य स्त्री की तरह रो रही हो ?'

'मैं मनुष्य नहीं हूँ क्या ? आपका कर्तव्य केवल विद्वज्जगत के प्रति है, पत्नी के प्रति कोई कर्तव्य नहीं है ? आपका और पत्नी का कोई संबंध ही नहीं ?'

निरुत्तर हो डॉ० राव ने सिर झुका लिया। रत्न के प्रश्न ने उनके मर्म को स्पर्श कर दिया। मेरे लिए मेरी साधना के लिए अपने सारे सगे-संबंधियों को छोड़ अपना समस्त जीवन अर्पित कर देने वाली को मैंने क्या दिया ?'—यह प्रश्न उनके मन में पहली बार उठा। इसने मुझसे कोई अपेक्षा नहीं की। और मेरा कुछ दिन जीना ही उसे मिलने वाली आशा है'—उन्होंने सोचा। 'मैं मर गया तो रत्न का क्या होगा' यह प्रश्न उठते ही उनका मन विह्वल हो उठा। एक दिन रात भर सोचते रहे। दूसरे दिन कहा— 'मैं नहीं लिखूँगा। लेकिन शीघ्र ही तुम्हीं लेखन कार्य प्रारंभ कर दो। मैं उसे पढ़कर सुधार दूँगा, जाँच दूँगा।'

रत्न फूली न समायी। उसने पति का हाथ पकड़ स्नेह से दबा दिया। लगभग एक ही सप्ताह में लेखन कार्य प्रारंभ कर दस दिनों में लगभग पचास पृष्ठ लिख डाले। इस विचार से कि हस्तलिखित ग्रंथ को पढ़ने में डॉ० राव को कष्ट होगा उसे टाइप कर उनके सम्मुख रखकर बोली— 'एक बार आप ही सब पढ़िए।' दिन में चार पृष्ठ के हिसाब से लगेगा। डॉ० राव ने उसे देखा। रत्न की अपनी ही शैली, विषय ज्ञान और विषय-

प्रतिपादन करने की श्रद्धा आदि दखकर प्रशसा म उन्होंने सिर हिला लिया। ये उनके जाने हुए विषय हैं। लकिन अन्य चार खण्ड म निहित अत-सत्व इस लेखन म नही था। रत्न ने भी इस बात का स्वीकार किया।

डा० राव का जीवन यथावत् चल रहा था। व टहलन जाते। यथेष्ट फल खाते। लकिन ध्यय-साधना क अभाव म उनको जीवन असह्य लगने लगा। जिस व्यक्ति न सदा क्रियाशील जीवन बिताया उस लगन लगा कि निष्क्रियता की अपेक्षा मरण ही श्रयस्कर है। इस दुख न एक-दो सप्ताह म ही चेहरे और स्वास्थ्य पर असर दिखा दिया। इस रत्न न भी समझा था। एक दिन डॉ० राव ने उसस कहा— रत्न तुमन मरे इस निष्क्रिय शरीर को चाहकर मुझसे विवाह नहीं किया था। जिस उद्देश्य से तुमने मरा हाथ पकडा है उसे पूर्ण करन दो। जिस तरह सामान्य स्त्री सोचती है कि पति के मरन पर मेरा क्या होगा बस तुम मत मानो। तुम उन स्त्रियो म अपना नाम मत लिखाओ।

रत्न का मुख गभीर हो गया। उसकी आँखें चमक उठी। पूरी रात वह सोचती रही। सुबह होते-होते वह एक निश्चय पर पहुँच गयी थी। अब सुबह डा० राव जल्दी उठ स्नान करके टहलन जाते थे। उस दिन उनके लौटते समय रत्न न छह महीनो स निष्क्रिय पडी उनकी लखनी को धोया और स्याही भरकर रख दिया। उनकी मज पर लिखन क लिए आवश्यक कागज सामग्री तयार रखी। लौटने क पश्चात स्नान उपाहार आदि स निपटने के बाद रत्न उनका हाथ पकडकर लिखन क कमरे मे लिवा ल गयी और बोली— इतने दिन मेरी बुद्धि पर अज्ञान का परदा पडा था। आप लिखिए। लेकिन अधिक श्रम न करें। सामित रूप से लेखनी चलाइए। सभाओं स्थानो म मुझ स लिखवाइए। मैं शाघ्रलिपि म लिख लूगी। म हमशा इसी कमरे म आपके पीछे ही एक कुर्सी पर बठ-कर काय करती रहूँगी।

डा० राव ने रत्न का चेहरा देखा। उसकी आँखो म स्नह और चमक थी।

२४

चीना जब से कालेज जाने लगा है तब से उसका संस्कृत, वेद, उपनिषद आदि का अध्ययन पूर्ववत नहीं चल रहा है। सुबह नौ बजे घर से निकलता है तो लौटने समय शाम के साढ़े छह बजते हैं। लौटकर हाथ मुह धोकर संध्या करने के बाद रात को भोजन करता। फिर श्रोत्रियजी लगभग दो घण्टे सस्वर वेद मन्त्र कण्ठस्थ कराते। छुट्टियों के दिनों में तो दोपहर में भी अध्ययन चलता था। चीनी को पहले से अधिक घी-दूध दिया जाने लगा। वह स्वयं रसोई में हाथ बँटाने आता तो श्रोत्रियजी मना करते हुए कहते, "तुम पढ़ लो, बेटे।" प्रथम वर्ष में जूनियर इंटरमीडियट में उत्तीर्ण होकर सीनियर कक्षा में पहुँच गया था। कार्य नियमित रूप से चल रहे थे।

आश्विन के बाद कार्तिक बहुल चतुर्दशी को श्रोत्रियजी के पिता का श्राद्ध था। आज वे बहुत अधिक थक जाते थे। कारण एक तो उपवास और दूसरा काम अधिक। इसलिए रसोई बनाने के लिए वे कृष्णय्या को बुलवाया करते थे। वह एक दिन पहले आ जाता था। रसोईघर साफ करता। शुद्धाचरण से पानी भरता। मिर्च आदि का मसाला तैयार करता। श्राद्ध-कर्म कराने स्वयं मुख्य शास्त्री आते थे। श्रोत्रियजी अपने माता-पिता का श्राद्ध बड़ी श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक करते थे। देव-कार्य और पितृ कार्य इन दोनों में उन्हें समान भक्ति थी। उनका पूर्ण विश्वास था कि वंश के पूर्वज पितरों के तृप्त हुए बिना किसी भी वंश का उद्धार नहीं हो सकता। पूर्वपंक्ति को बुलाना हो तो भी कर्मठ पंक्तिपावन ब्राह्मणों को ही बुलाते थे। ऐसे ब्राह्मण रोज संध्या और गायत्री का जप करके सात्त्विक जीवन बिताने वाले होते हैं। ये भर पेट भोजन करके श्राद्ध के कार्य को संतोषजनक रूप से कराने की शारीरिक क्षमता रखने वाले होने हैं। एक भी दाँत न गिरा हो ऐसी आयु होनी चाहिए। वेदमन्त्रों के शुद्ध उच्चारण की शक्ति तो आवश्यक है। वे अपने यहाँ पर श्राद्ध में काफी दान देते। हर एक ब्राह्मण को धोती की जगह जरी पचास रुपये की धोती एवं चाँदी के दो-दो रुपये श्रद्धा से देकर साष्टांग नमस्कार करते थे। श्राद्ध की पहली रात वे उपवास पूरा करते और दूसरे दिन सवेरे

आठ गायत्री जपने तक एक बूंद जल भी ग्रहण नहीं करते थे।

कल श्राद्ध है। कुण्ण्या ने सब तैयारियाँ कर दी थी। श्रोत्रियजी ने एक अलग कमरे में चूल्हा जलाया और उस दिन की रसोई बना ली। पहली पंक्ति के ब्राह्मणों को भी बुला चुके थे। दोपहर को लगभग तीन बजे ऊपरी मंजिल पर अपने अध्ययन-कक्ष में श्रोत्रियजी कोई पुस्तक ढूँढ रहे थे। श्राद्ध से संबंधित एक प्रश्न उनके मन में उठा था। शायद गोभिल स्मृति में इसका उत्तर दिया गया है। उत्तर में कहे गये श्लोक लाख प्रयत्न करने पर भी स्मरण नहीं आ रहे थे। इस ग्रंथ की मुद्रित प्रति उनके पास नहीं थी। स्मरण हुआ कि छूटे कागजों की बनाई किसी बही में उन्होंने लिख रखा है। हस्तलिखित ग्रंथों में भरे संदूक में ढूँढ़ने लगे। उसमें हस्तलिखित पत्र पुराने पत्र मुद्रित अधजीर्ण पुस्तकें भरी थीं। एक घण्टे तक ढूँढ़ने पर भी वांछित बही नहीं मिली। संदूक बंद करने ही वाले थे कि उनकी दृष्टि अचानक एक कागज पर गई। कागज की जीर्ण स्थिति और मोटे अक्षर उन्हें अपरिचित से लगे थे। उनकी दृष्टि नमस्कार शब्द पर पड़ी। यह सोचकर कि पहले किसी ने उनका नाम लिखा होगा उसे देखा। पढ़ते-पढ़ते आश्चर्य ही नहीं हुआ मन विचित्र समस्या में उलझ गया। लिखा था

श्री॥ नंजुंड को किट्टप्पा का नमस्कार। उभय कुशलोपरि। पंद्रह वर्ष बाद तुम्हें पत्र लिखने की इच्छा हुई। अत्यंत दुःख के साथ यह पत्र लिखना पड़ रहा है। तुम अपने ही छोटे भाई को धोखा देने वाले नीच हो। कई लोगों को तुमने धोखा दिया है। छोटे भाई से द्वेष के कारण धोखे से हड़पी गयी जायदाद कहीं छोटे भाई को न मिल जाय इससे तुम दोनों को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए था। हरि कथावाचक श्यामदास की कथा हम सब जान गये हैं। परम पावन श्रोत्रिय वंश का पिछली सात पीढ़ियों के पितरों को तुम्हारी धृष्टता के कारण नरक जाना पड़ रहा है। यदि तुम्हारी जायदाद कुत्ते सियार खा जाएँ, तो भी मैं या मेरे बच्चे उसकी इच्छा नहीं करते। तुम्हारे पाप-पुण्य भगवान देखेगा। तुम्हें शाप देकर पितर रौरव नरक जायें। नमस्कार। किट्टप्पा एडतोरे मुकाम।

बचपन में श्रोत्रियजी ने किट्टप्पा का नाम सुना था। वे श्रोत्रियजी के पिता के छोटे भाई थे। कभी-कभी घर में होने वाली बातचीत से वे यह

जान गये थे कि भाइ भाइ मे बडा द्वेष था। लेकिन मेरी माँ व पितरो से परम पावन श्रोत्रिय-वश के पितरो को नरक प्राप्त होने-जैसा कौन-सा काय हुआ है ? वह कौन-सा पाप-कम है जो उनके छोटे भाइ को मिलने वाली जायदाद को हडपने के लिए किया गया था ? ये श्यामदास जी कौन हैं ? कल श्राद्ध होने के कारण श्रोत्रियजी का मन दिन भर इन पितरो के बारे म ही सोचता रहा। पितरो के नरक जाने की बात बताने वाले इस पत्र से उन्हे बडा कष्ट हुआ। इस बात को जान लेने की इच्छा हुई। लेकिन कौन बतायगा ? अब स्वय उन्हें निहत्तर वष हो गये। तिथि रहित लिखा गया पत्र न जाने कितना पुराना है ? उस समय की बातो को अब कौन जानता होगा ? एतएव उन्हें लक्ष्मी की याद आई। वह भी इसी घर म जन्मी है। स्त्रियाँ पडोसी स्त्रियो म एसी बातें जान जाती है, जिनका पुरुषो को पता नही होता। यह सोचकर वे नीचे उतर कि लक्ष्मी अगर इस बारे म कुछ जान सकी तभी कुछ होगा। लक्ष्मी बीच घर म बठी तरकारी साफ कर रही थी। उसके पास आकर श्रोत्रियजी ने पूछा— तुमने श्यामदास नामक व्यक्ति का नाम सुना है ?'

लक्ष्मी कुछ समझ न सकी। उसकी मुखमुद्रा को देखकर श्रोत्रियजी ने कहा— हो सकता है कि मरे जन्म के पहले की बात हो। हमारे घर से सबधित विषय है।

हाँ सुना है कहने के बाद क्षण भर यह सोचकर कि कही गलती हो गयी है वह तुरत चुप हो गयी।

उनके हाथ म जो कागज था उसे पढ़कर उन्होंने पूछा— पितरो के नरक जाने जैसा कौन सा काम था ? हरि-कथावाचक श्यामदास की क्या कथा है ? कहो।

'मैं कुछ नही जानती श्रीनप्पा। इतना सुना है कि व हरिकथा कहने के लिए इस गाँव म आया करते थ, बस !'

श्रोत्रियजी फिर ऊपर गये। किसी के प्रति शका करना उनका स्वभाव नही था। लेकिन आज उनका कुतूहल सदह की चरम सीमा को पार कर रहा था। 'हाँ सुना है' कहकर तुरत लक्ष्मी का बात रोक देना, उन्हें स्मरण हो आया। पुन नीचे आये। लक्ष्मी के सम्मुख खडे हो, अपने हाथ को आगे बढ़ाकर कहा— लक्ष्मी, तुम मेरा हाथ पकड लो।'

कुछ न समझते हुए वह बोली— क्या ?"

'मैं जसा कहता हूँ वसा ही करो। उन्होंने लक्ष्मी का दाहिना हाथ पकडकर कहा—' मेरा हाथ पकडकर बोल रही हो। झूठ बोलोगी तो तुम्हें नरक मिलेगा। सच सच कहो ' क्या इस कागज क बारे म तुम कुछ नहा जानती ?

लक्ष्मी ने सिर झुका लिया। श्रोत्रियजी क प्रश्न दुहरान पर वदना मिश्रित ध्वनि म उसन कहा— मुझ क्या इस सकट स घसीट रह हो शीनप्पा ? लेकिन श्रोत्रियजी ने नहा छोडा। निरुपाय हो अन्त म स्वीकार किया— रात को चीनी के सो जान क बाद बताऊँगी।

रात क भोजन के पश्चात चीनी सो गया। तब श्रोत्रियजी न पुन पूछा। यहाँ नहा ऊपर चलो। —स्वय उन्हें ऊपर अध्ययन-कक्ष म ले गयी और द्वार बद करके पूछा— यह सुनकर क्या कराग ? -यथ मी हठ क्या कर रहे हो ?

हठ नहीं न जाने इतना कुतूहल क्या है ? बुरे स बुरा विषय हो, तो भी सुनाओ। उस विस्मृत करने की क्षमता मुझ म है। मुझ पर तुम्हारा जो विश्वास है तुम्हें आज उसकी कसम है। तुम इस बार म जो कुछ जानती हो सविस्तार बताओ।

अच्छा बठो। तुमस बढकर कौन सी चीज है ? वह चादर पर बठ गयी। सामन बिछे हुए व्याघ्र चम पर श्रोत्रियजी विराजमान हुए। किसी भी परिस्थिति म शात रहन वाला उनका मन अब उत्कठित हो रहा था। उन घटनाओ का स्मरण करते समय लक्ष्मी की आखें मानो विगत जीवन की ओर दख रही थी।

दुष्ट प्रवत्ति क नजुड शास्त्री, छोटी आयु म ही अपन पिता के स्वगवास क समय घर क मुखिया थ। अट्ठाईस वष की आयु म उस परिवार का सारा अधिकार उनके हाथ म आ गया था। तब उनका छोटा भाई किट्टप्पा श्रोत्रिय चौबीस वष का था। बडा भाई दुष्ट प्रवत्ति का था तो छोटा भाई उदार। बडा भाई हर काय का लाभ की दृष्टि स देखता था और छोटा भाई भावुक था। बडे की अपक्षा छोटे क मन मे भगवान, धम आदि के प्रति अधिक विश्वास था। बडा भाई कुरूप था। किट्टप्पा

श्रोत्रिय हृष्ट पुष्ट थे। उनकी पत्नी म अपने पति के वे सारे सद्गुण निहित थे। नजुड श्रोत्रिय की पत्नी तो मानो उसी के लिए थी। जब भाई भाई ही परस्पर विरुद्ध थे तो इन स्त्रियो म कैसे पटती? विवाह के एक वर्ष पश्चात, विटटप्पा की पत्नी गर्भवती हुई और एक पुत्र को जन्म दिया। चालीस वर्ष की उम्र म भी नजुड की पत्नी अच्चम्मा गर्भवती नही हुई। एक दिन दोनो स्त्रियो म झगडा हो गया। मनुष्य के पाप-पुण्य के आधार पर भगवान् उसे सतान देता है'—कहकर विट्टप्पा की पत्नी ने उसे नीचा दिखाया।

अपने पिता के श्राद्ध के दिन भाई भाई मे झगडा होता था। छोटा भाई अगर कहता कि दक्षिणा के रूप म ब्राह्मणो को चादी का रुपया देना चाहिए, तो नजुड भौंहे तानते हुए कहता— स्वय कमाओ तब दना अपने जीते जी पावली स अधिक नही दूगा। तू 'तेरा बाप जसी गाली-गलौज भाइयो म कई बार हो चुकी थी। एक बार यह झगडा जबान तक सीमित न रहा। हाथापाई की नौबत आ गयी। विट्टप्पा न बडे भाई को दो चार चपतें जड दी। अच्चम्मा भी झगडे म शामिल हो गयी। अम्मा को दो को सामना करते देख विट्टप्पा की पत्नी भी शामिल हो गयी। इस झगडे के एक महीने बाद तक विट्टप्पा गुर्राता रहा किन्तु नजुड दूसरे ही दिन मुस्कराकर छोटे भाई स बोलन लगा। अपने ही पास रखो अपनी हँसी तुम कसाई हो —कहकर छोटे भाई ने उसे चिढा दिया।

इस घटना के एक वर्ष पश्चात् भाई भाई म इतना झगडा हुआ कि दोनो ने बँटवारा करने का निश्चय कर लिया। बँटवारा कराने के लिए चार पचो के साथ विट्टप्पा के ससुर आये। नजुड श्रोत्रिय के ससुर भी आये। पचो के सम्मुख घर बार का विवरण देते समय नजुड श्रोत्रिय न जमीन पर लिए हुए बीस हजार रुपये का ऋण बताया। अपने ससुर के भाई के नाम का कर्ज-पत्र भी था। यह कर्ज झूठा है—कहकर विट्टप्पा चिल्लाया। वह कोर्ट म भी गया। लेकिन उसी के हस्ताक्षर के पत्रो को नजुड श्रोत्रिय ने अदालत मे प्रस्तुत किया। छोटे भाई को पत्रो का विवरण न समझाकर उसने पहले ही उसके हस्ताक्षर ले लिये थ। सब हिसाब कर, विटटप्पा ने फिर अपने हिस्से म आई दो एकड जमीन बेच दी, बाल-बच्चो के साथ

गाव छोड दिया। एडतोरे क पास एक गाव के मदिर मे अचक क रूप मे उसका जीवन चलता रहा। लेकिन बडे भाई क प्रति जा त्राध था कम नही हुआ। नजुड श्रोनिय रात म तीन बार खती बाडी और उसमे सिंचाई देखने जाता था। यह उसकी आदत थी। एक दिन रात म घर के पिछ वाडे गुडल नदी के तट क पास वह एक पेड के नीचे बठा था। किसी ने पीठ मे जार का मुक्का मारा। श्रोत्रिय के मुख से हाय निकलन के पहले ही दूसरे व्यक्ति न उसके मुह मे कपडा ठूस दिया। जिसने पहल मारा था, उसने नजुड की धोती फाडकर उसक हाथ परो को बाध दिया। नजुड के विवस्त्र शरीर पर आक्रमणकारियो न पेड की डालिया तोडकर खूब मारा। बाद म उसे वही छोड दिया। दूसरा कोई अँधेरे म यह कहकर भाग गया कि तुमने मर साथ जा धाखा किया उसका फल चखो। नजुड जान गया कि किट्टप्पा है। लेकिन वह कुछ बोल न सका क्योकि मुह बँधा था।

अच्चम्मा घर मे सो रही थी। सुबह उठी तो सोचा कि पति खत की ओर गय हैं वह अपन काम म लग गयी। सुबह पानी लेने के लिए गयी हुई एक महिला ने हाथ पर बधे विवस्त्र नजुड श्रोत्रिय को देखा और अच्चम्मा को आकर बताया। पास पडोस के लोगो ने जाकर बधित 'दुर्योधन' का मुक्त किया और जब पता लगा कि उसे बाधन वाला कोई गधव नही यह उसक भाई किट्टप्पा की करतूत है तो वे सब मन ही मन हँसे। पन्द्रह दिन तक नजुड श्रोत्रिय ने शरीर पर पत्तो का लेप किया। किट्टप्पा के विरुद्ध कोर्ट मे केस भी किया लेकिन सबूत के अभाव म वह रद्द कर दिया गया।

वैन्वारे के कुछ ही दिनो मे नजुड श्रोत्रिय की आमदनी बढने लगी। उसने दवरसनहल्लि के पास नयी जमीन खरीद ली। सोना चान्दी गिरवी रख पसा ब्याज पर उधार देने लगा। कई बार ब्याज गहनो के मूलधन स अधिक हो जाता तो गिरवी रखी हुई चीजो को छुडाना कठिन हो जाता। परिणामस्वरूप वे गहने उसी के हो जाते। लगभग दस वर्ष म घर म पैसा-ही-पैसा हो गया। पहल छोटा घर था बाद म एक मजले का नया घर बँधवा लिया। सोना चान्दी काफी हो गया था। अच्चम्मा सिर से लेकर पैर तक सोने के गहनो से लदी रहती थी। लेकिन सम्पत्ति का एक

चिंता ने घेर रखा था। 'इस जमीन-जायदाद का उत्तराधिकारी कोई नहीं है। भविष्य में यह सब किसे मिलेगा?' दान धर्म का विचार तो उन्हें स्वप्न में भी न था। निःसंतान मर जाने पर कानून के अनुसार यह सारी जायदाद छोटे भाई एवं उसके बच्चों को मिल जायगी —यह विचार उन्हें आग-सा जलाने लगा। त्रिटप्पा को मारना, नशा करके बाँध देना आदि इस द्वेषाग्नि पर हवा का काम कर रहे थे। लेकिन वह अड़तीस का था, अच्चम्मा चौबीस की। अब उन्होंने धर्मस्थल के मंजुनाथ की मनौती मानी। संतान होने पर, बच्चे की पाँच वर्ष की आयु में उसके वजन की चाँदी देने का संकल्प किया और भगवान के नाम पर पीतवस्त्र में चाँदी की पावली बाँध रखी। नंजुड श्रोत्रिय ने एक ब्राह्मण से ललिता-सहस्र-नाम पाठ करवाया। उस रोज तीन पैसे और ताम्बूल देने लगे। किसी ने कहा कि नागदेव का प्रतिष्ठापन करने से संतान होती है। पंद्रह रुपये खर्च कर नदी के किनारे प्रतिपादन किया और दो ब्राह्मणों को भोजन कराया। लेकिन संतान नहीं हुई।

इसी सन्दर्भ में श्यामदास से नंजुड श्रोत्रिय का परिचय हुआ। वे ऊँचे, आजानुबाहु व्यक्ति थे। विशाल चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें और लंबी नाक। श्यामदास का परिवार हरिकथा प्रवचन करता हुआ गाँव से दूसरे गाँव भटकता रहता था। वे कालगणना के रहस्य जानते थे। सुरीले कंठ से निकलता लय-संगीत, शुद्ध उच्चारण के साथ निःसृत होते संस्कृत श्लोक, उनकी हरिकथा में रंग भरते। नंजुड श्रोत्रिय का सत्संग का नाता था। उसने उन्हें घर बुलाकर पूछा कि संतान प्राप्ति के लिए क्या करना चाहिए। उनकी सलाह के अनुसार निष्पत्ति हो जाने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। श्रोत्रिय ने एक बार मैसूर जाकर जाँच करायी। उसने हिम्मत करके डाक्टर की राय पूछी तो पता लगा कि संतानोत्पत्ति के आवश्यक गुणों का उनमें अभाव है। अतः घर आकर चुप बैठ गया कि किसी भगवान् से कुछ न होगा। दत्तक लेने का विचार आया। पास-पड़ोस के कुछ लोगों से पूछताछ की। कोई भी इसके लिए तैयार नहीं हुआ। इतने में उनके कानों में एक खबर पड़ी कि एकनाथ में त्रिटप्पा कह रहा है कि निःसंतान भाई के मरने के बाद सारी जायदाद कभी-न-कभी उसके बच्चों को ही मिलेगी। यह सुनकर नंजुड श्रोत्रिय का सारा शरीर जलने लगा। वह गरज

उठा— भले ही मेरे पितरो का नरक मिले, उस चाडाल की सतान को अपना एक पसा भी नही मिलने दूगा। नि सतान होने की निराशा, सतान पाने की असमर्थता और छोटे भाइ के प्रति द्वेष भाव, सब के सब एक साथ उसे जला रहे थे। लेकिन कानून के अनुसार यह सारी जायदाद किटटप्पा के बच्चो को ही मिलेगी इसी सदभ म नजुड को श्यामदास की याद आई। पहले असह्य प्रतीत हुआ लेकिन छोटे भाइ की बात कानो पर पडते ही वह अतिम निष्कष पर पहुँच गया था।

पहले अच्चम्मा भी इसके लिए तयार नही हुई थी। चालीस वष की उम्र म भी उसम मानव सहज दुराशा स्वाथ छल-कपट आदि कइ तुच्छ गुण थे लेकिन वह पतिव्रता थी। पतिभक्ति का अभाव न था। फिर भी विवाह के दो वष पश्चात से मा बनने की तीव्र अभिलाषा म जल रही थी। पति की योजना न उसके मन म तिरस्कार पदा कर दिया। लेकिन भविष्य म किट्टप्पा के बच्चे अपनी जायदाद का उपभोग करेंगे यह विचार उसके लिए भी असह्य बन गया था। मा की आशका पुन बलवती हो उठी। उसके समवयस्क या कुछ छोटे श्यामदास साल म दो बार नजनगूड आते थ। उनका हरिकथा प्रवचन आस-पास के गावो म हुआ करता था लेकिन व नजनगूडु के श्रोत्रियजी के घर ही मुकाम करते थे। इस बार आये तो उन्ह घर मे छोड, नजुड श्रोत्रिय खेत पर चला गया। लगभग एक महीने के बाद अच्चम्मा उलटी करने लगी। नजुड चिंतित रहने लगा कि श्यामदास यह बात किसी से कह दे तो क्या होगा ? एक दिन श्यामदास को घर बुलाया और उसे चार चपत जड दिये। साथ म उसे चेतावनी दी— तुम्हे सज्जन समझकर घर म स्थान दिया व भोजन कराया था न कि नमकहरामी करने के लिए। तुमने फिर कभी इस गाव के आस पास मुह दिखाया तो जिंदा नही छोडूगा। मेरे घर लौटने से पहले तुम इस गाँव से चले जाओ। इतना कहकर वह अपने खेत की ओर चल दिया। दिग्मूढ-सा श्यामदास भीतर गया तो पाँच सौ रुपये की थली सौंपते हुए अच्चम्मा ने कहा— उनके स्वभाव से आप परिचित अब कभी इस दायरे म न आइए। अवश्य आ[illegible] [illegible]

श्यामदासजी को अधिक दुख नही [illegible] उस [illegible]दिखाई नही पडे।

नौ महीने भरने के पश्चात् अच्चम्मा ने एक बालक को जन्म दिया—सुलक्षण, सुघड, विशाल ललाट, चौडा चेहरा। नजुड श्रोत्रिय ने बालक को अपने पिता का ही नाम, श्रीनिवास श्रोत्रिय, देकर धूमधाम से नामकरण किया। गाव वाले जान गये थे, लेकिन उसके सामने कोई कुछ नही बोलता था। कारण, उस क्षेत्र के अधिकाश लोगो को एक-न-एक दिन अपने जेवरात गिरवी रखने के लिए नजुड के घर जाना पड जाता था।

श्रीनिवास बडी सूक्ष्मबुद्धि का था। आठ वष का होते-होते ब्रह्मोपदेश महोत्सव सम्पन्न कराकर नजुड श्रोत्रिय ने उसे अपना प्रवर सिखाया—'काश्यपगोत्रोत्पन्न काश्यपावत्सार नद्रव प्रवरत्रयान्वित आश्वलायन सूत्र समन्वित ऋक् शाखाध्यायी श्री श्रीनिवास श्रोत्रियाऽह ।"

लगभग आध घण्टे म लक्ष्मी ने सारी बातें कह सुनाई। श्रोत्रियजी उदास हो गये। उन्होने पूछा—"क्या यह सब सच है लक्ष्मी ?

मैंने अपनी आँखो से थोडे ही देखा है! मैं तो उम्र म तुमसे पाँच वष छोटी हूँ। जब मैं छोटी थी, मेरे पिता किसी से यह बात कह रहे थे। मैंने केवल सुना है।'

श्रोत्रियजी चुप रहे। उनका मन अपने पिता नजुड श्रोत्रिय और अपनी माँ का स्मरण कर रहा था। नजुड श्रोत्रिय कुबडे थे। काला रग, चपटी नाक, सिर तो धड पर रखा कद्दू जसा लगता था। माँ भी सुदर नही थी। पति जितनी ही ऊँची, लेकिन उसमे वसा मोटापा नही था। छोटा-सा मुख! श्रोत्रियजी का ध्यान अपने सुघड शरीर की ओर गया। चौहत्तर वष की आयु म भी ऊँचा भरा-पूरा शरीर। उभरे विशाल चेहरे पर बडी-बडी आँखें! लबी नाक चौडा ललाट। उन्हे अनायास अपने शरीर के प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी। इस शरीर से उन्होने कभी विशेष प्यार नहीं किया था, लेकिन अपने स्वस्थ शरीर से व सतुष्ट थे। उनका विचार था कि स्वास्थ्य तो मानव-जीवन का एक अग है। लेकिन वह स्वस्थ शरीर अब उन्हे सुखदायक नही लग रहा था।

"उठो सो जायें, कल दोपहर तक सब कार्यों से मुक्त होने तक उपवास है। काम भी बहुत है" कहती हुई लक्ष्मी उठी। श्रोत्रियजी नीचे उतरे। चीनी के सिरहाने पासवाले खाट पर लेट गये। उनके चित्त में

तूफान उठ रहा था। अपने माता पिता के प्रलोभित जीवन के बार मे वे भी जानते थ। व आभूषणो को गिरवी रख सूद का धधा करते थे—इसमे भी श्रोत्रियजी परिचित थे। पिता क गुजर जान क बाद श्रीनिवास श्रोत्रिय न न कवल सूदखोरी बद कर दी अपितु पिता स प्राप्त धन का तीन चौथाई भाग सत्पात्रो को दान रूप म द दिया। अपने माता पिता के जीवन विधान के सबध म कोई निणय दन का उनका मन कभी सहमत नही हुआ। उनका पूण विश्वास था कि दूसरा के सही-गलत विचारो पर निणय दन का हम क्या अधिकार है? उसम भी माता पिता क पाप-पुण्य की समालोचना करने व कभी नहा गये। उनका विचार था कि ऐसी समालोचना करना अपना अहभाव का प्रतीक होगा। लकिन आज मानो किसी न उनके जीवन क गहर विचार की जड को फरसे स काटकर समूल नष्ट कर दिया हो। अपन वश क प्रति उनम अपार गव था। उनका विश्वास था कि अपन वश की पवित्रता की रक्षा करना उसे आगे बढ़ाना हर एक का मुख्य कत्तव्य है। विवाह आदि सस्कार गहस्थ-जीवन आदि जीवा की अवस्थाएँ तो वश क पवित्र उद्देश्य को पूण करन क लिए निर्मित स्थितियाँ हैं—यह मानकर उसी जीवन-पथ पर चल रहे थ। गोत्र प्रवतक कश्यप ऋषि की परपरा म जन्म लकर अनादि श्रोत्रिय का नाम धारण किय अपन वश क प्रति जो विश्वास था उसकी नीव उनकी आखो के सामन ही ढह रही थी।

यदि उन्हे मालूम होता कि व श्रोत्रिय वश के न होकर दूसरे वश के माता पिता की सतान हैं और इस वश म दत्तक पुत्र क रूप म हैं तो उन्हे इतना अपार दुख न होता। अगर नजुड श्रोत्रिय अत्यत गरीब दम्पति का तीन सेर नासनो देकर बच्चे को लेकर अपनी सतान की तरह पालत तो भी उनका विश्वास न घटता। व जानते हैं कि दत्तक शब्द की उत्पत्ति ही सतानहीनो का सतान प्राप्ति क लिए हुई है लेकिन कवल वश प्रेम से या अपनी मृत्यु के पश्चात पिंडदान करने हेतु पुत्र की आकाक्षा से नजुड श्रोत्रिय ने ऐसा नही किया था। प्रलोभन धोखे म जो सपत्ति हडपी गयी थी वह कहा अपनी मृत्यु क पश्चात छोटे भाई क हाथ न लग जाय, इस द्वेष म इस अपवित्र पथ पर कदम रखा था। उनके अपन द्वेषभाव को जीवित रखने क लिए मुझ बालक का जन्म हुआ। मेरा वश कौन-सा है?

मेरे जन्म का पावित्र्य कहाँ है ? श्रोत्रियजी अपने माता पिता के प्रति तिरस्कार दिखाने के बदले अपने जन्म का ही धिक्कार रहे थे। उस रात उन्हें नींद नहीं आई।

चीनी के बगल में लेटी लक्ष्मी को भी नींद नहीं आई थी। वह समझ गयी थी कि इससे शीनप्पा के मन पर आघात लगा है। इतने वर्ष से उनके मन में एक प्रश्न था—ऐसे माता पिता के कुल में जन्म ले, ऐसे घर में पलने पर भी शीनप्पा को युधिष्ठिर जैसी बुद्धि कहाँ से मिली ?' उसे इस प्रश्न का उत्तर ही नहीं मिल रहा था। पात विषय के बारे में भी कभी किसी से कहना उनका स्वभाव न था। यह उनके जीवन का अनुभव था कि अपने ही आचार विचार से मनुष्य ऊँचा-नीचा होता है। शीनप्पा को ईश्वर-तुल्य समझकर वह चल रही थी। अगर आज वे अपनी ही कमर दिखाकर मुँह न खुलवाते तो उन्हें भी यह बात नहीं बताती।

बिस्तर पर करवटें बदलते हुए शीनप्पा से उसने कहा—"इससे मन भारी मत करो। हम सब यह सोचकर चलते हैं कि हम अपने माता पिता की सन्तान हैं। वास्तविकता को कौन जानता है ? मैं तो पहले से मानती आई हूँ कि यह सब झूठ है। मनुष्य के कर्म के अनुसार भगवान् पाप-पुण्य का फल देता है। जिस दिन से मैंने देखा है उस दिन से तुम युधिष्ठिर की तरह हो। तुम्हें स्वर्ग मिलना निश्चित है।

श्रोत्रियजी कुछ नहीं बोले। लक्ष्मी की बातें कानों पर पड़ती रहीं। लेकिन मन द्वन्द्व में ऐसा उलझा रहा कि कुछ समझ में नहीं आ रहा था। उन्हें प्रतीत होने लगा कि जिन आधार पर वे जी रहे थे वही उनका हाथ छोड़ रहा है और वे अतल प्रपात में फँसते जा रहे हैं। 'घरवालों के अथाह गर्भ से जन्म ले याद तक फले वंश की डाली हूँ। अब किसी ने उसे काट डाला है। आर्तनाद करती वह अग्नि में गिर रही है। वह विचार वृक्ष तो उपमा एवं क्रूर नीरवता में ऐसा खड़ा है मानो उस डाली से उसका कोई सम्बन्ध ही न हो। मैं एक निर्मूल अनाथ हूँ। अपवित्र उद्देश्य-पूर्ति के लिए अपवित्र ढंग से जन्मा बालक हूँ। हे भगवान् किस जन्म के पाप के कारण तुमने मुझे इस स्थिति में जन्म दिया।'

उन्हें अपने माता पिता की याद आई। उन्होंने लाड़-प्यार से पाला पोसा था। नन्जुड श्रोत्रिय कंजूस अवश्य थे, लेकिन पुत्र के प्रति स्नेह

दिखाने म कजूसी कभी नही दिखाई। मरन से पहले पसा, सोना चाँदी गाडकर रखा स्थान भी बता दिया था। माँ तो जीवन भर उनके प्रति प्यार उँडलती रही थी। पुत्र के खान पान आदि की व्यवस्था करन म ही वह परम सताप पाती थी। माता पिता क स्वगवास के कई वष बाद तक भी श्रोत्रियजी उह स्मरण करते रहे थे। हर साल श्राद्ध करते समय उनका पुत्र वात्सल्य स्मरण हो आता था। अब तो पुत्र रूपी अकुर का मूल ही निर्नाम हो गया ! कसा विपर्यास है कसी विडम्बना है—सोचते-सोचते श्रोत्रियजी ने करवट बदली।

उह महाभारत का स्मरण हुआ। उस जमाने म नि सतान व्यक्ति, केवल वश वृद्धि के उद्देश्य स शास्त्रानुसार पत्नी का परपुरुष म ससग करान म भी सकाच नही करत थ। लेकिन उस पुरुष का यति सी मन -स्थिति प्राप्त महात्मा होना पडता था। शारीरिक तुच्छ काम वासनाओं पर विजय प्राप्त करके वह व्यक्ति केवल उस स्त्री को बीय दान करने की स्थिति मे चाहिए। यह भी एक यन-सा है। उसे 'नियोग' कहते थे। इस कलियुग मे यह प्रथा नही है। वतमान युगधम ही भिन्न है। प्रथाएँ भिन्न है। इसके अतिरिक्त नियोग म अपनी सम्पत्ति के मोह म पुत्र प्राप्ति की तुच्छ कामना नहा होनी चाहिए। लेकिन मेरे माता पिता न क्या किया ? श्रोत्रियजी ने एक बार अधकार म गहरी नि श्वास छाडी।

उनका नि श्वास सुनकर लक्ष्मी पुन सात्वना देन लगी—'शीनपा कई कठिनाइया म तुम अटल रह। अब इस घटना स विचलित होकर नि श्वास छाडोग ? तुमने पहल कभी ऐसे नि श्वास छाडा हा मुझे याद नहा ! चुपचाप सो जाओ। दूसरा के किय काय की हम चिता नही करनी चाहिए। चीनी क भविष्य की चिता करनी चाहिए। अब सो जाओ कल बहुत काम है।

उ हें याद आया कि कल अपन पिता नजुड श्रोत्रियजी का श्राद्ध करना है—मुझ पुन को। उ होने सोचा यह एक विडबना है। जिसके रक्त स ज म नही लिया, धर्मानुसार जिस वश का न हुआ जिसन केवल द्वेष-पूर्ति वश उनके ज म के लिए अपनी पत्नी को साधन बनाया, उसे पिता मानकर अब तक हर साल श्रद्धा भक्तिपूवक पिंडदान करत रह। अब सत्य प्रकट हो चुका है। विश्वास का प्रमाण नष्ट होन के पश्चात मात्र दिखावे के

लिए नाटक करने से क्या लाभ? यह भी धर्म की विडंबना है। प्रीति-श्राद्ध की बातें श्रोत्रियजी जानते थे। कोई निःसंतान मरे, तो उसके आत्मीयजन उसका श्राद्ध कर सकते हैं। लेकिन यह वैसी बात नहीं है। उन्होंने लक्ष्मी को आवाज दी। उसे नींद नहीं आई थी। उसने पूछा—"अभी तक नींद नहीं आई?" श्रोत्रियजी बोले—"सचाई जान लेने के पश्चात् कल श्राद्ध करने में कोई अर्थ नहीं। सुबह उठकर पूर्वपंक्ति के ब्राह्मणों के घर जाकर कह आता हूँ कि श्राद्ध नहीं किया जा रहा है, अतः न आयें।"

"लेकिन इतने वर्षों से......।" लक्ष्मी की बात बीच में ही काट, उन्होंने कहा—"सचाई न जानने के कारण एक परम्परा, विश्वासपूर्वक कई वर्षों तक चल सकती है। इतने से ही वह वन्दनीय नहीं बन जाती। अब मैं भिन्न मनुष्य हूँ—केवल श्रीनिवास, श्रोत्रिय नहीं।"

लक्ष्मी बैठी थी। श्रोत्रियजी सोचते रहे। आध घण्टे बाद लक्ष्मी बोली—"तुम्हीं कहते हो न कि किसी भी कार्य को जल्दबाजी में नहीं करना चाहिए। तुमने ही कहा था कि धर्म की रेखा बड़ी सूक्ष्म है, खूब सोचे बिना वह समझ में नहीं आती। जल्दबाजी मत करो। कल का कार्य नियमित रूप से पूर्ण होने दो। तुमसे बढ़कर कौन जानता है? बाद में शांत चित्त से सोचेंगे।"

श्रोत्रियजी चुप रहे।

दोनों रात-भर सो न सके। नींद न आने पर श्रोत्रियजी अपने नित्य नियम के विपरीत सुबह छह बजे जागने पर भी खिन्न मन से लेटे हुए थे। लक्ष्मी और चीनी उठकर अपने-अपने काम में लग गये। आज चीनी कालेज नहीं गया। सुबह आठ बजने से पहले ही कुप्पय्या आ गया था। घर के पिछवाड़े के कूएँ से पानी खींचकर स्नान किया। पिछली रात लक्ष्मी ने जो तरकारी साफ कर रखी थी, उसे पानी से धोकर शुद्ध किया और रसोईघर में प्रविष्ट हुआ। चीनी घुटने तक भीगे कपड़े पहने ही कुप्पय्या के काम में हाथ बँटाने लगा। सारी रसोई शुद्ध घी में तैयार की गयी। श्रोत्रियजी ने अभी तक स्नान नहीं किया था। घर के पिछवाड़े बाड़े में वे गाय की गर्दन सहला रहे थे। गायों के भी प्राण होते हैं न? उन्हें अपने वंश की जानकारी है? उन्हें अपने माता-पिता का श्राद्ध-कर्म करने ... ... की नहीं है। पति-पत्नी धर्म को निर्धारित करने वाली सामा-

जिक रचना ही नहीं है, तो मृत माता-पिता से संबंधित कर्त्तव्य का निर्णय कैसे किया जा सकता है ? विचित्र विचार श्रोत्रियजी के मन में उठ रहे थे—अनिर्दिष्ट गति से मँडराते बादलों की तरह अटके हुए थे। बारह बजे सुव्वय्य शास्त्री जी आये। पूर्वपवित के ब्राह्मण भी शुद्ध कपड़े पहन, माथे पर विभूति लगा, ताम्र पंचपात्र, गंगाजली हाथ में लिये आ गये थे। अभी तक बिना स्नान किये श्रोत्रियजी को बैठे देख, पहली पंक्ति में भोजन के लिए आए अनतराम मास्टर ने कहा—"यह क्या ? क्या बात है, तबीयत खराब है ? आँखें लाल हैं ?" प्रश्नों का कोई उत्तर न दे, श्रोत्रिय-जी मशीन की तरह स्नानगृह की ओर चल पड़े।

अपराह्न में कार्य प्रारम्भ हुआ। मंत्र और उनके अर्थ समझने में प्रवीण श्रोत्रियजी को आज पता नहीं लगा कि शास्त्री जी क्या कह रहे हैं। कुश तर्जनी में रखने के बदले बीचवाली अँगुली में लगा लिया। सारे व्यवहार भूल-से गये थे। बार-बार शास्त्रीजी उनका ध्यान आकर्षित करते और निर्देश देते, फिर यह सोचकर कि आज श्रोत्रियजी का स्वास्थ्य कुछ नरम है, शास्त्रीजी धीमी गति से मंत्रोच्चार करने लगे। ब्राह्मणों के चरण धुले जल को श्रोत्रियजी ने स्वीकार किया। अंत में ब्राह्मणों का भोजन प्रारम्भ हुआ। चीनी परोस रहा था। आरामकुर्सी पर बैठे शास्त्री जी ने पुनः पूछा—"क्या बात है, तबीयत खराब है ?" श्रोत्रियजी ने उत्तर दिया—कोई खास नहीं, *यों ही कुछ !*" यह सोचकर कि शायद वे बात करना नहीं चाहते, शास्त्रीजी चुप रह गये। ब्राह्मणों का भोज चल रहा था। चीनी परोसता जा रहा था। श्रोत्रियजी का मन विचलित था, *अपरिचित दिशाओं में भटक रहा था।* अन्त में शास्त्रीजी के 'ब्राह्मण भोजनानंतरं तिलोदक पिंड प्रदानानि करिष्ये' श्लोक की ध्वनि श्रोत्रियजी के कानों में पड़ी। ब्राह्मण-भोज समाप्त हुआ और उन्होंने हाथ-मुँह धो लिये।

अन्त में दक्षिणाग्र ही, कुश ग्रहण कर उसे धोया और वहाँ बाँधकर रखे पिंडों में से एक को उठा लेने को शास्त्रीजी ने कहा। श्रोत्रियजी द्वारा वैसा ही करने के बाद शास्त्री जी ने मंत्र पढ़ा—एतत्तेअस्मत्पितुः। नंजुंड-देवशर्मणः काश्यपगोत्रस्य वसुरूपस्य काश्यपगोत्राय वसुरूपाय अयं पिंडः वस्धानमम ने मम। तेभ्यश्च गयाया श्रीरुद्रपादेषु दत्तं······। उसे कुश

के ऊपर रख दीजिए और दूसरा पिंड उठा लीजिए। 'पितामह...' शास्त्री-जी के मुख से ऊँचे स्वर में मंत्र निःसृत हो रहा था।

ये मंत्र कानों में पड़ते समय श्रोत्रियजी को मानो चक्कर-सा आने लगा। आँखों में अँधेरा छाने लगा। सँभालने की भरसक कोशिश की, लेकिन व्यर्थ। मुख से शब्द न निकला। बेहोश हो वहीं जमीन पर लुढ़क गये। उनके हाथ में जो पितृ-पिंड था, नीचे गिरकर टूट गया। भोजन करके बैठे हुए अनंतराम मास्टर भयभीत हो दौड़े और श्रोत्रियजी के पास बैठकर उनके सिर को अपनी गोद में रखा। एक दूसरा ब्राह्मण उनके सिर पर ठण्डा पानी छिड़कने लगा। शास्त्रीजी ने चीनी को रसोईघर से बुला-कर कहा—"चीनी, दादा बेहोश हो गये हैं, एक पंखा लाओ।" चीनी घबरा गया। दौड़कर पंखा ले आया। कपाल पर काफी पानी छिड़कने और पंखा झलने पर दस मिनट बाद श्रोत्रियजी को होश आया। उठने का प्रयत्न किया, लेकिन उठ नहीं पाये। उनके सिर से एक शुद्ध वस्त्र बाँधा। शास्त्रीजी ने कुप्पय्या से कहा—"तुम ही आओ। 'पवित्र' धारण कर शेष कार्य पूरा किया जा सकता है।" कुप्पय्या कमर में एक धोती कसकर बैठ गया। श्रोत्रियजी आँखें मूँदे लेट गये। चीनी उन्हें पंखा झलने बैठ गया। टूटे हुए पिंड के बदले एक दूसरा पिंड बँधवाकर शास्त्रीजी ने पुनः 'अस्मत्पितु...' से प्रारंभ करके 'पितृ-पितामह प्रपितामहेभ्यः। गंधान् समर्पयामि। तिलाक्षत यवाक्षतान् समर्पयामि। श्री तुलसी पत्राणि समर्प-यामि। दर्भान् समर्पयामि......" मंत्र के साथ समाप्त किया।

श्राद्ध-कर्म समाप्त होने के पश्चात् ब्राह्मणों को वस्त्र, पंचपात्र, गंगा-जली और चाँदी के रुपयों की दक्षिणा दी गयी। इतने में श्रोत्रियजी को पूर्ण होश आ गया। आँखें खोलकर बात करने की स्थिति में आ गये। शास्त्रीजी सोच रहे थे कि पितृपिंड का इस तरह टूटना श्रोत्रियजी के घर में आने वाले अनिष्ट की पूर्व-सूचना है।

एक दिन श्रोत्रियजी बोले—"चीनी, तुम कालेज से दो दिन की छुट्टी ले लो, एडतोरे जाना है।"

"क्यों दादाजी ?"

"मार्ग में बताऊँगा !

लक्ष्मी को घर पर छोड़, वे दोनों रेल से मैसूर पहुँचे। मैसूर से एडतोरे जाने वाली एक शटल में बैठे। श्रोत्रियजी ने पौत्र से कहा—"सुना है कि किट्टप्पा श्रोत्रिय मेरे चाचा थे। मैंने उन्हें देखा नहीं है। उन्हें जमीन-जायदाद में कानूनन जो हिस्सा मिलना चाहिए था, उसमें मेरे पिताजी ने धोखा किया था। मेरी इच्छा है कि अगर चाचाजी के पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र कोई मिल जाय, तो उन्हें अपनी जायदाद में से आधा हिस्सा दे दूं। वैसा करना धर्म है, कर्त्तव्य है। इसमें तुम्हारी स्वीकृति है न ?"

"मुझसे क्यों पूछ रहे हैं ? आप जो उचित समझें, वही कीजिए।"

"फिर भी, अगर उन्हें जायदाद में से आधा हिस्सा देना हो तो कागज-पत्रों पर तुम्हारे हस्ताक्षर चाहिए। मेरा क्या ? कभी भी 'बुलावा' आ सकता है। उसके हकदार तुम हो। तुम्हें सहर्ष यह मान लेना चाहिए।"

"आपने ही कहा न ?" पौत्र ने विश्वासपूर्वक हृदय से कहा—"उन्हें देने में धर्म है, न्याय है। उसे मैं सहर्ष मान लेता हूँ। आपकी हर बात सदा धर्मपूर्ण न्यायपूर्ण रही है।"

श्रोत्रियजी को खुशी हुई। दोपहर के दो बजे वे एडतोरे स्टेशन पहुँचे। एक तांगा कर, नवनिर्मित नगर में अपने एक परिचित के घर पहुँचे। पच्चीस वर्ष पहले चालीस की उम्र के किट्टप्पा श्रोत्रिय के बारे में पूछ-ताछ करने लगे, तो पता लगा कि उस गाँव में श्रोत्रिय घराने का कोई भी नहीं है। नंजनगूड से आया कोई परिवार यहाँ नहीं है। मन्दिर के अनेक लोगों में से किसी के दादा का नाम किट्टप्पा नहीं था। अंत में उस गाँव में पचासी-नब्बे वर्ष के एक वृद्ध मिल गये। वे भी कर्मठ सनातनी ब्राह्मण थे। नंजनगूड से आये अतिथियों का आदर कर उन्होंने कहा—"मैं जब लगभग बीस वर्ष का था, तब इस गाँव में किट्टप्पा नाम का एक व्यक्ति था। नंजनगूड के ही थे। उनके तीन बेटे थे। उस समय वे लगभग चालीस-पैंतालीस के रहे होंगे। क्रोधी स्वभाव था। पास के ही एक मन्दिर में पुजारी थे। एक बार उनमें और मन्दिर के अधिकारी में झगड़ा हो गया। अधिकारी को खूब पीटा। वास्तव में गलती अधिकारी की थी, लेकिन धनवान पक्ष था वह। किट्टप्पा को मजबूरन गाँव छोड़कर जाना पड़ा। बच्चों के साथ न जाने कहाँ चले गये—कोई नहीं जानता।"

अपना प्रयत्न विफल जान, निराश श्रोत्रियजी चीनी के साथ नंजन-

गूडु लौट आये। विषय जानकर लक्ष्मी ने कहा—"अब उनके वंश को ढूँढा नहीं जा सकता। यह विचार ही त्याग दो।"

दिन बीत रहे थे। चीनी कालेज जा रहा था। आजकल उसके वेद-पाठ के प्रति दादा का उत्साह घट गया था। कभी-कभी पढ़ाते समय उनका मन कहीं और भटक जाता। अतः पाठ वहीं रुक जाता था। श्रोत्रिय जी सोचते—'यह घर, जमीन-जायदाद, पैसा—इनमें से मेरा कुछ भी नहीं है। किट्टप्पा श्रोत्रिय का यदि कोई सम्बन्धी मिल जाय तो इस समस्त सम्पत्ति को उसे सौंपना मेरा धर्म है। लेकिन उन्हें कहाँ ढूँढूँ?' कई दिन उन्हें भोजन नहीं रुचा। वे सोचते जो अन्न परोसा गया है, धर्मतः अपने हिस्से की जमीन का नहीं है; या किसी का मनःपूर्वक दान दिया हुआ नहीं है। इसे कैसे खाऊँ? उस दिन वे भोजन छोड़ उठ जाते और हाथ धो लेते थे।

याचक, हरिकथावाचक, देश-संचारी ब्राह्मण, शादी-विवाह के लिए चंदा जमा करने वाले नंजनगूडु आते रहते थे। कोई भी आता तो श्रोत्रिय जी के घर गये बिना नहीं लौटता था। श्रोत्रियजी उदार दिल से उनकी मदद किये बिना नहीं जाने देते थे। आजकल वैसे लोगों के आते ही वे पूछते, "जहाँ-जहाँ आप हो आये हैं, वहाँ कहीं श्रोत्रिय-वंश के किसी सदस्य से मिले या उसके बारे में सुना है?" सभी 'नहीं' कहते। "अनायास कहीं मिल जाय तो मेरे नाम एक कार्ड लिख दीजिएगा।" और अपना पता देकर कहते—"केवल श्रोत्रिय होना ही पर्याप्त नहीं है। उनके वंश के दादा या परदादा का नाम किट्टप्पा श्रोत्रिय होना चाहिए। ये किट्टप्पा श्रोत्रिय मूलतः नंजनगूडु के थे। इतनी जानकारी लेकर मुझे अवश्य पत्र दीजिए। इस वृद्ध पर बड़ा उपकार होगा।"

समाचार-पत्र में विज्ञापन भी दिया कि 'नंजनगूडु से गये श्रोत्रिय-वंश का कोई व्यक्ति कहीं हो, तो वह अवश्य सूचना दे। उन्हें जमीन-जायदाद दी जाने वाली है।' लेकिन किसी का उत्तर नहीं मिला।

श्रोत्रियजी को आजकल कात्यायनी का स्मरण होने लगा। वह अपने यौवन की ऊष्मा में अपने वैधव्य के नियम का उल्लंघन कर, नये पति की खोज में निकल पड़ी थी। एक वंश के पुत्र को जन्म देकर दूसरे वंश के पुरुष की पत्नी बनी। उनके मन ने अपने नाममात्र के पिता नंजुंड श्रोत्रिय

और अपनी माता के चाल-चलन की तुलना कात्यायनी के व्यवहार से की। कात्यायनी में कोई क्षुद्रता नहीं थी। धोखा, द्वेष-भावना को तृप्त करने के लिए अनुचित मार्ग अपनाने का कोई कलमष नहीं था। आधुनिक विचार की हवा भी उसमें नहीं थी। उसमें एक ही दोष था—अपने यौवन की ऊष्मा को सहने की असमर्थता। इसे जानकर वह दूसरे की पत्नी बनी। एक दृष्टि से उसके व्यवहार की प्रशंसा करनी चाहिए। अपने माता-पिता के व्यवहार की याद आते ही श्रोत्रियजी के सारे शरीर में मानो आग लग जाती थी। दो-तीन घंटे के लिए उनका मन क्रोध एवं तिरस्कार से भर जाता था। फिर वे ही मन को समझा, पछताने लगते थे। 'इतने दिनों से प्राप्त चित्त-शांति को अब क्यों खोऊँ? तिरस्कार आदि राजस-तामस भावों को मन में पनपने का अवसर क्यों दूँ? अगर दैव संकल्प यही है कि मैं इस तरह जन्म लूँ तो इसमें किसका दोष? माता-पिता के प्रति क्रुद्ध होने, उनके पाप-पुण्यों को तोलने का अधिकार मुझे कहाँ है? हे भगवान! पूर्ववत मुझे वही मन दो जिससे मैं अन्यों के पाप-पुण्यों को तोलने का प्रयत्न न करूँ!' श्रोत्रियजी आँख मूँदे मन ही मन प्रार्थना कर रहे थे।

२५

निरंतर पांच महीने तक लेखन कार्य में लीन रहकर डॉ० राव ने अपने ग्रंथ का पाँचवाँ खण्ड पूर्ण करके संतोष की साँस ली। जिल्द की अंतिम पंक्ति समाप्त की—रात के दस बजे। रत्ने उनके पीछे एक कुर्सी पर बैठी उनकी हस्तप्रति पढ़ रही थी। लेखनी नीचे रखकर डॉ० राव ने रत्ने को पुकारा। वह पास गयी। उसका हाथ पकड़कर भावुकतावश कहा—"जीवन की महत्वाकांक्षा पूर्ण हुई।" रत्ने का हृदय भर आया। उसने पति के हाथों को दबाया और नजदीक सरककर उनका सिर अपने वक्ष-स्थल से लगाकर कहा—"अब आपका कार्य पूर्ण हुआ। भगवान् ने

आपको आशिष दिया है। अब से आपको डॉक्टर की सलाह के अनुसार ही चलना चाहिए। किसी और बात की तनिक भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए।"

उस दिन से डॉ० राव को जीवन मे एक अवर्णनीय आनंद मिलने लगा था। बीस वर्ष के निरंतर श्रम, श्रद्धा और तप के फलस्वरूप एवं रत्ले की आत्मीयता के प्रतीक के रूप में उनका ग्रंथ पूर्ण हुआ है। डॉ० राव सोचने लगे—'हर व्यक्ति को चाहिए कि अपने ही एक विशिष्ट पथ द्वारा जीवन को सार्थक बनाए। अपने पथ पर मैं सार्थकता की सीढ़ी तक पहुँच गया हूँ। इस ग्रंथ रचना के सिलसिले में संगृहीत सामग्री से इसी विषय से संबंधित चार-छः छोटी पुस्तकें लिखी जा सकती हैं, आठ-दस लेख लिखे जा सकते है। लेकिन इस कार्य को करने की शक्ति मुझमें नहीं है। यह रत्ले को ही करने दो। भगवान् ने आयु दी तो उसके लेखों को मैं यत्र-तत्र सुधार सकूँगा।' अब वे रोज टहलने जाते। कभी-कभी सुबह रत्ले को भी साथ ले जाते। 'आने के पश्चात् यह काम कर लेना' कहकर रत्ले को साथ चलने को विवश करते। रत्ले के सामने अनेक कार्य थे, जैसे पुस्तकालय में डॉ० राव के लेखों की संदर्भ-सूची बनाना, ग्रंथों के पृष्ठ देखना, लेखन-शैली को कहीं-कहीं सुधारना, विषय-प्रतिपादन के क्रम में कहीं हेरफेर हुआ हो तो उसे क्रमबद्ध करना, और फिर पूरा खण्ड दुबारा टाइप करके प्रकाशकों को भेजना। डॉ० राव की हार्दिक इच्छा थी कि अंतिम खण्ड अपनी पत्नी रत्ले को समर्पित कर दिया जाय। लेकिन रत्ले सहमत नहीं हुई। उसका कथन था कि कोई भी पिता अपनी संतान को उसी की जन्मदात्री को अर्पित नहीं करता।

रत्ले अपने कार्य में खो जाती थी। डॉ० राव रोज एक घण्टे के लिए कालेज जाते। घर लौटकर सो जाते थे। कई बार समय काटने के लिए पड़ोसी प्रोफेसर के घर चले जाते। 'अंत में डॉ० राव भी मनुष्य बन ही गये' कहकर प्रोफेसर मजाक करते। डॉ० राव कभी-कभी कालेज के अपने विद्यार्थियों को घर बुलाकर उन्हें चाय-पानी पिलाते और हँसी-मजाक करते। उनका मन अब वैसा ही हलका हो गया है, जैसे अपने बाष्प-भार को वर्षा के रूप में त्यागकर मेघ ठंडी हवा के झोंके में लहराता है। एक दिन उन्हें नागलक्ष्मी की याद आई। उन्हें लगा, 'मेरे हृद्रोग

और अपनी माता के चाल-चलन की तुलना कात्यायनी के व्यवहार से की। कात्यायनी में कोई क्षुद्रता नहीं थी। धोखा, द्वेष-भावना को तृप्त करने के लिए अनुचित मार्ग अपनाने का कोई कल्मष नहीं था। आधुनिक विचार की हवा भी उसमें नहीं थी। उसमें एक ही दोष था—अपने यौवन की ऊष्मा को सहने की असमर्थता। इसे जानकर वह दूसरे की पत्नी बनी। एक दृष्टि से उसके व्यवहार की प्रशंसा करनी चाहिए। अपने माता-पिता के व्यवहार की याद आते ही श्रोत्रियजी के सारे शरीर में मानो आग लग जाती थी। दो-तीन घंटे के लिए उनका मन क्रोध एवं तिरस्कार से भर जाता था। फिर वे ही मन को समझा, पछताने लगते थे। 'इतने दिनों से प्राप्त चित्त-शांति को अब क्यों खोऊँ? तिरस्कार आदि राजस-तामस भावों को मन में पनपने का अवसर क्यों दूँ? अगर दैव सकल्प यही है कि मैं इस तरह जन्म लूँ तो इसमें किसका दोष? माता-पिता के प्रति क्रुद्ध होने, उनके पाप-पुण्यों को तोलने का अधिकार मुझे कहाँ है? हे भगवान! पूर्ववत मुझे वही मन दो जिससे मैं अन्यों के पाप-पुण्यों को तोलने का प्रयत्न न करूँ!' श्रोत्रियजी आँख मूँदे मन ही मन प्रार्थना कर रहे थे।

२५

निरंतर पाँच महीने तक लेखन कार्य में लीन रहकर डॉ० राव ने अपने ग्रंथ का पाँचवाँ खण्ड पूर्ण करके संतोष की साँस ली। जिल्द की अंतिम पंक्ति समाप्त की—रात के दस बजे। रत्ने उनके पीछे एक कुर्सी पर बैठी उनकी हस्तप्रति पढ़ रही थी। लेखनी नीचे रखकर डॉ० राव ने रत्ने को पुकारा। वह पास गयी। उसका हाथ पकड़कर भावुकतावश कहा—"जीवन की महत्वाकाक्षा पूर्ण हुई।" रत्ने का हृदय भर आया। उसने पति के हाथों को दबाया और नजदीक सरककर उनका सिर अपने वक्ष-स्थल से लगाकर कहा—"अब आपका कार्य पूर्ण हुआ। भगवान् ने

मन को कितना आघात पहुँचेगा, कब क्या हो जाय ! क्या तुम उस सबके लिए तैयार हो ?"

दो मिनट में नागलक्ष्मी पिघल गई—"अशुभ क्यों सोच रहे हो ? एक घण्टे में रसोई तैयार हो जाती है। उन्हें रुकने के लिए कहो। उनके साथ तुम सबको परोसूँगी। फिर मैं भी खा लूँगी। यहाँ कात्यायनी की यह हालत है, तुम उसे कैसे सँभालोगे ?"

"हमारा तो किसी तरह चल जायेगा। रसोई के काम में मैं भी हाथ बँटाया करूँगा। पृथ्वी भी तो है, आवश्यकता पड़ने पर वहाँ से रागप्पा को बुला लेंगे। घर का ऊपरी काम कर देगा तो कात्यायनी दाल-भात बना लेगी।"

बाहर आकर राज ने भाई को सारी बातें बताकर कहा—"आप भी भोजन कर लीजिए।" दोनों भाई बातों में लग गये। साढ़े नौ बजे डॉ० राव ने वहीं स्नान किया। फिर भोजन के लिए बैठने ही वाले थे कि रत्ले आ पहुँची। राज ने स्वागत किया। वह बोली—"इनकी स्थिति काफी नाजुक है, इतनी देर नहीं लौटे, तो मैं घबरा गयी थी।"

"आइए, भोजन के पश्चात् तीनों साथ जाइएगा।"

रत्ले भीतर गयी। हाथ-पैर धोये। खाने को बैठने से पहले, भीतर जाकर नागलक्ष्मी को प्रणाम किया। अचानक नागलक्ष्मी सकपका गयी। समझ न सकी कि क्या करना चाहिए। यह चुपचाप खड़ी थी। लेकिन उसका मन आनंद से भर गया। सबको बैठाकर उसने भोजन परोसा। भोजन होने तक राज ताँगा ले आया। खाते समय डॉ० राव ने कात्यायनी से कहा—"अब अलग दो-दो घरों में रहने की आवश्यकता नहीं। सब वहीं आ जाओ। अब तुम सब लोगों के साथ जितना अधिक रहता हूँ, उतना ही अधिक आनंद महसूस करता हूँ।"

गाड़ी में यात्रा करते समय तीनों का मन आनंद में डूबा हुआ था। रत्ले किसी उन्नत भावना का अनुभव कर रही थी। डॉ० राव को प्रतीत हो रहा था कि जीवन पर काली छाया का एक क्रूर द्वंद्व सुलझ गया, किसी समन्वय को संगति प्राप्त हुई। नागलक्ष्मी का मन श्रीराम का स्मरण कर रहा था। वह मन-ही-मन कह रही थी—तुम पर विश्वास करने वालों का राम कभी हाथ नहीं छोड़ते। 'श्रीराम जयराम जय-जय राम। श्रीरामः

के बारे में वह नहीं जानती होगी। जानती तो अपने समस्त क्रोध को पीकर भी यहाँ दौड़ी आती। अपनी बीमारी को उससे छिपा रखना भी उसके प्रति अन्याय ही है।' यद्यपि उन्हें नागलक्ष्मी की उस दिन की कटु बातें याद थी, फिर भी अपनी बीमारी से मुक्त हो, ग्रंथ-रचना पूर्ण होने के पश्चात् उसके प्रति एक नया भाव जाग्रत हुआ। उनका मन कहता— 'न जाने मैं कितने दिनों का मेहमान हूँ! अब शेष जीवन में उसे भी साथ रखना चाहिए।' उसे बुलाने के बारे में रत्ने से कहा तो वह बोली— "पहले की तरह ही रूखी बात की तो—? डॉक्टर ने तो चेतावनी दी है कि किसी तरह के भावोद्रेक का अवसर न आने देना चाहिए।"

"मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस बार ऐसा नहीं होगा।"

"मैं भी चलूँ?"

"नहीं, मैं अकेला जाता हूँ। राज घर पर ही होगा।" उस दिन सुबह टहलने जाने के बदले पैरों को लक्ष्मीपुर की ओर बढ़ाया। राज घर पर ही था। वही पहले बाहर आकर भाई को भीतर साथ ले गया। कात्यायनी ने उन्हें एक गिलास गरम दूध दिया। वह अब सूखकर पीली पड़ गयी थी! शरीर में रक्त का नाम भी नहीं था। डॉ॰ राव कारण जानते थे। अतः कुछ बोले नहीं। लेकिन उन्होंने राज से कहा—"ग्रंथ-रचना पूर्ण हो गयी है। नागु को ले जाने के लिए आया हूँ। वह अभी चले तो साथ ले जाऊँगा।" राज भीतर गया। इस बीच कात्यायनी ने पृथ्वी को बाहर भेज दिया। उसने आकर पिता के चरण स्पर्श किये। उसके सिर को स्पर्श कर आशीर्वाद देने के बाद डॉ॰ राव ने पूछा—"अब किस कक्षा में हो?"

"इस वर्ष बी॰ एस-सी॰ की तैयारी कर रहा हूँ।"

"उस घर की ओर भी आया कर। शाम को आना। घूमने चलेंगे।"

"अच्छा!"

भीतर जाकर राज ने नागलक्ष्मी को सारी बात बतायी तो उसने स्पष्ट कह दिया—"मैं किसी के घर नहीं जाऊँगी।" राज ने धीरे से डॉ॰ राव की बीमारी के बारे में उसे बताया। डॉक्टर के मना करने के बावजूद ग्रंथ-रचना की बात बताकर कठोर बनकर बोला—"शायद तुम्हारे कारण ही उन्हें हृदय का पहला दौरा पड़ा था। अब भी उनकी स्थिति बहुत ही नाजुक है। अब फिर तुम हठ करने लगोगी तो पता नहीं, उनके

मन को कितना आघात पहुँचेगा, कब क्या हो जाय ! क्या तुम उस सबके लिए तैयार हो ?"

दो मिनट में नागलक्ष्मी पिघल गई—"अशुभ क्यों सोच रहे हो ? एक घण्टे में रसोई तैयार हो जाती है। उन्हें रुकने के लिए कहो। उनके साथ तुम सबको परोसूँगी। फिर मैं भी खा लूँगी। यहाँ कात्यायनी की यह हालत है, तुम उसे कैसे सँभालोगे ?"

"हमारा तो किसी तरह चल जायेगा। रसोई के काम में मैं भी हाथ बँटाया करूँगा। पृथ्वी भी तो है, आवश्यकता पड़ने पर वहाँ से रागप्पा को बुला लेंगे। घर का ऊपरी काम कर देगा तो कात्यायनी दाल-भात बना लेगी।"

बाहर आकर राज ने भाई को सारी बातें बताकर कहा—"आप भी भोजन कर लीजिए।" दोनों भाई बातों में लग गये। साढ़े नौ बजे डॉ० राव ने वहीं स्नान किया। फिर भोजन के लिए बैठने ही वाले थे कि रत्ने आ पहुँची। राज ने स्वागत किया। वह बोली—"इनकी स्थिति काफी नाज़ुक है, इतनी देर नहीं लौटे, तो मैं घबरा गयी थी।"

"आइए, भोजन के पश्चात् तीनों साथ जाइएगा।"

रत्ने भीतर गयी। हाथ-पैर धोये। खाने को बैठने से पहले, भीतर जाकर नागलक्ष्मी को प्रणाम किया। अचानक नागलक्ष्मी सकपका गयी। समझ न सकी कि क्या करना चाहिए। वह चुपचाप खड़ी थी। लेकिन उसका मन आनंद से भर गया। सबको बैठाकर उसने भोजन परोसा। भोजन होने तक राज ताँगा ले आया। खाते समय डॉ० राव ने कात्यायनी से कहा—"अब अलग दो-दो घरों में रहने की आवश्यकता नहीं। सब वहीं आ जाओ। अब तुम सब लोगों के साथ जितना अधिक रहता हूँ, उतना ही अधिक आनंद महसूस करता हूँ।"

गाड़ी में यात्रा करते समय तीनों का मन आनंद में डूबा हुआ था। रत्ने किसी उन्नत भावना का अनुभव कर रही थी। डॉ० राव को प्रतीत हो रहा था कि जीवन पर काली छाया का एक क्रूर द्वंद्व सुलझ गया, किसी समन्वय को संगति प्राप्त हुई। नागलक्ष्मी का मन श्रीराम का स्मरण कर रहा था। वह मन-ही-मन कह रही थी—तुम पर विश्वास करने वालों का तुम कभी हाथ नहीं छोड़ते।'श्रीराम जयराम जय-जय राम। श्रीरामः

शरणं मम ।'

नागलक्ष्मी जिस घड़ी उस घर में प्रविष्ट हुई, घर को नया जीवन मिला। रसोईघर में रागप्पा द्वारा बनाये भोजन को जाँचा। मिर्च पउडर का डिब्बा खोलकर बास देखा। उसी दोपहर को रागप्पा को दुकान भेजकर मसाले का सामान मँगवाया। खुद कूटा और महकता हुआ मसाला बनाया। शाम को उसे बाजार भेजकर नीबू, अदरक, फल-फूल, पान, तरकारी आदि मँगवाई। चूर्ण का डिब्बा एवं सुपारी भी। शाम को जब वहाँ पृथ्वी आया तो उससे भगवान् श्रीराम का चित्र, राम-नाम लिखने की बही, स्याही की बोतल और कलम मँगवाई। उस दिन रात को उसी ने रसोई बनायी। डॉ० राव और रत्ने को परोसा। संकोच-वश रागप्पा नागलक्ष्मी के भोजन के पश्चात् खाने बैठा। अपनी टूटी-फूटी कन्नड में रत्ने नागलक्ष्मी से बात कर लेती थी। रत्ने ने नागलक्ष्मी को 'सिस्टर' कहकर संबोधित किया। डॉ० राव ने समझाया कि उस शब्द का अर्थ है 'दीदी'।

दूसरे दिन सुबह चार बजे उठकर नागलक्ष्मी ने चूल्हा जलाया। रत्ने और डॉ० राव सुबह पाँच बजे उठे, तो उन्हें गरम दूध दिया। डॉ० राव हाथ में छड़ी लिये टहलने निकल पड़े। रत्ने भीतर आकर बोली—"दीदी, कुकिंग मे मैं हैल्प करूँ ?" नागलक्ष्मी ने कहा—"नहीं, तुम लिखो-पढ़ो। जिस कार्य को मैं अच्छी तरह कर सकती हूँ, मुझे करने दो। तुम जिसे अच्छी तरह कर सकती हो तुम करो।" रत्ने धीरे से मुस्करायी। उसे नये भाग्य के एक अनुपम सुख की अनुभूति हुई। उल्लासपूर्ण मन से अध्ययन-कक्ष में बैठकर हस्तप्रति पढ़ने लगी। डॉ० राव टहल कर साढ़े आठ बजे लौटे, तो नागलक्ष्मी उन्हें स्नान कराने ले गयी। अपने हाथों से पानी डाला और शरीर मलकर स्नान कराया। उनके यह पूछने पर कि 'क्या मैं बच्चा हूँ ?' वह बोली—'बच्चा नहीं तो और क्या हैं, अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना भी नहीं आता।' इतना कहकर कृत्रिम क्रोध दिखाते समय उसका मन हर्ष से भर गया था। दस बजे भोजन परोसने से पूर्व रत्ने एवं डॉ० राव को बुलाकर बोली—"आइए, पहले रामचंद्रजी को नमस्कार कीजिए। बाद में भोजन।" उन दोनों ने श्रद्धा-

पूर्वक भगवान् के सामने सिर नवाया। डॉ० राव की ओर इशारा करके रत्ने, नागलक्ष्मी से बोली—"ये हमारे घर के रामचन्द्र हैं, इज ही नाट?" यह सुनकर डॉ० राव ने कहा—"लेकिन इस राम की दो पत्नियाँ हैं।" रत्ने, नागलक्ष्मी दोनों खूब हँसीं। उस दिन भोजन का स्वाद ही अलग था। ऐसा स्वादिष्ट भोजन कुछ वर्ष पहले नागलक्ष्मी ने ही बँगले में बनाया था। डॉ० राव को उसका स्मरण हो रहा था। बनी हुई सभी चीजें इतनी स्वादिष्ट बनी थीं कि किसे खायें, किसे छोड़ें—यही समझ में नहीं आ रहा था। भोजन के स्वाद ने रत्ने को चकित कर दिया था। रोज की अपेक्षा आज उसने अधिक खाया। डॉ० राव ने भी कुछ अधिक ही खाया।

भोजन के पश्चात् रत्ने हस्तप्रतियाँ लेकर पुस्तकालय गयी। नागलक्ष्मी खाने बैठी तो डॉ० राव रसोईघर में आकर उसे परोसने लगे। 'नागु, आज तक जो हुआ, सो हुआ। आज से रोज मुझ से परोसवा लेना' कहकर इतना परोसते रहे कि नागलक्ष्मी बस-बस करती रही। "कात्यायनी कैसी है? वह मान जाय तो हम सब साथ रहें। इतना बड़ा बँगला है। इसका भाड़ा देते हैं, वहाँ वे अलग भरते हैं। कात्यायनी की तंदुरस्ती भी ठीक नहीं है। तुम्हारे बिना राज का भी दिल नहीं लगता। पृथ्वी भी हम लोगों के साथ रहने लगेगा।"

नागलक्ष्मी के भोजन के पश्चात् रागण्णा खाने बैठा। उसने कहा—"माँ, कम-से-कम अब तो आप बाहर जाइए। आप काम करती हैं तो मुझे बैठने में शर्म आती है। आपकी तरह रसोई बनाने के लिए सरस्वती का अनुग्रह चाहिए।" थाली में तांबूल रखकर नागलक्ष्मी बाहर के कमरे में आई। डॉ० राव अपने पलंग पर बैठे थे। कमरे का द्वार बन्द कर भीतर आकर पलंग के पास कुर्सी पर बैठकर नागलक्ष्मी ने पूछा—"आपको पान दूँ?"

"नहीं, डॉक्टर ने मना किया है।"

नागलक्ष्मी ने भी पान नहीं खाया। चवालीस वर्ष की उम्र में सिर के अधिकांश बाल सफेद हो गये हैं। सँवार कर बाँधे गये सफेद बाल चमक रहे थे। गाँठ पर शेवंतिका पुष्प सुशोभित था। विशाल ललाट के बीच में चौड़ा सिंदूर दिखाई दे रहा था। उसके नीचे छोटी-सा शिंगरक

शरणं मम ।'

नागलक्ष्मी जिस घड़ी उस घर में प्रविष्ट हुई, घर को नया जीवन मिला। रसोईघर में रागप्पा द्वारा बनाये भोजन को जाँचा। मिर्च पउडर का डिब्बा खोलकर बास देखा। उसी दोपहर को रागप्पा को दुकान भेजकर मसाले का सामान मँगवाया। खुद कूटा और महकता हुआ मसाला बनाया। शाम को उसे बाजार भेजकर नींबू, अदरक, फल-फूल, पान, तरकारी आदि मँगवाई। चूर्ण का डिब्बा एवं सुपारी भी। शाम को जब वहाँ पृथ्वी आया तो उससे भगवान् श्रीराम का चित्र, राम-नाम लिखने की बही, स्याही की बोतल और कलम मँगवाई। उस दिन रात को उसी ने रसोई बनायी। डॉ० राव और रत्ने को परोसा। संकोच-वश रागप्पा नागलक्ष्मी के भोजन के पश्चात् खाने बैठा। अपनी टूटी-फूटी कन्नड में रत्ने नागलक्ष्मी से बात कर लेती थी। रत्ने ने नागलक्ष्मी को 'सिस्टर' कहकर संबोधित किया। डॉ० राव ने समझाया कि उस शब्द का अर्थ है 'दीदी'।

दूसरे दिन सुबह चार बजे उठकर नागलक्ष्मी ने चूल्हा जलाया। रत्ने और डॉ० राव सुबह पाँच बजे उठे, तो उन्हें गरम दूध दिया। डॉ० राव हाथ में छड़ी लिये टहलने निकल पड़े। रत्ने भीतर आकर बोली—"दीदी, कुकिंग में मैं हैल्प करूँ ?" नागलक्ष्मी ने कहा—"नहीं, तुम लिखो-पढ़ो। जिस कार्य को मैं अच्छी तरह कर सकती हूँ, मुझे करने दो। तुम जिसे अच्छी तरह कर सकती हो तुम करो।" रत्ने धीरे से मुस्करायी। उसे नये भाग्य के एक अनुपम सुख की अनुभूति हुई। उल्लासपूर्ण मन से अध्ययन-कक्ष में बैठकर हस्तप्रति पढ़ने लगी। डॉ० राव टहल कर साढ़े आठ बजे लौटे, तो नागलक्ष्मी उन्हें स्नान कराने ले गयी। अपने हाथों से पानी डाला और शरीर मलकर स्नान कराया। उनके यह पूछने पर कि 'क्या मैं बच्चा हूँ ?' वह बोली—'बच्चा नहीं तो और क्या हैं, अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना भी नहीं आता।' इतना कहकर कृत्रिम क्रोध दिखाते समय उसका मन हर्ष से भर गया था। दस बजे भोजन परोसने से पूर्व रत्ने एवं डॉ० राव को बुलाकर बोली—"आइए, पहले रामचंद्रजी को नमस्कार कीजिए। बाद में भोजन।" उन दोनों ने श्रद्धा-

पूर्वक भगवान् के सामने सिर नवाया। डॉ॰ राव की ओर इशारा करके
रत्ने, नागलक्ष्मी से बोली—"ये हमारे घर के रामचन्द्र हैं, इज ही नाट?"
यह सुनकर डॉ॰ राव ने कहा—"लेकिन इस राम की दो पत्नियाँ
हैं।" रत्ने, नागलक्ष्मी दोनों खूब हँसीं। उस दिन भोजन का स्वाद ही
अलग था। ऐसा स्वादिष्ट भोजन कुछ वर्ष पहले नागलक्ष्मी ने ही बँगले
में बनाया था। डॉ॰ राव को उसका स्मरण हो रहा था। बनी हुई सभी
चीजें इतनी स्वादिष्ट बनी थीं, कि किसे खायें, किसे छोड़ें—यही समझ
में नहीं आ रहा था। भोजन के स्वाद ने रत्ने को चकित कर दिया
था। रोज की अपेक्षा आज उसने अधिक खाया। डॉ॰ राव ने भी कुछ
अधिक ही खाया।

भोजन के पश्चात् रत्ने हस्तप्रतियाँ लेकर पुस्तकालय गयी। नाग-
लक्ष्मी खाने बैठी तो डॉ॰ राव रसोईघर में आकर उसे परोसने लगे।
'नागु, आज तक जो हुआ, सो हुआ। आज से रोज मुझ से परोसवा लेना'
कहकर इतना परोसते रहे कि नागलक्ष्मी बस-बस करती रही।
"कात्यायनी कैसी है? वह मान जाय तो हम सब साथ रहें। इतना बड़ा
बँगला है। इसका भाड़ा देते हैं, वहाँ वे अलग भरते हैं। कात्यायनी की
तंदुरुस्ती भी ठीक नहीं है। तुम्हारे बिना राज का भी दिल नहीं लगता।
पृथ्वी भी हम लोगों के साथ रहने लगेगा।"

नागलक्ष्मी के भोजन के पश्चात् रागप्पा खाने बैठा। उसने कहा—
"माँ, कम-से-कम अब तो आप बाहर जाइए। आप काम करती हैं तो
मुझे बैठने में शर्म आती है। आपकी तरह रसोई बनाने के लिए सरस्वती
का अनुग्रह चाहिए।" थाली में तांबूल रखकर नागलक्ष्मी बाहर के कमरे
में आई। डॉ॰ राव अपने पलंग पर बैठे थे। कमरे का द्वार बन्द कर
भीतर आकर पलंग के पास कुर्सी पर बैठकर नागलक्ष्मी ने पूछा—
"आपको पान दूँ?"

"नहीं, डॉक्टर ने मना किया है।"

नागलक्ष्मी ने भी पान नहीं खाया। चवालीस वर्ष की उम्र में सिर
के अधिकांश बाल सफेद हो गये हैं। सँवार कर बाँधे गये सफेद बाल
चमक रहे थे। गाँठ पर शेवंतिका पुष्प सुशोभित था। विशाल ललाट के
बीच में चौड़ा सिंदूर दिखाई दे रहा था। उसके नीचे छोटी-सा शिगरक

का बिंदु । सात्विक कांतिमय उसके चेहरे पर पहले का-सा मुग्ध सौंदर्य अब भी है। पहले जैसे उसके दोनों हाथों में चूड़ियाँ हैं। गाल, हाथ-पैरों में लेपन की हुई हल्दी भी स्पष्ट दिखाई दे रही थी। उसे दो मिनिट अपलक देखते रहने के बाद डॉ० राव ने कहा—"नागु, इतने दिन तुमसे अलग रहा। तुम्हारे साथ रहता तो हृष्ट-पुष्ट रहता।" नागलक्ष्मी ने सिर झुका लिया। उसकी आँखों में आँसू भर आये। यह देख डॉ० राव ने उसका हाथ पकड़ खींच लिया और पलंग पर अपने पास बैठाकर बोले—"रोओ मत ! मैं तुम्हें अब कभी नहीं छोड़ूँगा।"

"आप थक गये हैं, लेट जाइए" कहकर उन्हें अपनी गोद में सुला लिया। पैर पसारकर पत्नी की गोद में सिर रखकर विश्राम कर रहे डॉ० राव का मन अपूर्व हर्ष के प्रवाह में बह चला। उनके मुख को अपने हाथों में लेकर पति से पूछा—"आप जब बीमार पड़े, मुझे क्यों नहीं बुलाया ? उस दिन जब मुझे बुलाने आये थे, तब मुझे गुस्सा आया हुआ था। लेकिन आपके बीमार पड़ने पर सेवा न करने जैसी पापिन हूँ क्या ?"

"ऐसा मत कहो, नागु ! तुम सचमुच भाग्यशालिनी हो। इतने दिनों तक तुम्हारे साथ ऐसे व्यवहार के कारण मैं ही पापी हूँ।" "छिः ! छोड़िए भी, आप ऐसा न कहें" कहकर उनके मुख पर हाथ रख दिया। हाथ हटाकर उन्होंने कहा—"मैं पाप-पुण्य की विवेचना नहीं करता। तुम भी जानती हो। किसी नीच प्रवृत्ति की चपेट में आकर मैंने रत्ने से विवाह नहीं किया। वह न होती तो शायद मेरे ग्रन्थ [illegible] भी पूर्ण न हो पाते। हम तीनों, पहले से ही इस तरह [illegible] लेकिन नवीन मनोभाव की रत्ने ने यह प्रस्ताव स्वीकार [illegible] उसके साथ रहे बिना मेरा [illegible] पाता। [illegible] हो। इससे बढ़कर और [illegible] है ?"

डॉ० राव का [illegible]
समाप्त हो गया।
आनन्द-सागर में [illegible]
की भव्य संस्कृति [illegible]
संसार को प्रदान [illegible]
महाप्रवाह को अपनी

अंतःसत्व को समझाने का कितना प्रयत्न किया है मैंने ! वह निरा प्रयत्न नहीं। उस लेखन कार्य ने मुझे तृप्ति दी है। महा साधना में छोटी-छोटी त्रुटियाँ भी हुई होंगी ! नागु, हम दोनों का अलग रहना, तुम्हारा इतने वर्ष दुःख सहना, आदि इस साधना के लिए शायद अनिवार्य था ! भगवान् की शायद यही मर्जी थी। अब जिस तरह कार्यक्रम के अंत में सब एक होकर मंगल गीत गाते हैं, वह क्षण भी आ गया कि मैं तेरी गोद में सिर रखकर सो जाऊँ ! नागु, जानती हो मुझे कितना आनन्द मिल रहा है ? मेरी छाती पर मुख रख लो। मुझे अपनी बाँहों में भर लो। क्या तुम्हें खुशी नहीं हो रही है ?" कहकर उन्होंने पत्नी की कमर अपने दोनों हाथों से पकड़ ली। नागलक्ष्मी की आँखों में आनंदाश्रु भर आये। उसने उन्हें सीने से लगा लिया। "नागु, यह हर्ष, हर्ष को···" आगे बोलना कठिन लगा। "मैं सह नहीं सकता···" बड़े कष्ट से कह पाये। साँस रुक-सी गयी। शरीर पसीने से तर हो गया। छाती के बायें पक्ष में असह्य वेदना हुई। वे आगे बोल नहीं सके। धीरे से अपना हाथ छाती की ओर ले गये। नागलक्ष्मी भयभीत हो उठी। अपने सीने से लगाये हुए उनके मुख को हटाकर पुनः गोद में लिटाया। डॉ० राव के मुख पर क्षण-भर में यम-यातना दिखायी दी। कुछ न सूझा तो नागलक्ष्मी ने रागप्पा को आवाज दी। रागप्पा के दौड़कर आने तक डॉ० राव के चेहरे पर वेदना घटती-सी दिखाई पड़ने लगी। आँखें मुंदी हुई थीं। हाथ-पैरों का हिलना-डुलना बन्द हो चुका था। रागप्पा ने डॉ० राव का हाथ पकड़ा, नाक के पास हाथ ले जाकर देखा। वह समझ गया। "प्रोफेसर को बुलाता हूँ" कहकर बाहर दौड़ा। नागलक्ष्मी को शंका हुई। वह जोर-जोर से रोने लगी। एक क्षण पहले आनंदाश्रुओं से भरी हुई आँखों से दुःख का प्रवाह उमड़ने लगा।

प्रोफेसर घर में नहीं थे। उनकी पत्नी आई। उनके आने तक नागलक्ष्मी समझ चुकी थी। प्रोफेसर की पत्नी ने उसका हाथ पकड़ लिया। उसका रुदन और भी बढ़ गया। पाँच मिनिट में रत्ने रागप्पा के साथ दौड़ती आई। कमरे का दृश्य देखकर वह तुरन्त कहना चाहती थी, 'आपके साथ रहकर भावोद्रेक के कारण उन्हें 'हार्ट अटैक' हुआ है' लेकिन बात जबान तक आकर रुक गयी। अपने अब तक के साथी डॉ० राव के शरीर पर वह लुढ़क गयी।

डॉ० राव की मृत्यु की सूचना मिलते ही कालेज के प्राध्यापक, विद्यार्थी आदि उनके बँगले पर आये। प्रिंसिपल ने छुट्टी की घोषणा कर दी। दूसरे दिन सपन्न शोक-सभा में उनके हर ग्रंथ की एक प्रति सबके देखने के लिए मेज पर रखी गयी। मेज के पास कुर्सी पर डॉ० राव की तसवीर थी। उस पर बड़ी-सी पुष्पमाला पड़ी हुई थी। उस सभा मे बोलते हुए उपकुलपति ने रुद्ध कंठ से कहा—"किसी भी विश्वविद्यालय की क्षमता, महत्त्व, प्रतिष्ठा ऐसे महान् विद्वानों एवं ऐसे महान् ग्रन्थों से ही बढ़ती है, न कि अधिकारी-वर्ग से।" अन्य तीन वयोवृद्ध प्रोफेसरों ने जब कहा, "डॉ० राव हम-जैसे प्रोफेसरों के गुरु माने जाते हैं। समस्त जीवन को ज्ञानार्जन के लिए निछावर कर देने वाले ऐसे व्यक्ति के चरणों का स्मरण करना चाहिए" तो उनमे से दो के नेत्रों से आँसू टपक पड़े थे।

राज उसी शाम बँगले में ताला लगाकर रत्ने और नागलक्ष्मी को घर ले आया। परंपरागत नियम के अनुसार क्रिया-कर्म पृथ्वी को करना चाहिए था। लेकिन उसका यज्ञोपवीत संस्कार नही हुआ था, अतः राज ने सब किया। सातवें दिन से कार्य प्रारम्भ हुआ।

नागलक्ष्मी के जीवन मे भरी निराशा दूर हुई, वह एक दिन सुबह ग्यारह बजे गाड़ी में अपने पति के साथ बैठकर पतिगृह आई और दूसरे दिन ही उसी समय उसकी गोद में पति ने प्राण त्याग दिये! 'शायद मेरे पूर्व-जन्म के कर्म ही ऐसे हैं। मेरे पूर्वार्जित पाप से ही उन्हें ऐसा हुआ।' कहकर वह रोती-सिसकती रही। इतने दिन पति जब जीवित थे, वह उनसे अलग रही। अब वे नही रहे। पति से अलग रहने की अपेक्षा वैधव्य अधिक क्रूर प्रतीत हुआ। राज, कात्यायनी और रत्ने के कहने के पर भी उसकी रुलाई नहीं थमी। पिता के साथ कोई सम्बन्ध न होते हुए भी पृथ्वी रो रहा था। जेठ के प्रति कात्यायनी को आदर था। उनकी विद्वत्ता के प्रति उसकी श्रद्धा थी। वह भी दो दिन आँसू बहाती रही। रत्ने को वही धीरज दिला रही थी। राज के लिए भैया की यह मौत अनपेक्षित थी। बेटे के स्थान पर वह उत्तरक्रियादि कर रहा था।

पति की मृत्यु के दस दिन तक नागलक्ष्मी सुमंगला थी। घर आने वाली स्त्रियाँ उसे फूल पहनातीं, माथे पर सिंदूर लगातीं, हाथ में चूड़ियाँ पहनाकर गाल पर हल्दी का लेपन करती थीं। जैसे-जैसे दसवाँ दिन पास

आता, अपने भाग्य का सिंदूर खोने की चिंता से वह दिन-रात रोती रहती। पहले बाल सँवारते समय दिन में एक बार दर्पण देखती थी, किन्तु अब हल्दी-कुंकुम लगे मुख को बार-बार दर्पण में देखा करती। साथ ही, आ पड़े दुःख को सहने में असमर्थ हो, जीवन पर लोटने लगती। नौवें दिन उसके और राज के बीच गरमागरम बहस हो गयी।

"राज, जब प्राण ही उड़ गये तो इस गन्दे शरीर से क्या लाभ? कल इन बालों, इन साड़ियों—सबको जाने दो। दूसरी साड़ी मँगवा दो।"

"पुराने जमाने की स्त्री की भाँति बातें मत करो। शास्त्र के अनुसार अवश्य चलने दो। बालों को वैसे ही रहने दो। भविष्य में तुम केवल सफेद साड़ियाँ पहना करो।"

"क्या मैं आफिस में काम करती हूँ जिसके लिए मैं सफेद साड़ियाँ पहनूँ? मुझे वे सब नहीं चाहिए" कहकर नागलक्ष्मी ने हठ किया। इतने में कात्यायनी वहाँ आ गयी। उसे देखते ही नागलक्ष्मी ने रोकर कहा—"तू ही कह दे री इसे! मैं सिर मुँड़ा लेना चाहती हूँ।"

कात्यायनी का हृदय चीख उठा। इतने दिन साथ रहकर वह सिर मुँड़ाए, लाल साड़ी पहने नागलक्ष्मी के रूप की कल्पना भी न कर सकी। उसे अनायास अपने बीते हुए दिनों की याद आ गई। बीस वर्ष पहले जब उसका पहला पति मरा था तो दस दिन तक वह भी सुमंगला की वेशभूषा में थी। दसवें दिन सिर के फूल, गले का मंगलसूत्र, हाथ की काँच की चूड़ियाँ निकाल दी थीं। माथे का सिंदूर पोंछ दिया था। रंगीन साड़ी उतारकर सफेद साड़ी पहनते समय वह बेहोश-सी हो गयी थी। उसका सिर मुँड़वाने लाल साड़ी पहनाने की सलाह उसकी सास भागीरतम्मा ने दी थी, लेकिन आधुनिक काल में इतनी कम उम्र में अपनी बहू का जी न दुखाने के विचार से श्रोत्रियजी ने यह सलाह अस्वीकार कर दी थी। उसे पुनः फूल, चूड़ियाँ पहनने, माथे पर सिंदूर लगाने का सौभाग्य मिला था। पुनः प्राप्त सौभाग्य से वह हर्षित भी हुई थी। लेकिन अब उसकी विचार-धारा बदल चुकी थी। दो मिनट अपने आप न जाने क्या सोचकर वह राज से बोली—"दीदी ठीक कह रही हैं। आप वैसा ही कीजिए।"

"लेकिन लाल साड़ी पहने हुए नागु को मैं देख न सकूँगा, मैं मन को समझा न सकूँगा!" राज ने रुंधे कण्ठ से कहा।

"दुःख सह लेना चाहिए। इस विषय में आपकी अपेक्षा दीदी का अनुभव अधिक परिपक्व है। नयी स्थिति को सांकेतिक रूप में भी स्वीकार करने के लिए वे तैयार हैं। जो वास्तविकता है, उसे आप अस्वीकार नहीं कर सकते। उनके संकेत का आप विरोध क्यों करते हैं? इस विषय में पुरुष के विचार-तर्कों की अपेक्षा स्त्री की अंतःप्रेरणा ही अधिक विवेकशील है।"

राज चुप हो गया। दूसरे दिन नागलक्ष्मी घर से निकली। अपने सुहाग-चिह्नों को त्यागते समय न रोने का निश्चय कर, अधर भींच लिये। क्रिया-कर्म हुए। नियमानुसार घर के पिछवाड़े के द्वार के नीचे बैठ गयी। सिर पर एक घड़ा ठंडा पानी डलवाकर घर में प्रवेश करते समय चक्कर खाकर गिर पड़ी। कात्यायनी की पन्द्रह मिनिट की शुश्रूषा के पश्चात् उसे होश आया। सब क्रिया-कर्म होने के दूसरे दिन 'श्रीराम' के चित्र के सम्मुख बैठकर वह बोली : "श्रीराम! तुझ पर मेरा विश्वास था! तूने ही ऐसा किया! फिर भी तेरी पूजा करती हूँ! अगले जन्म में उन्हीं को मेरा पति बनाना। भाग्य में सुमंगली मृत्यु लिखने न भूलना।"

उसी दिन से वह पहले की अपेक्षा अधिक श्रीरामनाम लिखने लगी।

इस अज्ञात वातावरण में घर की सारी जिम्मेदारी कात्यायनी पर पड़ी। इतना परिश्रम करने की क्षमता उसके शरीर में नहीं थी। एक-दो दिन बाद उसे बुखार आने लगा। उसकी शुश्रूषा के लिए नागलक्ष्मी के अतिरिक्त और कोई नहीं था।

सारे कार्य समाप्त होने के पूर्व ही वहाँ से रवाना होने पर राज और कात्यायनी को दुःख होता, इसलिए रत्ने तेरह दिन तक वहीं रही। डॉ० राव की पत्नी बनने के पश्चात् रत्ने भी रोज सिंदूर लगाती थी। वह सदा सादी सफेद साड़ी पहना करती थी। दसवें दिन घर में ही स्वेच्छा से अपने माथे का सिंदूर पोंछ दिया।

वैकुंठ समाराधना के दूसरे ही दिन वह राज से बोली—"अब मैं वहाँ जाऊँगी।

राज को आश्चर्य हुआ। "उस बँगले में अकेली क्यों जा रही हैं? इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालय नियमानुसार उसे खाली करायेगा। वहाँ

जो ग्रंथ आदि हैं, उन्हें ले आयेंगे। कमरे में बैठकर शेष कार्य पूर्ण का।ज५।
आप भी तो मेरी भाभी हैं !"

"आपका औदार्य महान् है, लेकिन शेष कार्य मैं वहीं रहकर पूर्ण करूंगी। वहीं रहकर मुझे मन:शांति मिल सकती है" कहकर वह निकल ही पड़ी, किसी की बात नहीं मानी।

"आप संकोच न करें। खर्च को हर मास मैं पैसे दूंगा।" राज ने कहा।

"मेरे पास पैसे हैं। उन्हें प्रथम बार हृदय का दौरा पड़ा था, उस दिन से उन्होंने बैंक अकाउण्ट मेरे नाम कर दिया था। लगभग सात-आठ हजार रुपये हैं। अभी-अभी प्रकाशकों से कुछ रुपये आ गये हैं। इस बारे में चिन्ता न करें। रागप्पा साथ रहेगा। आप आना न भूलें!" कहकर वह चली गयी। नागलक्ष्मी और कात्यायनी से विदा लेकर रागप्पा के साथ तांगे में बैठी तो उसकी आँखों में आँसू छलक पड़े।

उसी दिन पड़ोस के प्रोफेसर के साथ विश्वविद्यालय के उपकुलपति रत्ने को देखने आये। जिस कमरे में वे मरे थे, उसी में बैठकर स्वर्गीय विद्वान् के गुणों को स्मरण करने के पश्चात् बोले—"आप राजाराव के साथ रह सकती हैं न?"

"उन्होंने यही कहा था। लेकिन न जाने क्यों मेरा मन यहीं रहने को कहता है।"

"वैसा ही कीजिए। कहते हैं डॉ० राव की मृत्यु का समाचार यूरोप-अमरीका के समाचार-पत्रों में छपा है। बी० बी० सी० से समाचार प्रसारित हुआ है, मैंने भी सुना है। स्वर्गीय विद्वान की विद्वत्ता की प्रशंसा करते हुए उनके परिवार तक अपनी हार्दिक संवेदना पहुँचाने का निवेदन करते हुए विदेश के अनेक प्रोफेसरों ने हमारे आफिस के पते पर पत्र भेजे हैं। डॉ० राव जैसे विद्वानों के कार्य से हमारे विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा बढ़ती ही थी। पाँचवें खण्ड का कार्य कहाँ तक हुआ है?"

"तीन-चार महीने में प्रकाशन के लिए भेज दूंगी।"

"अच्छा! आपके अतिरिक्त और कौन उसे पूर्ण कर सकता है? आप जितने दिन रहना चाहती हैं, इस बँगले में रह सकती हैं। भाड़ा न लेने का आदेश दे देता हूँ। उनके ग्रंथ का संशोधन करके प्रकाशन कराने के निमित्त आपको दो-तीन हजार रुपयें की सहायता-निधि दि.

व्यवस्था भी करवा देता हूँ। आप किसी बात की चिंता न करें।"

"अत्यंत आभारी हूँ। फिलहाल मुझे यह बँगला ही चाहिए। रुपयों की आवश्यकता नहीं है।"

दूसरे दिन रत्ने को प्रकाशकों का पत्र मिला। उसने पत्रोत्तर में लिखा कि "पाँचवाँ खण्ड पूर्ण करने के पश्चात् ही डॉ० राव की मृत्यु हुई है और उसे तीन-चार महीने में प्रकाशनार्थ भेज दूँगी।" उसी दिन से उसका कार्य प्रारंभ हो गया। लगभग एक महीना वह पुस्तकालय में रही। अनेक संदर्भों में कई ग्रंथों से नोट उतारे। हस्तप्रति टाइप करने बैठी। थोड़ा भी आराम नहीं! कार्य करके थक जाती। लेकिन आराम करने बैठती तो अतीत का स्मरण हो आता और मन दुःखी एवं संतृप्त हो उठता। रागप्पा अपने कार्य तक ही सीमित रहता। कभी कुछ नहीं बोलता। वह सोचता, 'भविष्य में मेरे जीवन का क्या होगा?' लेकिन इस बारे में रत्ने से कभी नहीं कहा। अपना काम करता रहा। डॉ० राव के निधन से उसे भी बड़ा आघात पहुँचा था।

चार महीने पश्चात् एक दिन शाम को रत्ने का काम पूरा हो गया। अब से पंद्रह दिन पूर्व ही उसने टाइप समाप्त किया था। उसी दिन से टाइप की गयी प्रतियों को जाँचने लगी थी। लगभग बीस पृष्ठ पुनः टाइप करने पड़े। सब पन्नों को क्रम से जोड़ा। प्रकाशकों ने रत्ने से निवेदन किया था कि खण्ड की भूमिका के रूप में छापने के लिए स्वर्गीय डॉ० राव की जीवनी एवं विद्वत्ता के बारे में वह स्वयं लिखकर भेजे। उसके द्वारा लिखा गया वह जीवन-चित्र, जिसमे उसके पति की विद्वत्ता का वर्णन था, कलाकार के रंगीन चित्र से अधिक स्पष्ट था, हृदयग्राही था। सबको मिलाकर एक बड़े लिफाफे में भरा और उसे बंद करके मुहर लगाकर पता लिखा। दूसरे दिन डाकघर भेजने की तैयारी करने तक रात के दस बज गये थे। खण्ड के कार्य से मुक्त होकर वह आरामकुर्सी पर पीठ टेककर बैठ गयी। तब अनायास उसे रोना आ गया। गत चार महीने से कार्य करते हुए वह कभी नहीं रोयी थी। मानो इस विचार से वह जीवन बिता रही थी कि पति पास बैठे कार्य करा रहे है। टाइप करते समय उसे प्रतीत होता था मानो वे ही उसके कानों में विषय फूँक रहे हैं। भूमिका लिखते समय उसे अनुभव हुआ कि वे सामने बैठकर लिखा रहे हैं और

वह शीघ्रलिपि में लिखती जा रही है। सब उब समाप्त हो गया। उसके लिए सारा समार ही शून्य हो गया। उमड़ते दुःख को वह दवा न सकी। एक घण्टे से भी अधिक तक वह सिसकती रही। अंत में खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गयी। बाहर अँधेरा छाया हुआ था।

धीरे से कमरे से बाहर निकली। घर के बाहर द्वार के पास गयी। रागप्पा आँगन मे सोया था। उसे उठाया नहीं। बाहरी द्वार में ताला लगाकर वह रास्ते पर चल पड़ी। लोगों की सख्या बहुत कम थी, किन्तु उस क्षेत्र में दूर-दूर तक विद्युत-स्तंभ दिखाई दे रहे थे। उनके मंद प्रकाश में वह चलती चली गयी। अनजाने ही वह कुक्कर हल्लि के पास पहुँच गयी। बायीं ओर स्थित एक लतागृह की शिला पर बैठ गयी। उसे तुरंत याद आया—कई साल पहले अपने शोध-प्रबंध को समाप्त कर स्वदेश लौटने के पहले दिन की सुबह वह डॉ० राव के साथ यहाँ आई थी। इस दुःख से कि उन्हें छोड़कर स्वदेश जाना पड़ रहा है, डॉ० राव की गोद में अपना सिर छिपाकर बहुत रोयी थी। उन्होंने उसे बाँहों में भर लिया था। क्षण-भर के लिए वह स्मरण मधुर लगा। उसी में डूबकर अपने आपको भूल गयी। पाँच मिनट बाद अपनी वर्तमान स्थिति का चित्र आ गया तो रुलाई फूट पड़ी। वह वहाँ बैठ न सकी। कालेज की ओर चल दी। तालाब के बाद खेल का मैदान था। मैदान के बीच कुछ पेड़। रात के भोजन के पश्चात् सामान्यतः वे दोनों टहलते-टहलते इन पेड़ों के नीचे बैठकर अपने ग्रंथ से संबंधित विचार-विनिमय किया करते थे। बात समाप्त होने के बाद कुछ देर दोनों मौन हो जाते थे। जाते समय पर्याप्त प्रकाश न होता तो वह पति का हाथ पकड़कर सहारा देती थी। उसके याद आते ही पेड़ों को न देख कालेज की ओर मुड़ गयी। कालेज अपने स्थान पर अटल खड़ा था। लगभग तीस वर्ष तक डॉ० राव ने प्राध्यापक के रूप में कार्य किया था। उनकी विद्वत्ता की छाप इस कालेज की हवा के झोंकों में भी है। वह और आगे बढ़ी। बायीं ओर पुस्तकालय भवन उस अँधेरे में भी अपने प्रकाशमान अस्तित्व का आभास दे रहा था। रत्ने उस भवन के सामने खड़ी हो गयी। उस भवन के भीतर उन दोनों ने लगभग अठारह वर्ष से भी अधिक समय तक ग्रंथ लिखे। दोनों के कार्यक्रम, कुर्सी पर बैठकर लिखवाते समय की डॉ० राव की छवि आदि सब उसकी आँखों के

सामने वास्तविक होकर खड़ी थीं। इस स्मरण को भी वह सह न सकी। वहाँ से आगे बढ़ते समय वह थक चुकी थी। सीधे घर आई। द्वार खोलकर अपने कमरे में गयी। लेटी तो नींद नहीं आई। डॉ० राव उसी कमरे में मरे थे। 'नागलक्ष्मी न आती और मैं अकेली रहती तो उन्हें भावोद्विग्नता से दूर रखती तो शायद वे दस वर्ष और जीते !' इस कल्पना-सागर में उसका मन तैरने लगा।

सारी रात उसे नींद नहीं आयी।

सुबह उठी। स्नान करने के बाद कॉफी पी। आठ बजे तक कमरे में बैठी रही। पश्चात् पहली रात को तैयार किया पार्सल लेकर डाकखाने की ओर बढ़ी। अपने कम्पाउण्ड में खड़े पड़ोस के प्रोफेसर ने उसे देखकर पूछा—"यह क्या, पोस्ट आफिस जा रही हैं ? मुझे दीजिए, मैं अपने चपरासी के हाथ भिजवा दूँगा।"

"नहीं। मैं स्वयं कर आऊँगी।"—कहकर वह आगे बढ़ गयी।

डाकखाने में पार्सल देकर रसीद ली। लौटते समय उसका मन रो रहा था। अब कौनसा कार्य रह गया है ? मुख्य कार्य तो पूर्ण हो गया। अब संगृहीत विषयों से संबंधित स्वतन्त्र लघु ग्रंथ एवं लेख लिखे जाने चाहिए। यह धीरे-धीरे किया जा सकता है। अब उसके मन में ऐसा शून्य छा गया कि भयभीत कर देता। संसार में उसका कोई आधार नहीं है, वह बंधुरहित है, एकाकिनी है, 'अपना' कहलाने वाला कौन है उसका ? पैर खींचती हुई घर आते समय रामस्वामी सर्कल के पास उसे पृथ्वी दिखाई पड़ा। उससे बात करने की इच्छा से उसे आवाज दी। उसे पास बुलाकर पूछा—"कहाँ जा रहा है ? अभी तो सवा नौ ही बजे हैं !"

"कालेज जा रहा हूँ, स्पेशल क्लास है।"

"आज की स्पेशल क्लास मत जाओ। मेरे साथ आओ" कहकर पास जाकर उसका हाथ पकड़ लिया। सकोचवश पृथ्वी ने सिर झुका लिया। "चलो, चलें" कहकर उसे पकड़े ही रत्ने आगे बढ़ी। घर पहुँचते समय रागप्पा रसोई तैयार कर रहा था। "तूने अभी तक भोजन नहीं किया होगा ! मेरे साथ खा लो" कहकर रसोई तैयार होने तक बात करती हुई बैठी रही—"चाची कैसी हैं ?"

"कुछ दिनों से रोज बुखार आ रहा है। बहुत ही निर्बल हो गयी हैं। वे 'सिक लीव' पर हैं।"

"और चाचा ?"

"वे एक-दो घण्टे के लिए कालेज जाते हैं। बाकी समय चाची के साथ ही रहते हैं।"

"इसी कारण कई दिनों से इस ओर नहीं आये। वहाँ आने के लिए मुझे भी समय नहीं मिला।" रागप्पा ने आकर भोजन के लिए बुलाया। वह भीतर गयी और दोनों के लिए थाली परोसकर लायी। पृथ्वी को अपने पास ही बैठाकर भोजन कराया। भोजन के पश्चात् कमरे में ले जाकर उसे उसके स्वर्गीय पिता के पलंग पर बिठाया और स्वयं उस पर बैठकर पूछा—"इस दीवार के पास मेज के ऊपर तेरे पिता के जो ग्रंथ हैं, उन्हें तूने पढ़ा है ?"

"नहीं ?"

"क्यों ?"

"मैं विज्ञान का विद्यार्थी हूँ। इस वर्ष बी० एस-सी० की तैयारी कर रहा हूँ।"

रत्ने विषाद से मन-ही-मन हँस पड़ी। विद्वान-जगत को भेंट करने के उद्देश्य से अपने जीवन को अर्पित करने वाले पिता के निर्मित ग्रन्थों के प्रति पुत्र की अभिरुचि नहीं ! उसके अध्ययन का विषय ही भिन्न है। हम अपने इस काम को जिस भावी पीढ़ी के लिए मानते हैं, हमारी वह पीढ़ी कौनसी है ?—उसने अपने-आपसे प्रश्न किया। उसके मन ने उत्तर दिया कि ये ग्रन्थ हैं भारतीय इतिहास का अध्ययन करनेवालों के लिए; केवल गोद में पलने मात्र से अपने उन बच्चों के नहीं हो जाते। इस विचार से उसने सिर उठाकर पृथ्वी का मुख देखा। वह नागलक्ष्मी के मुख से मिलता है। आँखों एवं नाक का सौंदर्य पिता सदृश था। पिता की अपेक्षा पुत्र पुष्ट है। शायद उसमें पिता-सी ज्ञान-पिपासा नहीं होगी ! उसके बैठने का ढंग और बात करने की रीति पिता से मिलती थी। रत्ने उसके पास खिसककर बोली—"आओ, मेरी गोद में सिर रखकर लेटे जाओ।" संकोचवश वह सिर झुकाये बैठा रहा। "संकोच मत करो। आओ, मैं भी तुम्हारी माँ" कहकर बाँहें पकड़कर उसके सिर को अपनी गोद में रख

लिया। उसके मुख को अपने दोनों हाथों में पकड़कर प्यार से पूछा—"बेटे, तेरे पिता ने दूर रहकर तेरी माँ ने बहुत दुख झेला। इसके लिए क्या तू मुझे कोसता है?"

"नहीं।"

"मेरे कारण ही तेरे पिता ने ऐसा किया।"

"लेकिन सुनता हूँ कि आपके कारण ही उन्होंने इतना किया है। चाचा-चाची ने मुझे सारी बातें बताई हैं।"

रत्ने का हृदय भर आया। पुन्नी को छाती से लगा लिया। दस मिनट अवर्णनीय आनंद में वह सांसारिक जगत् को भूल गयी।

पुन्नी वहाँ से निकला तो उसका हाथ पकड़कर बोली—"चाचा से कहना कि मैं घर आऊँगी। तू भी बार-बार मुझसे मिलने के लिए आया कर।" पुन्नी का संकोच थोड़ा कम हुआ। "अच्छा, मैं आया करूँगा" कहकर वह चल पड़ा। आँखों से ओझल होने तक वह एकटक उसे देखती रही। फिर भीतर गयी। आँखों में कल की नींद बाकी थी। फिर पलंग पर बिस्तर बिछाया और पड़ गयी। दस मिनिट में गहरी नींद आ गयी।

शाम को पाँच बजे उठी तो मन में फिर डरावनी बातें आने लगीं। उसे अतीत याद आ रहा था। मैं भी माँ बनती तो आज मेरे हृदय का वह सहारा होता। माँ बनने की आतुरता उसमें भी अंकुरित हुई थी। नदी पहाड़ी पर गयी थी तो वह अंकुर विशाल वृक्ष बन गया था। उस समय वह माँ बनती तो आज बच्चा आठ-नौ वर्ष का होता। उसके सुंदर मन को एक भावुक आसरा मिल रहा था। जीवन इतना भयानक प्रतीत न होता। लेकिन उसने अपने मातृत्व की महत्वाकांक्षा को दबा दिया था। अब उसे लग रहा था कि उसने बड़ी गलती की। रात के भोजन के पश्चात् मेटी सो नींद नहीं आई। इतने वर्षों से सदा कार्य में व्यस्त रहे मन को अब दिन काटना अस्वाभाविक-सा लगा। 'मैं माँ होती तो इतनी जल्दी प्रेम पूर्ण न होता। चतुर्थ खण्ड आधा होने तक ही वे इहलीला समाप्त कर देते। जिस उद्देश्य से हम एक हुए, उस ध्येय की संतान जन्म लेकर, पलकर, सुयश पा रही है। वे उसके पिता हैं और मैं माँ हूँ—जीवन का अर्थ समस्त: सृष्टि की परिपूर्णता ही नहीं है, कहकर उसने अपने-आपको समझाया।

रत्ने रात को पुनः टहलने निकली। लेकिन हर स्थान उसे अतीत की याद दिला रहा था। जैसे-जैसे वह अपनी पूर्व परिस्थिति से वर्तमान की तुलना करती, वैसे-वैसे वर्तमान खाई-सा दीख पड़ता। आध घण्टे में वह घर लौट आई। यहाँ कहाँ जिए? 'जिसके साथ जीने के लिए आई थी, वही नहीं रहा अब। जिस उद्देश्य से यहाँ आई थी, वह पूर्ण हो गया। इन दोनों के अतिरिक्त यहाँ मुझे किसी परिचय, किसी सामाजिक संबंध और विश्वास की आवश्यकता ही नहीं। उनके लिए मेरे पास समय भी नहीं था। अब मैं अकेली हूँ। यहाँ मेरे साथ कौन है? कौन है?' अनायास उसे अपना नगर याद आया। माता, पिता तो गये, लेकिन भाई तो होगा। भाई अब पचास का होगा। उसके बच्चे बड़े हो गये होंगे। वे मुझे पहचान नहीं पायेंगे। भाई के साथ पत्र-व्यवहार भी नहीं था। उसका मन भाई को याद कर रहा था। अपूर्व स्नेह-विश्वास के साथ भाई की याद आ रही थी। उन्हें स्थिति लिखने के विचार से मेज के सम्मुख बैठ एक पत्र लिखने लगी। पत्र अनजाने ही पाँच पृष्ठ का हो गया। पत्र की दीर्घता के साथ-साथ उसकी भावुकता भी बढ़ती जा रही थी। अंत में उसने लिखा—"जीवन के एक महान् ध्येय को मैंने पूर्ण कर लिया है। अब इस भयानक शून्य में सोच रही हूँ कि क्या आप लोगों का सामीप्य मिल सकेगा? आपका पत्र पाकर ही आऊँगी। वहीं किसी विश्वविद्यालय में अध्यापन करने लगूँगी।"

दो-तीन दिन से वह राज के घर जाने की सोच रही थी। लेकिन घर से बाहर जाने की इच्छा ही नहीं हुई। बिना बिस्तर बिछाये चुपचाप पड़ी रहती थी। चौथे दिन सुबह ग्यारह बजे राज स्वयं वहाँ आया। उसका चेहरा उतर गया था, हड्डियाँ दिखायी दे रही थीं।

"पृथ्वी कह रहा था कि आप घर आने वाली हैं। नहीं आईं? सोचा, कहीं तबीयत न बिगड़ गयी हो" राज ने कहा।

"बैठिए! मेरी तो चेतना ही लुप्त होती जा रही है। छह दिन पहले प्रकाशकों को टाइप प्रतियाँ भेज दी थीं। तीन दिन से आने की सोच रही हूँ, लेकिन पैर मानो उठते ही नहीं। मन के बोझ से पलंग पर पड़ी रहती हूँ। कात्यायनी कैसी है?"

"बस, है" कहते समय राज के चेहरे पर निराशा दिखायी पड़ रही

थी। "बोलती है। मैं एक मिनिट भी पास न रहूँ तो आँसू बहाने लगती है। रात को नींद में भी मेरी बाँहों को कसकर पकड़े रहती है। बुखार आने पर 'मुझे छोड़कर मत जाइए' कहकर बड़बड़ाती है।"

दोनों इसी विषय में धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। तत्पश्चात् रत्ने ने भाई को लिखे पत्र का उल्लेख कर कहा—"आप मेरी मनोदशा की कल्पना कर सकते हैं। अगर मेरा भाई जिन्दा है और मुझे आने के लिए लिखता है तो मैं यहाँ से चली जाऊँगी। सारी बातों पर मैंने सोच लिया है। बैंक में सात-आठ हजार रुपये होंगे। उन्हें नागलक्ष्मी के नाम कर दूँगी। पत्र में लिख चुकी हूँ कि रायल्टी के रूप में जो भी मिलना है, वह पृथ्वी को मिले। उस पत्र को प्रकाशकों के पास भेज दूँगी। इस घर में जो कुर्सी, मेज, बरतन आदि है, उन्हें आप ले जाइए। रागप्पा को एक हजार रुपये दे दूँगी—जहाँ जाना चाहता हो, चला जायेगा या उसे आप रख लीजियेगा। ग्रंथ, हस्तप्रतियाँ, टाइपराइटर आदि व्यवस्थित रूप से पैक कराकर मेरे पास भेज दीजिए। वे जीवित होते तो जो शोध-कार्य वे करते, उसे मैं वहीं रहकर आगे बढ़ाऊँगी और इस प्रकार शेष जीवन बिताऊँगी।"

"आप अपने भाई को देख आइए। लेकिन क्या हमारे साथ यहीं रहकर आप इन सब कार्यों को नहीं कर सकती?" राज यह प्रश्न पूछ ही रहा था कि घर के सामने एक टैक्सी के रुकने की आवाज आयी। रत्ने उठकर बाहर गयी। काला-सा, अधेड़ उम्र का, स्थूल शरीर का एक व्यक्ति भीतर आ रहा था। उसके हाथ में चमड़े का एक बैग था। रत्ने उसे पहचान न सकी। आगंतुक ने पास आकर जब सिंहली में पूछा—"मुझे पहचाना नहीं?" तो तुरन्त पास जाकर रत्ने ने उसका हाथ पकड़ लिया। आगंतुक उसका भाई था। "तेरा पत्र मिला था। मन न माना। विमान में तुरन्त जगह भी मिल गयी। निकल पड़ा। बंगलूर से मद्रास तक के लिए कल के दो टिकट रिजर्व करा चुका हूँ। मद्रास में हमारा जो प्रतिनिधि है, वहाँ से सर्टिफिकेट ले लेंगे कि तू सिंहल की है। पासपोर्ट में कठिनाई नहीं पड़ेगी। आज रात हमें यहाँ से रवाना हो जाना चाहिए।"

रत्ने ने राज से अपने भाई का परिचय कराने के पश्चात्—"ये हैं

मेरे देवर" कहकर राज का परिचय दिया। विमान से जाने के कारण रत्ले अपने साथ अधिक सामान नहीं ले जा सकती। रागप्पा अतिथि के लिए पुनः रसोई बनाने लगा। भाई को घर पर ही छोड़कर घर के सामने अभी तक खड़ी उसी टैक्सी में राज के साथ वह बैंक गयी। राज ने रत्ले की सलाह नहीं मानी। लेकिन केवल एक हजार रुपये अपने लिए लेकर शेष रुपयों को रत्ले ने नागलक्ष्मी के नाम कर दिये और उसी टैक्सी में बैठकर दोनों राज के घर गये।

कात्यायनी की स्थिति रत्ले की कल्पना की अपेक्षा अधिक गंभीर थी। शरीर की कांति का कहीं पता ही न था, शरीर सूखे चमड़े के समान दिखाई दे रहा था। फिर भी वह बोल रही थी। एक घण्टे से भी अधिक समय तक रत्ले उससे बोलती रही। फिर भीतर गयी। वहाँ नागलक्ष्मी के सामने खड़ी होकर बोली—"अब जीवन में हम दोनों दुःखी हैं। मेरी कोई गलती हुई हो, तो मुझे क्षमा कर दीजिए।" नागलक्ष्मी समझ न सकी कि क्या कहा जाय। वह अपने आँसू पोंछने लगी।

एक हजार रुपये रत्ले ने रागप्पा के हाथ में रख दिये तो उसका हृदय कृतज्ञता से भर गया। पड़ोस के प्रोफेसर एवं उनके घरवालों से मिलकर रवाना होते समय तक राज टैक्सी से आ पहुँचा। पृथ्वी भी साथ था।

टैक्सी छूटने से पहले राज ने रत्ले से कहा—"बीच में कभी कम-से-कम एक बार यहाँ आना न भूलें।" पृथ्वी को अपनी गोद में लेकर उसका ललाट चूमकर रत्ले ने कहा—"विज्ञान के विद्यार्थी होते हुए भी कम-से-कम एक बार अपने पिता के ग्रंथों को अवश्य पढ़ना।"

टैक्सी छूटी तो रत्ले भी आँसू पोंछ रही थी। राज भी आँखें पोंछ रहा था। पृथ्वी मूक-सा देखता रहा। प्लेटफार्म से बाहर आने के पश्चात् राज का मन रत्ले के आने के बाद के बीस वर्षों की घटनाओं का अवलोकन कर रहा था।

२६

किट्टप्पा श्रोत्रिय के वंशजों का कोई समाचार प्राप्त नहीं हुआ। श्रोत्रिय-जी ने उन्हें ढूंढने की कोशिश छोड़ दी। उन्हें एक विचार सूझा। किन्तु उसके विषय में निर्णय लेने में आठ दिन लग गये। पहले लक्ष्मी से इस बारे में बात की। "यह तुम्हारा महान् पागलपन है, श्रीनप्पा। दुनिया में तुम्हारी तरह कोई नहीं नाचता।"—उसने क्रोध करते हुए कहा। श्रोत्रियजी ने कहा—धर्म का सूत्र अत्यंत सूक्ष्म है, लक्ष्मी। लोकाचार के अनुसरण से नही जाना जा सकता!" लेकिन लक्ष्मी का क्रोध शांत नही हुआ।

एक रविवार को दोपहर में ऊपर अध्ययन-कक्ष में वे चीनी को वेद-पाठ करा रहे थे। उन्होंने कहा —"बेटे, तुमने कई बार पूछा कि मुझे कौन-सी चिंता सता रही है। आज मैंने उसका निवारण कर लिया है। वह धर्म की सूक्ष्मता से संबंधित है। तुम्हारे मनःपूर्वक स्वीकार किये बिना मैं कुछ नही करूँगा।"

"आपकी कौन-सी बात को मैंने अस्वीकार किया है, दादाजी? विषय तो बताइए।"

श्रोत्रियजी पहले तो बताने में कुछ झिझके, लेकिन आखिर अपने जन्मसंबंधी सारी बातें कह दीं। चीनी स्तब्ध था। श्रोत्रियजी बोले—"देखो, पहले मैंने सोचा था कि एडतोरे में या और कहीं किट्टप्पा श्रोत्रिय के वंशज मिल जाय, तो आधी जायदाद उसे दे देनी चाहिए। लगता है कि इस संपत्ति में से पीतल की एक थाली पर भी मेरा अधिकार नही। जिसके रक्त से मैं जन्मा नहीं, उनकी संपत्ति का उपभोग करने का मुझे क्या अधिकार है? मैं स्वयं पराये नीड़ पर अनधिकार जताने की चेष्टा कर रहा हूँ। तुम मेरे पौत्र हो, अतः तुम भी उस नीड़ के उतने ही अन-धिकारी हो। हम श्रोत्रिय वंशीय नहीं हैं। ब्रह्मोपदेश के लिए गोत्र चाहिए। काश्यप गोत्र से हमारा ब्रह्मोपदेश हुआ था। उसे बड़े श्रद्धा-भाव से स्वी-कार कर हमने निभाया है। शास्त्रीय दृष्टि से हम काश्यप गोत्र की श्री-वृद्धि कर सकते हैं। किट्टप्पा श्रोत्रिय के वंशज न मिलने के कारण इस जमीन-जायदाद को किसी सत्पात्र को दान करना ही एकमात्र उपाय

बचा है।"

चीनी दो मिनिट सोचता रहा। सारी संपत्ति दान कर देने पर अपनी स्थिति क्या होगी ? उसने इसका अंदाज लगाया। लेकिन दादा यह चाहते हैं ! धर्म की सूक्ष्मता के प्रति विश्वास जागा और उसने कहा, "आप ठीक कह रहे हैं। मैं वह जायदाद त्यागने के लिए तैयार हूँ, जो हमारी नहीं है। कहीं नौकरी लग जाय तो हम तीनों का गुजारा हो सकता है।"

चीनी के उत्तर से दादा को खुशी हुई। "यह बात वेदाभ्यासी व्यक्ति के लिए उपयुक्त ही है। वह संपत्ति उसी समय त्यज देनी चाहिए, जब पता लगे कि हम इसके उपभोग के अधिकारी नहीं हैं। अन्यथा हमारी परंपरा में कोई-न-कोई उसे अधर्म से खो बैठेगा। ऐसी संपत्ति खो देना अनिष्टकारी नहीं है, लेकिन खोते समय ऐसी सम्पत्ति के अधिकारी अधर्म-पथ की ओर बढ़ते हैं। पाप-संचय से बढ़कर कोई हानि नहीं है। अब भी मैं यह मानता हूँ कि हमारे पाप-पुण्य हमारी भावी पीढ़ी में से किसी एक पीढ़ी के सिर दृष्टिगोचर होते हैं। खैर, यह बात भुला दो, दूसरी बात सुनो।"

उन्होंने अपने जीवन का अंतिम संकल्प बताया—"तुम्हारे पिता का विवाह हो जाने के बाद मैंने निवृत्त जीवन बिताना प्रारंभ कर दिया था। लेकिन उसकी मौत से पुनः प्रवृत्त होना पड़ा। संन्यास लेने की इच्छा गत सात-आठ वर्षों से मन-ही-मन पनप रही है। अब मेरे जन्म संबंधी जानकारी के पश्चात् यह इच्छा बलवती हो उठी है। वंश की उज्ज्वल परंपरा के लिए मनुष्य को संघर्ष करना चाहिए—मेरा यह विचार मेरे लिए निरर्थक है। फिर भी इसके प्रति मुझे गर्व है। मैं पचहत्तर का हो गया हूँ। तुम अठारह के हो। मेरे निवृत्त होने में तुम्हें असहमत नहीं होना चाहिए !"

चीनी की आँखों में आँसू भर आये। "दादाजी, आपकी पहली राय मैंने तुरन्त स्वीकार कर ली। लेकिन अब आप तो मुझे ही छोड़कर जाने की बात कह रहे हैं ! इस सम्पत्ति के प्रति आपको घृणा होना स्वाभाविक है, लेकिन मुझ से दूर क्यों ?"

"तुम से कोई शिकायत नहीं, बेटे। इतने दिनों तक मैंने गृहस्थ जीवन

२६

किट्टप्पा श्रोत्रिय के वंशजों का कोई समाचार प्राप्त नहीं हुआ। श्रोत्रियजी ने उन्हें ढूंढने की कोशिश छोड़ दी। उन्हें एक विचार सूझा। किन्तु उसके विषय में निर्णय लेने में आठ दिन लग गये। पहले लक्ष्मी से इस बारे में बात की। "यह तुम्हारा महान् पागलपन है, श्रीनप्पा। दुनिया में तुम्हारी तरह कोई नहीं नाचता।"—उसने क्रोध करते हुए कहा। श्रोत्रियजी ने कहा—धर्म का सूत्र अत्यंत सूक्ष्म है, लक्ष्मी। लोकाचार के अनुसरण से नहीं जाना जा सकता!" लेकिन लक्ष्मी का क्रोध शांत नहीं हुआ।

एक रविवार को दोपहर में ऊपर अध्ययन-कक्ष में वे चीनी को वेद-पाठ करा रहे थे। उन्होंने कहा—"बेटे, तुमने कई बार पूछा कि मुझे कौन-सी चिंता सता रही है। आज मैंने उसका निवारण कर लिया है। वह धर्म की सूक्ष्मता से संबंधित है। तुम्हारे मनःपूर्वक स्वीकार किये बिना मैं कुछ नहीं करूँगा।"

"आपकी कौन-सी बात को मैंने अस्वीकार किया है, दादाजी? विषय तो बताइए।"

श्रोत्रियजी पहले तो बताने में कुछ झिझके, लेकिन आखिर अपने जन्मसंबंधी सारी बातें कह दी। चीनी स्तब्ध था। श्रोत्रियजी बोले—"देखो, पहले मैंने सोचा था कि एडतोरे में या और कहीं किट्टप्पा श्रोत्रिय के वंशज मिल जाय, तो आधी जायदाद उसे दे देनी चाहिए। लगता है कि इस संपत्ति में से पीतल की एक थाली पर भी मेरा अधिकार नहीं। जिसके रक्त से मैं जन्मा नहीं, उनकी संपत्ति का उपभोग करने का मुझे क्या अधिकार है? मैं स्वयं पराये नीड़ पर अनधिकार जताने की चेष्टा कर रहा हूँ। तुम मेरे पौत्र हो, अतः तुम भी उस नीड़ के उतने ही अन-धिकारी हो। हम श्रोत्रिय वंशीय नहीं हैं। ब्रह्मोपदेश के लिए गोत्र चाहिए। काश्यप गोत्र से हमारा ब्रह्मोपदेश हुआ था। उसे बड़े श्रद्धा-भाव से स्वीकार कर हमने निभाया है। शास्त्रीय दृष्टि से हम काश्यप गोत्र की श्री-वृद्धि कर सकते हैं। किट्टप्पा श्रोत्रिय के वंशज न मिलने के कारण इस जमीन-जायदाद को किसी सत्पात्र को दान करना ही एकमात्र उपाय

बचा है।"

चीनी दो मिनिट सोचता रहा। सारी संपत्ति दान कर देने पर अपनी स्थिति क्या होगी ? उसने इसका अंदाज लगाया। लेकिन दादा यह चाहते हैं ! धर्म की सूक्ष्मता के प्रति विश्वास जागा और उसने कहा, "आप ठीक कह रहे हैं। मैं वह जायदाद त्यागने के लिए तैयार हूँ, जो हमारी नहीं है। कहीं नौकरी लग जाय तो हम तीनों का गुजारा हो सकता है।"

चीनी के उत्तर से दादा को खुशी हुई। "यह बात वेदाभ्यासी व्यक्ति के लिए उपयुक्त ही है। वह संपत्ति उसी समय त्यज देनी चाहिए, जब पता लगे कि हम इसके उपभोग के अधिकारी नहीं हैं। अन्यथा हमारी परंपरा में कोई-न-कोई उसे अधर्म से खो बैठेगा। ऐसी संपत्ति खो देना अनिष्टकारी नहीं है, लेकिन खोते समय ऐसी सम्पत्ति के अधिकारी अधर्म-पथ की ओर बढ़ते हैं। पाप-संचय से बढ़कर कोई हानि नहीं है। अब भी मैं यह मानता हूँ कि हमारे पाप-पुण्य हमारी भावी पीढ़ी में से किसी एक पीढ़ी के सिर दृष्टिगोचर होते हैं। खैर, यह बात भुला दो, दूसरी बात सुनो।"

उन्होंने अपने जीवन का अंतिम संकल्प बताया—"तुम्हारे पिता का विवाह हो जाने के बाद मैंने निवृत्त जीवन बिताना प्रारंभ कर दिया था। लेकिन उसकी मौत से पुनः प्रवृत्त होना पड़ा। संन्यास लेने की इच्छा गत सात-आठ वर्षों से मन-ही-मन पनप रही है। अब मेरे जन्म संबंधी जानकारी के पश्चात् यह इच्छा बलवती हो उठी है। वंश की उज्ज्वल परंपरा के लिए मनुष्य को संघर्ष करना चाहिए—मेरा यह विचार मेरे लिए निरर्थक है। फिर भी इसके प्रति मुझे गर्व है। मैं पचहत्तर का हो गया हूँ। तुम अठारह के हो। मेरे निवृत्त होने में तुम्हें असहमत नहीं होना चाहिए !"

चीनी की आँखों में आँसू भर आये। "दादाजी, आपकी पहली राय ा तुरन्त स्वीकार कर ली। लेकिन अब आप तो मुझे ही छोड़कर जाने को ात कह रहे हैं ! इस सम्पत्ति के प्रति आपको घृणा होना स्वाभाविक है, ाकिन मुझ से दूर क्यों ?"

"तुम से कोई शिकायत नहीं, बेटे। इतने दिनों तक मैंने गृहस्थ जीवन

बिताया है। अंतिम दिनों में उससे पूर्णतः निवृत्त होकर सदा परमब्रह्म के चिंतन में मग्न हो जाना चाहता हूँ। अपने घटते जीवन की स्थिति समझकर, अपने ध्येय, दृष्टि एवं जीवन-विधान को उसके अनुकूल न बनाना ही पाप है। संन्यास योग्य आयु हुए काफी दिन बीत गये। सांसारिक जीवन का कर्त्तव्य भी पूरा हो रहा है। केवल तुम्हारी ही स्वीकृति बाकी है। अगर अपने जीवन के बारे में न जानता, तो भी मैं संन्यास लेने वाला ही था।"

चीनी निरुत्तर था। उसकी बुद्धि तो दादा की बातें ग्रहण कर रही थी, लेकिन अन्तःकरण नहीं। चिंतातुर मन से वह बैठा था। श्रोत्रियजी ने अपनी बात आगे बढ़ायी—"तुम्हारे प्रति मेरा कर्त्तव्य अभी पूर्ण नहीं हुआ है। पहले अच्छे कुल मे जन्मी कन्या से तुम्हारा विवाह कर, तुम्हें गृहस्थाश्रम मे प्रविष्ट करा दूँ। इस साल तुम्हारी इंटरमीडिएट की परीक्षा है। अब दो वर्षों की पढ़ाई और जीवन-यापन के लिए लगभग पाँच हजार रुपये बैंक मे रख लो। यह रकम श्रोत्रिय-वंश की है, लेकिन आज तक मैंने इसकी रखवाली की है, उसके लिए श्रम किया है। दो वर्ष और पढ़ने के पश्चात्, तुम्हारा पत्नी के साथ धर्मपूर्ण गृहस्थ जीवन बिताना ही मुझे तुमसे मिलने वाला ऋण है। हेग्गिजे के पास लक्ष्मी के नाम पर दो एकड़ जमीन है। वह उसी की है। वह जब तक जिंदा है, उसकी देखभाल करना तुम्हारा काम है। मरने से पहले, वह अपनी इच्छानुसार धर्म के लिए उस खेत का उपयोग करना चाहती हो, तो करे।"

पौत्र सुनता रहा। 'इतने दिनों से तुमने मुझसे वेदपाठ सीखा है। तुम शांत चित्त से विचार करो। जल्दबाजी की आवश्यकता नहीं" कहकर श्रोत्रियजी ने अपनी बात समाप्त की।

एक दिन चीनी ने उन ग्रन्थों को देखा जिन्हें श्रोत्रियजी आजकल पढ़ा करते थे। वे अब संन्यासोपनिषद्, वैखानससूत्र, धर्मसिन्धु, जीवन्मुक्ति-विवेक आदि ग्रन्थों का मनन करते थे। कई पृष्ठों में संकेत के लिए मोर-पंख रख दिया करते थे। कुछ श्लोकों पर स्याही से निशान लगाये थे। चीनी ने देखा। बृहदारण्यक उपनिषद् को लेकर लिखे गये शाकर-भाष्य के एक पृष्ठ पर मोरपंख रखा था। निशान लगा श्लोक था—"अथ परि-

व्राड् विवर्ण वासा मुंडोऽपरिग्रहः। शुचिर द्रोही भैक्षाणो ब्रह्म भूयाय भवतीनि ॥"

चीनी इन समस्त श्लोकों का अर्थ अच्छी तरह समझता था। एक जगह लिखा था—"संन्यासी बनने की क्षमता पाने के लिए प्रजापति यज्ञ करके, अपनी समस्त संपत्ति ब्राह्मणों, गरीबों एवं असहायों को दान करनी चाहिए।" और एक स्थान पर था—"पत्नी-बच्चों को त्याग देने के पश्चात् उसे गाँव के बाहर ही रहना चाहिए। गृहहीन होकर पेड़ों के नीचे या निर्जन घरों में अथवा सूर्यास्त के समय जहाँ हो, वहीं रहना चाहिए। वर्षा ऋतु में किसी एक ही स्थान पर रह सकता है।" पचहत्तर वर्ष के दादा का गृहहीन हो, पेड़ों के नीचे असहाय-सा जीवन बिताने का चित्र चीनी के सम्मुख आता तो निःश्वास छूट पड़ती।

"संन्यासी को अनिश्चित किन्हीं सात घरों से ही भिक्षा लेनी चाहिए। अन्न-दान देते समय उसके हाथ धुलाने चाहिए और फिर अन्न-दान करना चाहिए। तत्पश्चात् पुनः हाथ धुलाने चाहिए।" "उसे पेटभर कभी खाना नहीं चाहिए। उतना ही खाना चाहिए जिससे वह जी सके। जिस दिन अन्न मिले, खुश न हो और जिस दिन कुछ न मिले, निराश न हो।" "उसके पास केवल एक कमण्डल, शरीर पोंछने के लिए एक गमछा, पादुका, आसन और एक कंबल ही होना चाहिए।"

अगला पृष्ठ पढ़ते-पढ़ते चीनी का मन कातर हो उठा। "संन्यासी को ऊँचे भूभाग में सोना चाहिए। बीमार पड़े तो चिंतित न हो। न मृत्यु का स्वागत करे और न ही जीवन से प्यार। जिस तरह सेवक अपनी दास्या-वधि की समाप्ति की प्रतीक्षा करता है, उसी तरह संन्यासी अंतिम दिन का इन्तजार करे।"

महाभारत के अनुशासन पर्व के एक भाग पर श्रोत्रियजी ने निशान लगाया था। वहाँ कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस—चार प्रकार के संन्यास वर्णित थे। परमहंसों के लक्षण का विवरण देनेवाले श्लोकों पर श्रोत्रियजी ने निशान लगाया था—"परमहंस पेड़ के नीचे या निर्जन घर में अथवा श्मशान में रहते हैं। वे कपड़ा पहन सकते हैं और नग्न भी रह सकते हैं। धर्माधर्म, सत्यासत्य, शुद्धाशुद्ध द्वंद्वों से वे परे हैं। सोना, मिट्टी आदि को वे आत्मा मानते हैं। सभी वर्णों से भिक्षा स्वीकार करते हैं।

शास्त्रोक्त नियम उन पर लागू नहीं होते।"

दादाजी जीवन के जिस पथ को अपनाकर चलना चाहते हैं, उसके नियमों को पढ़कर चीनी को असह्य वेदना होती थी। उसने भी संन्यासाश्रम के बारे में काफी पढ़ा है। आश्रम के ध्येयोद्देश्यों एवं जीवन-विधान के बारे में वह पूर्ण अनभिज्ञ नहीं था। लेकिन इस कल्पना मात्र से ही उसका हृदय तड़प उठता कि जिसने उसे पाला-पोसा है, उस दादाजी को इस कठिन पथ पर चलना पड़ेगा। इसकी चिंता नहीं थी कि वे छोड़ जायेंगे तो अपना क्या होगा! दुःख था तो यह कि वे इस उम्र में ऐसा जीवन बिताना चाह रहे हैं!

एक दिन घर के पिछवाड़े मोगरे की लता के पास बैठकर चीनी लक्ष्मी को सन्यासी-जीवन का वर्णन सविस्तार बताकर बोला—"तुम ही इन्हे रोको, मना करो। मैं कहीं नौकरी पर लग जाऊँ तो हम तीनों सुख से रह सकते है।"

वर्णन सुनकर लक्ष्मी व्याकुल हो उठी। वह सोचने लगी : 'मुझे अपने साथ ले जायें तो मैं उनकी सेवा करूँगी। लेकिन वे अकेले ही जा रहे हैं। वे देव तुल्य हैं। अपने जीवन में कभी पाप-कर्म नहीं किया। अब तक अर्जित पुण्य क्या काफी नही है? फिर इसकी क्या आवश्यकता है?' वह चिंतित होने लगी—'वे सब-कुछ जानते हैं। उन्हें उपदेश देने की क्षमता हममें नहीं है, किन्तु मन नही मानता।'

चीनी कालेज जाता और शाम को घर लौटता था। श्रोत्रियजी अब भी स्वय रसोई बनाते थे। चीनी को काम नही करने देते। रोज रात के भोजन के पश्चात् चीनी को धर्मशास्त्रों के बारे में बताते थे। अनेक ऋषियों, ब्रह्मर्षियों एवं पुराणों से पात्रो के जीवन से सम्बन्धित उदाहरण दिया करते थे। अनेक संस्कृत ग्रंथों को उठाकर कहते—"इन्हें भविष्य में अवश्य पढ़ना।" उनके सम्मुख बैठा चीनी उनकी विश्वासजन्य निःसृत ध्वनि सुनकर उनका अभिमत स्वीकार करता था। लेकिन घर से कालेज के लिए निकलने के बाद, उन लोगों को छोड़ने वाले दादा के बारे में सोचकर उसके अन्त.करण में असह्य वेदना होती थी।

श्रोत्रियजी अपनी जमीन-जायदाद दान करके संन्यास ग्रहण करने वाले

हैं—यह समाचार सारे नंजनगूडु में फैल गया। उनके हितैषियों ने आकर पूछा—"क्या बात है जो ऐसा निश्चय किया है?" श्रोत्रियजी सरल-सा उत्तर देते—"उम्र हो गई है। संन्यास स्वीकार करना मेरा धर्म है, बस! पौत्र कह रहा है कि यह जायदाद उसे नहीं चाहिए, इसलिए दान कर रहा हूँ।" अनेक उनके सामने आकर ऐसी बातें करते, मानो वे ही दान स्वीकार करने के सत्पात्र हैं। श्रोत्रियजी के घर मे एक-न-एक व्यक्ति रहता ही था। दादा के अन्तिम निर्णय में पौत्र को कोई शंका नहीं रह गयी थी। उसने सोचा कि उनके भावी जीवन के सार्थक्य में अपने मोह द्वारा बाधा डालने का प्रयत्न करना अधर्म है। श्रोत्रियजी लक्ष्मी को भी धर्म की सूक्ष्मता समझा रहे थे।

चैत्र मास के किसी शुभ दिन श्रोत्रियजी ने अनंतराम मास्टर को बुलाने के लिए चीनी को ही भेजा। मास्टर चामराज नगर में रहते थे। अब करीब दस वर्षों से नंजनगूडु में ही रहने लगे हैं। तीन-चार वर्ष से नंजनगूडु स्थित माध्यमिक पाठशाला में नौकरी कर रहे हैं। उच्चाधिकारियों से मिलकर पास के किसी गाँव में तबादला करवा लेते थे। एक-दो वर्ष नंजनगूडु में रहते। फिर अन्यत्र नौकरी कर पुनः नंजनगूडु में तबादला करवा लेते। अब पचास की उम्र है। निवृत्त होने में पाँच वर्ष बाकी हैं। नंजनगूडु में एक घर बँधवा लिया है। हुल्लहल्लि में तीन एकड़ जमीन खरीद ली है। मास्टर से श्रोत्रियजी का परिचय होने का एक विशेष कारण था। मास्टर को संस्कृत का कुछ हद तक ज्ञान था। वे सात्विक एवं कर्मनिष्ठ थे। धर्मशास्त्र एवं दर्शन के संबंध में जब कभी कोई शंका उठती तो उसके निवारण के लिए श्रोत्रियजी के पास आते थे। उनकी कर्मशीलता एवं सात्विक जीवन को देखकर श्रोत्रियजी अपने यहाँ के श्राद्ध आदि कार्यक्रमों में पूर्वपंक्ति के लिए उन्हें आमंत्रित करते थे।

रात्रि को आठ बजे मास्टर घर आये। श्रोत्रियजी ने उनका स्वागत किया। पौत्र से बोले—"चीनी, हम अभी टहलकर आते हैं।" दोनों निकल पड़े। दोनों धीरे-धीरे चल रहे थे। मंदिर के सामने से होते हुए नदी के स्नान-घाट पर बैठ गये। श्रोत्रियजी का निर्णय, मास्टर को मालूम था। उन्होंने भी संन्यास न लेने का निवेदन किया था। धर्मशास्त्रानुसार वे श्रोत्रियजी से सहमत थे। लेकिन यह समझ में नहीं आ रहा था कि

आखिर श्रोत्रियजी जायदाद क्यों दान करना चाहते हैं ?

दो मिनिट मौन बैठे रहने के बाद श्रोत्रियजी ने बात प्रारंभ की—"जायदाद दान करने का कारण चीनी और लक्ष्मी के अतिरिक्त और किसी को मालूम नहीं। आज आपको सुनाता हूँ। आपको बताने की आवश्यकता नहीं थी, लेकिन मुझे आपसे एक बड़ी सहायता चाहिए।"

"मुझ से सहायता ? बहुत बड़ी बात हुई ! आपका ऐसा कहना मुझे नहीं भाता।" मास्टर ने ऐसा कहकर हाथ जोड़ दिये।

"वास्तविकता सुनिए"—उन्होंने कहा। फिर अपने जन्म की बात, किट्टप्पा श्रोत्रिय की पीढ़ी को ढूंढ़ने के लिए किये गये प्रयत्न, हाल ही का अपना निर्णय आदि सविस्तार सुनाया। शांत चित्त से सुनते रहने के बाद अंत में मास्टर ने कहा, "इस युग में धर्मसूत्र का इतनी सूक्ष्मता से मनन कर, अनुगमन करने वालों का नाम मैंने नहीं सुना है। आपके निर्णय को गलत कहने की शक्ति मुझमें नहीं है।"

"मेरी एक और आकांक्षा है जो आपको बताना चाहता हूँ। पौत्र को गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट कराये बिना मैं नहीं जाऊँगा। आप हर तरह से मेरे विश्वासपात्र हैं। आपकी छोटी बेटी बारह-तेरह साल की है न ? विशाल हृदय से सोचकर, मेरे पौत्र से विवाह कर दीजिए। उसने इस वर्ष इंटर-मीडिएट की परीक्षा दी है। उसके भविष्य के विद्याभ्यास के लिए पाँच हजार रुपये छोड़ रहा हूँ। कभी-कभी सोचता हूँ, श्रोत्रिय वंश की संपत्ति से पाँच हजार रुपये क्यों दूं ? लेकिन उसके लिए इतना भी न छोड़ूं तो लगेगा कि श्रोत्रिय की जायदाद को मैंने तिरस्कार की दृष्टि से देखा है। इस तुच्छ भाव को मैं क्यों स्थान दूं ? इसके अतिरिक्त धर्म के नाम पर चीनी को मझधार में छोड़ देना भी अधर्म ही है। वह बी० एस-सी० हुआ तो बस ! इससे मेरे मन को सांत्वना मिलेगी। यह आपकी जिम्मेदारी होगी कि दामाद को सत्पथ पर आगे बढ़ाकर बी० एस-सी० करा दें। मैंने आपसे कोई बात छिपाई नहीं है।"

मास्टर दस मिनिट सोचते रहे। फिर पूछा—"आपका काश्यप गोत्र है न ?"

"कह दिया न कि हम श्रोत्रिय वंश के तो है नहीं। काश्यप गोत्र से हमारा ब्रह्मोपदेश हुआ है।"

"उठिए देर हो रही है—पर चलें। मैं सहमत हूँ। दादा के संस्कार एवं गुण पौत्र में भी है। ऐसे दामाद का मिलना मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। घर में एक बार पूछ लूं।" कहकर वे चलने के लिए उठे। श्रोत्रियजी को शांति मिली।

दूसरे दिन सुबह मास्टर श्रोत्रियजी के घर आये। अपनी बेटी एवं चीनी की जन्म-कुण्डलियाँ देखीं। दोनों अच्छी तरह मिल रही थीं। उन्होंने चीनी से पूछा—"बेटे, तुमने मेरी बेटी लता को देखा है?" उसे संदर्भ की जानकारी नहीं थी। उसने 'हूँ' कह दिया। "तुम्हारे दादाजी कहते हैं कि तुम उससे विवाह कर लो! हमें खुशी है, अगर तुम्हें यह मंजूर हो!" श्रोत्रियजी वहीं थे। चीनी शरमा गया।

लता तेरह वर्ष की सुन्दर लड़की है। हाईस्कूल में पढ़ रही है। आज के युग को दृष्टि से अभी छोटी है। लेकिन दोनों में काफी साम्य है। श्रोत्रियजी ने कहा कि विवाह हो जाने पर भी चीनी के बी० एस-सी० होने तक गौना न किया जाय। इस बीच लड़की की स्कूली शिक्षा भी समाप्त हो जायेगी। वैशाख शुद्ध के एक शुभ मुहूर्त में चीनी लता का विवाह श्रोत्रियजी की इच्छा के अनुसार श्रीकण्ठेश्वर मंदिर में सादे ढंग से सम्पन्न हुआ। चीनी गृहस्थ बन गया।

श्रोत्रियजी ने एक बार अपने खेतों में काम करने वाले किसानों की स्थिति की पूरी-पूरी पूछताछ की। उनमें से पचहत्तर प्रतिशत लोग अत्यंत गरीब थे। अधिक संख्या में वे लोग थे जिनकी जमीनें ऋण में चली गयी थीं और उनके बाल-बच्चों को खाने के लिए अब अन्न नहीं मिलता था। श्रोत्रियजी ने सोचा, इनसे बढ़कर दान के लिए और कौन सत्पात्र होंगे? उन्होंने जब किसानों से कहा कि वे खेत जोतने वाले किसानों को दान देकर संन्यास ले रहे हैं, तो किसान उनके चरणों पर पड़कर बोले—"महाराज, भगवान् तुल्य, आपकी कोई जमीन हमें नहीं चाहिए। आप मालिक बनकर रहिए। यथाशक्ति परिश्रम करके, आपको उपज देकर हम भी जियेंगे।" उन सब को यथायोग्य सात्वना दे, वे गाँव लौटे। चीनी को पास बैठाकर जमीनें किसानों के नाम लिख दीं। शेष छह एकड़ जमीन मैसूर के अनाथालय को सौंप देने का निर्णय किया। यह भी निर्णय किया कि उनका घर यात्रियों के लिए धर्मशाला बने। यह सब एक वकील

से लिखवाया। शुभ दिन कागज-पत्रों पर पौत्र एवं स्वयं ने हस्ताक्षर किये। सब-रजिस्ट्रार के कार्यालय में जाकर रजिस्ट्री कराकर घर लौटे, तो श्रोत्रियजी के मन का भार हलका हुआ। भार से मुक्ति पाकर उन्होंने संतोष की सांस ली।

अब अपने प्रस्थान का दिन निश्चित करना था। संन्यास ग्रहण करने के लिए गुरु चाहिए। यह निश्चित नहीं हो पाया था कि यह कार्यक्रम कहाँ हो। श्रोत्रियजी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि किसी शुभ दिन इस गाँव को छोड़कर हरिद्वार या बद्रीनाथ चले जाना चाहिए। योग्य गुरु की खोज कर विधिवत् इस गृहस्थाश्रम को त्याग देना चाहिए।

अनन्तराम मास्टर की पाँच संतानें थीं—तीन बेटियाँ और दो बेटे। बड़ी बेटियों की शादी कर दी गयी थी। बड़ा बेटा चीनी के बराबर का था। यह भी रोज कालेज में पढ़ने के लिए मैसूर जाता था। द्वितीय पुत्र अगले वर्ष हाईस्कूल की परीक्षा देगा। मास्टर ने श्रोत्रियजी से कहा—"आप चिंता न करें। दामाद पुत्र के समान होता है। श्रीनिवास और मेरे ज्येष्ठ पुत्र एक साथ कालेज जायेंगे। परीक्षा पास कर नौकरी पर लगने तक वह और लक्ष्मी हमारे ही घर रहेंगे। हम ख्याल रखेंगे कि दोनों को कष्ट न हो।"

श्रोत्रियजी ने भी सलाह मान ली। सोना-चाँदी बेच दिया। उससे प्राप्त रकम मंदिर को दान कर दी। घर के बर्तन-भांडे भी मंदिर को ही दिये।

श्रोत्रियजी अपने पास के संस्कृत ग्रंथों को चीनी को सौंपकर बोले—"बेटे, ये तुम्हें अपने दादा से प्राप्त अमूल्य निधि है। आज तक, जितना मुझसे बन पड़ा, मैंने तुम्हें शिक्षा दी है। भविष्य में स्वाध्याय एवं दूसरों से सीखकर, ज्ञान-वृद्धि करना। कल इस घर को छोड़ देंगे। आज रात ही इन समस्त ग्रंथों को अपने ससुर के घर पहुँचा दो।"

निश्चय हुआ कि जेष्ठ शुद्ध पंचमी के दिन श्रोत्रियजी नंजनगूडु त्याग देंगे। मन कठोर बना लेने पर भी चीनी एवं लक्ष्मी के लिए यह असह्य था। लक्ष्मी ने श्रीनप्पा के सामने न रोने का निश्चय कर लिया था। चीनी भी प्रयत्न कर रहा था कि दादा के अंतिम प्रयाण के पूर्व आँसू बहाकर उनके मन को खिन्न न बनाऊँ। लेकिन लक्ष्मी-चीनी परस्पर एक-दूसरे

से मिलते तो आँसू बह पड़ते। श्रोत्रियजी शांत चित्त से अपने प्रयाण के दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे। नंजनगूडु के अनेक लोगों ने उनसे निवेदन किया था कि गाँव छोड़ने से पहले उसके घर आकर तांबूल स्वीकार कर आशीष दें। गाँव के किसान उन्हें अपने घर बुलाकर फल-फूल स्वीकार करने का आग्रह करते। ले जाने के लिए बैलगाड़ियाँ लाते। श्रोत्रियजी सबके आमंत्रण को मुस्कराकर स्वीकार करते।

जिस दिन वे गृह त्यागने वाले थे, वधू पक्ष के घर में मिष्टान्न का भोजन हुआ। पहने हुए कपड़ों के अतिरिक्त दो धोतियाँ, एक छोटा-सा पात्र, सबको एक गमछे में बाँधकर, बाँस की एक लकड़ी में लगाकर हरिद्वार तक राह-खर्च के लिए सौ रुपये लेकर वधू पक्ष के घर से रवाना हुए तो अनन्तराम मास्टर की पत्नी, बच्चे एवं चीनी की पत्नी—सबके सब जोर-जोर से रोने लगे। सबको आशीर्वाद देकर श्रोत्रियजी घर से निकल पड़े। उस दिन सुबह से ही जेष्ठ की बूँदें पड़ने लगी थीं। शाम को पाँच बजे रेलवे स्टेशन पहुँचे तो इस वर्षा में भी लोगों की बड़ी-सी भीड़ जमी थी। इस असंख्य जनसमूह ने श्रोत्रियजी को घेर लिया। हर एक व्यक्ति जमीन पर झुककर श्रोत्रियजी को प्रणाम करने लगा। रेलवे प्लेटफार्म पर आकर श्रोत्रियजी के गाड़ी में चढ़ने के पूर्व उनके चरणों को स्पर्श कर नमस्कार करते हुए मास्टर ने कहा—"आप मेरे गुरु थे। अंत में जिम्मेदारी भी सौंपी है। सम्बन्ध जोड़कर मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाई है। आपने जो जिम्मेदारी सौंपी है, उसे हर तरह से निभाने का प्रयत्न करूँगा। आशीर्वाद दीजिए।"

चीनी, लक्ष्मी, ललिता तीनों ने जमीन पर सिर नवाकर प्रणाम किया। मन-ही-मन 'असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा-अमृतं गमय। ओम् शांतिः शांतिः शांतिः' उच्चार कर श्रोत्रियजी गाड़ी में बैठ गये। गाड़ी चल पड़ी तो जनसमूह ने 'हर-हर महादेव' का जयघोष किया। दादा जब गाड़ी से अदृश्य हुए तो चीनी की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह पास खड़ी लक्ष्मी को पकड़कर वहीं जमीन पर बैठ गया। मास्टर ने घबड़ाकर उसे पकड़ लिया।

रेल दलवाई पुल पर पहुँचने तक जोर से वर्षा होने लगी थी। श्रोत्रियजी

ने खिड़की से नदी की ओर देखा। दोनों किनारों पर खड़े पेड़ों के बीच नदी बह रही थी। बचपन से आज तक उन्होंने इस नदी में स्नान किया था। कई बार इसके तट पर बैठकर अपनी थकान दूर की थी। इसी नदी ने उनके पुत्र को अपने में आत्मसात् कर लिया था। लेकिन इसी नदी के पानी से उत्पन्न अन्न वे आज तक खाते रहे हैं। श्रोत्रियजी को अपने जीवन के बीते दिन याद आ रहे थे। माँ और नंजुड श्रोत्रिय का भी स्मरण हुआ। श्यामदास, जिन्हें कभी देखा नहीं था, की भी कल्पना की। पत्नी भागीरतम्मा, लक्ष्मी, पुत्र नंजुड, चीनी, बहू कात्यायनी एक-एक कर सबके स्मृति-चित्र उनकी आँखों के सामने आते रहे। कात्यायनी का स्मरण आते ही उनका मन वहीं रुक गया। उसे देखे चौदह वर्ष हो गये हैं। वह अब कहाँ होगी? डॉ० राव ने कहा था कि बेंगलूर में रहती है। लौकिक जीवन त्यागने से पहले, उसे एक बार देखने की इच्छा हुई। मैसूर में उतरकर डॉ० राव से भी मिल ले। उनसे कात्यायनी का पता लेकर बेंगलूर होते हुए ही जाना है। इसी विचार में डूबे हुए थे कि गाड़ी चामराजपुर स्टेशन पहुँची। वे वहीं उतर पड़े। वर्षा की बूँदें धीरे-धीरे पड़ रही थीं। वे यह जानते थे कि डॉ० राव प्रोफेसरों के लिए निर्मित बँगले में रहते हैं। किसी एक व्यक्ति को अपने साथ लेकर उस इलाके में पहुँचे। एक बँगले के सामने खड़े होकर पूछा—"डॉ० सदाशिवराव का बँगला कौन-सा है?"

भीतर कुर्सी पर बैठे एक सज्जन ने आकर कहा—"वे अब नहीं रहे। उन्हें गुजरे आठ महीने हो गये हैं।"

यह सुनकर श्रोत्रियजी का मन व्यथित हो उठा। "उनका परिवार कहाँ है? क्या आप जानते हैं कि उनका छोटा भाई कहाँ रहता है?"

"उनकी पहली पत्नी उनके भाई के पास रहती है। द्वितीय पत्नी स्वदेश लौट गयी है। उनका भाई इसी नगर में है। घर लक्ष्मीपुर में है।"

श्रोत्रियजी लक्ष्मीपुर की ओर चल पड़े। वर्षा से उनकी ओढ़ी हुई धोती भीग गयी थी। उससे पानी टपक रहा था। बाँस में लगाई गाँठ खोलकर धोती को सिर पर डाल लिया। उन्हें स्मरण हुआ—'अब कुछ दिन और! फिर तो इस तरह अधिक कपड़े नहीं रख सकेंगे।' रास्ते के किनारे-किनारे चलते रहे। किसी से पूछकर राजाराव के घर के सामने खड़े हो गये। साँझ के साढ़े सात बजे थे। द्वार पर दस्तक दी, तो लाल साड़ी पहने हुए

लगभग पेंतालीस वर्ष की एक विधवा ने द्वार के पास आकर पूछा—
"कौन चाहिए ?"
"कहिए कि नंजनगूडु से श्रीनिवास श्रोत्रिय आया है। कात्यायनी यहीं है न ?"
आवाज सुनकर राज भीतर से दौड़ा आया। नजरें झुकाकर श्रोत्रिय जी को प्रणाम कर पूछा—"अकेले आये हैं ? आपका पौत्र नहीं आया ? टैक्सी कहाँ है ?"
श्रोत्रियजी कुछ नहीं समझे ! "मैं कुछ नहीं जानता। यों ही आप लोगों को देखने के लिए आ गया हूँ।"
राज उन्हें भीतर एक कमरे में ले गया। पलंग पर मृत्युशय्या पर एक महिला लेटी थी। "यही है कात्यायनी" राज ने कहा। उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हुआ। पूछा—"क्या हुआ है ?" राज बोला—"पहले आप स्नानगृह में चलिए। सारे कपड़े भीग गये हैं, बदल लीजिए। फिर बातें करेंगे।" स्नानगृह में जाकर श्रोत्रियजी ने भीगे कपड़ों को निचोड़ा। आधी भीगी एक धोती पहनी। निचोड़ी हुई गीली धोती को ओढ़कर बाहर आये। राज ने सूखी धोती लेने के लिए कहा तो "नहीं, यही ठीक है"—कहकर वे कात्यायनी के पास गये।
पलंग पर सोयी कात्यायनी को अच्छी तरह कपड़े उढ़ा दिये गये थे। उसका सारा शरीर हड्डियों का ढाँचा-मात्र था। आँखें मुँदी थीं। मुख सूखकर मुरझा गया था। साँस धीरे-धीरे चल रही थी। श्रोत्रियजी ने पूछा—"क्या बीमारी है ?"
"डाक्टरों के इलाज से ठीक होने वाली बीमारी नहीं है। पुनर्विवाह नहीं करना चाहिए था। लेकिन वैसा नहीं हुआ। उसके मस्तिष्क में धर्म-कर्म, कर्तव्याकर्तव्य का द्वन्द्व चलने लगा। लाख कोशिश करने पर भी हम उसे रोक नहीं सके। उस बारे में सविस्तार से बाद में कहूँगा। डॉक्टर ने बताया है कि आज की रात वह बचेगी नहीं। आपको और अपने बेटे को देखकर मरने की इच्छा इसने शाम को व्यक्त की थी। मैंने तुरन्त टैक्सी भेज दी। मैं नहीं जानता कि उसका बेटा आयेगा या नहीं। आप आ गये, यह हमारा सौभाग्य है।"
"मुझे ... है, वह अवश्य आयेगा।"

"मैंने सुना है कि उसका स्वभाव कुछ कठोर है। जब वह सरकारी कालेज में पढ़ रहा था, तब उसे मालूम हुआ कि यह उसकी माँ है। एक बार उसे घर भी लायी थी। इससे मेलजोल बढ़ने के भय से और शायद तिरस्कारवश उसने वह कालेज ही छोड़ दिया और दूसरे कालेज में प्रवेश ले लिया था। शायद यह आप जानते होंगे?"

श्रोत्रियजी को आश्चर्य हुआ। चीनी के कालेज छोड़ने का कारण यह हो सकता है इसकी कल्पना भी उन्हें नहीं थी। वे बोले—"नहीं, मैं नहीं जानता था। उसने कहा कि सरकारी कालेज में पढ़ाई ठीक नहीं होती।"

"लेकिन इसके कालेज छोड़ने का कारण दूसरा ही है। इस बीच तीन बार इसका गर्भपात हो गया। इसका यह विचार प्रबल होता रहा कि अपने पाप के कारण ही ऐसा हुआ। अंत में बेटे से भी तिरस्कृत होने के पश्चात् पूर्णतः निराश हो गयी। शायद तभी से इनकी सुप्त प्रज्ञा ने मरने का संकल्प किया है। मुझे नहीं लगता कि वह आयेगा। आप आ गये, इतना ही पर्याप्त है" कहते समय राज की आँखों से आँसू छलक पड़े। "मुझसे आपके प्रति बड़ा अन्याय हुआ है। आपसे एवं आपके व्यक्तित्व से परिचित होता तो मैं इससे विवाह ही न करता। आप मुझे क्षमा करें" कहकर उसने झुककर उनके पैर पकड़ लिये।

"यह सब विधि का विधान है। तुम लोगों की क्या गलती है?" उन्होंने राज को उठाया। कात्यायनी के कानों के पास झुककर राज ने जोर से दो बार कहा—"देखो, तुम्हारे ससुर श्रोत्रियजी आये हैं।" उसके चेहरे से प्रतीत हुआ कि वह समझ गयी है। आँखें खोलने की उसने कोशिश की, लेकिन पूर्णतः नहीं खुलीं। राज ने श्रोत्रियजी से कुर्सी पर बैठकर अपने पैर उसकी ओर करने को कहकर कात्यायनी को एक करवट सुलाकर उसके हाथों से चरण-स्पर्श कराया। शायद कात्यायनी समझ गयी होगी। उसकी आँखों से दो बूँद आँसू ढुलक पड़े।

टैक्सी के रुकने की आवाज आई। कमरे के बाहर खड़ी नागलक्ष्मी दौड़ती हुई द्वार के पास गयी। टैक्सी से उतर, पृथ्वी चीनी के साथ भीतर आया। पृथ्वी का अनुसरण करता हुआ चीनी सीधा कमरे में प्रविष्ट हुआ। कुर्सी पर दादा को बैठे देख उसे आश्चर्य हुआ।

"आओ बेटे, कम-से-कम अब तुम्हें अपनी माँ की सेवा करनी चाहिए"
श्रोत्रियजी ने कहा। चीनी पलंग के पास खड़ा हो गया। "पलंग के
किनारे बैठ जाओ और अपनी माँ का हाथ पकड़ लो।" उसने वैसा ही
किया। कात्यायनी की श्वास अब ऊपर को चल रही थी। राज ने कहा,
यह शायद करवट बदलने की थकावट के कारण होगा। श्रोत्रियजी ने
अपनी अँगुलियों से खोजकर देखा, बाँयें हाथ की नाड़ी की जाँच की और
बोले, "यह थकावट के कारण नहीं है, इसका अंतिम क्षण आ गया है।
किसी डॉक्टर को क्यों नहीं बुलाते?"

"डाक्टर को बुलाने से कोई लाभ नहीं। उसकी जीने की इच्छा ही
नहीं है। तीन दिन पहले इसी ने डाक्टर से कह दिया था कि अब न
आयें" राज ने कहा।

"हाँ तो गंगाजली में गंगा-जल ले आइए। नहीं तो शुद्ध जल भी
चल सकता है" श्रोत्रियजी बोले। नागलक्ष्मी जल्दी-जल्दी चाँदी की लुटिया
में थोड़ा शुद्ध जल और चाँदी की गंगाजली ले आई। श्रोत्रियजी ने कहा—
"चीनी, इसे अपनी माँ को पिलाओ।" चीनी की आँखें डबडबा आयीं।
उसके हाथ काँप रहे थे। श्रोत्रियजी ने कात्यायनी का मुँह खोला। पानी
कात्यायनी के मुँह में चला गया।

तत्पश्चात् दस मिनिट जोर-जोर से ऊर्ध्व श्वास-सी चलती रही।
अनंतर वह अवरोह गति में बदल गयी। क्रमशः शांत होती गयी।
शांत हो गयी उसकी श्वास। उसके जीवन में उत्पन्न, उसे पीड़ा के
भँवर में उलझा, तड़पाता द्वन्द्व अब उसकी मृत्यु के साथ समाप्त हो
गया।

राज आँसू बहाता बैठ गया। पृथ्वी और नागलक्ष्मी एक कोने में बैठ रोने
लगे। उन सबको श्रोत्रियजी ने सान्त्वना दी। इस समय आगे का कार्य
नहीं किया जा सकता था। सबने मानो तय कर लिया था कि सुबह तक
किसी को इस संबंध में न बताया जाय। श्रोत्रियजी ने शव के हाथ-पैरों
को सीधा किया। उसके पास एक दीया और एक छुरा रखा। फिर रंज
का हाथ पकड़कर कमरे के बाहर बरामदे में लाये। नागलक्ष्मी कमरे में
ही चिंतामग्न बैठी रो रहा था। चीनी एक बैठकर गहरे

विचार में डूबा था। चेहरे पर दुःख था, लेकिन रो नहीं रहा था।

राज को सात्वना देते हुए, उसके मन को दूसरी ओर मोड़ने के लिए श्रोत्रियजी बातें करने लगे। डॉ० राव की मृत्यु के बारे में पूछने लगे। उनके प्रथ और द्वितीय पत्नी के बारे में भी पूछा। राज ने भाई के बारे में सब-कुछ बताया। राज ने पूछा—"आप पहले कभी नहीं आये, कहाँ जा रहे हैं ?" श्रोत्रियजी ने कहा—"संन्यास ग्रहण करने के लिए हरिद्वार या बद्रीनाथ जा रहा हूँ।" राज को विश्वास न हुआ। संन्यास-धर्म के संबध में कुछ समय तक श्रोत्रियजी बताते रहे। रात के दो बज गये थे। रुलाई का आवेग खत्म हो गया था। सब उनकी बातें सुन रहे थे। बात बढ़ाने का और कोई उपाय न पाकर उन्होंने प्रश्न किया—"आप कहाँ के रहने वाले है ?"

"हमारा गाँव बेल्लूरू है। लेकिन बड़े हुए कुणिगल में। वहाँ हमारे मामा का घर था।"

श्रोत्रियजी के मन में अनायास एक प्रश्न उठा—"हाँ, आपकी तरफ श्रोत्रिय वश का कोई व्यक्ति है ?"

"क्यों ?"

"हमारे रिश्तेदार हैं। मेरे पिता के छोटे भाई का नाम है किट्टप्पा। नंजनगूडु से चले गये थे। अस्सी-नब्बे वर्ष पहले की बात है। उसके बाद उनका कोई पता न चला।"

"किट्टप्पा श्रोत्रिय !" कुछ याद-सा करके राज बोला—"मैने सुना था मेरे दादाजी का नाम किट्टप्पा था। कहते हैं वे नंजनगूडु के थे। लेकिन पता नहीं कि वे श्रोत्रिय वंश के थे या नहीं !" इतने में कमरे के भीतर बैठी नागलक्ष्मी ने कहा—"हाँ, उन्हें किट्टप्पा श्रोत्रिय के नाम से पुकारते थे—यह बात मेरे पिताजी कह रहे थे।"

श्रोत्रियजी को आश्चर्य हुआ। उन्होंने तुरन्त पूछा—"आपका गोत्र कौन-सा है ?"

"काश्यप गोत्र !"

अब उनके मन मे कोई सन्देह ही न रहा। आश्चर्यचकित हो, वे बैठ गये। तब नागलक्ष्मी बोली—"किट्टप्पा श्रोत्रिय के चार बच्चे थे। द्वितीय को छोड़ सब मर गये। उनके साथ मेरी बुआ की शादी हुई थी। ये दोनों

उन्हीं के बेटे हैं।"

श्रोत्रियजी मूकवत् बैठे रहे। उनका मन अपने एवं इस संसार के संबंध में सोचने लगा, लेकिन इस दशा में वे कुछ भी समझ नहीं पा रहे थे। अनजाने ही उनके मुख से निकल पड़ा—"बड़ी जल्दबाजी की !"

"क्यों ? क्या बात है ?" राज का प्रश्न था।

"कुछ भी नहीं !"

"कहा न आपने कि बड़ी जल्दबाजी की ?"

"वैसे ही कहा था ! खैर, कहता हूँ। हमारी जो जायदाद थी वह श्रोत्रिय वंश की थी। सुनता हूँ कि मेरे पिताजी ने किट्टप्पाजी को धोखा देकर घर से निकाल दिया। यह बात मुझे सात-आठ महीने पहले मालूम हुई थी। तत्पश्चात् उस वंश के लोगों का पता लगाने का पूरा प्रयत्न किया, लेकिन कोई नहीं मिला। इस विचार से कि अधर्म की जायदाद से उद्धार नहीं होता, अब कोई पन्द्रह दिन पहले मैंने और मेरे पौत्र ने मिलकर उस समस्त जायदाद को दान कर दिया। अगर पहले मालूम हो जाता तो आपके नाम लिख देता।"

श्रोत्रियजी के व्यक्तित्व के बारे में राज ने अपने भाई से सुना था। स्वप्न में कात्यायनी को बोलते हुए भी सुना था। लेकिन कभी इस बात की कल्पना नहीं की थी कि इनकी धर्मनिष्ठा इस स्तर तक पहुँची हुई है। अपने सम्मुख बैठे हुए व्यक्ति को उसने एक बार आँख भर देखा। अनजाने में उसे एक तरह का भय हुआ। वह चुपचाप बैठ गया।

अब कौवे बोलने लगे थे। श्रोत्रियजी ने द्वार खोला और बाहर आकाश को देखकर अंदर आये—"चार बजे का समय है। वर्षा भी रुकी हुई है। अब आगे का कार्य कीजिए। मैं चलता हूँ।"

"हमें छोड़कर जा रहे हैं ? नये संबंध की बात बतायी आपने। आप तो मेरे पिता के समान हुए" राज ने कहा।

"हाँ, संबंध कुछ वैसा ही है। लेकिन जो संन्यास के लिए निकल पड़ा है, उसका कोई संबंध नहीं होता। इस परिस्थिति में आप लोगों को छोड़ जाने में मुझे दुःख तो होता है लेकिन निश्चय किया है कि चार दिन में हरिद्वार पहुँच जाना चाहिए" इतना कहकर अपना पंचा गमछे में बाँध, बाँह में लटकाया और बाहर निकल पड़े। प्रणाम करने के लिए राज

उनके निकट पहुँचा। "इस हालत में प्रणाम नहीं करना चाहिए"—कह-कर नागलक्ष्मी की ओर मुड़कर "अच्छा, जाता हूँ"—कहकर चल दिये। चीनी निद्रावस्था में था। वे फाटक पार कर गये। राज द्वार के पास खड़ा उन्हीं को देख रहा था।

वे लगभग एक फर्लांग चले। वर्षा के कारण मार्ग के दीप बुझ चुके थे। अँधेरे में मार्ग के मद्धिम प्रकाश को पहचानकर रेलवे स्टेशन की ओर बढ़ रहे थे। पीछे से चीनी की आवाज आई—"दादीजी !" वे रुक गये। हाँफते हुए उसने कहा—"शायद हमारी पुनः भेंट नहीं होगी ! एक बात पूछने के लिए आया हूँ।"

"कहो बेटे, क्या बात है ?"

"जो मर गयीं है, वे मेरी माँ हैं ! उनका जीवन किसी तरह चला और समाप्त हो गया। क्या मैं उनकी उत्तर-क्रिया करूँ ? बस, इतना बता दीजिए।"

श्रोत्रियजी ने दो मिनट आँखें मूँदी, सोचकर बोले—"बेटे, दूसरों के पाप-पुण्य का निष्कर्ष निकालने का अधिकार मुझे नहीं है। इसके अति-रिक्त माता-पिता के जीवन को नापना महापाप है। अपने कर्त्तव्यों को को निभाना ही हमारा कर्त्तव्य है। तुम अपनी माँ की समस्त उत्तर-क्रियाओं को श्रद्धा-भाव से सम्पन्न करो। अपने ससुर से भी कह देना कि मैंने ऐसा कहा है। कपिला के तट पर ही करो।"

चीनी वहीं खड़ा रहा।

"अब तुम जाओ। आज का शव-संस्कार भी तुम्हारे जिम्मे है।" वे आगे बढ़ चले।

सुबह होने से पहले गहरा अंधकार फैला था। जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाने के लिए मार्ग साफ-साफ नहीं दिखाई दे रहा था। लेकिन वह ऐसा मार्ग नहीं था जो पहले कभी देखा न हो। अंधकार बीतने के पश्चात् मिलने वाला प्रकाश पहले भी था। अंधकार में डरकर विचलित होना श्रोत्रिय जी का स्वभाव नहीं था। आगे बढ़े बिना प्रकाश कैसे मिलेगा ? मन में "तमसो मा ज्योतिर्गमय…" का उच्चारण करते और जल्दी-जल्दी स्टेशन की ओर बढ़ने लगे।